सन्तुलित गो-पालन

लेखिका

चन्द्रावती राधारमण

पीलीभीत

(यू० पी०)

मूल्य ५)

समर्पण

माँ,

मानव के विकास एवं देश की सच्ची समृद्धि के लिए 'गौ' नितान्त आवश्यक है। अस्तु, सुचारु-रूप से गोपालन करना हमारी उन्नति का मूल-कारण तथा हमारा राष्ट्र-धर्म है।

राष्ट्र-सेवा-भावना से प्रेरित एवं तेरी सेवा-भावनाओं से पथ-प्रदर्शित किये हुए प्रथम-प्रयास के यह कतिपय पृष्ठ तुझे अर्पित हैं।

तेरा ही,

चन्द्र

निवेदन

गो मानव की माँ, और सभ्यता की निर्मात्री है; क्योंकि वह मनुष्य तथा उसकी जीवन-आधार अन्नदायिनी कृषि, दोनों ही के पोषण के लिए दूध एवं गोबर देने वाली अनुपम विभूति है। किसी भी राष्ट्र की सच्ची उन्नति और बुनियादी मज़बूती वहाँ की जनता के स्वास्थ्य पर निर्भर है। सुपोषित शरीर में ही जाग्रत बुद्धि का विकास हो पाता है। अतएव गो की उन्नति से समुचित गोरस पाकर देश वस्तुतः समृद्धिशाली बनता है।

प्रगतिशील मानव ने सभ्यता के विकास के साथ ही गाय को पालना शुरू कर दिया था। घी दूध में उत्कृष्ट पोषक गुणों का होना ज्ञात करने के कारण वह आज भी गाय की सेवा करता है। यद्यपि मनुष्य ने अपने आराम के लिए, विज्ञान के बल पर, प्रकृति की विभिन्न शक्तियों का उपयोग करके कल-कारखानों द्वारा तरह तरह के सुख-साधनों की रचना कर ली है, तथापि उसे दूध और अन्न की तो निरन्तर ही आवश्यकता बनी रहेगी।

गो-शिशु के पैदा होते ही उसकी माँ का दूध मनुष्य को भी मिलने लगता है। गो का बछड़ा केवल ३ साल बाद खेती-बाड़ी में आजन्म काम करने के लिए तैयार हो जाता है, और बछिया भी इतनी ही उम्र के लगभग ब्या कर दूध देने लगती है। गो जाति का विसर्जन—गोबर व गो मूत्र—तो कृषि की हर फ़सल में प्राण-सञ्चार करते हैं। मरने पर भी गाय का कोई अंश बेकार नहीं जाता, अतः *गो वह उद्योग* **है** जो जीवन भर तो मनुष्य के लिए वरदान देती है और मरने पर भी उसे उपकार पहुँचाती है।

कल कारखानों से मनुष्य जहाँ लाभ उठाता है, वहाँ साथ ही उसे अनेक प्रकार के नुकसान भी होते हैं; किन्तु ठीक तौर से पालने पर गाय से कोई भी हानि होने की सम्भावना नहीं हो सकती।

गो-पालन की महत्ता सारे विश्व भर में व्याप्त है। योरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और रूस आदि सभी देशों में काफ़ी धनराशि लगा कर वैज्ञानिक ढङ्ग पर गायें पाली जाती हैं। उन देशों की गायें सदियों से अच्छी सेवा पाने के कारण ख़ूब हृष्ट-पुष्ट तथा दुधारू बन गई हैं। वे लोग गाय को पालने, नस्ल को सुधारने, सन्तुलित ख़ुराक के खिलाने तथा उचित चिकित्सा के करने का प्रबन्ध भली भाँति करते हैं। इतनी सुचारु सेवा पाकर भारतीय गाय भी शीघ्र ही उन्नत हो सकेगी; किन्तु हमारे यहाँ गो पूजनीय मानी जाने पर भी **आज एक उपेक्षित जीव है।**

संसार भर के ५४ करोड़ गो-पशुओं में से हमारे सम्पूर्ण (विभाजन के पूर्व) भारत में १८

करोड़ गो-पशु थे। यद्यपि हमारे यहाँ की गो-संख्या अन्य देशों की तुलना में बहुत विस्तृत है, तथापि यहाँ का दूध का उत्पादन तो बिल्कुल ही कम है। उदाहरण के लिए जर्मनी ही को लीजिए—वहाँ की गो-संख्या हमसे सात गुनी कम है, फिर भी वहाँ के दूध का उत्पादन हमारे बराबर होता है। निष्कर्ष यह है कि वहाँ की गायों की दूध देने की शक्ति हमारी गायों से ७ गुना ज़्यादा है। इसका मूल कारण उनका वैज्ञानिक-रीति से गायों का पालना है।

आस्ट्रेलिया, हालैण्ड व स्वीट्ज़रलैण्ड आदि देशों का एक प्रधान व्यवसाय गो-पालन ही है। वहाँ अधिकतर बैल खेती व गाड़ी के काम में नहीं आते, अतः गो-धन का यह अंश बेकार हो जाता है, किन्तु फिर भी वे लोग केवल दूध के लिए ही गाय पालते हैं और गोरस की तरह तरह की चीज़ें व्यापार के हेतु अन्य देशों में भेज कर धन का उपार्जन करते हैं।

हमारा भारत कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की ९० प्रतिशत जनता का उद्योग खेती-बाड़ी है। अस्तु, गोके लिए ज़मीन और पानी की कमी नहीं हो सकती। पशु-संख्या भी यहाँ पर्याप्त है। गो-सेवा करना धर्म माना जाता है। गोबर व गोमूत्र पवित्र समझे जाते हैं और बैल तो किसान के लिए भाई से भी बढ़ कर हितू एवं प्रिय है। आर्थिक दृष्टि से लाभदायी और धार्मिक दृष्टि-कोण से पूज्य होते हुए भी गाय-बैलों की जैसी मरियल दशा हमारे देश में हो रही है, वैसी गोभक्षक देशों में भी नहीं है। गो की इस दुर्दशा के कई कारणों में से हमारी विवशता, उपेक्षा तथा अज्ञान प्रमुख हैं।

विश्ववंद्य महात्मा गान्धी के रचनात्मक कार्यक्रम से प्रेरणा पाकर गोपालन करने के लिए गो-साहित्य का अध्ययन करने पर मैंने देखा कि हमारी भाषा में आधुनिक गो-विज्ञान की बड़ी कमी है। गोपालन के विभिन्न अङ्गों पर विशेषज्ञों की लिखी कुछ अच्छी पुस्तकें हैं, किन्तु दैनिक व्यवहार के योग्य इस विषय के सभी अंशों का सरल साहित्य, आम जनता की जानकारी के लिए, बहुत ही कम मिलता है।

प्रस्तुत पुस्तक, **"सन्तुलित गो-पालन"** के चार विभागों में प्रतिपालन, प्रजनन, पोषण, तथा चिकित्सा सम्बन्धी आधुनिक गो-विज्ञान को सरल रूप से विश्लेषण करने का प्रयास किया है। साथ ही इसमें आयुर्वेदीय देशी और सुलभ दवाएँ एवं अनुभवसिद्ध मतों का यथासाध्य संकलन करने का प्रयत्न है।

गो-सेवा प्रचार के लिए पुस्तक की भाषा, जहाँ तक हो सकी, सरल व कलेवर संक्षिप्त रक्खा गया है। फिर भी कहीं कहीं विज्ञान-सम्बन्धी कुछ क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग विवश होकर करना ही पड़ा। इसमें दूध-घी का मूल्य सन् १९४२ ईस्वी के स्थानीय भावों के अनुसार लगाया गया था। पाठकों को उस अनुपात से वर्त्तमान भाव लगा लेना चाहिए। साथ ही अपने अपने प्रान्त की जलवायु के अनुकूल गोपालन तथा खेती की पद्धति व समय में थोड़ा-सा आवश्यक अन्तर कर लेना उचित होगा।

यह कृति किसी विशेषज्ञ या विशारद की नहीं अपितु एक गो-प्रेमी व्यक्ति की है, जिसने गो-

द्वारा राष्ट्र सेवा को लक्ष्य में रखकर इसका संकलन किया है। इस पुस्तक का ध्येय गो-प्रेम को जनता में जागृत करके उन्हें गाय को स्वस्थ एवं दुधारू बनाने के सहज तरीक़ों को बताना ही है। आशा है यह रचना गो-विज्ञान पर सञ्चित एक छोटा-सा उपयोगी कोष सिद्ध हो सकेगी।

वेटरनरी रिसर्च इन्सटीटच्यूट, आइजटनगर (I.V.R.I.) के प्रजनन-विभाग के प्रधान डाक्टर श्रीयुत पुण्यव्रत भट्टाचार्य जी, M.Sc., Ph. D. ने मुझे इस प्रयास में प्रोत्साहन दिया एवं गो-विज्ञान-विषयक चित्रों को इकट्ठा करने में सहायता दी है। इसी अनुसन्धान-शाला के असिस्टैन्ट रिसर्च आफिसर व वेटरनरी सरजन श्री महेन्द्रप्रताप जौहरी, G.B.V.C., M.R. San I. ने अनुग्रह करके *"सन्तुलित गो-पालन"* की शुद्धता की जाँच कर दी है और लिखने में यथेष्ट सहायता पहुँचायी है। ललितहरि आयुर्वैदिक कालिज, पीलीभीत के प्रिन्सिपल श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी के द्वारा आयुर्वेदीय दवाओं के नुस्ख़े जाँच लिये गये हैं। गो-सेवा-संघ वर्धा के विशेषज्ञों ने भी पुस्तक को जाँचा तथा कुछ दवाओं के नुस्ख़े देने की कृपा की है। अन्य कई सुहृद् सज्जनों ने इस पुस्तक को तैयार करने में विविध सहायता दी है। इन सभी महानुभावों की कृपा और सहयोग के लिए मैं उनका सदैव आभार मानूँगी और अनुगृहीत रहूँगी।

प्रथम प्रयास होने के कारण इस संस्करण में मेरे सतत प्रयत्नों के उपरान्त भी संभव है कि कुछ वैज्ञानिक परिभाषा की अस्पष्टता (technical misrepresentations) रह गयी हों अस्तु क्षमा प्रार्थी हूँ। विज्ञ पाठकों से सविनय अनुरोध है कि वे इनका दिग्दर्शन करवा के द्वितीय संस्करण को परिष्कृत एवं परिमार्जित करने में सहायता दे अनुग्रहीत करें।

आज खाद्य समस्या जटिल हो रही है। गोपालन के शास्त्रीय ज्ञान की कमी के कारण गायों को पालने में लगाई गई ताक़त का एक बड़ा हिस्सा फ़िज़ूल जाता है। इसी मेहनत को ठीक तौर से लगाया जाय तो भारत की वर्तमान दूध की भयंकर कमी बहुत कुछ दूर करी जा सकती है। हमें अपनी वर्तमान गायों की ठीक देखभाल करके उन्हींके दूध को दुगना व तिगुना बढ़ाकर देश को समृद्धिवान् बनाना होगा।

इस पुस्तक के चार विभागों में गो सेवा के हर एक पहलू का ज़िक्र है। प्रतिपालन में गाय को संभालने, दूध को बढ़ाने और खाद को बनाने के आधुनिक तरीक़े हैं। प्रजनन विज्ञान के दूसरे विभाग में गाय की नस्ल को सुधारने के लिये गो जाति की पहचान, साँड़ का चुनाव और गोप्रसूति का सरल एवं सांगोपांग वर्णन है। पोषण के तीसरे विभाग में खेती व चारे से लेकर संतुलित ख़ुराक देने की पूरी विधि और तालिकायें हैं। चिकित्सा के चौथे विभाग में पशुओं की हर तरह की छोटी बड़ी बीमारी और उनके समुचित इलाजों का कथन है।

इस पुस्तक के विक्रय की सारी निधि गो-सेवा में ही लगायी जायगी। अस्तु, पाठकों से अनुरोध है कि वे *"सन्तुलित गो-पालन"* का प्रचार करके दोहरी गो-सेवा करें।

पीलीभीत
७-६-४८

विनीता
चन्द्रावती

क्या आपको मालूम है ?

कि भारतवर्ष के उद्योग धन्धों में पशु-धन (दूध, घी, चमड़ा, गोबर और पशु आदि) का उत्पादन १९,००० करोड़ रुपया माना जाता है। गो-उद्योग देश के और सभी उद्योग धन्धों से ज़्यादा बड़ा है।

कि भारत में संसार भर से ज़्यादा पशु संख्या है। यहाँ की गो पशु की संख्या संसार की कुल गो-पशु-संख्या की $\frac{१}{४}$ है और यह कि इतनी बड़ी पशु संख्या होने पर भी यहाँ के दूध का वर्तमान उत्पादन संसार के अन्य सभी देशों से कम है।

कि भारत की गायों की दूध देने की शक्ति आज एकदम गिरी हुई है। यदि प्रति वर्ष, प्रति गाय के एक व्यांत के दूध का औसत लगाया जाय तो लगभग केवल ५।। मन ही पड़ता है अर्थात् एक गाय का औसत लगभग १।। सेर दूध रोज़ का होता है। जब कि यहाँ की भी दुधारू अच्छी गायोंकी प्रति व्यांत में दूध देने की शक्ति ८२।। से ९० मन तक भी पाई जाती है। इससे यह ज्ञात होता है कि अधिकतर गायें पूरी शक्ति भर दूध नहीं देतीं।

कि यहाँ प्रति व्यक्ति के लिये दूध की खपत का औसत केवल २।। छटाँक से लेकर ५ छटाँक तक पड़ता है। जबकि संसार के अन्य देशों में यहाँ से कम गो-पशु होते हुए दूध की खपत का औसत १० छटाँक से कहीं ज्यादा पड़ता है, और वे लोग दूध का व्यवहार हम से ज्यादा करते हैं।

कि भारत के बटवारे के कारण अच्छी दुधारू सायवाल, लालसिन्धी और थारपरकर नस्लें तो पाकिस्तान में रह गईं, इस कारण हमारे पास दुधारू नस्लों की बड़ी कमी हो गई है, और हमें अपनी शेष नस्लों की ही तरक्क़ी जल्दी करनी पड़ेगी, वर्ना काफ़ी दूध न मिल सकेगा।

कि यहाँ की खेती का आधार बैल ही है। ग्रामों में आमदरफ़्त की ज़रूरत के लिये बैल ही काम में आते हैं। फिर भी ज्यादातर बैल कमज़ोर होने के कारण काफ़ी काम नहीं कर पाते। अच्छी तरह पालने पर हमारे बैल भी दुगना काम करने लगेंगे।

कि इन कमज़ोरियों का मुख्य कारण यहाँ की नस्लों का ख़राब होना नहीं है, बल्कि, १—उनकी कम और रद्दी ख़ुराक, २—साँड और प्रजनन की ओर से लापरवाही, ३—गो-चर भूमि का बदइन्त-ज़ाम, ४—पशु पालन ज्ञान की कमी आदि हैं। नस्ल चलाने के लिये प्रजनन-विज्ञान का ज्ञान न होने से नस्ल दिन ब दिन तरक्क़ी करने के बदले गिरती ही गयी है।

कि गाय भी एक प्राणी है, जो केवल पूजा करने से नहीं पनप सकती। विशेषज्ञों के बताये हुए तरीक़ों से सच्ची सेवा करने से हमारी मौजूदा गायें हमारे लिये एक भार नहीं बल्कि आशीर्वाद बनाई जा सकती हैं।

कि हिन्दुस्तानी भोजन में दूध और उससे बनी हुई चीज़ें सब से ज्यादा ज़रूरी हैं। दूध के मुक़ाबले में ख़ुराक की और किसी भी चीज़ से, दूध के उतना पोषण नहीं मिलता है।

कि यदि हमें जीना है, बलवान और निरोग बनना है, तो अन्न उपजाने में ख़ास मदद देने वाली और अमृत के समान दूध देने वाली गाय की तरक्क़ी करनी पड़ेगी।
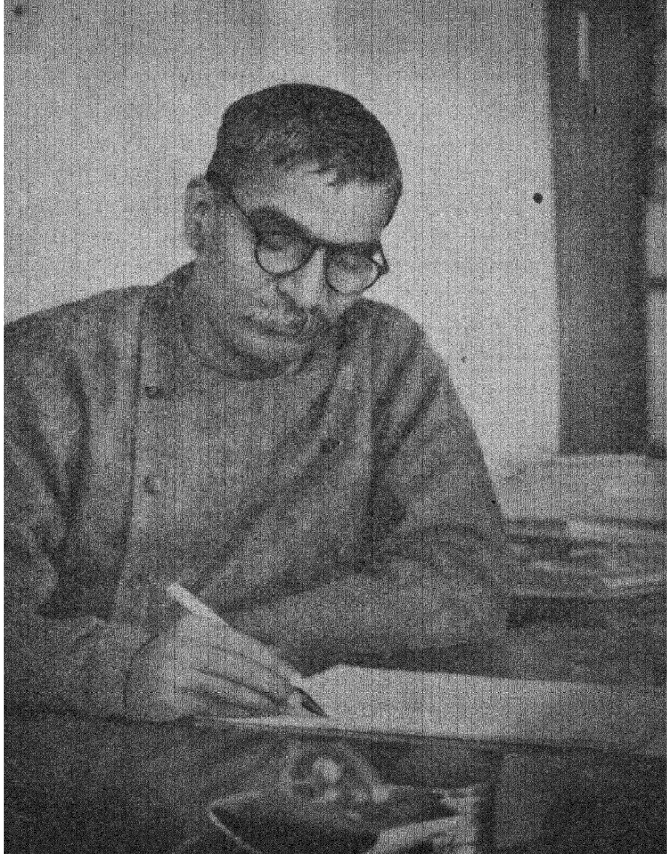
डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

डा० राजेन्द्रप्रसाद

द्वारा

प्रस्तावना

भारतवर्ष में गोपालन का विकास जिस हद तक हुआ था यह अब पौराणिक कथाओं तक ही सीमित है। उन कथाओं में वर्णित गौओं की कल्पना करना भी आज हमारे लिये कठिन है। देहातों की दुवली पतली गायें जिन्हें पूरी खुराक नही मिलती उसी तरह ढीले ढीले नसों के बैल देखकर वशिष्ट जी की नन्दिनी गाय और शिव जी के सवारी का वृष केवल चित्रित कल्पना की ही मूर्ति रहती है। जीवित और चैतन्य नन्दिनी और वृष तो हिन्दुस्तान में दुर्लभ हो गये हैं। उस ज़माने की मान्यता थी और इस मान्यता पर अमल भी होता रहा कि गौ माता है और वृष बन्धु है। आमरण अपने दूध से मनुष्य को पालनेवाली शक्ति को माँ मानना केवल भावुकता नहीं है। यह तो ठोस सत्य है। इसलिये सच्ची बात तो गोसेवा ही है, गोपालन नहीं है। जिस तरह मातृपालन शब्द मिथ्या बोधक शब्द है उसी तरह गोपालन शब्द भी मिथ्या बोधक ही है। सच्ची स्थिति तो गोसेवा शब्द से ही प्रकट होती है।

इस दृष्टि से देखा जाये तो गोसेवा मनुष्य के प्रेम के दायरे को बढ़ानेवाली भावना है। मनुष्य को सहज ही अपने पालक माता पिता से प्रेम होता है उसी तरह का प्रेम गोवंश से होना चाहिये। इस दृष्टि से गोसेवा केवल आर्थिक लाभ की भावना नहीं है, बल्कि सच्चे प्रेम और सच्ची अहिंसा की भावना है!

जिस तरह मनुष्य के पारिवारिक प्रेम में पैसों की क़ीमत का हिसाब साधारणत: नहीं होता उसी तरह गोसेवा में भी होना चाहिये। गोसेवा इस दृष्टि से की जाये तो आर्थिक लाभ तो बहुत ज़्यादा होता ही है साथ ही मनुष्य की स्वाभाविक हिंसा वृत्ति के शान्त होने की सम्भावनायें भी हैं। पर आज के अर्थोपार्जन के ज़माने में क्षणिक लाभ पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है। कितनी जगह गाय का दूध आख़िरी बूँद तक दुह कर गाय के बछड़े को सिर्फ़ स्तन में मुँह लगाने का मौक़ा दिया जाता है। क्षणिक लाभ के लिये बड़े भविष्य को हम छोड़ देते हैं। जब गो के बच्चे को दूध नहीं मिलेगा तो उनके स्नायुओं में ताक़त कहाँ से आयेगी। इसलिये नस्ल सुधारने के लिये गाय के बच्चों को भरपेट दूध देना आवश्यक है। यदि हम गो को अपने परिवार का अंग समझ कर अपने साथ रक्खें तो वह ज़माना आ जायगा जिस में वशिष्ट की नन्दिनी और शिव के वृष का दृश्य सर्व समान्य होगा।

इसलिये गायों की सेवा हमेशा प्राकृतिक ढंग से ही होनी चाहिये। उन्हें चरने की काफ़ी

आज़ादी चाहिये । हरी घास उन्हें ख़ूब मिले । खल्ली, दलहन, नमक इत्यादि की पूरी मात्रा उनके भोजन में रहे । उनका बथान साफ़ सुथरा रहे । उन्हें बराबर स्नान कराया जाये । उनके गोबर, मूत्र, मल का सदुपयोग खेती में हो । इस तरह गोवंश से खेती और खेती से गोवंश की हमेशा वृद्धि होती रहे तो भारत के नरनारी अधोगति के रास्ते में न गिरकर ऊपर की ओर उठेंगे । देखने में भले ही जान पड़े कि बछड़े अपनी अपनी माँ का दूध पी जाते हैं इसलिये गायों की ख़ुराक का ख़र्च घाटे में जाता है पर अपनी तृप्ति भर दूध पीकर बछड़े बछड़ी का शरीर इतना पुष्ट हो जाता है कि छोटी-छोटी उम्र में याने डेढ़ या दो साल में बछड़ियाँ गर्भधारण करने योग्य हो जाती हैं । और बछड़े साँड़ या बैल के काम में लाये जा सकते हैं । ऐसे बछड़ों का स्नायु पुष्ट हो जाता है । इसी तरह अगर अच्छी नस्ल के साँड़ों के साथ अच्छी अच्छी गायें गाभिन हों और उन्हें गोमाता का पूरा दूध मिले तो दो ही चार पुश्त गायों की नस्ल सुधारने के लिये पर्याप्त होगा जिसका मतलब है ज़्यादा से ज़्यादा १५ साल का समय।

गोसेवा प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य के जीवन की आवश्यकतायें पूरी करती हैं । ऊपर बताया जा चुका है कि सच्ची गोसेवा में हिंसा वृत्ति को रोकनेवाली प्रवृत्ति है । मनुष्य शरीर की पुष्टि जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्युशय्या तक गाय के दूध से होती है । डाक्टरों ने गाय के दूध को मनुष्य जाति का पूर्ण भोजन बतलाया है हिन्दुस्तान कृषिप्रधान देश है । गोसेवा और भूमिसेवा का मेल बैठता है । भूमिसेवा से गो को आहार मिलता है और गोसेवा से भूमि को आहार मिलता है । इस तरह गो और भूमि में परस्पर भावयन्त: का सम्बन्ध प्रकृति ने जोड़ दिया है इसमें मनुष्य यदि निमित मात्र हो जाये,चैतन्य होकर याने समझबूझ कर बुद्धिपूर्वक गो और भूमि की सेवा करे और दोनों का समन्वय करे तो उसे खाना और कपड़ा भी सब आसानी से मिल जा सकता है । अन्न तो खेतों में उपजेगा ही साथ ही खेतों में कपास उपजाकर उसके बिनौले निकाल कर फिर रुई को धुन कर पूनी बनाकर मज़बूत सूत काता जाये तो हर मनुष्य का आलस्य दूर होगा और उसके कपड़े भी तैयार हो जायेंगे । साथ ही अनायास बिनौला भी पैदा हो जायगा जो गाय की अच्छी से अच्छी ख़ुराक है । वैसी ही बात तेल, धान और गुड़ इत्यादि के ग्रामोद्योगों की भी है । तेल की पेराई बैल करेंगे । मनुष्य को वनस्पतिजन्य वसा या चिकनाई तेलरूप में मिलेगी । गाय बैल को खल्ली मिलेगी। गेहूं, धान वगैरह में दलने में कूटने से भी गाय बैल की ख़ुराक पैदा होगी। ऐसी ही बात दूसरें ग्रामोद्योगों के बारे में भी है । इस तरह देखा जाये तो गोसेवा, भूमिसेवा और ग्रामोद्योगों की एक श्रृंखला बँध जाती है। अगर मनुष्य अपने तन, मन, धन, बुद्धि और आत्मा को इन कामों में लगा दे तो रामराज्य कल्पना की वस्तु न होकर मूर्तिमान होकर इस पृथ्वी पर विराजेगा ।

भगवान् से प्रार्थना है कि वह भारत जैसे कृषिप्रधान और गोप्रधान देश के लोगों को सद्‌बुद्धि दे और वे समझ बूझ कर सच्ची गोसेवा के मार्ग में प्रवृत्त हों ।

प्रस्तुत पुस्तक, गोसेवा के अनुभवों का एक संकलन है । पुस्तक के चार भाग किये गये हैं याने प्रतिपालन, प्रजनन विज्ञान, पोषण और चिकित्सा। अनुभव की अनेक बातों का पुस्तक में समावेश है, इसलिये अमली दायरे में भी गोसेवकों के लिये इस पुस्तक के उपयोगी होने की पूरी सम्भावना है ।

पाठकों ने अगर इस पुस्तक को अपनाया तो मुझे आशा है कि पुस्तक रचयिता श्री चन्द्रावती जी इसी तरह के और भी सफल प्रयास करेंगी ।

नई दिल्ली
१८-६-४६

राजेन्द्र प्रसाद

गौ और राष्ट्र पर महात्माजी के विचार

पूज्य महात्मा गाँधी गोपालन को देश की उन्नति का प्रमुख साधन मानते थे। समय-समय पर इस विषय में दिये गये उनके प्रवचन यहां एकत्र किये गये हैं। इनसे गोपालन की उपयोगिता प्रगट होती है। . .

"परन्तु गोरक्षा के जिस आदर्श की हिन्दूधर्म ने कल्पना की है, वह अन्धश्रद्धालु की कल्पना से बिल्कुल जुदा है, और जीवदया तथा अर्थशास्त्र की अपेक्षा विशाल है।"

"हमारे ढोरों की दुर्दशा के लिए हम अपनी गरीबी का राग नहीं अलाप सकते। यह हमारी निर्दय लापरवाही के सिवाय और कुछ नहीं है।"

"जहाँ जीव-दया का धर्म पालने वाले असंख्य मनुष्य बसते हैं, वहीं गाय का यह बुरा हाल! इसमें न मुसलमानों का दोष न अंग्रेजीसत्ता का दोष। दोष किसी का है तो वह हिन्दुओं का। वह दोष भी जानबूझ कर नहीं अज्ञान का है।"

"धर्म के नाम पर होने वाली हत्या से हिन्दुओं की सिर्फ़ मूर्खता के कारण होनेवाली हत्या सौ-गुनी ज्यादा होगी। जहाँ तक हिन्दू खुद **गाय की रक्षा करने का शास्त्र नहीं सीखेंगे, वहाँ तक करोड़ों रुपये देकर भी गाय बचेगी नहीं।**"

"ऐसी संस्था बस्ती से खूब दूर खुले में होनी चाहिए। जहाँ घास हो और पशुओं को घूमने के लिए बहुत याने हज़ारों एकड़ ज़मीन हो।"

"...गो-रक्षा के साथ खेती करना ज़रूरी है"

"जानवर ज़्यादा संख्या में और कम ख़र्च पर पालने हों, तो जहाँ नदी, तालाब या दूसरी पानी की सुविधा हो—और क़ुदरती तौर पर जंगली घास होती हो, वहाँ मेंह-पानी से बचाने के लिए छप्पर डालकर श्रावण से मंगसर तक जानवरों को रखना चाहिए।"

". . .लेकिन *शास्त्रीय-पद्धति* को छोड़ कर सभी लोग गोरक्षा के नाम पर अगर मनमाने तरीक़े से काम लेने लगें तो दोनों का नाश निश्चित है, जैसा कि हमारे देश में और चीज़ों का हुआ है।"

". . .यह सब मुझे यह सिद्ध करने के लिए कहना पड़ता है कि **गाय हमारे लिए मुनाफ़े की चीज़ है; घाटे का सौदा नहीं।**"

"वैद्यों से सुना है कि कुछ सूक्ष्म-रोग-निवारक, आरोग्यवर्धक गुण गाय के दूध में हैं, जो भैंस के दूध में होते भी नहीं और किसी प्रकार आ भी नहीं सकते।"

"इस प्रकार मैं तो बहुत वर्षों से इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जो बछड़े अच्छी गाय पैदा करने लायक़ उत्तम वंश के न हों, उन सबको बचपन में ही बधिया करके बैल की तरह पालना या दूसरों को ऐसा ही करने की प्रेरणा करना भी प्रत्येक गोसेवक का धर्म है ।"

"कल्पित या आदर्श किन्तु अशक्य धर्म के नाम पर समयानुसार आवश्यक धर्म की उपेक्षा करना पाप है ।"

"देहात में हिन्दू बैलों पर इतना बोझ लादते हैं कि वे मुश्किल से चल पाते हैं । क्या यह गो-हत्या नहीं है, चाहे शनैः शनैः क्यों न हो ?"

"बनस्पती घी' घी नहीं है, न हो सकती है । जब होगी तब मैं ही जोरों से कहूँगा कि घी की कोई जरूरत नहीं । किसी प्राणी या जानवर में से जो चिकना पदार्थ पैदा होता है, वह घी या मक्खन है । उस घी के नाम से जो वनस्पति तेल, घी या मक्खन के शकल में या उस नाम से, बेंचा जाता है वह हिन्दुस्तान के साथ किया जाने वाला एक बड़ा धोखा है । हिन्दुस्तान के व्यापारियों का धर्म है कि **वे किसी भी शकल में घी के नाम के-ऐसा दिखावा करके कोई तेल या पदार्थ न बेचें ।** किसी सरकार को तो ऐसा हरगिज न करना चाहिए ।"

"हिन्दुस्तान के करोड़ो लोगों को न दूध मिलता है, न छाछ, न घी या मक्खन । नतीजा यह होता है कि लोग मरते जाते हैं, निस्तेज बनते हैं । **ऐसा लगता है कि मनुष्य के शरीर को मांस या दूध और दूध से बनी हुई चीजें जैसे दही, छाछ घी, मक्खन वगैरा की जरूरत है ।"**

"मैंने गो-सेवा का व्रत बहुत पहले से लिया हुआ है ।"

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी के गो-पालन-विषयक अभिभाषणों के अंश

भारत के वर्तमान सुप्रसिद्ध राष्ट्रपति और भूतपूर्व खाद्य तथा कृषि मन्त्री ***देशरत्न डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी*** के गोपालन विषय पर, समय-समय में, दिये गये भाषणों के अंश यहां उद्धृत किये जाते हैं। आपके विचारों से गोपालन की उत्कृष्टता स्पष्ट विदित होती है। आपने प्रथम बिहार प्रान्तीय गोशाला पिंजरापोल सम्मेलन के समय पटना में कहा था—

"मवेशियों से हमारी जितनी आमदनी होती है, और उनसे जो काम हमको मिलता है, उसकी मज़दूरी इतनी होती है कि उन सब को जोड़ा जाय तो मालूम होगा कि मुल्क में इतनी आमदनी का दूसरा कोई ज़रिया नहीं है, जितनी आमदनी हमको मवेशियों से होती है।

देश में जितना चावल होता है उसकी क़ीमत मवेशियों से हुई आमदनी की १/२ और गेहूँ की क़ीमत १/४ है। इसी से समझ सकते हैं कि किस तरह देश में फैले हुए जानवर मेंह की बूंदों की भाँति काम कर रहे हैं।

गाय दूध देती है, बैल हल जोतते हैं और बोझा ढोने का काम करते हैं। दोनों घास आदि का चारा खाते हैं और इस चारे आदि की क़ीमत दूध वग़ैरह के रूप में वापस देते हैं, मरने पर क़ीमती चमड़ा देते हैं और हड्डी आदि सब कुछ फिर ज़मीन में खाद के रूप में वापस जाता है। इन सब का रुपयों में दाम लगाया गया है। सर आर्थर आलवर ने हिसाब लगा कर बतलाया था कि इन सब की क़ीमत क़रीब १९,००,००,००,०००) होती है।"

मवेशियों की उपयोगिता का उल्लेख करते हुए आपने अपने भाषण में एक समय कहा था—

"हमारे देश में गायें ऐसी होनी चाहिए जो अपनी ज़िन्दगी में काफ़ी दूध दें। खेती और दूसरे कामों के लिए मज़बूत और मेहनती बछड़े दें, अपने मल-मूत्र से काफ़ी खाद दें और मर जाने पर अपने चमड़े, चर्बी, हड्डी और मांस वग़ैरह से ही दूसरी अन्य ज़रूरी क़ीमती चीज़ें दें, तभी गाय ऐसी बन सकती है कि उसका पालन मुनाफ़े का कारण हो।"

"मरे ढोरों की हड्डियाँ जमा करके विदेशों में चली जाती हैं जो कि खाद बन कर ज़मीन की उर्वरता बढ़ा सकती थीं उससे देश वञ्चित हो जाता है।.... मांस और हड्डी की खाद बहुत अच्छी बन सकती है। चर्बी का इस्तेमाल भी होता है।"

"इस प्रकार यदि हम पूरा हिसाब लगा कर देखें; और जो कुछ मवेशियों से उनके जीते

रहने के समय और मर जाने के बाद मिल सकता है उसका ठीक उपयोग करें; **तो मवेशी रखने में नुकसान नहीं होगा।"**

"जहाँ प्राकृतिक सभ्यता में जो हम लेते हैं उसे किसी न किसी रूप में वापस कर देते हैं और फिर उसे पैदा कर लेते हैं, वहाँ आधुनिक सभ्यता में हम संचित द्रव्य को ख़र्च करते ही चले जाते हैं और उसे फिर हम किसी ऐसे रूप में वापस नहीं करते कि वह फिर से अपने पूर्व रूप में हमें मिल सके।"

दूर दूर से अच्छी नस्लों के जानवरों को लाकर दूसरी जगह पालने के विषय में उन्होंने यह कहा है कि "जिस आबोहवा और खुराक में जो पला है उसी में वह सब से ज़्यादा तरक्क़ी कर सकता है।"

गोबर की खाद का महत्त्व दिखाते हुए श्री राजेन्द्रप्रसाद जी ने कहा है कि "इस बात को भी सभी मानते हैं कि यदि *काफ़ी मिक़दार में गोबर वगैरह से बनी खाद दी जाय, तो रासायनिक खाद की बिल्कुल ज़रूरत नहीं होती है।*

गोबर की खाद से नफ़ा के बदले नुक़सान का किसी हालत में डर नहीं हैं। यह भी देखा गया है कि ऐसी चीज़ें जो इस वक्त बुहारने में फेंक दी जाती हैं, या जो **गन्दगी पैदा करती हैं** और सेहत को नुक़सान पहुँचाती हैं। **उन सब का इस्तेमाल अगर ठीक तरह से किया जाय तो नुकसान के बदले उनसे फायदा उठाया जा सकता है।"**

जानवरों को खली देने के सम्बन्ध में आपने एक समय कहा था :—"आज खली का बहुत बड़ा हिस्सा खाद के रूप में ख़र्च होता है। मैं समझता हूँ यह ग़लत है, क्योंकि अगर उसी खली को जानवरों को दिया जाय तो जानवर ज़्यादा स्वस्थ और मज़बूत होंगे, बैल ज़्यादा काम कर सकेंगे। इसके अलावा उनके पेटों के कारख़ानों में वह खली फिर खाद बन कर ज़मीन को भी वापस मिल जायगी।"

नसल सुधार के सम्बन्ध में आपने कहा है कि "ऐसी नसल चुनी जाय जो दूध भी दे और अच्छे बछड़े भी दे।

जिस हरियाना नसल पर भारत को आज भी गर्व है वह नसल झज्जर (रोहतक) के नवाब ने चलायी थी।

अंग्रेज़ों को अपनी सेना के लिए मांस तथा व्यापार के लिए चमड़ा चाहिए। वही प्राप्त करने के लिए उन्होंने एकांगी (केवल दूध या केवल बछड़े वाली) नस्ल की उपयोगिता का प्रचार करके हमारे देश के लोगों को भुलावे में डाला है।"

मोटर ट्रैक्टरों आदि मशीनों के ज़रिए से खेती करने के सम्बन्ध में आपका विचार है :—

"मैं समझता हूँ कि जो हालत आजकल हिन्दुस्तान की है, उसमें इस तरह की कलों से थोड़ी दूर तक हम काम चला सकते हैं। मगर बैलों की ज़रूरत तो हमेशा रह जायगी। बैलों के बिना हमारी काश्तकारी नहीं चल सकती।"

राष्ट्र निर्माण में सर्वांगी गाय

(श्रीयुत राधाकृष्ण जी बजाज, मंत्री—गोसेवा संघ, वर्धा)

आज हमारा देश स्वतंत्र हो गया है, इसकी उन्नति करने के लिए हम पूरे आज़ाद हैं। सरकार हमारी है और वह हमारे हित में पूरी शक्ति लगा सकती है। अन्न की समस्या दिन बदिन विकट होती जा रही है। उसे सुलझाने के लिये गाय का भी सवाल हाथ में लेना होगा। बैल और खाद दोनों दृष्टि से खेती का आधार गोधन पर ही है।

गोसंवर्धन का काम बहुत लम्बे अरसे का है। अमरीका को इस काममें १५० साल से ऊपर प्रयत्न करना पड़ा। इंगलैंड तो आज २०० वर्षो से बराबर प्रयत्न कर रहा है। आस्ट्रेलिया को ८० साल से ऊपर हो गये, अभी तक वह अपने लक्ष पर नहीं पहुँच पाया है। हमें भी आगामी १०० साल का विचार करके योजना बनानी होगी। इतने बड़े कार्य्य की बुनियाद मज़बूत और सही उसूलों पर आधारित होनी चाहिए। वरना ऊपर की सारी इमारत मज़बूत होने पर भी बेकार साबित होगी। **आज हमें बुनियादी काम करना है बुनियादी गो-नस्लें चुननी हैं** इसीलिये हमारी ज़िम्मेवारी बहुत बढ़ी हुई है।

हमें खेती और दूध दोनों कामों के लिये पशु की जरूरत है। आज खेती के लिये बैल और दूध के लिये भैंस इन दोनों प्राणियों का हमारे यहाँ उपयोग हो रहा है। पाड़े का उपयोग खेती के लिये छत्तीसगढ़ जैसे कुछ ही भागों में होता है अतः कम उपयोगी पाड़ा रक्षण के अभाव में ही मरने दिया जाता है। उसी तरह गाय का उपयोग बैल की जननी के अलावा, दूध के लिये न होने से, उत्पादन में वह पीछे पड़ जाती है और एक उपेक्षित प्राणी की तरह अपनी क़िस्मत पर छोड़ दी जाती है। दूध के लिये एक पशु और खेती के लिये दूसरा पशु इस तरह दो दो प्राणियों के पालन के प्रयत्न में हम दोनों प्राणियों के अर्धाङ्गों के शाप लेते हैं।

आज हमारे पास घास-चारे के लिये वनचर और खेती की जो ज़मीन है वह एक प्राणी के पोषण के लिये भी नाकाफ़ी है। उतनी ज़मीन पर दोनों प्राणियों का पूरा पोषण होना नामुमकिन है। यदि पूरी तौर से समझे बिना दोनों प्राणियों के पालन का प्रयत्न करेंगे तो हम एक को भी अच्छी हालत में नहीं रख सकेंगे और दोनों पशुओं की हालत ख़राब होगी।

ऐसी हालत में हमें ऐसा पशु चुनना चाहिए, जो खेती के लायक़ अच्छे बैल भी दे और दूध भी पूरा दे। शहर वाले सोचें कि हमें दूध चाहिए, बैलों से मतलब नहीं; और देहात वाले सोचें

कि हमें बैल चाहिए, दूध से मतलब नहीं, तो यह विचारधारा देश के लिये घातक होगी। हमें तो दोनों को मिलाकर कम से कम जानवरों से अधिक से अधिक दूध और अच्छे से अच्छे खेती के बैल कैसे मिल सकेंगे, इस पर सम्मिलित विचार करना चाहिये। हिन्दुस्तान गर्म देश होने के कारण यहाँ खेती में बैल ही काम दे सकते हैं। पाड़े का उपयोग खेती में नहीं के बराबर होता है। बैलों के लिये गाय का रखना अनिवार्य है। अब दूध की दृष्टि से देखें तो **भैंस के मुक़ाबले गाय में दूध देने की शक्ति अधिक है।** यह बात सैकड़ों वर्षों के प्रयोगों से सिद्ध हो चुकी है। आज दुनिया में अधिक से अधिक दूध देने वाली एक गाय ने एक व्यांत में ४२,००० पौंड तक दूध दिया है। हिन्दुस्तान की अधिक से अधिक दूध देनेवाली गाय ने १३,७०० पौंड दूध दिया है। जबकि बढ़िया से बढ़िया मुर्रा भैंस ने भी ७,८०० पौंड से अधिक नहीं दिया। सारी दुनिया में दूध के लिये गायें ही रक्खी जाती हैं। भैंस तो भारत में ही अधिक हैं व थोड़ी इजीप्ट व आस्ट्रेलिया में भी होंगी। अतः गाय ही वह प्राणी है जो हमारी दूध की और खेती के लायक़ बैलों की दोनों आवश्यकतायें पूरी कर सकती है। इसीलिये बुनियादी प्राणी के रूप में हमें गाय का ही चुनाव करना होगा। **स्वास्थ्य की दृष्टि से भी गाय का दूध भैंस के दूध से अधिक लाभदाई है** ऐसा सभी ने माना है।

गाय ही रखने का निर्णय करने के बाद वह किस नस्ल क़ी हो यह देखना होगा। गायों में ऐसी कई नस्लें हैं जिनका दूध अधिक होता है पर बैल खेती के लायक़ नहीं होते। इन्हें दुग्ध-प्रधान नस्लें (Milch cattle or Dairy breed) कहते हैं जैसे शाहीवाल, सिन्धी, गीर, हिसार, कंकरेज आदि। कई नस्लें ऐसी होती हैं जिनके बैल खेती के लिये उत्तम होते हैं पर वे दूध बहुत कम देती हैं। इन्हें वत्सप्रधान नस्लें (Draft cattle breed) कहते हैं। यह दोनों नस्लें एक एक अंग प्रधान होने के कारण एकांगी नस्लें भी कही जाती हैं। कुछ नस्लें ऐसी होती हैं जिनके बैल भी खेती के लिये उम्दा होते हैं और गाय भी दुधारू हैं उन्हें सर्वांगी नस्ल (Dual purpose) कहते हैं। जिन कारणों से भैंसें बुनियादी प्राणी नहीं बन सकतीं उन्हीं कारणों से यह दोनों तरह की एकांगी नस्लें भी बुनियादी नहीं बन सकतीं क्योंकि इनमें देश की दोनों आवश्यकतायें एक साथ पूरी करने की शक्ति नहीं है। हमारे लिये तो दूध और अच्छे बैल दोनों दे सकने वाली **सर्वांगी नस्ल** ही उपयोगी हो सकती है। **इसे ही बुनियादी नस्ल रखनी होगी।** आज भारत में हरियाना, हिसार, थारपरकर, कंकरेज, गावलाव नस्लें सर्वांगी हैं। इनके अलावा आज जो वत्सप्रधान नस्लें हैं उन पर प्रयोग करके उन्हें भी सर्वांगी बना ली जा सकती हैं। जैसे गावलाव आदि बन रही हैं। छत्तीसगढ़ जैसे भाग में जहाँ पाड़े का उपयोग खेती के लिये आम तौर पर होता है, वहाँ भैंस भी सर्वांगी नस्ल बन जाती है।

अब एक सवाल और रह जाता है क्या हम समूचे देश में एक ही नस्ल कर सकते हैं? क्या किसी एक प्रान्त में इतनी गायें मिल सकती हैं जो पूरे देश में फैलाई जा सकें? क्या भिन्न भिन्न प्रान्तों की आबोहवा में एक ही नस्ल पनप सकती है? क्या ऐसा करना परिणाम में लाभदाई होगा?

आदि सवालों का निर्णय बहुत लम्बे प्रयोगों के बाद ही हो सकेगा, लेकिन व्यवहारतः आज एक प्रान्त की गायें दूसरे प्रान्त में ले जाने में बहुत दिक्क़तें हैं। अकसर यह देखा गया है कि एक स्थान की गायें दूसरे स्थान में जाने पर उनको वहाँ की आबोहवा अनुकूल नहीं आती और अपने स्थान के मुक़ाबले नये स्थान पर उनका दूध घट जाता है। वे वहाँ पर पनप नहीं सकतीं। बछड़े कम बचते हैं उन पर सांसारिक रोगों का असर जल्दी होता है। और उनकी संतान पीढ़ी दर पीढ़ी दूध कम देने वाली होती जाती है। पर प्रान्त की गायों के लाने के कारण स्थानिक नसल की ओर लापरवाही हो जाती है। यदि हम पूरे देश का व्यापक विचार करेंगे तो हमारी समझ में आ सकता है कि एक प्रान्त की गायें दूसरे प्रान्त में ले जाने से एक प्रान्त का दूध घटेगा और दूसरे का बढ़ेगा लेकिन पूरे देश में कोई वृद्धि नहीं होगी। आज हमारे पास जिस प्रान्त में जो गायें हैं उन्हीं का दूध सब प्रान्तों में एक साथ बढ़ाने का यत्न किया जायगा तभी समूचे राष्ट्र का दूध बढ़ेगा। इसलिये जहाँ अच्छी स्थानिक सर्वांगी नस्ल हो वहाँ उसी नस्ल की वृद्धि का प्रयत्न किया जाय, और जहाँ सर्वांगी नस्ल न हो वहाँ आसपास की कोई अच्छी सर्वांगी नस्ल दाख़िल की जाय जो उस आबोहवा में पनप सके। गोसेवा संघ के वर्धा-सम्मेलन में बहुत विचार विनिमय के बाद जो दो प्रस्ताव इस विषय में स्वीकृत हुए हैं वे मार्गदर्शन के लिये यहाँ दिये जाते हैं।

१—हिन्दुस्थान कृषि-प्रधान देश है और यहाँ की खेती बैलों पर ही निर्भर है। साथ ही स्वस्थ जीवन के लिये पर्याप्त मात्रा में दूध पैदा करना ज़रूरी है और दूध तथा बैल दोनों गाय से ही मिल सकते हैं। इसलिये इस सम्मेलन की निश्चित राय है कि एकांगी, यानी "दुग्ध-प्रधान" या "वत्सप्रधान" गायों की अपेक्षा सर्वांगी यानी दूध और बछड़े दोनों चीज़ें ठीक देने वाली, गायें ही ज़्यादा फ़ायदेमंद होने के कारण उन्हीं के पालन को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—इस सम्मेलन की राय है कि गोजाति की उन्नति और रक्षण की दृष्टि से स्थानिक नस्ल के ही चुने हुए पशुओं को लेकर नस्लसुधार का काम करना चाहिये। वही वहाँ की आबोहवा में अच्छी तरह टिक और पनप सकती हैं और बड़े दायरे में गोजाति का सुधार स्थानिक नस्ल पर ही निर्भर है। पर इस समय जहाँ कोई विशेष स्थानिक नस्ल न रह गई हो वहाँ बारीकी से पूर्व नस्ल के न हो सकने के कारणों की खोज की जाय और वहाँ के लिये उपयुक्त नस्ल स्थिर करने में अनुभवियों की सलाह से सावधानतापूर्वक प्रयोग शुरू किया जाय।

आज प्रान्तीय सरकारें शहरों को दूध पहुँचाने की दृष्टि से बड़ी-बड़ी योजनायें बना रही हैं। शहरों को तुरंत दूध मिले इसलिये भैंस या भैंस की तरह अधिक दूध देने वाली दुग्ध-प्रधान गायों की तरक्क़ी देने की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है लेकिन इस मोह को रोकना चाहिये। सरकार को तो उन्हीं नस्लों के पीछे शक्ति ख़र्च करनी चाहिये जो बुनियादी हों और जिन्हें क़ायमी तरक्क़ी देने का देश ने तय किया हो, *जो देश की* दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली यानी *सर्वाङ्गी नस्ल* की हों।

दुग्ध-प्रधान गायें या भैंस अपन दूध की अधिकता के कारण आज के अर्थशास्त्र में अधिक स्वावलंबी हैं और इस कारण ब्यापारी और ग्वाले उनका खुशी से पालन कर लेते हैं। उनको कुल आवश्यक सुविधायें मिल जाने पर इनके पालन का रास्ता वे लोग स्वयं निकाल सकते हैं। उसमें सरकार को अधिक खर्च करने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिये। हमारी केन्द्रीय व प्रान्तीय सभी सरकारों को अपनी पूरी शक्ति बुनियादी नस्ल के ही सुधार पर ख़र्च करनी चाहिये ताकि दस बीस वर्ष के बाद कभी न कभी ऐसा दिन आने की उम्मीद रहे जबकि अन्य देशों की तरह यहाँ भी दूध घी की विपुलता हो जाय। बुनियादी नस्ल के सुधार का काम बहुत है लेकिन बिना उसके दूसरा रास्ता भी नहीं हैं।

वर्धा
७–४–४८

विषय-सूची

चिकित्सा-शास्त्र—विभाग चार

चित्र-सूची

प्रतिपालन—विभाग एक

प्रजनन-विज्ञान—विभाग दो

पोषण-विज्ञान—विभाग तीन

चिकित्सा—विभाग चार

संशोधन-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
२७	९	नष्ट हो	जल
३७	१२	प्रोटीन	कोलोस्ट्रम
४३	३	Pedigree	Pedegree
४३	१८	तो पोषक खुराक के लिये अन्य	तो अन्य
५०	७	Biodynamic	Biodinamic
५०	१४	कीटाणु (बेकटीरिया)	बेकटीरिया के कीटाणु
५१	२७	,, ,,	,, ,,
५३	३२	Ammonium-Phosphate	Amonia-Phosphate
६७		विभाजन के पूर्व भारत की मुख्य गो-जातियां	भारत की मुख्य गो-जातियां
९७	२९	Sir Arthur Olver	Sir Aurthor Olver
१०९	३०	स्व-वर्गीय संयोग	सवर्गीय संयोग
११०	१	से	स
१२३	३	Principles of genetics	Principles of genitics
१२६	१	क्रोमोसोम	जीवाणु
१३२	१२	जोन ग्रिगर	जार्ज
१४८	१५	सके	सक
१६१	१	सबसे	सब स
१७९	१६	पोटैशियम	पोटैयिम
१८१	१९	Inoculated	Enoculated
२०८	६	हरा-चारा	करबी
२४९	२३	कोख में	कोख की नस में
२६६	१६	Cantharides	Cantherdis
२८७	२०	Hydatids (हायडटिड्स)	Hydatis (हायडेटिस)
२९५	२२	Lymph	Limph
३०७	३४	२,००० से ३,००० पौंड	२०० से ३०० पौंड

विभाग एक

प्रतिपालन

विज्ञान

अध्याय-सूची

विभाग—एक

पहला अध्याय

गो-महिमा

अखिल विश्व में गो के सदृश उपकारी अन्य पशु नहीं पाया गया है। यह वह अनुपम विभूति है, जिसका मनुष्य जन्म से लेकर मरण तक उपभोग करता है। मनुष्य मात्र की दैहिक, भौतिक तथा आर्थिक उन्नति में गो और गोरस का अपरिमेय स्थान है। गोरस की महत्ता प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है। वेद में ऋचाओं द्वारा गोदुग्ध की महिमा बारम्बार गायी गयी है। अथर्ववेद की २।२६।४ ऋचा कहती है--

सं सिञ्चामि 'गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ॥

इसका सारांश यह है कि प्रत्येक घर में गोरक्षा उत्तम प्रकार से की जाय; दूध, घी, मक्खन और छाछ भरपूर हो। इससे (गोरस से) पोषित मनुष्य हृष्ट-पुष्ट होकर आनन्द से रहे।

पुराणों में भी गो का बड़ा पूज्य स्थान है। राजा दिलीप ने पुत्र-कामना से नन्दिनी नामक गौ की सेवा की थी, और अपना मनोवाञ्छित फल पाया था। भगवान् योगिराज कृष्ण का गो-प्रेम भारत का बच्चा बच्चा भी जानता है। उनका नाम ही गोपाल है। उनकी दूध मक्खन की चोरी वाली बाललीलाएँ आज भी घर-घर में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने स्वतः गो-सेवा तथा गो-चारण करके हमारे सम्मुख गो-सेवा का महान् आदर्श रक्खा है। भक्त सूरदास अपने गोपाल से कहलाते हैं :--

"मैया मेरी नहिं मैं माखन खायो। भोर भई, गैयन के पाछे, मधुबन मोहिं पठायो॥" इत्यादि

संसार-ममता-त्यागी ऋषि मुनियों की पर्णकुटी तक में गोपालन आवश्यक समझा जाता था। वे सतोगुण प्रधान गो-रस का, यज्ञादि, पूजा-अर्चना, अतिथि-सत्कार और स्वतः के सभी कार्यों में, व्यवहार करते थे। इन्हीं महात्माओं के यहाँ कामधेनु, कपिला, सुरभि इत्यादि नाम की गैयों की निरन्तर सेवा होती रहती थी।

ऐतिहासिक-काल में भी गो-धन का बाहुल्य था। प्रत्येक राज्य में गोधन राज्य की एक श्रेष्ठ एवं आवश्यक निधि समझी जाती थी। गोशाला के संचालन के निमित्त, इस विद्या में चतुर गण राज्य की ओर से रक्खे जाते थे। गो और अश्वपालन विद्या में प्रायः नृपतिगण भी

शिक्षित होते थे। धनाढ्य नागरिकों के यहाँ हज़ारों गैयाँ पलती थीं। साधारण से साधारण गृहस्थ के द्वार पर भी एक दो गैयाँ अवश्य बँधी होती थीं। घी, दूध एवं दही का, सभी के यहाँ प्रचुर मात्रा में व्यवहार होता रहता था। **गो और गोरस के अति-आवश्यक एवं परम-उपयोगी होने के कारण ही मनुष्य-समाज ने गो को माता कह कर पुकारा है।**

तीन हजार वर्ष पहले का साँड़
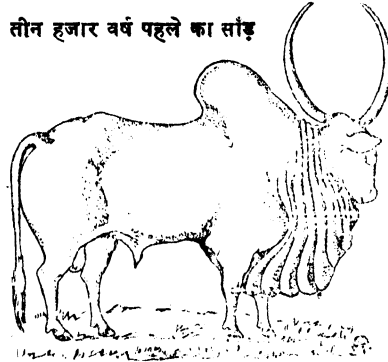
आज भी हमारे सभी कार्यों में गो एवं गोरस की आवश्यकता सर्व-प्रथम पड़ती है। कन्या के लिए विवाह में और ब्राह्मणों को यज्ञ तथा श्राद्धादि के अवसरों पर गो देने की प्रथा अभी तक चली आ रही है। यहाँ तक कि म्रियमाण मनुष्य से भी अन्त में गो-दान ही कराया जाता है। गाय इस लोक में तो परम-उपयोगी है ही, साथ ही परलोक की वैतरणी को भी पार करने का साधन मानी गयी है।

भारतवर्ष में गाय अत्यधिक लाभदायी है, क्योंकि यहाँ उससे उत्पन्न बैल कृषि के प्रधान अङ्ग हैं। शीतप्रधान पश्चिमी देशों में बैल इतने अधिक उपयोगी नहीं होते, किन्तु वहाँ के निवासी गो-सेवा का प्रबन्ध सुचारु और वैज्ञानिक रूप से करते हैं। उन देशों में यद्यपि गो-भक्षण किया जाता है, तथापि उनकी गो-सेवा सराहनीय है। **विधि की विडम्बना से गो-प्रेमी भारत में आज गो-सेवा की कमी है।**

स्वीट्ज़रलैंड, आस्ट्रेलिया, और हॉलैंड आदि प्रदेशों की गायें दर्शनीय होती हैं। अमेरिका में भी उत्तम गायें पायी जाती हैं। इन देशों की-सी हृष्ट-पुष्ट तथा दुधारू गायें हम भारतीयों के स्वप्न से भी परे की वस्तु हैं। विलायतवाले शुद्ध एवं सर्वगुणपूर्ण दूध और मक्खन का व्यवहार करते हैं। वहाँ हीन-दूध का बेचना क़ानूनी जुर्म समझा जाता है।

विज्ञान-वेत्ताओं ने भाँति-भाँति के प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है, कि दूध में प्राणिमात्र के हेतु पोषक तत्त्व उचित मात्रा में विद्यमान हैं। डाक्टरों ने भी भिन्न आहार देकर कुछ पिल्लों

की परीक्षा ली और इससे यह ज्ञात किया कि गो-दुग्ध पीकर पलने वाले पिल्ले अन्य-आहार पर पालित पिल्लों से कहीं अधिक शक्तिशाली रहते हैं।

विदेशों के वैज्ञानिक दूध की बड़ी महत्ता स्वीकार करते हैं। यथा :—

"Cow is the Mother of Prosperity." Dr. L. K. Hirshberg 1.

"Milk is the elixir of Life." W. H. Harrison. 2.

वैज्ञानिक विधि से दूध को सुखाकर और उसका पाउडर बनाकर डिब्बों में बन्द करके भी रक्खा जाता है। इस चूर्ण में व्यवहार के समय गुनगुना पानी मिलाने से दूध सहज ही बन जाता है। इस द्रव्य का व्यवहार ताज़े दूध के अलभ्य होने पर सुगमता से किया जा सकता है।

हीन भाग्य तो हमारे गोपालक, गोसेवक इस भारत का है, जो कि सदियों से दासता करते-करते यथार्थ गो-सेवा को भूल गया है। फिर भी गो-पूजा की विधि नाम-मात्र में ही सही, हमारे यहाँ अब भी शेष रह गयी है। गोपाष्टमी के दिन गो की रोली, चावल आदि से पूजा करना कर्त्तव्य की चरम-सीमा समझ ली जाती है, किन्तु गो की नस्ल, दाने-चारे और गोचर-भूमि की ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता। इतना तो प्रायः हर घर में अभी तक चला आता है, कि रसोईं में गो-ग्रास की रोटी सर्वप्रथम बनायी जाय। यह रीति क्या इस बात की द्योतक नहीं है कि हमारे यहाँ गो-सेवा की भावना प्रधान थी और गो को खिलाने के बाद ही हमारे पूर्वज भोजन किया करते थे।

वर्तमान भारत में धनहीनों के ही नहीं, अपितु धनाढच-व्यक्तियों के बालकों के लिए भी प्रायः शुद्ध और परिमार्जित गो-दुग्ध एक दुर्लभ वस्तु है। जीवन के आडम्बरों को जुटाने में चाहे लाखों-करोड़ों की निधि का व्यय हो जाय, एवं डाक्टरों की फीस और दवा में भी चाहे प्रचुर धन लग जाय, किन्तु जनता, मनुष्य के प्राणाधार गो-दुग्ध का उचित प्रबन्ध नहीं करती। गो-रस की कमी के कारण भारतीयों का स्वास्थ्य बहुत गिर गया है।

बहुसंख्यक जनता अशुद्ध अथवा मिश्रित घी (और अब तो वनस्पति से निकला हुआ चिकना पदार्थ भी घी कहलाता है) से बने हुए हानिप्रद पकवानों को बड़ी रुचि से खाती है। इस अशुद्ध माध्यम से बनी हुई मिठाई को खाकर और खिलाकर वह आनन्द मनाती है। समृद्धिशाली जन, एक क्षण के लिए भी यह नहीं सोचते कि अशुद्ध घी के पीपे लेकर वे कितनी बाधा एवं व्यथा खरीदते हैं। एक तो शारीरिक परिश्रम की न्यूनता, ऊपर से अशुद्ध एवं गरिष्ठ पकवान के भोग का परिणाम अजीर्ण और अजीर्ण जन्य प्रायः सभी रोग हो जाया करते हैं।

इस भाँति हमारे राष्ट्र की अमूल्य निधि का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। जब वैभवशाली गृहस्थ ही गो-सेवा एवं गो-रस से उदासीन रहते हैं, तब मध्यम-वर्ग के घरों में दूध कितना अलभ्य है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। ग़रीब, विशेष करके शहर निवासी, परिश्रमी जनों की दशा और भी गयी-बीती है, वे दूध का स्वाद तक नहीं जानते।

गाँवों में अवश्य कुछ गो-सेवा की जाती है। परन्तु वहाँ भी उचित गोचर-भूमि और चारे-दाने की कमी एवं अज्ञान के कारण गो-धन की अत्यन्त-हीन अवस्था है।

हमारे देश में "दूध की नदी बहती थी" यह कहावत चली आती है। इससे यह ज़रूर जान पड़ता है कि कभी यहाँ गो-रस का बाहुल्य था। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ अब भी जिस भारत में अपनी बहुओं को "दूधो नहाओ, पूतों फलो" कहकर आशीर्वाद देती हैं, उसी भारत में दूध के दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं, अन्य उपयोगों की बात ही वृथा है। पहले अतिथि-सत्कार में गो-रस एवं गो-रस से ऋतु के अनुकूल बने पदार्थ रक्खे जाते थे; किन्तु आज हिन्दुस्तान के कोने कोने में पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण पर्यन्त, जहाँ भी जाइए, चाय तैयार मिलेगी। गर्मी हो या सर्दी पेय चाय ही मिलेगी। यह चाय उत्तेजक तथा शक्तिनाशक द्रव्य है, अतएव इसका सेवन हानिप्रद है।

वस्तुतः, आधुनिक-समय में गोधन की वृद्धि की नितान्त आवश्यकता है। अतः राज्य की ओर से गो-पालन, गो-नस्ल-सुधार तथा गोचर-भूमि के लिए जनता को सभी प्रकार की सुविधाएँ दी जानी चाहिएँ।

हिन्दुस्तान में रहने वाले सभी लोगों का कर्त्तव्य है कि वे गोपालन पर ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान दें। हिन्दू और मुसलमान, अमीर और ग़रीब, हर एक को अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार गो रखने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे एक पन्थ और दो काज सिद्ध होंगे। आर्थिक लाभ और स्वास्थ्य-सुधार के होने से ही राष्ट्र उन्नत बनेगा।

प्रत्येक देश की उन्नति का मूल-कारण गो-वृद्धि है। अतएव हमारे मनोनीत नेता महात्मा गांधी ने अपने रचनात्मक कार्य-क्रम में गो-सेवा को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। गो-पालन प्रत्येक मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है। **गो-सेवा से देश वस्तुतः समृद्धिशाली होता है, क्योंकि गोबर की खाद से कृषि उन्नत होती है और गो-रस से मनुष्यमात्र बलिष्ठ एवं स्वस्थ रहता है।**

अब शासन-व्यवस्था हमारे देशवासियों के अधिकार में आ गयी है। अतः आशा है कि राष्ट्र-निर्मातागण गो-पालन की ओर पूरा ध्यान देंगे।

दूसरा अध्याय

गो की उपयोगिता

गो की उपयोगिता विशाल है। इसकी सभी वस्तुएँ काम में आती हैं। गो के शरीरसे सम्बद्ध कोई भी अंश वृथा नहीं जाता। इसकी बछिया तीन-साढ़ेतीन वर्ष के उपरान्त ही ब्याकर दूध देने लगती है। और बछड़ा इसी उमर में पूर्ण बल प्राप्त करके खेत जोतने योग्य हो जाता है।

गो-मूत्र और गोबर की खाद कृषि में प्राण-सञ्चार करने का एकमात्र साधन है। भलीभाँति पालित गाय के गोबर में बीज व पौधों की पोषक सामग्री उचित मात्रा में रहती है। हमारे देश में गोबर पवित्र माना जाता है। इससे पूजा के स्थान पवित्र किये जाते हैं। गोमूत्र पञ्च-गव्य में सम्मिलित रहता है। गोबर घर लीपने के काम में आता है। गोबर के बने उपले ईंधन के काम में लाये जाते हैं। गाय के मरने पर भी उसका चमड़ा, हड्डी, सींग और पूँछ के बालों का उपयोग हो सकता है। सारांश यह है कि गो के अतिरिक्त ऐसा, जन्म से लेकर मरने के बाद तक काम में आने वाला, कोई अन्य जीव नहीं है।

दूध का महत्त्व—गो-दुग्ध की उपयोगिता अपार है। गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य के निमित्त और स्वतः के लाभ के हेतु गर्भिणी स्त्री को गो-दुग्ध का विशेष सेवन करना चाहिए। माता के दूध को छोड़ने के बाद शिशु के जीवन का एकमात्र आधार गो-दुग्ध ही है। बालक के लिये हितकर सभी रासायनिक तत्त्व प्राकृतिक रूप से ही यथेष्ट मात्रा में, दूध में विद्यमान हैं। यौवन का रक्षक दूध ही है। रोगी के लिए गोदुग्ध ही पोषक खाद्य है। वृद्धावस्था का अवलम्ब दूध ही है। देव-पूजा में तो गो-दुग्ध का सतत व्यवहार होता है। गो-दुग्ध वह अमृत है, जिस पर मनुष्य जन्म से मरण-पर्यन्त निर्भर रहता है। स्वास्थ्य का रक्षक और अस्वस्थता का निवारक गो-दुग्ध है। अन्न का त्याग करने पर भी केवल गो-दुग्ध का सेवन करके मनुष्य बली एवं पूर्ण-स्वस्थ रह सकता है। निष्कर्ष यह है कि :—

"मृत्यु-लोक का अमृत शुद्ध गो-दुग्ध ही है।"

अन्य दूध देने वाले पशु—बकरी का दूध गाय के दूध की तुलना में विशेष उपयोगी नहीं है। उसमें मक्खन की मात्रा बहुत कम होती है, किन्तु वह दूध भी उपयोग में आता है।

भैंस के दूध का प्रचार भारत में पाया जाता है, किन्तु वह दूध कफ-प्रधान है और गाय के दूध के बराबर पोषक नहीं होता है। वह बालकों और रोगियों के लिए उत्तम पेय नहीं

है। भैंस का दूध गो-दुग्ध के समान सतोगुण-प्रधान नहीं होता है। यद्यपि इसमें मक्खन अर्थात् चिकनाई की मात्रा गो-दुग्ध से अधिक होती है, किन्तु विटामिन 'ए' नहीं के ही बराबर रहता है।

भैंस की विशेष देखभाल करने पर भी उसकी नस्ल व दूध देने की शक्ति में इतना सुधार नहीं हो पाता, जितना कि गो-जाति में हो सकता है। गाय के उतनी उपयोगी न होने के कारण राष्ट्र-हित की दृष्टि से, भैंस नहीं पालनी चाहिए, ऐसा कुछ लोगों का मत है।

भैंस का दूध भी कई तरह के उपयोगों में आता है। इस दूध से खोया अधिकतर बनाया जाता है। भैंस के दूध से निकाला हुआ घी गो-घृत की अपेक्षा अधिक सफ़ेद और कम गुणों वाला होता है। किन्तु गो-घृत कुछ पीलापन लिये हुए अधिक गुणकारी होता है।

उत्तर-भारत में भैंसों से भी हल जोता जाता है। भैंसे धीरे धीरे चलते हैं और खेत जोतने में बैलों की तरह उपयोगी नहीं होते। भैंसों से गाड़ी भी चलायी जाती है, परन्तु वे सभी प्रान्तों में पूरी तरह काम करने योग्य नहीं होते। इस कारण भैंस सर्वांगी[1] नहीं बन सकती।

भैंस के गोबर से भी खाद और उपले बनाये जाते हैं।

भैंस-पालने से गाय-पालना कहीं अच्छा है। भैंस गाय से महँगी होती है और तीन-गुनी ख़ुराक ज़्यादा खाती है। भैंस के बच्चे पड्डे और पड़िया अधिकतर पूर्ण-सँभाल न हो, तो बचपन में ही मर जाते हैं; क्योंकि इन्हें गर्मी व सर्दी दोनों अधिक सताती हैं। भैंस का दूध भी कम-गुणों-वाला होता है। इस कारण गाय पालना ही अधिक लाभप्रद है।

दूध का उपयोग:—दूध से नाना प्रकार की चीज़ें बनायी जाती हैं। यथा:—खोया, दही, मट्ठा, मक्खन और घी वग़ैरह। भारतीय-भोजन में इन सभी की—और ख़ास कर घी की तो—बहुत ही ज़रूरत पड़ती है। दूध को नीबू या अन्य खटाई से फाड़ कर उसका छेना निकाल लिया जाता है, जो आमतौर से बंगाली पद्धति की मिठाइयाँ बनाने के काम में आता है। इस प्रकार के फटे हुए दूध से निथरा हुआ पानी भी एक उत्तम पेय है, जो रोगियों को भी दिया जा सकता है।

कारख़ानों में दूध का पनीला भाग सुखाकर उसे एक प्रकार के पाउडर के रूप में परिवर्तित करके बाज़ारों में बेचा जाता है। ताज़ा दूध न मिलने पर इसका व्यवहार किया जा सकता है। दूध से पनीर व क्रीम भी बनाते हैं। दूध के ठोस—केसिन—पदार्थों से बटन, कंघा, आदि दैनिक व्यवहार की वस्तुएँ तक बनायी जाती हैं।

---

[1] सर्वाङ्गी उसे कहते हैं जिसका दूध और बछड़े दोनों ही लाभदायी हों।

तीसरा अध्याय

गो से आर्थिक लाभ

उचित रूप से रक्खी गयी गाय अपने पालक के लिए आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायी ही है। बहुत बढ़िया नस्ल की दुधारू गाय प्रायः पहले ही ब्याँत में अपना मूल्य, दूध के रूप में, दे देती है। साधारण-नस्ल की गाय यदि अपने मूल्य को दूध के रूप में न भी दे पाये, तो भी कम से कम अपनी खुराक का मूल्य तो चुका ही देगी। इसके साथ ही उसके बछड़े या बछिया अतिरिक्त लाभ में रहेंगे। यह अनुभवसिद्ध बात है।
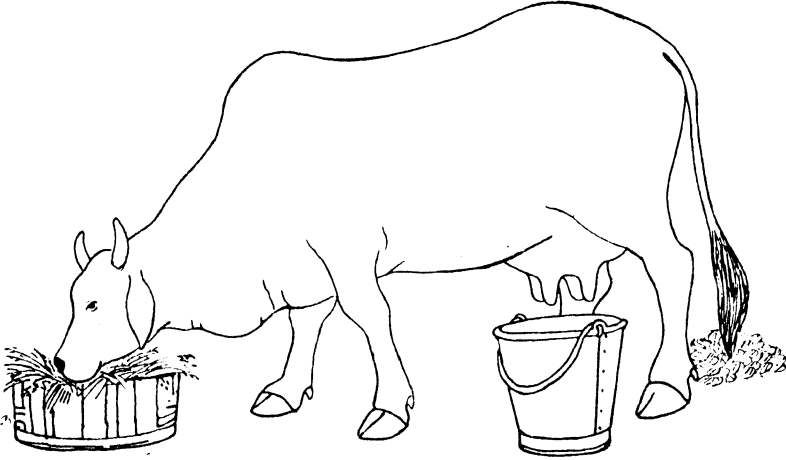
सस्ता चारा   कीमती दूध   उपयोगी गोबर

किसी किसी गोशाला में गोपालन पर धन अधिक ख़र्च होता है, किन्तु उसके अनुपात में दूध का मूल्य नहीं प्राप्त हो पाता। इस प्रकार होने वाली धन की हानि के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :—

१—सुव्यवस्था की कमी यथा :—

चारे-दाने का समय पर सुलभ न होना, सेवकों की लापरवाही, अस्वच्छता, धन की कमी का होना तथा उत्तम साँड़ का न होना आदि।

२—वैज्ञानिक ज्ञान की कमी यथा :—

चारे-दाने के गुणावगुणों का ज्ञान न होने से भर-पेट खिलायी हुई गाय भी कम दूध देती है। ऐसी अवस्था में खुराक में थोड़ा परिवर्तन करने से ही अधिक लाभ का होना सम्भव होता है। प्रजनन-विज्ञान की जानकारी के बिना नस्ल बिगड़ती जाती है।

३—गोचर-भूमि की कमी :—

गाय यदि इच्छानुसार न चर सकेगी तो वह ज़्यादा स्वस्थ न रह पायेगी, साथ ही गोशाला में चारे का ख़र्च भी अधिक होगा। बछड़े-बछियों के बड़े होने पर उनके पालने का ख़र्च भी ज़्यादा पड़ेगा। वर्षा के चार महीनों में जो चारे-दाने की किफ़ायत सम्भव है, वह न हो पायेगी। बँधी हुई गाय खुश न रहेगी।

भली-भाँति रक्खी हुई गाय से धन की हानि कभी नहीं होगी।

बृहद् गोशाला से लाभ :—व्यापार के निमित्त खोली हुई गोशाला से पर्याप्त धन की प्राप्ति होगी, क्योंकि :—

१—बहुसंख्यक गायों के होने के कारण प्रति-गाय पर ख़र्च का औसत कम पड़ेगा।

२—गोचर-भूमि का प्रबन्ध होने के कारण चारे-दाने में किफ़ायत होगी, तथा गोके चारे-दाने के लिए खेत तैयार करके मौसम पर निरन्तर हरे चारे की व्यवस्था सम्भव होगी; एवं इस प्रकार उत्पन्न चारा, ख़रीदे हुए चारे से, कहीं सस्ता पड़ेगा।

३—फ़सल पर चारे-दाने को ख़रीद कर जमा कर लेने से सुविधा व किफ़ायत रहेगी।

४—उत्तम नस्ल के पोषित एवं आयु-प्राप्त एक या दो साँड़ों से गोशाला सदैव बढ़ती रहेगी, और नस्ल सुधरती जायगी।

५—श्रेष्ठ बछड़ों को चुनकर साँड़ बनाया जा सकेगा।

६—अनुभवी ग्वालों द्वारा भली-भाँति शुश्रूषा सम्भव होगी और परिचर्या के उपयुक्त साधन भी उपस्थित रहेंगे।

७—कुछ विश्वसनीय ग्वाले बहुत सी गायों की देख-रेख कर सकेंगे।

८—ग्राहकों को शुद्ध दूध समय पर निरन्तर मिलता रहेगा।

९—दूध, क्रीम, मक्खन व पनीर कम ख़र्च में ही बन सकेगा।

१०—दूध से सूखी हुई गाभिन गायों का उचित प्रबन्ध हो सकेगा।

११—बछड़े-बछियों को भली-भाँति पालने से वे उत्तम गाय व बैल बनाये जा सकेंगे।

१२—खाद की सुलभता के कारण भूमि अधिक उपजाऊ हो सकेगी।

निजी गोशाला से लाभ :—पारिवारिक दूध की आवश्यकता की पूर्ति के लिए यदि दो चार गायें पाली जायँ तो भी वे लाभदायी रहेंगी, क्योंकि :—

१—शुद्ध परिमार्जित दूध समय पर मिलता रहेगा।

२—आर्थिक लाभ होगा।

३—प्रचुर-मात्रा में गोरस व्यवहार में आ सकेगा।

४—गोबर और खाद की सुविधा हो जायगी ।

गाय के खाने-पीने में दूध की कीमत का १/३ या २/३ दाम खर्च होना चाहिए । उसके रखने और खाने-पीने का अधिक से अधिक कुल ख़र्च दूध के मूल्य का ३/४ होना चाहिए ।

निम्नलिखित आँकड़े गाँव की ज़मीन के पास रहने वाले एक गोपालक के अनुभव के हैं। मान लीजिए कि किसी ने हरियाना जाति की दो गायें पालीं, जिनका मूल्य ४००) रु० था और जो तुरन्त की ब्यायी हुई थीं । इन दोनों गायों ने प्रति दिन ।ऽ६ दूध सुबह-शाम दोनों समय में दिया । इस प्रकार वे प्रथम तीन मास में ३६ऽ दूध देंगी । तीन मास के बाद उनका दूध कुछ कम हो जायगा, क्योंकि इस समय वे फिर से गाभिन हो जायँगी । इस पर भी वे दोनों इन दिनों में ।ऽ सेर दूध प्रतिदिन देती रहेंगी । यह क्रम प्रायः ३ मास तक चलता रहेगा । इन तीन महीनों में उनका कुल दूध २२।।ऽ होगा । इसके बाद तीन मास तक ऽ५ प्रति दिन के हिसाब से ११।ऽ दूध वे और देंगी । इस प्रकार एक ब्याँत में दोनों गायों ने ६९।।।ऽ दूध दिया, जिसका मूल्य १६) प्रति मन के हिसाब से (सन् १९४४ के बाज़ार भाव को मानते हुए) १११६) का हुआ । इन गायों का गोबर भी एक वर्ष में लगभग ५०) का होगा । अस्तु, कुल मिलाकर यह आय ११६६) हुई।

ठीक नियन्त्रण होने पर गायें प्रायः साल भर बाद ही दुबारा ब्या जाती हैं । कभी-कभी कोई गाय दस या ग्यारह मास तक दूध देती रहती है, किन्तु इन दिनों वाला गाय का दूध विशेष उपयोगी नहीं होता ।

इन दोनों गायों के पालन-पोषण में निम्नलिखित ख़र्चा पड़ेगा ।

वर्षा के चार मास में हरी घास इतनी अधिक होती है कि उन दिनों गायों को चारे-दाने की विशेष आवश्यकता नहीं होती । दूध के सूखने पर गाय को दाना भी कम दिया जाता है । अस्तु, दो गायों का सालभर का कुल ख़र्च ८६४) होगा । जैसे :—

२४५) दाना चना ३५ऽ दर ७) प्रति मन
६३) खली १८ऽ दर ३।।) ,,
५५) गुड़, बिनौला, नमक, तेल आदि
३००) चारा ३०) प्रतिमास ८ मास का
१५) ,, वर्षा के ४ मास का
२४) किराया गोशाला दर २) मासिक
१८०) ग्वाले का वेतन १५) मासिक

८६४) योग + ४००) गायों का मूल्य = १२६४) कुल ख़र्च ।

अतः स्पष्ट हो गया कि पहले ब्याँत में ही गायों की क़रीबन क़ीमत मिल गयी । अब भविष्य में वे गायें लाभरूप में ही बचीं । इसके अतिरिक्त, बछड़े और बछियाँ गोशाला की समृद्धि की कारण होंगी । कभी-कभी दूध के इससे कम और ख़र्च के अधिक होने की भी सम्भावना है,

फिर भी दूध से खूराक की क़ीमत तो निकल ही आयेगी। हर दशा में सालभर का बछड़ा या बछिया लाभ-रूप में रह जाते हैं।

एक साधारण गृहस्थ भी गाय को पालकर घाटे में नहीं रह सकता है। बछड़ा या बछिया के लाभ के बाद भी कुछ रुपया बच ही जाता है। यथा, एक साधारण गाय के द्वारा १ ब्याँत में:—

आय		व्यय	
१२६)	क़ीमत दूध ७॥।/५ दर १६) प्रतिमन,		
	४॥/ पहले ३ मास का प्रतिदिन /२	१२१)	क़ीमत दाना भूसा आदि की
	२।/ दूसरे ,, ,, /१	६०)	वर्ष भर के हरे चारे आदि
	१/५। तीसरे ,, ,, /॥	२१)	वेतन चरवाही+दुहाई
	७॥।/५। कुल दूध	२८)	दाना जौ और चना, दर ७)
४७)	क़ीमत बछड़ा व गोबर एक वर्ष में	१२)	खली, नमक, तेल आदि
	३५) बछड़ा	१२१)	कुल व्यय पालन पर
	१२) गोबर	७०)	क़ीमत गाय की
	४७)		
१७३)	कुल आय वार्षिक	१९१)	कुल खर्च हुए

इस प्रकार वार्षिक आय १७३) की हुई और खर्च १९१) का हुआ। अतः गाय की क़ीमत प्रायः वसूल हो गयी। **यदि बछड़ा अच्छी नस्ल के साँड़ से उत्पन्न हो तो आय और भी अधिक होगी, और खर्च निकल आयेगा।**

यदि यही व्यक्ति /॥ दूध प्रतिदिन खरीदते, तो वर्ष भर में ४॥/ दूध के लिए १६) प्रतिमन के भाव से इन्हें ७२) खर्च करने पड़ते, यों तो थोड़ा दूध खरीदने पर मूल्य कुछ-अधिक ही देना पड़ता है। अपनी गाय के पालने पर केवल १२१) खर्च करने से ७॥।/५ दूध प्राप्त हो जाता है। साथ ही बछड़े और गोबर के मूल्य से गाय की कुछ क़ीमत निकल आती है। सालभर के बाद गाय लाभ रूप में बच रहेगी। आगे गाय के खाने-पीने का खर्च दूध के रूप में पूरा हो जाया करेगा, और **हर-साल गोधन से ५०) या ६०) का स्थायी-लाभ होता रहेगा।**

एक साधारण किसान तो गाय पालकर और भी अधिक लाभ उठायेगा, क्योंकि वह स्वतः गाय दुह लेगा, उसकी बूढ़ी माँ और छोटे बच्चे गाय को चरा ले आयेंगे और **दूब** आदि घास छील कर उसको कम-खर्च में खिला लेंगे।

साधारण नस्ल की गाय ब्यानेपर कम से कम सेर या डेढ़-सेर दूध प्रतिदिन देगी। यदि एक ब्याँत में उसने केवल ३५ ही दूध दिया, तो भी वह ४८) का हुआ। यदि यह किसान २१) का खली-दाना गाय को खिला दे, तो भी २७) लाभ में उसे बच रहेंगे। गोबर और बछड़े की क़ीमत से गाय की लगभग क़ीमत मिल जायगी। दूसरे-वर्ष से उसे गाय, बछड़े व गोबर लाभ में बचते रहेंगे। इन पशुओं से उसे नुकसान नहीं होगा।

गाय पालने से किसान को कई प्रकार के लाभ हैं। यद्यपि केवल साधारण चराई और थोड़ी-सी सानी पर रक्खी गयी गाय कुछ कम दूध देगी, फिर भी पालक के लिए नुक़सान नहीं रहेगा, क्योंकि किसान को गाय के पालने से निम्नलिखित फ़ायदे अवश्य होंगे:—

१——शुद्ध ३५ या ३॥५ दूध कम-क़ीमत में सात या आठ महीने तक थोड़ा-थोड़ा करके रोज़ मिलता रहेगा। हर-जगह सुगमता से दूध मिलना मुश्किल है, और बाज़ार से ख़रीदने पर तो पानी-मिला हुआ हल्का दूध मिलता है।

२——इतना ही दूध ख़रीदने के लिए ३॥) महीना ख़र्च करना उसकी सामर्थ्य से बाहर की बात है।

३——साल-भर में २१) ख़र्च करने पर कम से कम ४२) की आमदनी हो सकेगी। उसे सुगमता से २०) या २५) के गो-रस के व्यवहार का अवसर मिलेगा और गाय किसान की स्थायी सम्पत्ति बनी रहेगी।

४——घर-आँगन के लीपने के लिए गोबर के हेतु उसे किसी का मुँह नहीं देखना पड़ेगा।

५——बछड़ा बड़ा होकर खेत जोतने के काम में आयेगा। बछिया को वह बेच भी सकता है।

६——किसान की निधि गाय-द्वारा सुरक्षित रहेगी। बैंक आदि की सुविधा न होने से उसके लिए रुपये को सुरक्षित रखना कठिन है। **महाजनी ब्याज की अपेक्षा किसान के लिए गो-रस ही कहीं अधिक लाभदायी सिद्ध होगा**!

७——गो-मूत्र व गोबर की उत्तम खाद से उसकी ज़मीन उपजाऊ बनेगी। बाहर से खाद ख़रीदने की दिक्क़त से वह बच जायगा। सब तरह की खादों में गो के गोबर की खाद उत्तम होती है। गोबर में कृषि, तरकारी, फलवाले पेड़ों और फूल-पौधों के पोषण योग्य सामग्री रहती है। आसपास का सारा कूड़ा-कचरा भी खाद में मिला देने से वह और भी उपजाऊ बन जायगी। खाद खरीदने का ख़र्च भी उसे नहीं करना पड़ेगा।

८——समय-कुसमय पर गाय-बछड़ों को बेच कर वह अपनी आवश्यकतानुसार धन प्राप्त कर सकेगा, इस कारण कर्ज़-लेने से बच जायगा।

९——इस गो-धन रूपी सम्पत्ति के ऊपर महाजन सरलता से ऋण दे सकेगा। **अतएव एक ग्रामीण किसान के लिए गो-धन से बढ़कर और कोई धन नहीं है।**

एक गाय से, १० वर्ष के भीतर, संभावित लाभ

एक मध्यम श्रेणी की गाय अपनी २० वर्ष की उमर में निम्नलिखित रीति से बच्चे व दूध दे सकेगी। ३॥ वर्ष में पहली बार ब्याकर वह १४-१५ महीने के अन्तर से ब्याती रही, तो १० बच्चे देगी।

ब्यांत संख्या	ब्यातीगाय	दूध मनों में	बछिया	बछड़ा	बैल जोतर	खेत जुता	मूल्य गोबर
पहली	१	२०)	*	१	*	*	१२)
दूसरी	१	२२॥)	१	*	*	*	१८)
तीसरी	१	२५)	*	१	*	*	२४)
चौथी	१	२५)	१	*	१	१८० बीघा	३०)
पाँचवीं	१+१	४५)	१	१	१	१८० ,,	३६)
छठी	२	४७॥)	१	१	१+१	३६० ,,	४८)
सातवीं	२+१	७०)	१	२	२	३६० ,,	६६)
आठवीं	३+१	६२॥)	२	२	२+१	५४० ,,	७८)
नवीं	४+१	११५)	३	२	३+१	७२० ,,	९०)
दसवीं	५+१	१४०)	३	३	४+२	१०८० ,,	११४)
कुल	६	६०२॥)	२ बड़ी ६ छोटी	२ बड़े ५ छोटे	६	२५२० बीघा जोत हुई	५१६)

चौथा अध्याय

गो-रस

दूध की बनावट :—दूध देने वाले पशु के शरीर में चारा-दाना खाने व पानी पीने से पाचन-क्रिया द्वारा रक्त तथा मिश्ररस बनते हैं। इन रसों का कुछ अंश दुग्धवाहिनी नाड़ियों में जाता है। आहार के पचने पर जो मधुर रस बनता है, वह सम्पूर्ण शरीर में होता हुआ थनों में पहुँचने तक दूध के रूप में परिणत हो जाता है। दूध और रक्त पृथक् पृथक् वस्तुएँ हैं। भोजन से दूध का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव दूध के गुणों की कमी-बेशी गाय की खिलाई पिलाई पर बहुत कुछ निर्भर रहती है।
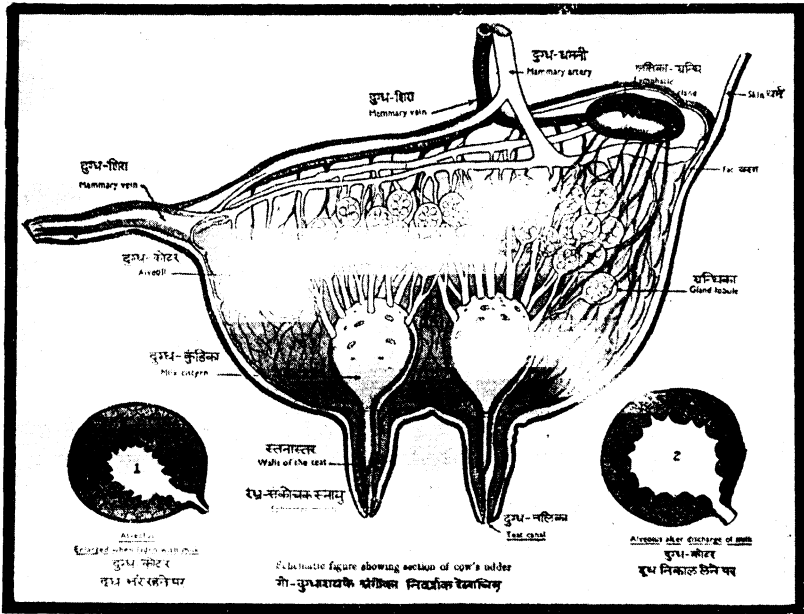
ऐन की दुग्धवाहिनी शिराएँ

दूध देने वाले पशु का ऐन दायें और बायें दो भागों में बटा होता है, अतः जो दूध एक तरफ़ के ऐन में उतर आता है वह दूसरी तरफ़ के ऐन में नहीं जाता। प्रकृति के नियमानसार

नवजात शिशु के पालनहेतु खुराक से दूध के बनने का काम गाय के थनों से सटी हुई थैलियों में होता है, जिन्हें ऐन कहते हैं। इन थैलियों "मांसपेशियों" में छोटी छोटी बहुसंख्यक ग्रन्थियाँ होती हैं। इनमें दूध सञ्चित होता है। थनों पर बच्चे के मुँह से या दुहने से दबाव पड़ने पर इन ग्रन्थियों में सञ्चित दूध थनों की राह से प्रवाहित हो उठता है। यह ग्रन्थियाँ रबर की तरह सिमटती और बढ़ती रहती हैं। दूध के इकट्ठा होने पर ये फूल जाती हैं और उसके निकल जाने पर सिमट जाती हैं। इसके बाद फिर शनैः शनैः दूध इकट्ठा होने लगता है और प्रायः १२ घंटे के भीतर यह ग्रन्थियाँ पूर्ववत् फिर से भर जाती हैं।

दूध के विभिन्न तत्त्वों की व्याख्या:— दूध में कई प्रकार के पदार्थों का मेल है, जिन में जल का भाग और सब चीज़ों से ज़्यादा है। किन्तु चार प्रकार के ठोस रासायनिक द्रव्य भी तरल रूप से इसमें विद्यमान हैं। गाढ़े दूध में ठोस पदार्थों का अंश अधिक होता है, क्योंकि अच्छा पोषण पाने पर गाय के दूध में यह तत्त्व बढ़ जाते हैं। अतः चारे दाने के हेर फेर से इन अंशों के अनु-पात में थोड़ा-सा अन्तर होना सम्भव है। पोषण विभाग में खिलाने की विस्तृत विवेचना की गयी है। आमतौर पर देखा गया है कि बिनौला खिलाने से गाय के दूध में वसा का अंश बढ़ जाता है। वसा को मक्खन, चिकनाई, स्नेह और मलाई भी कहते हैं।

विलायती गाय के दूध से भारतीय गाय के दूध में वसा का अंश १·४% के लगभग ज़्यादा होता है। निम्नलिखित विभाजन भारतीय गाय के दूध के तत्त्वों का है।

१—जल ८६·२७ % है।

२—वसा ४·८ % है। यह तत्त्व शरीर में उष्णता पहुँचाता और पाचनशक्ति को बढ़ाता है।

३—शर्करा (कार्बोज) } ४·७८ % हैं। ये मांस तथा बल को बढ़ाते हैं।

४—प्रोटीन ३·४२ % हैं, जिसमें :—

२·८६ % केसिन (Casein)
·३८ % ओज (Albumin)
·१८ % ग्लोब्यूलिन (Globulin)
} यह आमिष जाति के तत्त्व देहकणों को बनाने वाले और स्फूर्ति पहुँचाने वाले होते हैं।

५—खनिज लवण ०·७३ % हैं, जिसमें :–

·१२ % कैलशियम अर्थात् चूना
·०९ % फासफोरस अर्थात् स्फुर
·०२ % लोहा
·५ % अन्य विविध लवण
} यह लवण अवयवों की पुष्टि करते है।

दूध में विटामिन "ए" बहुत काफ़ी तादाद में हैं। विटामिन "बी" "सी" और "ई" भी पाये जाते हैं, किन्तु विटामिन "सी" दूध के औटाने पर नष्ट हो जाता है। विटामिन को "खाद्योज" भी कहते हैं।

दूध में ९ प्रकार के पाचक रस (Enzyms) भी रहते हैं।
उपर्यक्त हिसाब से ƒ१ दूध के ८० तोलों में :—

जल	६९'०६ तोला
वसा	३'८ तोला
कार्बोज शर्करा	३'८२ तोला
प्रोटीन	२'७३६ तोला
खनिज लवण	'५८४ तोला अर्थात् ७ माशे के लगभग

ƒ१ दूध में ४ या ५ तोले के लगभग मक्खन निकलना चाहिए। मक्खन को गरम करने पर सेर पीछे ƒ=की छीज के निकल जाने पर घी बच रहता है।

दूध के गुण :—शुद्ध गो-दुग्ध मीठा, जीवनदायी, पुष्टिकारक, बलबुद्धिवर्धक एवं आयुरक्षक सर्वोत्तम रसायन है, क्योंकि इसमें के स्नेहतत्त्व जल्द पचने वाले और रक्त में शीघ्र मिल जाने वाले होते हैं। दूध की कार्बोज मांस को बढ़ाने वाली होती है तथा प्रोटीन अन्य दूसरे प्रकार की प्रोटीनों से उत्तम और प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण होती है। दूध का कैलशियम सब से अच्छा होता है। इसके विटामिन तथा पाचक रस शरीर को पुष्ट करने में प्रमुख चीजें हैं। अतः इससे साफ़ विदित होता है कि दूध स्वतः एक पूर्ण भोजन है, क्योंकि मनुष्य के शरीर के लिए आवश्यक सभी तत्त्व गो-दुग्ध में विद्यमान हैं। बालक, युवा, वृद्ध और रोगी सभी के शरीर के विकास के लिए यह एक अनुपम पदार्थ है।

दूध का उपयोग :—गो-दुग्ध का व्यवहार आबालवृद्ध सभी के लिए हितकर है, क्योंकि यह प्राणपोषक तत्त्व है।

धारोष्ण दूध—तुरन्त के दुहे हुए स्वाभाविक गरमी वाले दूध को धारोष्ण कहते हैं। इसे आग पर गर्म किये बिना ही पीना चाहिए। रक्खे रहने पर या स्वाभाविक गर्मी के निकल जाने पर वह धारोष्ण नहीं रह जाता। धारोष्ण दूध केवल गाय का ही व्यवहार करना चाहिए, भैंस का नहीं। "धारोष्णं पय. पथ्यम्" यह आयुर्वेद का सिद्धान्त है।

धारोष्ण गो-दुग्ध वातविकार को शान्त करता है, क्षीणता को दूर करता है, ओज को बढ़ाता एवं शरीर को मोटा करता है। यह अग्नि-उत्तेजक एवं रक्तशोधक है। यद्यपि यह गुरुपाच्य है, तथापि इसका सेवन हितकर है। धारोष्ण दूध के सेवन करने से पहले गाय और उसके दुहने के पात्र की स्वच्छता का निश्चय कर लेना आवश्यक है। शनैः शनैः अभ्यास करने से यह दूध सहज में ही पचने लगता है। धारोष्ण दूध में शक्कर या मिश्री के मिलाने की ख़ास ज़रूरत नहीं है। इस दूध को सदैव छान कर ही व्यवहार में लाये। गाय की नीरोगिता की परीक्षा ज़रूर करा लेनी चाहिए, क्योंकि दूध में ख़ास कर यक्ष्मा-रोग के कीटाणुओं के होने की प्रायः संभावना रहती है।

दूध को अधिक देर तक औटाने से उसमें स्थित विटामिन "सी" नष्ट हो जाता है; साथ ही दूध के कैलशियम भी अनघुल हो जाते हैं। फिर भी बाहर से लिये या ख़रीदे हुए दूध को औटा कर ही बरतना चाहिए, अन्यथा उसमें हानिप्रद कीटाणुओं के उत्पन्न होने की संभावना रहती है। पीने के दूध को दो तीन उफान का हल्का ही औटाना चाहिए। ज़्यादा औटाया हुआ दूध मेद-वर्धक, गुरुपाच्य एवं स्निग्ध हो जाता है।

केवल मात्र **गो-दुग्ध पर मनुष्य आजीवन सुखपूर्वक रह सकता है।** शिशु को ताज़े गो-दुग्ध के पिलाने पर अन्य किसी आहार की आवश्यकता नहीं रह जाती। ताज़े गो-दुग्ध को माँ के दूध के सदृश बनाने के लिए बालक की आयु के हिसाब से उसमें पानी मिला और औटा कर बच्चे को पिलाना चाहिए।

गर्भिणी स्त्री को दूध का अवश्य सेवन करना चाहिए, क्योंकि दूध में खनिज लवण अर्थात् चूना (कैलशियम्) लोहा व फासफोरस आदि आवश्यक तत्त्व होते हैं। यह तत्त्व गर्भस्थ शिशु के पोषणकर्त्ता व गर्भिणी के स्वास्थ्य-रक्षक हैं। प्रसव के पश्चात् गो-दुग्ध का सेवन करने से जननी पुनः शक्ति प्राप्त करके बालक को अपना दूध पिलाने में समर्थ होती है।

बालकों के लिए गो-दुग्ध अनुपम पेय है। इसके बराबर अन्य कोई पदार्थ नहीं है। दूध पीने से उनका शरीर बढ़ता है। हड्डी मज़बूत होती है और बल बढ़ता है। शारीरिक उन्नति के साथ साथ मानसिक उन्नति भी होती है।

अपनी युवावस्था को स्थायी रखने के लिए तथा दीर्घजीवी बनकर स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करने के हेतु युवकों को निरन्तर दूध का सेवन करना चाहिए, क्योंकि गो-दुग्ध वीर्यरक्षक है।

वृद्धों के लिए गो-दुग्ध अनिवार्य है। इस आयु में पाचनशक्ति के क्षीण हो जाने से अन्नादि से यथेष्ट तत्त्व नहीं मिल पाते हैं। वसा, शर्करा, प्रोटीन व खनिज लवण आदि पदार्थ तरल रूप में दूध में विद्यमान रहते हैं, अतः वे शीघ्र ही पचकर स्फूर्तिदायी बन जाते हैं।

रोगी के लिए दूध अमृत है। कफजन्य रोगों को छोड़ कर प्रायः सभी रोगों में दूध पथ्य है। अनेक रोग दूध-चिकित्सा (विधिवत् दूध का सतत व्यवहार) के द्वारा दूर किये जा सकते हैं।

गो-रस हर ऋतु में गुणकारी है। गर्मी के दिनों में वह गर्मी की भयंकरता को दूर करता है। वर्षा ऋतु में वायु के जलमय होकर सील जाने से कुछ लोगों को मन्दाग्नि हो जाती है। कभी कभी इन दिनों में दूध के व्यवहार से किसी किसी व्यक्ति के पेट में वायु के प्रकोप से गड़बड़ी हो जाती है। किन्तु औटाया हुआ गाय का दूध कोई हानि नहीं पहुँचाता। इन दिनों गाय का दूध प्राकृतिक रूप से ही पतला हो जाता है, उसमें मक्खन की मात्रा कम हो जाती है और विटामिन "सी" अधिक हो जाता है। इस कारण दूध हल्का एवं सुपाच्य बन जाता है, उस में चौमासे के तरह तरह के हरे चारों के द्वारा पनीला अंश एवं विटामिन 'ए' और 'सी' विशेष हो जाता है।

शरद ऋतु में दूध शरीर को गरम रखता एवं पुष्ट करता है। इस समय गाय का दूध गाढ़ा हो जाता है, क्योंकि घास, चरी आदि सभी चारे की चीज़ें पकने के समीप आने के कारण, ठोस हो जाती हैं, जिससे दूध में मक्खन की मात्रा बढ़ जाती है। मक्खन मांसपोषक होता है।

प्रातःकाल का पिया हुआ दूध बल बढ़ाता है। वह मांसवर्द्धक एवं अग्नि को उद्दीप्त करने वाला होता है। दोपहर को सेवन किया हुआ दूध बलवर्धक एवं रोगनिवारक होता है। रात को दूध पीना पथ्य है, क्योंकि वह अनेक रोगों का शमन करता है, किन्तु रात में दूध पी कर तुरन्त ही नहीं सोजाना चाहिए।

दूध एक तरह से पूर्ण भोजन है। इस कारण भोजन की मात्रा को कुछ कम करके ही दूध पीना चाहिए। भरपेट भोजन करने के बाद दूध का सेवन नहीं करना चाहिए।

गो-दुग्ध के पीने से आँखों की ज्योति बढ़ती है और नाना प्रकार के नेत्ररोगों से बचाव होता है। स्त्रियों के सौन्दर्य का वर्धक एवं रक्षक दूध ही है। दूध से मुँह धोने पर कान्ति बढ़ती है। गो-दुग्ध को सिर पर मलने से सिर की ख़ुश्की दूर होती है और केश नरम हो जाते हैं।

सभी अवस्थाओं में गो-दुग्ध जीवन का मुख्य अंग है। दूध से विमुख होने पर जीवन का शक्तिमान् एवं स्फूर्तिमान् होना सम्भव नहीं है। अतः हमें दृढ़ निश्चय करके गायों की दीन-हीन अवस्था को दूर करना चाहिए। **सुपालित गो-धन ही सभ्यता की जड़ को मज़बूत बनाता है**। इसके बिना कोई भी देश समर्थ नहीं हो सकता।

दूध की सेवन विधिः—मनुष्य के आमाशय में अम्ल (खट्टा) रस पहले ही उपस्थित रहता है। इस कारण पीने पर आमाशय में जाकर दूध अम्ल-रस के संयोग से फट जाता है। इसके बाद वह गतिशील आँतों में जाता है। वहाँ मथे जाने पर उसके सब पदार्थ अलग अलग होकर शरीर में मिल जाते हैं। दूध का थक्का जितना बड़ा होगा, वह उतनी ही देर में पचेगा तथा उसके पचने के लिए पाचक रस भी अधिक लगेगा। इसलिए दूध धीरे धीरे पीने से शीघ्र पचता है।

दूध के साथ अन्य भोज्य वस्तुओं के संयोग का विशेष ध्यान रखना चाहिए। विरुद्ध संयोग वाला भोजन हानिकर होता है। दूध मधुर है, अतः मधुर वस्तुओं का संयोग अच्छा है। जैसे चावल, गेहूं, मुनक्का, छुहारा आदि के साथ दूध का व्यवहार अच्छा होता है।

यद्यपि आम किञ्चित् खट्टा होता है, फिर भी आम खाकर दूध पीने से आम की गर्मी शान्त होती है और बल बढ़ता है। आयुर्वेद के मतानुसार कसैले और खट्टे रसों के साथ दूध का उपयोग करना अच्छा नहीं है। मूली, कटहल, बड़हल, अख़रोट, इमली, उर्द, मटर, मोठ, काँजी तथा सिरका खाकर तुरन्त ही दूध नहीं पीना चाहिए।

आजकल किन्हीं किन्हीं प्राकृतिक चिकित्सकों के मतानुसार पेट में पहुँच कर दूध को भली भाँति फट जाना चाहिए। इसलिए दूध पीने के बाद २, ४ बूंद नीबू का रस चूस लेना वे हितकर मानते हैं। वे लोग दूध के साथ टिमाटर का खाना भी अच्छा मानते हैं। किन्तु कई विद्वान् इसका विरोध करते हैं।

दूध में शहद मिलाकर पीना गुणकारी है, परन्तु शहद मिलाकर दूध को गरम नहीं करना चाहिए। गरम दूध में भी शहद का मिलाना हानिकर है।

दूध पीकर पान खाना हानिप्रद है। खीर खाने के बाद तुरन्त ही मट्ठा या दही का भोजन नहीं करना चाहिए। जो दूध एक बार गर्म करने के बाद ठण्डा हो गया हो, उसे दुबारा गर्म

करके पीना ठीक नहीं है। केवलमात्र घी में बराबर का शहद मिलाकर खाना हितकर नहीं है, क्योंकि इस दशा में वह विष बन जाता है।

दूध में मीठे शंतरे का थोड़ा सा रस मिलाने से वह शीघ्रपाची बन जाता है।

एक सेर दूध में लगभग एक तोले चूने का निथरा हुआ पानी मिलाने से दूध के वायु उत्पन्न करने वाले दोष कम हो जाते हैं।

गरम दूध पीकर तुरन्त ठंडा पानी पीने से दाँतों की जड़ें कमज़ोर हो जाती हैं।

दूध में घी मिलाकर पीने से धतूरे का विष उतर जाता है।

दूध में घी मिलाकर पीना बलवर्धक है।

गर्म घी में गंधक मिलाकर तथा दूध में छान कर शुद्ध की हुई गंधक को वैद्य लोग दवा के काम में लाते हैं।

दूध में पीपल या सोंठ डालकर औटाने से उसका वायु उत्पन्न करने वाला दोष जाता रहता है। एक बड़े बर्तन में पानी गर्म करके उस खौलते हुए पानी के अन्दर एक दूसरे छोटे बर्तन में कच्चे दूध को भर कर रख दे। इस से छोटे बर्तन के अन्दर का दूध गर्म हो जायगा। दूध के गर्म हो जाने पर इन दोनों बर्तनों को आँच पर से हटा ले। इस प्रकार से गर्म किये गये दूध के विटा-मिन नष्ट नहीं होने पाते।

दूध की परीक्षा :—दूध में पानी मिला है या नहीं यह जानने के लिए आमतौर पर बरते जाने वाले कुछ तरीक़े यहाँ लिखे जाते हैं।

१—जो दूध पानी में तैरता रहे, या जिसकी बूँद पानी में डूब जाय, वह दोषयुक्त माना जाता है। जिस दूध का स्वाद कड़ुआ, क़सैला व खट्टा हो गया हो, उसे दोषयुक्त समझना चाहिए। दूध के रंग के बदल जाने या उसके फट जाने पर वह दूषित हो जाता है।

२—ख़ालिस दूध भारी और पानी मिला हुआ दूध हल्का होता है। एक से वज़न के दो पात्रों में दोनों तरह के दूध को रख कर, उनको तौल कर यह जाना जा सकता है। दूध में चिकनाई होने के कारण ख़ालिस दूध की बूँद बर्तन पर डालने से कुछ ठहर-सी जायगी, किन्तु पानी मिले हुए दूध की बूँद सहज ही बह जायगी।

३—एकत्रित दूध में से ऽ१ दूध लेकर उसका खोया सावधानी से बना लें ताकि छीज न होने पाये। गाय के खालिस दूध से सेर पीछे ऽ≡ के लगभग खोया बनेगा, क्योंकि खोये में ठोस पदार्थों के अलावा पानी का भी कुछ अंश मिला रह जाता है। गाय के सेर भर दूध में ऽ≡ से कम खोया बैठे, तो दूध को पानी मिला हुआ माना जाता है।

गायों के रङ्ग का दूध पर प्रभाव पड़ता है, यह आयुर्वेद का मत है :—

श्यामा (जो सर्वाङ्ग काले रंग की हो) गाय का दूध उत्तम होता है, क्योंकि उसमें सभी आवश्यक गुण होते हैं। इस दूध में वायुनाशक गुण विशेष रूप से होते हैं और इसमें मक्खन की मात्रा भी अधिक होती है।

काले रंग पर सूर्य की किरणें अधिक प्रभाव डालती हैं, अतएव श्यामा गाय सदैव नीरोग रहती है।

कपिला गाय—जिसके सींग छोटे और नीचे की ओर झुके एवं हिलते हुए हों। यह नम्र और स्नेही स्वभाव की होती है। इसका दूध पुष्टिकर होता है।

लाल रङ्ग की गाय—के दूध में मिठास का अंश अधिक होता है। इस दूध में गर्भधारण-शक्ति और कफनाशक गुण विशेषरूप से रहते हैं।

सफ़ेद, भूरे आदि रंगों की गायों का दूध साधारणतया अच्छा होता है।

दूध की सँभाल:—गो-दुग्ध बहुत ही सुकुमार एवं विशुद्ध वस्तु है। अतएव जरा सी असावधानी से उस पर अस्वच्छता का असर तुरन्त पड़ जाता है। क्षय, मियादी बुख़ार, हैज़ा आदि के कीटाणु सहज ही दूध में प्रवेश कर जाते हैं, इसलिए सब से पहले गाय के खान-पान व स्थान की स्वच्छता पर ध्यान देना चाहिए।

गाय के दुहने के समय ग्वालों की निजी स्वच्छता और उनके हाथों की सफ़ाई की ओर भी ध्यान रखना चाहिए। दूध दुहने के बर्तन ख़ूब साफ़ होने चाहिए। दुहने के पहले बर्तन को चूल्हे की गरम राख से माँज कर साफ़ पानी से धो ले। बर्तन की सफ़ाई दिन में दोनों समय करनी चाहिए। दूध को कपड़े, धातु या लकड़ी के ढक्कन से ढक कर रखना चाहिए, नहीं तो मक्खियों के द्वारा उसमें बहुत से कीटाणु पहुँच जायँगे। बर्तन खुले हुए चौड़े मुँह का हो, जिस से तली तक की सुविधापूर्वक सफ़ाई की जा सके। थोड़ी देर तक दूध रखने के काम में लोहे या पीतल की वाल्टी लायी जा सकती है, किन्तु यदि देर तक पीतल के बर्तन में दूध रहेगा, तो वह हरा पड़ कर विषैला हो जायगा। इसलिए पीतल के बर्तन में क़लई करा लेनी चाहिए।

दूध, क्रीम,[1] और मक्खन आसपास की तेज़ गन्ध को जल्दी ही अपने में खींच लेते हैं। दूध में कीटाणुओं के पोषक तत्त्व रहते हैं। इसलिए दूध सहज में ही उनसे ग्रस्त होकर रोगों को उत्पन्न करने वाला बन जाता है। लोहे के बर्तन में औटाने से दूध कुछ लाल रंग का हो जाता है। लोहे के बर्तन में रखने पर क्रीम काले रंग की हो जाती है और देर तक रक्खा हुआ दूध नीला पड़ जाता है। साफ़ माँजी हुई लोहे की कड़ाही में ही दूध अधिकतर औटाया जाता है।

दूध को ताँबे के वर्तन में नहीं रखना चाहिए और न उस में औटाना ही चाहिए। ताँबे का असर दूध पर जल्दी पड़ता है, इस कारण वह तुरन्त ही विगड़ जाता है। ताँबे के पात्र में रखने से दही या मट्ठा विषैला हो जाता है। यदि इन बर्तनों पर क़लई करा ली जाय, तो इन्हें भी काम में लाया जा सकता है।

यद्यपि काली मिट्टी की हाँडी में रक्खा हुआ अथवा उसमें औटाया हुआ दूध शुद्ध रहता है, तथापि नयी हाँडी में रखने से दूध में मिट्टी की गन्ध आ जाती है, जो कुछ लोगों को नापसन्द हो सकती है। मिट्टी की हाँडी के टूटने का भी डर रहता है। यदि मिट्टी की हाँडी वरती जाय

---

[1] अंगरेजी पद्धति से निकाली हुई मलाई को क्रीम कहते हैं।

तो उसे कंडे की धीमी आँच पर रखना चाहिए । यद्यपि इस प्रकार से दूध बहुत देर में औटता है, किन्तु शनैः शनैः औटने के कारण वह जलता कम है, और छीज कम होती है । इस तरह से दूध को औटाने पर उस दही से मक्खन अधिक निकलता है ।

दूध लकड़ी के पात्र में अच्छा बना रहता है, किन्तु उसके छोटे छोटे छिद्रों में अशुद्धता भर जाती है, अतः लकड़ी के पात्र में दूध रखना ठीक नहीं है ।

चीनी-मिट्टी के बने हुए बर्तनों में दूध शुद्धतापूर्वक रक्खा जा सकता है । ऐसे बर्तनों में गर्मी अधिक समय तक क़ायम रहती है, इसलिए इनमें बहुत देर तक रखने से दूध खट्टा पड़ने लग जाता है । इन पात्रों में दही अच्छी तरह जमाया जा सकता है ।

यदि दूध को बिना औटाये ही रखने की इच्छा हो, तो उसे ठंडी जगह या रिफ़्रिजिरेटर नामक मशीन में रखना चाहिए ।

सबसे उत्तम तो यह है कि दूध को छान कर, दो तीन उफ़ान का ही औटा कर काम में लाये, क्योंकि उससे उसकी बाहरी अशुद्धि नष्ट हो जाती है । यों तो औटाने से दूध के कुछ लाभदायक तत्त्व एवं विटामिन 'सी' भी कम हो जाते हैं, परन्तु साधारणतया उसे औटाना ही ठीक रहता है ।

शीशे के बने पात्र में दूध अच्छी तरह रक्खा जा सकता है, क्योंकि शीशा जल्दी साफ़ हो जाता है । शाला से ग्राहकों के पास दूध को पहुँचाने के लिए शीशे की ढक्कनदार बोतलें अच्छी रहती हैं ।

दूध को दुहने के लिए पीतल की क़लईदार अथवा भरत या जर्मन सिलवर धातु की बनी हुई बटलोई ठीक रहेगी । बटलोई छोटी और हल्की होनी चाहिए, ताकि वह सरलतापूर्वक घुटनों के बीच रक्खी जा सके ।

गोल पेंदे वाली होने के कारण बटलोई सरलता से स्वच्छ की जा सकती है । दूध इकट्ठा करने के लिए पीतल या लोहे के ढक्कनदार बड़े मुँह के बाल्टे होते हैं । दूध औटाने के लिए लोहे की भारी कड़ाही अच्छी रहती है । पीतल की क़लईदार पतीली से भी काम चलाया जा सकता है ।

इन बर्तनों के अभाव में सुविधानुसार मिल सकने वाले लोहे या मिट्टी के बर्तन काम में लाये जा सकते हैं । बर्तन हर हालत में लकड़ी या कोयले की राख से तुरन्त के मँजे होने चाहिए । ख़ाली हो जाने पर बर्तनों को तुरन्त माँज कर रख देना चाहिए ।

दूध के बने पदार्थ :—दूध से कई प्रकार के विभिन्न पदार्थ बनाये जाते हैं । दूध में चावल या गेहूँ का दलिया अथवा अन्य प्रकार की कई चीज़ों को मिला कर तरह तरह की खीर बनायी जाती है । दूध को अधिक औटाकर रबड़ी या खोया बनाया जा सकता है । खोये की मिठाई हमारे देश में बहुत सम्मानित है, किन्तु वह बहुत गरिष्ठ होती है ।

गर्म और उबलते हुए दूध को नीबू के रस से फाड़कर छेना बनाया जाता है । इससे बंगाली मिठाइयाँ बनायी जाती हैं । छेने में दूध की प्रोटीन और मक्खन होता है, यह पुष्टिकारक और मांस तथा बल वर्धक है । यह कफकारी और वात एवं पित्त को शान्त करता है । छेने से निथरे पानी में लवण आदि का विशेष अंश रहता है । दूध के कुछ विटामिन भी उसमें रहते हैं, इसलिए यह बड़ा पाचक द्रव है । जिन रोगियों को कुछ नहीं पचता, उनको यह दिया जाता है । इस पानी का उप-

योग स्वस्थ मनुष्यों को भी करना चाहिए। इसे कभी न फेंके। इस निथरे हुए पानी से प्यास शान्त होती है और रक्तपित्त एवं ज्वर नष्ट होते हैं। इसे दुग्ध-द्रव या व्हे (Whey) कहते हैं। यही जब डिब्बों में भर कर विदेशों से यहाँ आता है, तो डाक्टरों के कहने पर बाजार में, घर से कई गुना अधिक मूल्य देकर, ख़रीदा जाता है।

गर्मी के दिनों में दूध को बरफ़ के द्वारा ठंडा करके उससे बरफ़, कुलफ़ी आदि रुचिकर व स्वादिष्ठ चीज़ें बनायी जाती हैं।

दूध दही और शक्कर के सम्मिश्रण से श्री-खण्ड बनाया जाता है। इसमें शहद, इलायची, नागकेशर, चिरौंजी, दालचीनी, तेजपत्र, व काली मिर्चें पीसकर मिलाने से यह विशेष रुचिकर एवं बलवर्धक बन जाता है। महाराष्ट्र में इसका ख़ूब रिवाज है।

दूध को देर तक गरम करने पर उसका जो अंश गाढ़ा होकर चिकनाई लिये हुए ऊपर जम जाता है, उसे सर या मलाई कहते हैं। इसमें दूध की सारी चिकनाई खिंच आती है। यह बहुत देर में पचने वाली, ठंडे गुणों वाली, स्निग्ध एवं मांसवर्धक होती है। हलकी मलाई के साथ दूध में उत्तम प्रकार की चिकनाई एवं ओज इकट्ठी हो जाती है। यह सरलता से पचने वाली और ताक़तवर होती है, किन्तु अधिक खाने से यह अग्निमांद्य कर देती है।

दही :—दूध में संस्कार करने से दही बनता है। दही बनते समय दूध में रासायनिक परिवर्तन होते हैं। दूध में लैक्टिक-एसिड की उत्पत्ति हो जाती है। लैक्टिक एसिड (Lactic acid) के कीटाणु (बैक्टीरिया) दूध में स्थित चीनी पर अपना प्रभाव डालते हैं। यह चीनी ही इन कीटाणुओं का भोजन है। इसलिए दही के जमने पर दूध की मिठास कम हो जाती है, और उसमें खट्टापन आ जाता है। लैक्टिक एसिड के पैदा होने से दूध ही बदल कर दही बन जाता है।

दूध को छान कर लोहे या क़लई के साफ़ बर्तन में दो तीन उफान का औटाने के बाद उसे धीमी आँच से गर्म करना चाहिए। अधिक देर तक औटाने से दूध गाढ़ा पड़ने लगेगा और उसका रंग बदल कर बादामी हो जायगा। यदि खाने के लिए दही बनाना हो, तो दूध को अधिक न औटाये। घी निकालने के लिए धीरे धीरे ख़ूब औटाये हुए दूध का दही अच्छा होता है।

दूध में ऽ१ पीछे २॥ तोला दही का जामन देकर जमाना चाहिए। बिना जामन के दूध अधिक देर तक रक्खा रहने पर खट्टा होकर गाढ़ा हो जाता है, और फट भी जाता है। जामन डालकर जमाया हुआ दही स्वादिष्ठ एवं गुणकारी होता है। गर्मी-सर्दी का ठीक प्रबन्ध होने पर दही अच्छा जमता है। जाड़ों में ज़रा गुनगुने दूध में जामन देना चाहिए और दूध की हाँडी को कुछ गरम रखने का प्रबन्ध करना चाहिए। पात्र को कम्बल से ढकने या गरम राख पर रखने से जाड़ों में अच्छा दही सहज में जम जाता है। गर्मी के दिनों में ठंडे दूध में जामन देकर उसे ठण्डी जगह में रखना चाहिए। अगर अधिक गर्मी हो, तो कुछ रेत को पानी से भिगोकर उस पर दही जमाने का मिट्टी का पात्र रक्खा जा सकता है। गरमी से दही फटकर खट्टा हो जायगा।

खूब गरम दूध में जामन डालने से दही में पनीला अंश ज़्यादा रह जाता है। जमते हुए दही को आग पर रखने से वह चक्का नहीं जम पाता।

दही जमाने के लिए मिट्टी का पात्र उत्तम होता है। इसे नित्य गरम पानी से साफ़ करना चाहिए। ख़ाली पात्र को धूप में रखते रहने से वह स्वच्छ एवं कीटाणु-रहित रहेगा। यद्यपि जामन फिटकरी, नीबू, या सोडे का भी दिया जाता है, तथापि दही या मट्ठे का जामन अच्छा होता है। जामन के स्वाद के अनुसार दही का स्वाद खट्टा या मीठा हो जाता है।

पूरे भरे हुए बर्तन में दही अच्छा जमता है। यदि एक ही ढंग का दूध और जामन अलग अलग दो बर्तनों में जमायें, जिसमें एक बर्तन भरा और दूसरा ख़ाली हो तो ख़ाली बर्तन वाला दही उतना अच्छा नहीं जमेगा। अतः दूध के अनुपात से ऐसे बर्तन को चुन ले, जिसमें दूध ऊपर तक पूरा पूरा भर जाय।

दही मंगल द्रव्यों में है और अति रुचिकर है। यद्यपि दही का गुण गरम है, तथापि शरीर की गर्मी को शान्त करता है। यह पाचनशक्ति को तीव्र करने वाला, स्वादिष्ठ, अग्नि-उद्दीपक और बादी को दूर करने वाला होता है। यह आयु-वर्धक है। इसमें विटामिन 'ए' होता है। लैक्टिक एसिड की कमी से मनुष्य को वृद्धावस्था जल्द आ घेरती है, किन्तु दही के सेवन करने से वे एसिड मनुष्य को मिलते रहते हैं। इसलिए वह अधिक स्वस्थ रह सकता है। दूध की अपेक्षा दही की प्रोटीन हल्की और शीघ्रपाची होती है।

रात्रि में दही का सेवन चरक के मत से वर्जित है, क्योंकि रात में वह कफ को बढ़ाता है। कपड़े में बँधा हुआ दही कफकारी, वायु-शामक, पित्तनाशक एवं मधुर होता है।

तक्र :—मट्ठा अथवा दही में हैज़े के कीटाणुओं को मारने की प्रखर शक्ति होती है। यह आधुनिक विज्ञान द्वारा भी सिद्ध हो चुका है। भारत में क्षय आदि रोगों के फैलने का एक प्रधान कारण शुद्ध गो-रस का न मिलना है। दही में संस्कार करने अर्थात् मथने से मट्ठा बनता है। मथानी आम या शीशम की लकड़ी की बनायी जाती है। मथानी के नीचे का भाग भारी, गोलाकार व छोटे-छोटे खँदानों में विभक्त होता है। मथानी के डंडे को पात्र के बीचोबीच में रखने के लिए दीवार या किसी अन्य मजबूत आधार के सहारे ऊपर-नीचे लगायी हुई दो रस्सियों के बीच में उसे रक्खा जाता है। दही को मथने के समय मथानी के डंडे के बीच में रस्सी लपेट कर उसके दोनों सिरों को बारी बारी से मथने वाला व्यक्ति अपनी तरफ़ खींचता है।

इस क्रिया से मथानी क्रमशः दायीं तथा बायीं तरफ ज़ोर से घूमती है, जिससे बर्तन में मौजूद दही उछलने लगता है। मथने से दही में छोटे छोटे बुदबुदे उठने लगते हैं। यह बुदबुदे (झाग) बदल कर जब तक मक्खन के रूप में न आ जायँ, तब तक बराबर मथानी को चलाते ही रहना चाहिए। जब मक्खन बँध जाय, तब मथे हुए दही में पानी डालना चाहिए। तत्पश्चात् थोड़ा-सा और मथकर पानी से भीगे हुए कपड़े से उसे ढक दे। कुछ देर बाद इस मक्खन को निकाल कर पानी से भरे पात्र में इकट्ठा कर ले। नमक के पानी से धोया हुआ मक्खन जल्दी खराब नहीं होता है। जाड़ों में गुनगुने और गर्मियों में ठंडे पानी के व्यवहार से मक्खन जल्दी और अच्छा जमता है।

गो-दुग्ध से बना हुआ मट्ठा गुणों की खानि है। मट्ठा हल्का और पाचक होता है, अतएव भूख को बढ़ाता है। यह मट्ठा बहुत से विकारों से पेट की रक्षा करता है। गर्मियों में चीनी मिला हुआ मट्ठा प्यास को दूर करता है। मट्ठे में विशेषता यह है कि इसके सेवन से आँतों में लोच आ जाती है, जिससे उनमें संकोचन होता है और कोष्ठबद्धता दूर होती है।

मट्ठा कई रोगों को दूर करता है। यह संग्रहणी और मलेरिया की महौषधि है। मट्ठे में नमक मिलाकर नहीं रखना चाहिए, उसे तुरन्त पी लेना चाहिए। बासी मट्ठा खट्टा और पित्त को बढ़ाने वाला हो जाता है। मट्ठा रात में नहीं पीना चाहिए।

मक्खन :—यह दो रीति से बनाया जाता है। कच्चे दूध को मथानी से मथकर उसकी चिकनाई अलग कर उसे पानी से धोकर उसमें ज़रा-सा नमक मिला लिया जाता है। दूध को बिलो कर मक्खन निकालने की मशीन को अंग्रेज़ी में "सेपरेटर" कहते हैं। मक्खन निकाला हुआ दूध रोगियों एवं पालित पशुओं को पिलाया जाता है। हलवाई इस दूध का खोया बना लेते हैं। बर्फ की ठंडक में रखने से मक्खन बहुत समय तक सुरक्षित रह सकता है। इसमें दूध की ९० % वसा और विटामिन रहते हैं।

जाड़ों में तीसरे दिन मट्ठा फेरने से अधिक मक्खन निकलता है, क्योंकि बासी दही में लैक्टिक एसिड ताज़े दही से ज़्यादा हो जाता है।

मट्ठे से निकाला हुआ मक्खन अधिक स्वादिष्ट होता है। मक्खन की मात्रा दूध से निकालने पर कम, किन्तु दही से निकालने पर अधिक होती है।

'क्रीम' से भी घी बनाया जाता है, परन्तु इस तरह उसकी मात्रा कम बैठती है। इस प्रकार के घी में 'केसिन' का अंश ज़्यादा रहता है और गन्ध भी रहती है। यह घी जल्दी नहीं बिगड़ता एवं ज़्यादा टिकाऊ होता है। क्रीम से बनाया हुआ मक्खन किञ्चित् खट्टा होता है।

गो-दुग्ध के मक्खन में कैरोटीन (Carotene) होती है, इसलिए वह कुछ पीला और विशेष गुणकारी होता है। इसमें विटामिन 'ए' बहुत अधिक होता है।

मक्खन आँखों के लिए विशेष हितकर है, क्योंकि वह नेत्रों की ज्योति को बढ़ाता है। यह मधुर, अत्यन्त शीतल, बलवर्धक एवं अधिक गुणकारी होने के कारण बच्चे से बूढ़े तक सभी के लिए लाभदायक है।

भैंस के दूध से बना हुआ मक्खन भारी होता है। यह गाय के दूध के मक्खन से अधिक सफ़ेद और कम अच्छा होता है, क्योंकि इसमें विटामिन 'ए' बहुत कम रहता है।

घी :—गो-घृत इस संसार में अमृत के समान ही एक रसायन है। यह विशुद्ध वस्तु है। शास्त्रों में और चरक, आदि ग्रन्थों में इसकी बहुत प्रशंसा की गयी है।

गो-घृत बहुत सी दवाओं के बनाने में काम आता है। कई वर्ष का पुराना घी विषनाशक होता है। घी के 'कैरोटीन' तत्त्व घी को टिकाऊ बनाते हैं। भारत के हर घर में घी का सतत व्यवहार होता है।

नवनीत या मक्खन को आग पर तपा कर उसके क्षार रूपी मैल को अलग कर लेते हैं। मक्खन को तपाने पर उसमें झाग उठते हैं। मट्ठे के अंश के जल जाने पर जो शुद्ध और साफ़ तथा पीले रंग का एक चिकना तरल पदार्थ अलग हो जाता है, उसी को घी कहते हैं।

घी एक किस्म की वसा या स्नेह है। यह सभी चिकनाइयों में उत्तम व सतोगुण प्रधान है। मनुष्य की शरीररक्षा के लिए यह परम उपयोगी द्रव्य है। यह आँखों की ज्योति एवं स्मरणशक्ति को बढ़ाने वाला, पुष्टिकर तथा अग्निदीपक है। यह मथने में कुछ भारी होता है और वात तथा पित्त के रोगों का नाश करता है। यह कीटाणुनाशक, अनेक प्रकार के विषों को शान्त करने वाला, रोगनिवारक एवं रक्त को शुद्ध करने वाला है। यह मेद को बढ़ाता है, अतः स्थूल शरीर वालों को इसका सेवन कम करना चाहिए। स्वरभंग के दोष को यह दूर करता है। इसमें विटामिन 'ए' अधिक होता है।

घी को छान कर रखना चाहिए। भली भाँति से बनाया हुआ घी वर्षों तक नहीं बिगड़ता है। घी के बिगड़ जाने की आशंका हो, तो उसे फिर से औटा लेना चाहिए। घी को विशेष शुद्ध और टिकाऊ बनाने के लिए औटाते समय लवंग, पान, तेजपत्र या नीबू की पत्ती डालकर ठीक ठीक औटाना चाहिए। नमक, कच्चा दूध या खाने का सोडा भी घी को साफ़ करता है।

घी को चीनी-मिट्टी की बनी बरनियों में भरकर बन्द जगह में रखना चाहिए। धातु का असर घी पर जल्दी पड़ता है। ताँबे या लोहे के पात्र में घी विषैला पड़ जाता है। जंग-लगे बर्तन में भी घी ठीक नहीं रहता। क़लई किये हुए टीन का असर घी पर कम होता है, अतः आमतौर पर टीन के पीपों में घी रक्खा करते हैं; किन्तु कभी कभी इनमें भी घी ख़राब हो जाता है, क्योंकि कुछ काल तक इस्तेमाल होने पर इनमें की गयी क़लई की पालिश नष्ट हो जाती है। अतः घी रखने के लिए "बरनी" ही सबसे अच्छा पात्र है।

सीलन भरी हवा से घी में एसिड का संचार बढ़ जाता है और वह जल्दी बिगड़ जाता है। सूर्य की रोशनी से भी घी को बचाना चाहिए, क्योंकि इससे भी घी कम टिकाऊ हो जाता है। शीशे के बर्तन में भी घी को नहीं रखना चाहिए, क्योंकि शीशे पर सूर्य की किरणों का प्रभाव जल्दी पड़ता है।

वैज्ञानिकों का मत है कि गौ के दूध व घी में, अन्य सब ठोस पदार्थों की तुलना में, खनिज एवं लवण पदार्थ ही अधिक लाभदायी होते हैं। दूध के यह पदार्थ (खनिज और लवण) स्नेह व ठोस पदार्थों से कहीं अधिक आवश्यक हैं। यह खनिज द्रव्य मनुष्य मात्र के लिए और ख़ास तौरपर भारतवासियों के लिए विशेष हितकर हैं, क्योंकि भारतीय भोजनों में यह तत्त्व बहुत कम होते हैं। इस देश के भोजन में प्रायः स्टार्च व शक्कर का ही बाहुल्य होता है। आमतौर पर जनता को पर्याप्त हरे शाक नहीं मिलते; दूसरे, जिन्हें मिलते भी हैं वे उनका समुचित व्यवहार नहीं करते।

गो-घृत में विद्यमान पीला रंग विटामिन 'ए' सर्वप्रधान वस्तु है। यह भैंस के घी में गाय के घी से कई-गुना कम होता है।

गाय के दूध से बने घी का व्यवहार करना यद्यपि महँगा पड़ता है, तथापि यही उत्तम सिद्ध होता है। बाज़ार के घी से न तृप्ति मिलती है, और न गुणकारी द्रव्य ही मिल पाते हैं।

जहाँ तक हो सके, बाज़ार के घी का त्यागकर केवल विश्वसनीय गो-दुग्ध से बने घी को ही बरतना चाहिए। आजकल घी में तरह तरह की हानि पहुँचाने वाली अशुद्ध चीज़ों को मिला कर रुपया कमाने के हेतु बाज़ारों में बेंचा जाता है। पाठकों से सानुरोध निवेदन है कि वे बाज़ार के घी से बने स्वादिष्ट एवं सुन्दर लगने वाली मिठाइयों से बचकर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करें। अशुद्ध, बाज़ारू बहुत से घी की अपेक्षा घर के थोड़े से अच्छे घी से अधिक तृप्ति मिलेगी और स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा।

वनस्पति घी :—अथवा नक़ली घी, यह मूँगफली, बिनौलों या अन्य तेलों से बनाया हुआ सफ़ेद सा चिकना पदार्थ होता है, और घी के नाम से बिकता है। यह गन्ध और गुण दोनों से रहित होता है। व्यापारी लोग इसे घी के बराबर बतला कर जनता को भुलावे में डालते हैं। पूँजीपतियों ने इसके बड़े-बड़े कारख़ाने खोल रक्खे हैं। रंग-बिरंगे इश्तहारों के द्वारा भोली और नादान जनता को इस नक़ली घी के झूठे लाभ सुझाकर वे अपनी स्वार्थसिद्धि करते हैं।

वनस्पति घी, बिनौलों, मूँगफली, महुआ या अलसी आदि के तेल को हाइड्रोजिनेशन (Hydrogenation) करके बनाते हैं। इस क्रिया से तेल का रंग और स्वाद बदल दिया जाता है। और वह सफ़ेद तथा दानेदार बनकर ठंडा पड़ने पर जम जाता है। नक़ली घी बनाने की पद्धति से गुजरने के बाद तेल के पोषक अंश भी कम हो जाते हैं, अतएव यह घी से क्या तेल से भी गया-बीता है। इसे घी के सदृश बनाने के लिए इसमें ब्यूट्रिक एसिड और सिन्थेटिक एसेंस (Butyric Acid and Synthetic essence), एक प्रकार का तेज़ाब और गंध पदार्थ, मिला देते हैं।

वनस्पति घी की कुछ वैज्ञानिकों ने परीक्षा की है, किन्तु अभी वे लोग निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे। प्रयोगोंद्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि वनस्पति घी खिलाये जाने वाले चूहे कुछ कमज़ोर से रहे, और इनके बच्चे तो काफ़ी कमजोर रहे। उनकी यह दूसरी पीढ़ी शरीर में छोटी, दुबली और बिखरे बालों वाली थी। फिर इनसे उत्पन्न तीसरी पीढ़ी के चूहे तो सभी तरह से कमज़ोर और अन्धे-से पैदा हुए। अस्तु, यह स्पष्ट है कि वनस्पति घी के खाने से हमारी आगामी सन्तति कमज़ोर होगी। अपरञ्च, उनकी होने वाली सन्तान में तो बिल्कुल शक्ति न रह जायगी। यह अभी एक विवादग्रस्त विषय है, परन्तु आमतौर पर भी खाने से नक़ली घी के नुक़सान साफ़ साफ़ मालूम पड़ते हैं।

हिन्दुस्तान-ऐसे उष्णता-प्रधान देशों में वनस्पति घी सर्वथा त्याज्य वस्तु है। इससे बने पदार्थों को खाने से खाँसी, जुकाम, क़ब्ज़, और क़ब्ज़ से पैदा होने वाली बीमारियाँ हो जाती हैं। इससे गला ख़राब हो जाता है, शरीर की वृद्धि कम हो जाती है, और रोगनिवारक शक्ति भी घट जाती है। वनस्पति घी में विटामिन बिल्कुल नहीं होते। इसके खाने से दाँत ख़राब हो जाते हैं, और शरीर की शक्ति कम हो जाती है। गो-घृत की तुलना में यह वनस्पति घी अत्यन्त निकृष्ट वस्तु है; किन्तु कारख़ानेवालों ने इश्तहारोंद्वारा जनता के मन में यह बात पक्की तौर पर विठा दी है, कि यह कम से कम "देशी घी" के नाम से बिकने वाले मिश्रित घी से तो अच्छा है ही।

पूँजीपतियों के लिए यही उपयुक्त है कि वे अपने देश की निधि को वनस्पति घी के

कारखानों में लगाने के बदले उसे बड़ी बड़ी गोशाला एवं विस्तृत गोचरभूमि के बनाने में ख़र्च करें। उससे उन्हें आर्थिक लाभ तो होगा ही, साथ ही राष्ट्र भी सुपोषित होकर बलवान बनेगा। गोबर, गोमूत्र एवं गो-रस आदि गाय की सभी चीज़ें मनुष्यमात्र के लिए केवल हितकर ही नहीं, अपितु आवश्यक हैं और रहेंगी।

पूँजीपति जितनी जमा लगाकर इन कारखानों को चलाते हैं, यदि उसकी आधी या दशमांश भी लागत से निकटवर्ती किसी गाँव में व्यापार के लिए गोपालन करें, तो उन्हें लाभ अवश्य होगा। इसके साथ ही देशद्रोह के पाप से भी वे बचे रहेंगे। शनैः शनैः देशवासियों को कमज़ोर करनेवाले वनस्पति घी के खिलाने से राष्ट्र अवनत हो जायगा, क्योंकि उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण होती रहेगी।

गोपालन में ज़रा भी सावधानी की जाय, तो हानि कदापि नहीं होगी, प्रत्युत लाभ ही होगा। यदि केवल घी का ही व्यापार करना हो, तो गोचरभूमि तथा सुव्यवस्था की आवश्यकता है। केवल मात्रचराई पर रक्खी जाने वाली या कम दाना खिलायी जाने वाली गाय के दूध व घी में सुपोषित गाय के दूध व घृत के गुणों के समान गुण नहीं होंगे, परन्तु यह शुद्ध घी कारखानों में बने उस चिकने पदार्थ (वनस्पति घी) से लाखों दर्जे उत्तम व गुणकारी होगा। वनस्पति-घी के कारण शुद्ध-घी का मिलना दुर्लभ हो गया है।

विदेशों के भोजन में घी का उतना व्यवहार नहीं होता है, जितना कि भारत में। उनका खान-पान मांसप्रधान होने के कारण उन्हें बहुत सी प्रोटीन व चर्बी आदि मिलती रहती है। फिर भी वे लोग नक़ली घी का व्यवहार नहीं करते, बल्कि चर्बी को खाना बनाने के काम में लाते हैं।

क्रीम या मलाई:—दूध की चिकनाई को ही अंग्रेज़ी में क्रीम कहते हैं। मलाई से क्रीम के रूप में थोड़ा-सा ही अन्तर होता है, इसलिए क्रीम शब्द का भी व्यवहार किया जाता है।

मलाई गरम दूध पर सिमट आने वाली चिकनी पर्त है। विशेष अच्छी मलाई जमाने के लिए दूध को गरम करके उछाल दिया जाय तो उस पर बुदबुदे उठ आयेंगे, फिर आँच के मंद कर देने पर ज्यों ज्यों दूध ठंडा पड़ता जायगा, त्यों त्यों उस पर एक मोटी सी साढ़ीदार जाली पड़ जायगी।

क्रीम भी दूध की चिकनाई है, किन्तु इसमें मलाई की अपेक्षा दूध का अंश अधिक होता है, और यह ज़रा तरल किन्तु गाढ़ी होती है। क्रीम गरम किये हुए या कच्चे दोनों तरह के दूध से बनायी जाती है। इसे बनाने के लिए गरम या कच्चे दूध को छिछले बर्तनों में भरकर ठंडी और एकान्त जगह में रख देते हैं। कुछ घंटों के बाद इस स्थिर-दूध पर गाढ़ी तथा चिकनी क्रीम जम जाती है। कच्चे दूध की तुलना में गरम दूध से ही ज़्यादा क्रीम बनती है।

कच्चे दूध से शीघ्रतापूर्वक क्रीम को अलग कर लेने के लिये मशीन भी होती है। इसे 'सेपरेटर' कहते हैं। सेपरेटर-मशीन से क्रीम निकाला हुआ दूध महुवा दूध कहलाता है।

महुवा दूध—कच्चे दूध से मलाई के निकाल लेने पर दूध का बचा हुआ अंश तत्व-रहित किन्तु सरलता से पचने वाला हो जाता है। इसलिए इस दूध का उपयोग रोगियों के लिए किया जाता है। ख़ालिस दूध की अपेक्षा इस दूध में बहुत कम गुण रह जाते हैं, इस कारण यह सस्ता

पड़ता है। शुद्ध दूध के न मिलने पर महुवा दूध का सेवन करने से भी दूध के खनिज-लवण आदि तत्व तो पीनेवाले को मिल ही जाते हैं।

यद्यपि इस दूध से भी खोया, दही और छेना बनाया जाता है, तथापि ये कम अच्छे होते हैं। कुत्ते, बिल्ली आदि पालित पशुओं को यह दूध प्रायः पिलाया जाता है। ऐसे दूध का बनाया हुआ दही चक्का जमता है। विदेशों में क्रीम एवं मक्खन का बहुत व्यवहार होता है। अतएव वे लोग बचे हुए महुवा दूध के छेने या केसिन को अलग करके उससे भाँति-भाँति की दैनिक व्यवहार की--बटन, कंघा आदि--चीज़ें बनाते हैं।

स्टरलाइज़ेशन (पूर्ण निर्जीवी-करण)--बहुत समय तक टिकाऊ बनाने के लिए दूध को इस क्रिया से गरम करते हैं। किन्तु इस से दूध में स्थित विटामिन जल जाते हैं और दूध के शक्कर, कैलशियम तथा खनिज-लवण अनघुल हो जाते हैं। दूध का रंग कुछ बदल कर भूरा-सा हो जाता है। ताज़े दूध की अपेक्षा यह बहुत हीन होता है।

इस विधि से दूध को २१२ °F डिग्री से २८० °F डिग्री तक की भाप की गर्मी से गरम किया जाता है। दूध वाले बर्तन को वायु-रहित बनाकर एक निश्चित समय तक पानी की भाप की गरमी पहुँचायी जाती है। इससे दूध गरम होने लगता है और सारे कीटाणु नष्ट होने लगते हैं। इसके बाद दूध को मशीनों के भीतर ही ठंडा कर लिया जाता है। ठंडा किया हुआ यह दूध वायु-शून्य शीशियों में भर दिया जाता है। दूध के रखने का यह तरीक़ा अनुकरण करने के योग्य नहीं है, क्योंकि ऐसा दूध पीने पर ख़ून में अम्लता बढ़ती है और इसीलिए यह आलस्य पैदा करने वाला हो जाता है।

पास्ट्युराइज़ेशन (अपूर्ण निर्जीवी-करण)--फ़्रांस के वैज्ञानिक लुई-पास्ट्यूअर ने इस पद्धति का आविष्कार किया है। १५० °F डिग्री की गर्मी से १५ या २० मिनट तक दूध को गरम करके उसे तुरन्त ही ठंडा कर दिया जाता है। इससे दूध के प्रायः सभी कीटाणु मर जाते हैं। इस क्रिया से दूध के रूप और रंग में कोई ख़ास फ़रक़ नहीं पड़ता और स्वाद भी पहले-जैसा ही बना रहता है। दूध को उबालने, ठंडा करने और उसे भरने की मशीनें होती हैं। घर में भी दूध को गरम करने से उसकी यही स्थिति हो सकती है। इन मशीनों का व्यवहार केवल व्यापारिक दृष्टि से ही किया जाना उपयोगी है।

रिफ्रिजिरेशन (ठंडा करना)--दूध में रहने वाले कीटाणुओं को बढ़ने के लिए अनुकूल गर्मी की ज़रूरत पड़ती है, इसलिए ठंड में वे चेष्टारहित हो जाते हैं। ठंडा दूध पेट में पहुँचने पर शरीर की गर्मी को पाकर रोग पैदा करने वाला हो सकता है। शुद्ध दूध में ४ घंटे तक ऐसी शक्ति रहती है, जो हानिप्रद कीटाणुओं को बढ़ने नहीं देती। अतएव दूध को सुरक्षित रखने के लिए ऊपर लिखे तीनों तरीक़े स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी नहीं हैं। यह साधन तभी लाभदायक हो सकते हैं, जब कि दूध को सदैव दोष-रहित और साफ़ रक्खा जा सके। यदि थोड़ी सी भी असावधानी की जायगी, तो कीटाणुओं का दूध में सहज ही प्रवेश हो सकेगा और फिर वे विशेष रूप से जाग्रत होकर अनर्थ करनेवाले सिद्ध होंगे। ऐसा किन्हीं वैज्ञानिकों का मत है।

कंडेंस्ड दूध (गाढ़ा किया हुआ दूध)——दूध को विदेशों में भेजने के लिए यह विधि चलायी गयी है। ख़ालिस अथवा मक्खन निकाले हुए ताज़े दूध को गाढ़ा करके उसमें शक्कर मिलाकर डिब्बों में बन्द कर दिया जाता है। गरमी पहुँचा कर दूध के पनीले अंश का कुछ भाग उड़ा दिया जाता है। फिर जब दूध गाढ़ा होकर तिहाई या चौथाई बच रहता है, तब उसमें शक्कर मिलाकर और मशीनों से ठंडा करके वायुशून्य शीशियों में भर दिया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर इस दूध में पँचगुना पानी मिलाकर बरता जाता है। यह ताज़े दूध की तुलना में बहुत कम अच्छा है, अतः इसे ताज़े दूध के न मिलने पर ही बरतना चाहिए।

दूध-चूर्ण या बुकनी——दूध के समस्त पनीले अंश को सुखा कर उसे चूर्ण के रूप में बनाकर डिब्बों में बन्द करके बेचा जाता है। इसमें गुनगुना पानी मिलाने से पहले की तरह दूध तैयार हो जाता है। दूध के पानी को जलाते समय उसके सब पोषकतत्त्व——विटामिन और खनिज-लवण——नष्ट हो जाते है, अतः यह दूध गुणकारी नहीं है।

माल्टेड दूध——इस प्रकार के दूध में जौ या गेहूँ का सत मिला हुआ होता है। यह अन्न-मिला होने के कारण जल्दी ख़राब हो जाता है। अतएव यह दूध कम अच्छा और कुछ हानिकर भी होता है।

किसी भी वस्तु को अधिक साफ़ और टिकाऊ बनाने के निमित्त उसके प्राणपोषक तत्त्व निकाल दिये जाते हैं, किन्तु श्रेष्ठ भोजन वही है, जो अपने प्राकृतिक रूप में ही हो। शुद्ध भोजन ही जाग्रत रक्त को पैदा करता है और स्वास्थ्यवर्धक होता है।

पनीर (चीज़)——कच्चे दूध में कोई खटाई (Acid) नीबूका रस, या रेनेट (वनस्पति या बछड़े की आँत से बनाया हुआ चूर्ण) डालकर फाड़ लिया जाता है। इस तरह दूध का प्रोटीन अर्थात् केसिन (छेना) अलग हो जाता है। इस छेने को कपड़े में बाँधकर लटका देते हैं और फिर भारी वज़न से दबाकर उसका सारा पानी निकाल देते हैं। फिर इस सूखे पदार्थ को पकने के लिए रख दिया जाता है। इसमें एक प्रकार की खटास पैदा हो जाती है।

पनीर दूध के वे सूखे हुए प्रोटीन हैं, जिनका स्वाद और गन्ध बिल्कुल बदल जाता है। पनीर स्वास्थ्यरक्षक नहीं है, बल्कि मनुष्य के शरीर को हानि ही पहुँचाता है।

गो-उन्नति के चार साधन

१–प्रतिपालन-विज्ञान की जानकारी—

१—गो-जाति से सदैव सद्व्यवहार करना।
२—शाला को साफ़-सुथरी और हवादार बनाना।
३—नियमित समय पर दूध दुहना।
४—दूध के पोषण-तत्त्वों की परीक्षा करके उनमें कमी न होने देना।
५—गोबर की खाद विधिवत् तैयार करके खेतों को उपजाऊ बनाना।

२–पोषण-विज्ञान की जानकारी—

१—संख्या के हिसाब से पर्याप्त और हरी अच्छी दूब, लूसर्न्, आदि फ़सलों वाली गोचरभूमि का तैयार करना।
२—ऋतु के अनुसार यथेष्ट हरे-चारों को तैयार करके देते रहना।
३—सन्तुलित दाने और खनिज-लवणों का देना।
४—दाब-घास, या साइलेज को तैयार करके देना।

३–प्रजनन-विज्ञान की जानकारी—

१—उत्कृष्ट नस्ल को शुद्ध रखना और उसके गुणों को स्थायी बनाना।
२—नस्ल में विशेष गुणों को एकत्रित करना और बढ़ाना।
३—नस्ल का सुधार और हीन पशु की प्रजनन-शक्ति को नष्ट करना।
४—गो-जन्मपत्र में गाय-बैलों के वंश के पूरे इतिहास को लिखना।
५—गो-प्रसूति की जानकारी रखना।

४–चिकित्सा की जानकारी—

१—पशु को सुपोषित रखकर बीमार न होने देना।
२—रोगों का ठीक-निदान करके शीघ्र यथोचित उपचार करना।
३—रोगों के संक्रमण का बचाना।

पाँचवाँ अध्याय

गो-प्रतिपालन

देख-रेख—गोजाति में भाँति भाँति की नस्ल, शक्ति, लक्षण एवं गुण व अवगुण होते हैं। इनका साधारण ज्ञान पालक को अवश्य होना चाहिए। गो-पालन में स्वतः के देखरेख की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि गृहस्थी के अन्य विशेष कार्यों में। यदि विश्वसनीय तथा चतुर ग्वाले मिल जायँ, तो भी संचालक की दिलचस्पी और स्वतः की देखरेख पर गोशाला का भविष्य निर्भर रहता है। यदि पालक स्वतः गो-सेवा-प्रेमी होगा, तो अन्य सेवक भी सेवा करने में विशेष रुचि रक्खेंगे। अतः प्रत्येक पालक का कर्त्तव्य है कि वह अपनी गोशाला की व्यवस्था एवं दिनचर्या से भली-भाँति परिचित रहे और अपनी शाला के पशुओं को पहचाने। उनके चारे, दाने और पानी की निर्मलता एवं शाला की स्वच्छता पर ध्यान देता रहे। इससे सेवकों में सदा तत्परता बनी रहेगी और काम सुचारु रूप से चलेगा।

सेवकों पर गोशाला का पूरा भार डालकर स्वयं निश्चिन्त हो बैठ रहना ठीक नहीं है। ऐसा देखा गया है कि गो-सेवा से उदासीन होने से गो की नस्ल दिन पर दिन हीन होती जाती है और शनैः शनैः हर ब्याँत में दूध कम होता जाता है।

सुव्यवस्थित गो-शाला में चार वर्ष के भीतर ही काफ़ी उन्नति दिखायी देगी, क्योंकि तब तक गाय के बछड़े-बछिया पूरे गाय व बैल हो जायँगे। साँड़ का चुनाव सतर्कता से होना चाहिए, जिससे शाला की होनेवाली नस्ल सुधरती जाय। साँड़ का सुप्रबन्ध करने पर गो-वंश अवश्य तरक्क़ी करेगा।

गृहिणी अपने बच्चों तथा परिवार की जिस तत्परता से सेवा करती है, उसे उसी तत्परता से जीवन के मूल पोषक तत्त्वों को देनेवाली गो की सेवा करनी चाहिए। चाहे जितना भी श्रीसम्पन्न घर क्यों न हो दूध, दही, घी और मट्ठे के बिना वह अपूर्ण-सा ही रहेगा।

सेवा-पद्धति—गोशाला का प्रबन्ध भारतीय पद्धति से ही होना चाहिए। देशी दवाएँ सस्ती, सुलभ और फ़ायदेमन्द होती हैं। अंग्रेज़ी और रासायनिक दवा का प्रयोग करने के पहले उसका भली-भाँति पूरा ज्ञान होना चाहिए, अन्यथा ज़रा-सी भी कमी-बेशी से हानि होने की सम्भावना रहती है। बिना समझे विदेशी प्रणाली और साहित्य पर ही निर्भर रहकर शाला का प्रबन्ध नहीं करना चाहिए, किन्तु आधुनिक-विज्ञान से आवश्यक लाभ उठाना ही चाहिए।

"यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्" (चरक संहिता)

जो जीव जिस देश में पैदा होता है, उसी देश में पैदा हुई ओषधि उसका हित करती है।

जलवायु की विभिन्नता का प्रभाव गो पर पड़ता है, अतएव सुदूर प्रान्त की गाय को मँगाने

के पहले अपने देश की जलवायु और उपज का ख्याल कर लेना चाहिए। नस्ल-सुधारने के लिए यदि दूर-देशों की गायों को रखने का शौक़ हो, तो उनके लिए यथा-सम्भव वे ही चारे-दाने प्रस्तुत करने चाहिए, जिन पर वे वहाँ पाली गयी थीं। उसके बर्धाने के लिए उसी देश का उत्तम साँड़ भी होना चाहिए।

स्थान—स्थान और शाला के परिवर्तन से कुछ दिनों के लिए गाय बिदक जाती है और दूध भी कुछ कम हो जाता है। भलीभाँति परिचित न होने से वह मौक़ा पाकर अपनी पूर्व-परिचित शाला को भाग जाती है। अतएव जब नये स्थान पर गाय लायी जाय, तो उसे कम से कम ५ या ७ दिन तक बाँधकर ही रखना चाहिए और भलीभाँति खिला-पिलाकर प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिए, ताकि वह अपनी नयी शाला से भलीभाँति हिल-मिल जाय।

सेवक—गो-सेवा के लिए गो-प्रेमी मनुष्य रखना चाहिए। अधिकतर इस कला में गूजर और अहीर जाति के लोग चतुर होते हैं। इनके न मिलने पर अन्य जाति का ग्वाला रक्खे। ग्वाला शान्त-स्वभाव, स्वच्छ आदतों का, ईमानदार, परिश्रमी और अनुभवी होना चाहिए। नित्य नये सेवकों से गाय सुगमता पूर्वक दूध नहीं दुहाती और न पूरा दूध ही देती है। इसलिए सेवकों को बार-बार नहीं बदलना चाहिए। गायों से दुर्व्यवहार करनेवाले सेवक को रखना ठीक नहीं है।

प्रतिपालन-लाभ—नस्ल के सुधारने और बढ़ाने का काम चतुर गोपालक के मनोरञ्जन तथा लाभ का कारण है। इससे निम्नलिखित फ़ायदे होंगे :—

१—गोशाला में उत्पन्न बछड़े और बछिया आर्थिक लाभ के हेतु होंगे। उनके रखने और खिलाने-पिलाने के व्यय से वे दूने-मूल्य में बिक सकेंगे।

२—पशुओं की जाति, गुण-दोष एवं उनके वंश का पूरा परिचय पालकों को रहेगा।

३—वंश-परिचय होने से अवाञ्छनीय और हीन जाति के बच्चे आगे न उत्पन्न होने पायेंगे।

४—सर्वोत्तम गाय तथा साँड़ से उत्पन्न और शुभ लक्षणों से युक्त बछड़े को साँड़ बनाया जा सकेगा।

५—नयी गाय के खरीदने में जितना मूल्य लगेगा, उससे आधे ख़र्चे पर अपनी शाला की बछिया पलकर दुधारू गाय हो जायगी।

६—नयी-नयी जाति की नस्लें पैदा करने में सुविधा रहेगी।

७—शाला में उत्पन्न बछड़ों एवं बछियों से पालक के परिवार को विशेष ममता रहेगी।

प्रतिपालन विधि—भारत-भूमि उर्वरा है। इस कारण यहाँ चारे-दाने की कमी नहीं होनी चाहिए। खाद्य पदार्थों में दूध परमावश्यक है। खेती में बैल उपयोगी हैं। अतएव यहाँ गोपालन में सफलता अवश्य होगी। गो-पालन-विधि की सभी प्रधान बातों का साधारणतया वर्णन नीचे किया जाता है।

१—नये ख़ून का, आयुप्राप्त-साँड़, जो ३ वर्ष से ८ वर्ष तक का हो, शाला में अवश्य रखना चाहिए।

गोशाला में साँड़ के न होने से गाय का सोया[1] मारा जाता है। अतः इससे बड़ी हानि होती है।

२––बछिया अपने जनक (साँड़) के रूप, गुण एवं जाति के अनुरूप होती है। उपयुक्त साँड़ की उपस्थिति से शाला की होनेवाली नस्ल तरक़्क़ी करती जायगी।

३––साँड़ को सानी (चारा-दाना) से पूर्ण-सन्तुष्ट एवं नीरोग रखना चाहिए। उसको रोगी गाय के समागम से अवश्य बचाना चाहिए।

४––हीन, पंगु, अनिश्चितजातिवाले और रक्षकरहित साँड़ को गोशाला के आसपास नहीं आने देना चाहिए। ऐसे साँड़ का न होना ही अच्छा है। बेहतर तो यह है कि इन्हें बधिया करवा कर इनसे बैलों की तरह काम लिया जाय।

५––गाय अपनी तथा साँड़ की गुण-जाति एवं शक्ति के अनुसार बच्चा देती है। बच्चों पर गाय और साँड़ दोनों का ही असर पड़ता है। ज्ञातशक्ति-साँड़ और दुधारू गाय की बछिया दुधारू गाय बनेगी और उसका बछड़ा बलवान साँड़ बनेगा। (प्रजनन-विज्ञान देखिए)

६––स्थानीय गाय को सुधारने के लिए गाय की जाति से उन्नत जाति और गुणों वाला साँड़ मँगाये और गाभिन होने पर गाय को पुष्टिकारक सानी खिलाये। इस-भाँति उत्पन्न बछड़े-बछिया अपनी माता की जाति से अधिक उन्नत होंगे।

७––कभी-कभी साधारण गाय से उत्तम बच्चा और उत्तम गाय से साधारण बच्चे का होना भी सम्भव है। साँड़ और पोषण का सुप्रबन्ध या कुप्रबन्ध और वंश-परम्परा उपर्युक्त अपवाद के मुख्य कारण हैं। (प्रजनन-विज्ञान देखिए)

८––दाने-चारे को ऋतु पर खरीद करके सञ्चित कर रखना चाहिए। हरे-चारे के निरन्तर मिलते रहने के लिए ३ मास पहले से ही उसका प्रबन्ध करता रहे। गाय के चारे के लिए खेती करना फ़ायदेमन्द होगा, क्योंकि:––

(१) वर्ष भर निरन्तर हरा चारा मिलता रहेगा।
(२) खरीदे हुए चारे से यह सस्ता पड़ेगा।
(३) अपनी आवश्यकता के अनुसार गोपालक भाँति-भाँति के चारे उपजा सकेगा।
(४) गायों के गोबर की खाद से खेत ज़ोरदार बनाया जा सकेगा और ज़्यादा उपज होने के कारण फ़सल सस्ती पड़ेगी।

९––गाय के लिए भिन्न-भिन्न ऋतुओं के अनुकूल चारे-दाने का प्रबन्ध करना चाहिए। हमेशा एक-सा चारा-दाना खाने से वे ऊब जाती हैं।

१०––गाय के स्वभाव, जाति तथा दूध देने की शक्ति के हिसाब से उसके चारे-दाने की मात्रा नियत करनी चाहिए।

---

[1] गर्म होना, हरीहोना, उठना, आदि गाय के ऋतु में आने को सोया कहते हैं। ऐसे समय में ही पशु गर्भाधान के योग्य होता है, अन्यथा नहीं।

११--यदि स्थान और चारे-दाने की सुविधा हो तो बछड़े-बछियों को नहीं बेचना चाहिए। उन्हें भरपेट पौष्टिक चारा खिलाये। इन दो-ढाई वर्षों तक उनके पालन पर ख़रच करना सदैव फ़ायदेमन्द होगा, क्योंकि वे पोषण के व्यय से दूने मूल्य में बिक सकेंगे। इस समय खिलाने में कीगयी किफ़ायत से आगे चलकर बड़ी हानि होगी।

१२--दूध सूखने पर गाय को बेचना नहीं चाहिए। गाभिन गाय के लिए भली-भाँति चरने और कुछ सानी आदि के खाने का उचित प्रबन्ध करना चहिए। भूख से पीड़ित गाय कमज़ोर हो जायगी, जिससे उसका बच्चा भी कमज़ोर पैदा होगा। ऐसी गाय की दूध देने की शक्ति भी कम हो जायगी। गाय की इस समय की ख़ूराक का मूल्य दूध के रूप में आगे चलकर भरपूर मिलेगा। अतएव दूध सूख जाने पर भी गाभिन गाय को उचित रीति से खिलाना-पिलाना चाहिए। ठीक-ख़ूराक देने की पद्धति 'पोषण-विभाग' में साफ़ तौर पर लिखी है।

१३--गाय और ओसर-बछिया ठीक समय पर गाभिन हो, इसका ध्यान रखना चाहिए। दो या ढाई वर्ष की बछिया को, और ब्याने के २ से ४ महीने के बाद गाय को गाभिन हो जाना चाहिए। ब्याँत का ठीक तौर से नियन्त्रण होने पर गायें निरन्तर दूध देती रहेंगी। गोशाला में कभी बहुत-अधिक और कभी बिल्कुल-कम दूध नहीं होना चाहिए।

१४--ब्याने के समय गाय का विशेष ध्यान रखना चाहिए। ब्याने के १० दिन बाद तक भी गाय को विशेष सेवा की आवश्यकता होती है; यों तो वह २१ दिन तक प्रसूता ही रहती है।

१५--साल भर की आयु के होने पर सर्वोत्तम बछड़ा, साँड़ बनाने के लिए, छाँट लेना चाहिए। बाक़ी सब बछड़ों को जाड़े के मौसम में, एक से डेढ़वर्ष की उमर के भीतर ही बधिया करवा कर उन्हें अच्छे बैल बनाने का प्रबन्ध करे।

१६--गायों को सद्व्यवहार से सदा प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखना चाहिए। उन्हें किसी भाँति से चिढ़ाना और क्रोध करने का अवसर देना ठीक नहीं है। नम्र व्यवहार से गायें ममतामयी, स्नेहमयी, एवं शान्त रहती हैं। ऐसी अवस्था में वे सुगमता से और पूर्ण रूप से दूध दुहाती हैं।

१७--कभी-कभी गाय पर्याप्त चारा-दाना खाने पर भी दूध नहीं देती, इसके कारण को यत्न-पूर्वक ढूँढ़कर उसका विधिवत् उपचार करना चाहिए। यदि कोई लाभ होने की सम्भावना न हो, तो उसे शाला से अलग करके केवल चराई पर रहने वाले पिंजरापोल के पशुओं के साथ छोड़ दे। स्वभावत: बहुत कम दूध देने वाली गाय की नस्ल भी चलने नहीं देना चाहिए।

१८--रोगी पशु को शाला के अन्य पशुओं से बचाकर रखना चाहिए और उसको चारा-दाना भी अलग ही खिलाना चाहिए।

१९--बूढ़ी और दूध से सूखी हुई गाय को निकटवर्ती गोचर-भूमि वाले स्थानों में भेज देना चाहिए। ऐसे स्थानों पर गायों के चरने के लिए काफ़ी अच्छी व्यवस्था रखनी चाहिए।

गो-इतिहास--सुव्यवस्थित गोशाला में गाय और साँड़ का जन्मपत्र रखना ज़रूरी है। गाय की नस्ल वैज्ञानिक रीति से सुधारने और नयी नयी क़िस्में चलाने के लिए गाय का पूरा परिचय एवं

बछड़े-बछियों का पूरा ब्योरा एक पुस्तक में लिखा रहना चाहिए। यह पुस्तक "गो-जन्मपत्र" भी कही जा सकती है। इसमें गाय की जाति, मूल्य, खरीद की तारीख़, रूप-रंग तथा आयु और नम्बर लिखा होना चाहिए। इस परिचय के नीचे कोष्ठक बनाकर गो के ब्याँत की संख्या, गर्भाधान तिथि, साँड़परिचय, सन्तानपरिचय, जन्मतिथि, इस ब्याँत का त्रैमासिक एवं सम्पूर्ण दूध और रोग-व्याधि तथा उपचार आदि का विवरण क्रमशः अंकित होना चाहिए।

उदाहरणार्थ—यह लेखा यों बनाया जा सकता है :—

गाय नं० १, नाम—मीरा

जाति—हरियाना; रंग—सफ़ेद; आयु—३ वर्ष (१-१-४५)
मूल्य २५०) वज़न ९५, ऊँचाई ५१ इंच

ब्याँत	गर्भाधान तिथि	साँड़ परिचय	सन्तान परिचय	प्रसूति तिथि	ब्याँत दूध का ब्योरा	रोग तथा उपचार
१	१०-७-४४	सायवाल जाति, ३½ वर्ष नं० ३१	बछिया लाल रंग की	२१-४-४५	प्रथम तीन मास ५७ दूसरे तीन मास ५५ तीसरे तीन मास ५३	मटर के पौधे अधिक खा लेने से पेट में अफरा; घी, नमक, नौसादर से लाभ

गाय का वज़न जानने पर ही उसे संतुलित ख़ूराक दी जा सकेगी। इसकी विवेचना पोषण—विभाग तीन—में की गयी है।

उपर्युक्त जन्मपत्र से पालक को बड़ी सहायता मिलती है। हर बात को याददाश्त के ऊपर छोड़ना उचित नहीं है। प्रत्येक साँड़ का पूर्ण-परिचय ज्ञात होने से चुनाव में सुविधा रहेगी और कुछ वर्ष बाद यह लेखा गो का पूरा इतिहास बताने में सहायक रहेगा।

निश्चित रूप से यह ज्ञात हो सकेगा कि किस साँड़ से ब्यायी हुई गाय की दूध देने की शक्ति कैसी रही।

गाय को कब हरी होना चाहिए इसका नियन्त्रण सम्भव होगा तथा गाय को समय पर हरी कराने का ध्यान रहेगा।

गाय की गर्भाधान-तिथि ज्ञात होने से ब्याने के समय के आसपास उसकी भली-भाँति परिचर्या हो सकेगी।

बछड़े-बछियों के माता पिता की जाति, शक्ति और उमर का परिचय होने से उनके लालन-पालन पर यथोचित ध्यान दिया जा सकेगा।

इस जन्मपत्र के द्वारा सब गुणों से युक्त बछड़े को चुनकर, उत्तम साँड़ बना सकेंगे।

किस दवा ने, किस रोग पर, कितना लाभ किया, यह भी निश्चित रूप से विदित हो सकेगा।

साँड़ और गाय के गुण-दोष एवं उनसे उत्पन्न सन्तान का वंश-परिचय लिखा रहेगा। इस प्रकार का पीढ़ी दर पीढ़ी का इतिहास नस्ल सुधारने के लिए बहुत ज़रूरी है और यह सब लिखे-बिना अच्छी तरह नहीं हो सकता।

केवल वर्तमान काल में ही नहीं, बल्कि आगे चलकर तीन-चार वर्षों के बाद यह जन्मपत्र बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा और इस लेखे के द्वारा हमेशा सहायता मिलती रहेगी।

इससे गोशाला का पूरा इतिहास जाना जा सकेगा। इसलिए हर-एक गोशाला में उसके संरक्षक को गायों का जन्मपत्र बनाकर अवश्य रखना चाहिए। शालामें चाहे एक या दो गायें ही क्यों न हों, उनका एक पुस्तक में पूरा विवरण लिखा होना चाहिए।

इस प्रकार की पुस्तक अपनी अपनी इच्छा के अनुसार बनायी जा सकती है, जिससे शाला के पूरे इतिहास की जानकारी बनी रहे। हर शिक्षित घर की गो-शाला में इस प्रकार की किताब अवश्य होनी चाहिए।

दैनिक विवरण—व्यवस्थित शाला में एक दूसरी किताब में गाय के मासिक चारे-दाने, और दैनिक व मासिक दूध का लेखा लिखा रहना चाहिए। यह सदैव लाभदायी प्रतीत होगा, क्योंकि इससे मासिक आय-व्यय एवं चारे-दाने की क़िस्म व मात्रा की भिन्नता से दूध में होने वाली कमी-बेशी का ज्ञान होता रहेगा। एक बार आरम्भ कर देने पर इन पुस्तकों का रखना सरल और ज़रूरी मालूम पड़ने लगेगा।

आय-व्यय विवरण—बड़ी, अथवा व्यापार के लिए चलायी जानेवाली गोशाला में एक पुस्तक और भी होनी चाहिए, जिसमें गोशाला का मासिक तथा वार्षिक आय-व्यय लिखा जा सके; ताकि शाला की आर्थिक परिस्थितियों का पूरा-पूरा ज्ञान होता रहे।

दूध की मात्रा—गाय की दूध देने की शक्ति पर भिन्न-भिन्न ऋतुओं का प्रभाव पड़ता है। बहुत ज़्यादा गर्मी या बहुत ज़्यादा सर्दी में वे अपनी साधारण दूध देने की मात्रा से कम दूध देंगी।

भिन्न-भिन्न गायों की दूध देने की शक्ति भी भिन्न-भिन्न होती है। अच्छी नस्ल की गाय अधिक दूध देगी। ऐसी गाय के दूध में मक्खन की मात्रा भी विशेष होगी और वह अधिक गाढ़ा एवं विशेष स्वादिष्ठ होगा।

सानी (चारा, दाना और पानी का सम्मिश्रण) खाने वाली गाय, केवल चराई पर रक्खी जाने वाली गाय से, अधिक दूध देगी।

पहलोठा अर्थात् ओसर गायें अधिक दूध नहीं देती हैं। दुबारा ब्याने पर उनका दूध पूरा खुल जाता है। पाँचवें-छठे ब्याँत तक एक गाय अच्छी मात्रा में दूध देती है। इसके बाद उसके दूध की मात्रा कम होने लगती है, किन्तु मक्खन की मात्रा में थोड़ा-सा ही अन्तर पड़ता है। पहले-पहल के ब्याँत में दुग्धवाहिनी नाड़ियों में, नया काम होने के कारण, इतना संचालन नहीं हो पाता, किन्तु दुबारा ब्याने पर वे इस क्रिया की आदी हो जाती हैं। हीन-साँड़ से गाभिन होने पर, छै-सात बार ब्याने के बाद, अधिक उमर होने पर, या चारे दाने की कमी से गाय की दूध देने की शक्ति धीरे-धीरे कम हो जाती है।

विशेष ध्यान देने योग्य--ओसर गाय का दूध अधिक से अधिक दिनों तक दुहते रहने का प्रयत्न करे। उसे दुबारा जल्दी गाभिन नहीं होने देना चाहिए। ओसर गाय के दूध को बढ़ाने का विशेष प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसकी दुग्धवाहिनी नाड़ियों पर औषधियों के द्वारा उत्तेजक प्रभाव डालना भविष्य के लिए हानि-कारक होता है।

दूध का समय--गाय के ब्याने के २१ दिन बाद तक उसके दूध का सेवन नहीं करना चाहिए। ख़ासकर रोगियों को या बालकों को ऐसे दूध का सेवन करना हानिप्रद है। कम से कम १० दिन तक इस दूध के व्यवहार से अवश्य बचना चाहिए।

प्रसूति के १० दिन बाद तक जो तरल पदार्थ दूध के रूप में प्रवाहित होता है, उसे खीस या कोलोस्ट्रम (Colostrum) कहते हैं। यह बच्चे के लिए बड़ी आवश्यक चीज़ है। यदि ब्याने के बाद दुर्भाग्यवश गाय मर जाय तो दूसरी गाय का खीस नवजात बच्चे को ज़रूर पिलाना चाहिए, क्योंकि इसमें बच्चे को कीटाणुओं से बचने की शक्ति देने वाले, मुख्य पदार्थ होते हैं। खीस में प्रकृति ने कोलोस्ट्रम् का भाग बहुत अधिक रक्खा है, जिस से नवजात शिशु के पेट की सफ़ाई हो जाय। यह बच्चे के लिए एक प्राकृतिक जुलाब है, और तीन दिन तक के दूध में विशेष रूप से रहता है। यह औटाने से बैठ जाता है। इसमें कफ का गुण प्रधान होता है। यह मांस को बढ़ाने वाला और गरम है।

हाल की व्यायी हुई गाय के दूध में मक्खन की मात्रा बहुत कम होती है, किन्तु ज्यों ज्यों वह दिनारी होती जायगी, त्यों त्यों मक्खन का अंश अधिक होता जायगा; क्योंकि बच्चा बड़ा होने लगता है और उसमें दूध को पचाने की शक्ति बढ़ जाती है। कुछ महीने बाद बच्चे को गाय के दूध की इतनी अधिक मात्रा की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि तब तक वह हरी घास को खाना आरम्भ कर देता है; अतः गाय के दूध की मात्रा कम, किन्तु उसमें हड्डी आदि के पोषक द्रव्य और मक्खन की मात्रा अधिक हो जाती है।

व्याने के २१ दिन बाद से गाय अपनी शक्तिभर पूरा दूध देने लगती है। इन २१ दिनों के भीतर उसकी विशेष देख-रेख की ज़रूरत रहती है, क्योंकि अब तक वह ब्याने की थकान को दूर करके अपनी पूर्व शक्ति को सञ्चित नहीं कर पाती।

गाय के दूध देने की अवधि--ब्याने के बाद २१ दिन के भीतर गाय का दूध पूरा खुल जाता है। दूध की यह मात्रा, यदि ठीक से सानी दी जाय, तो प्रायः तीन या चार मास तक बराबर जारी रहेगी। कोई-कोई गाय ५ या ६ मास तक एक-सा दूध देती रहती है।

गाय को उसके दूध की तौल से आधे तौल का अच्छा पौष्टिक दाना और खली खिलानी चाहिए। सेरभर दूध देने वाली गाय को $\frac{1}{2}$ सेर दाना और खली मिलाकर दे। इसको साधारण नियम समझना चाहिए। वैज्ञानिक-रीति से चारे-दाने की संतुलित मात्रा का विवेचन "पोषण-विभाग" में किया गया है। यदि किसी कारण से गाय के दूध में कोई बाधा हो जाय, तो उसका उपचार करना चाहिए; परन्तु दूध बढ़ाने की बेजा-दवा देने से उसकी आँतें कमज़ोर हो जायँगी।

ब्याने के ३ या ४ मास के भीतर प्रायः गाय दुबारा गाभिन हो जाती है, किन्तु कुछ गायें ५ या

६ मास में हरी होती हैं। कुछ गायें कभी-कभी ८ या ९ मास बाद भी गाभिन होती हैं और दूध भी बराबर देती रहती हैं।

गाय हरी होने के तीन-चार दिन पहले और तीन-चार दिन बाद तक कम दूध देगी, क्योंकि उन दिनों में उसके शरीर में विशेष प्राकृतिक परिवर्तन होते हैं। इन दिनों का दूध भी अच्छा नहीं माना जाता। धीरे-धीरे दूध फिर से बढ़ जायगा, परन्तु वह पहले-जितना नहीं हो पायगा। गाभिन होने के बाद २ या ३ मास तक गाय की पहले की अपेक्षा दूध देने की शक्ति मध्यम रहेगी। गाय का दूधपीनेवाला बच्चा अब तक ६ या ७ मास का हो जायगा और दाना-चारा खाने के योग्य हो जाने के कारण माता के दूध पर ही अवलम्बित नहीं रह जायगा। इसके बाद के ३ महीनों में गाय और भी कम दूध देगी।

गाभिन होने के छै-सात महीने बाद गाय के दूध को धीरे-धीरे ज़रूर सुखा देना चाहिए। यकायक दूध दुहना बन्द न करे, बल्कि धीरे धीरे कम कर दे। ब्याने के निकट के दिनों का दूध लाभदायी नहीं होता है। कोई कोई गाय दुबारा ब्याने तक दूध देती रहती है, किन्तु उसके दूध को कम से कम दो महीने पहले अवश्य सुखा देना चाहिए। अधिक दिन तक दूध दुहने से गाय और उसका आगामी बच्चा दोनों कमज़ोर हो जायँगे, इसलिए गाय की दुग्ध-ग्रन्थियों को दो तीन मास अवश्य आराम देना चाहिए।

यदि कभी दुर्भाग्यवश गाय का बच्चा मर जाय, तो वह दूध देना बन्द कर देगी। परन्तु यदि दूसरा बच्चा उसके खुद के बच्चे के रूप, रंग और उमर के सदृश उसके सामने रक्खा जाय, तो कभी-कभी वह उसे पिलाने लग जाती है। इस बच्चे के शरीर पर इसी गाय के दूध को मल देना चाहिए, ताकि बच्चे को चाटने व सूँघने पर उसे अपनी ही गन्ध आये। इस प्रकार उस बच्चे से हिल जाने पर वह दूध देना बन्द नहीं करेगी।

मरे हुए बच्चे की खाल में भूसा भर कर भी गाय के सम्मुख रख देते हैं, ताकि उसे देख कर गाय दूध देती रहे; मगर यह रीति अच्छी नहीं है, क्योंकि खाल में हानिकर कीटाणु पैदा हो जाते हैं।

दूध-दुहना—आमतौर से गायों के थनों में १२ घंटों के बाद फिर से दूध भर आता है। कोई कोई अच्छी नस्ल की गायें दिन में ३ बार तक दुही जाती हैं।

विलायत में गायों के दुहने में अक्सर मशीनों को बरता जाता है। भारत में भी कुछ सम्पन्न गोशालावालों ने इसे मँगाया है। किन्तु जनसाधारण इसका व्यवहार नहीं कर सकते। यह मशीनें काफ़ी क़ीमती होती हैं। साधारण गायों को दुहने के लिए इनकी ज़रूरत भी नहीं पड़ती, क्योंकि उनका दूध इतना अधिक नहीं होता कि एक आदमी उन्हें दुहते-दुहते थक जाय। जानकारी रखने वालों को ही इस मशीन का संचालन करना चाहिए, क्योंकि कम या ज़्यादा दबाव पड़ने पर इस मशीन से दूध ठीक तौर से नहीं दुह पाता। इन मशीनों का उपयोग विशेष परिस्थिति में ही किया जा सकता है।

सुपालित गाय के ऐन में बच्चे को पेट-भर पिलाने के बाद भी पर्याप्त दूध बच रहता है, जो

न दुहे जाने पर, गाय के लिए कष्टकारक हो सकता है, अतः दूध दुहना निन्दनीय नहीं है। दूध-दुहते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिए:——

१——गाय से सदैव प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। दुलार से पाली गयी गाय शान्त प्रकृति की और क्रोध-रहित होगी। क्रोध में रहने से उसका दूध कम हो जायगा। साथ ही दूध में मक्खन की मात्रा भी कम हो जायगी। गाय स्वभाव से ही वात्सल्यमयी है, अतएव गाय से हर समय और ख़ास तौर पर दुहते समय अच्छा व्यवहार करना चाहिए।

२——दूध दुहने से पहले हाथों को ख़ूब साफ़ कर लेना चाहिए। यदि हाथों में किसी भी प्रकार की गन्ध लगी होगी, तो दूध पर उसका असर ज़रूर पड़ेगा। नाख़ून ज़रूर साफ़ होने चाहिए। पोटैशियम-परमैंगनेट को पानी में घोलकर या नीम के पत्ते उबाले हुए पानी से हाथ धो लेना चाहिए।

दूध-छानने का कपड़ा साफ़ और धुला हुआ होना चाहिए। बरतने से पहले दूध को ज़रूर छान लेना चाहिए।

३——आजकल दूध-दुहने के लिए एक ख़ास तरह की बाल्टी बनायी जाती है। इस बाल्टी पर एक तरफ़ से खुला हुआ तिरछा ढक्कन लगा होता है, जिस से धूल और गर्द का बचाव हो जाता है। खुले हुए भाग से दूध बाल्टी में जाता रहता है।
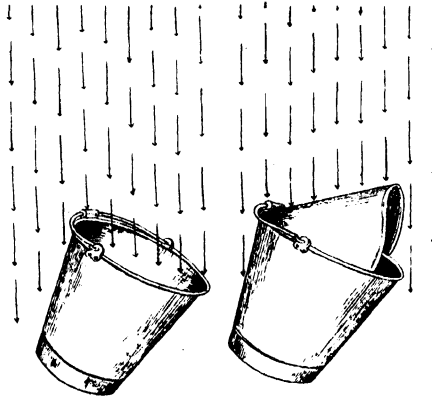
दुहने के खुले बर्तन में गर्द गिर रही है।　　दुहने के ढक्कन वाले बर्तन में गर्द नहीं गिर रही है

४——गाय के शरीर भर में ऐन और थन स्वभाव से ही कोमल स्थान हैं। इसलिए इन पर चोट नहीं पहुँचानी चाहिए। वह दूध दुहाना पसन्द करती है, क्योंकि उसका भरा हुआ हवाना या ऐन ख़ाली हो जाता है और उसे आराम मिलता है। शीघ्रता-पूर्वक, एक-सी गति से और वृथा कष्ट न पहुँचा कर दूध दुहना चाहिए। दुहते समय थनों पर आवश्यकता से अधिक दबाव नहीं डालना चाहिए।

५––गाय के बछड़े या बछिया को पहले दूध पीने के लिए छोड़ दे। असल में दूध तो बच्चे के पालन के लिए ही बनता है। बच्चे को देखकर ही गाय स्नेहवश दूध प्रवाहित करती है। ऐन में दूध के भर आने पर गाय प्रायः गोबर या मूत्र करती है। कुछ देर दूध पी लेने के बाद बच्चे को गाय के पास ही बाँध देना चाहिए, ताकि वह उसे चाटती और दुलार करती रहे। बच्चे को उसके पास से हटा देने पर वह दुखी हो जाती है। दूध दुह लेने पर बच्चे को फिर छोड़ दे, ताकि वह रहा-सहा दूध पी सके और कुछ देर अपनी माँ के साथ रहकर उसे आनन्द दे सके। यदि बच्चे को अधिक देर तक छोड़ दिया जायगा, तो थनों के कटने का अंदेशा रहेगा।

६––गाय व्यवस्थाप्रिय जीव है। वह पहचानी हुई जगह पर एक ही व्यक्ति से सुगमतापूर्वक दुही जायगी। नित्य नये ग्वालों के बदलने से गाय संकुचित हो जाती है और पूरा दूध नहीं देती।

७––प्रतिदिन एक नियमित समय पर, ठीक १२ घंटे के बाद, गाय दुही जानी चाहिए। ज़्यादातर लोग सूरज उगने के पहले और दिन छिपने के लगभग गाय को दुहते हैं। अपनी ज़रूरत देखकर गाय दुहने का समय बाँध लेना चाहिए। कभी जल्दी और कभी देर में न दुहे। सभी गायें एक दिन में दो बार, सुबह और शाम को, दुही जाती हैं। परन्तु कुछ गायें, जो बहुत अधिक दूध देती हैं, वे २४ घंटे के अन्दर ही तीन बार तक दुही जाती हैं।

गर्मियों में सूरज उगने के वक्त गाय को दुहना चाहिए, और शाम के समय सूर्यास्त से पहले ही दूध दुह ले। दुहने के समय में १२ घंटों का फ़रक़ होना चाहिए। दूध बेचने वाली गोशालाओं में ३ बजे तड़के और ३ बजे शाम को ही गाय को दुह लेते हैं, क्योंकि उन्हें ग्राहकों के यहाँ दूध समय पर पहुँचाना होता है।

८––दुहने के पूर्व थनों को ऋतु के अनुकूल ठंडे अथवा गरम पानी से ज़रूर धो लेना चाहिए। दुहने के बाद जाड़ों में कभी-कभी थनों पर घी और नमक तथा गर्मियों में मक्खन मल देना चाहिए। ख़ासकर ओसर गाय के थन बड़े नाज़ुक होते हैं, इसलिए इस प्रकार की गाय के थनों में दोनों वक्त मक्खन और नमक मिलाकर लगा दे। थनों में दूध का अंश बाक़ी नहीं रहने देना चाहिए, क्योंकि वहाँ एकत्रित होने पर वह जम जाता है और रोग को उत्पन्न करता है।

९––कम से कम एक मास तक बच्चे को भर-पेट दूध अवश्य पिलाना चाहिए, क्योंकि इससे पहले बच्चा घास वग़ैरह नहीं खा सकता। महीने भर बाद बच्चे के आगे हरी घास रखने लगे। इससे वह जल्दी घास खाना सीख जायगा।

१०––अच्छा दूध गाढ़ा होता है और दुहते समय उसकी धार सीधी, मोटी एवं बराबर बँधी रहती है। ख़ुराक का असर दूध के गुणों पर पड़ता है। हल्के दूध में नीली-सी झलक होती है। बढ़िया दूध में पीली झलक होगी। दुहते समय दूध की धार बर्तन से टकरा कर एक विशेष प्रकार की ध्वनि करती है। अच्छे दूध की ध्वनि गम्भीर और सुरीली होती है, किन्तु हल्के दूध की आवाज़ बहुत कम और धीमी होती है। यह फ़रक़ अनुभव करने पर ही जाना जा सकता है।

११—दूध दुहने के पहले गाय को सानी खिला देनी चाहिए और उसके लिए पानी पीने की भी सुविधा रखनी चाहिए। गायें काफ़ी पानी पीती हैं, अतः पानी का प्रबन्ध अच्छा होना ज़रूरी है।

१२—शान्त प्रकृति की उत्तम गाय को दौना (पिछले दोनों पैरों का बन्धन) लगाकर नहीं दुहना चाहिए। अच्छी जाति की गायें दुहने पर लात नहीं चलातीं, इसलिए दौना लगाने की कुटेव उन्हें न डाले, वरना वे लात चलाने लगेंगी। लात मारने वाली गाय को ही दौना लगाना चाहिए, प्रेमपूर्वक पाली गयी गाय के दौना लगाने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

१३—दूध को सीधे अँगूठे से दुहना चाहिए, ताकि गाय को कष्ट न हो। दूध दुहने के दो तरीक़े हैं।

क—थन को मुट्ठी में पकड़ कर और अँगूठे को ऊपर की ओर रखकर एक समान दबाव और गति से जल्दी जल्दी खींचे और छोड़े। किन्तु यदि ओसर गाय के थन छोटे हों, तो तर्जनी और मध्यमा इन दो अँगुलियों एवं अँगूठे की पहली पोर से उनको पकड़कर चूँची की पूरी लम्बाई तक खींचे। दुहने की यही विधि अच्छी है।

ख—गाय के थन को चार अँगुलियों से पकड़कर एवं अँगूठे को हथेली के भीतर मोड़कर थन को खींचते हुए दुहना। इस तरीक़े में यदि ज़रा-सी भी असावधानी होगी, तो थन पर दबाव नहीं पड़ेगा, बल्कि उसके ऊपरी हिस्से पर दबाव पड़ेगा। इससे थन के निकट वाली दूध की नसों में गाँठों के पड़ने का अंदेशा रहता है। यह तरीक़ा अधिक प्रचलित है, परन्तु अच्छा नहीं है।

१४—दूध दुहने के वक़्त, पहले हर एक थन की दो-चार बूँदें दुह कर ज़मीन पर गिरा दे। इससे चूँची के छिद्र में बैठे हुए कीटाणु निकल जायँगे।

थनों में दूध बाक़ी नहीं छोड़ना चाहिए, बल्कि आख़िरी बूँद तक उसे दुह लेना चाहिए; वरना थनों में दूध के बचे रह जाने से दूधकी नसों में गाँठें पड़ जायँगी और गाय बीमार हो जायगी।

दूध को बढ़ाने की रीति—उचित सेवा और व्यवहार पाकर गाय सदैव शक्ति भर दूध देगी। दूध बढ़ाने के कृत्रिम उपायों से गाय की पाचनक्रिया पर प्रभाव पड़ता है, जिससे शरीर के भीतरी अवयवों पर विशेष ज़ोर पड़ता है। उसकी प्रजनन-शक्ति भी क्षीण पड़ जाती है। गाय दूध देना कम कर दे, तो कारण की खोज करनी चाहिए। यदि कोई ख़राबी मिले, तो उसका उपचार, उचित औषधि के द्वारा, करना चाहिए। दवाओं के ज़रिये दूध को बढ़ाने की कोशिश करते रहने से गाय का स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है। एक बार दूध के बढ़ जाने पर भी, कमज़ोर पड़ जाने के कारण, भविष्य में गाय कम दूध देगी।

गायों की ख़ुराक का वैज्ञानिक विश्लेषण करके उसमें आवश्यक परिवर्तन करने से दूध की मात्रा अच्छी तरह बढ़ायी जा सकती है। संतुलित चारे-दाने से यथेष्ट दूध बढ़ने के साथ ही साथ गाय की शारीरिक शक्ति भी खुलेगी।

दुहने का सही तरीक़ा
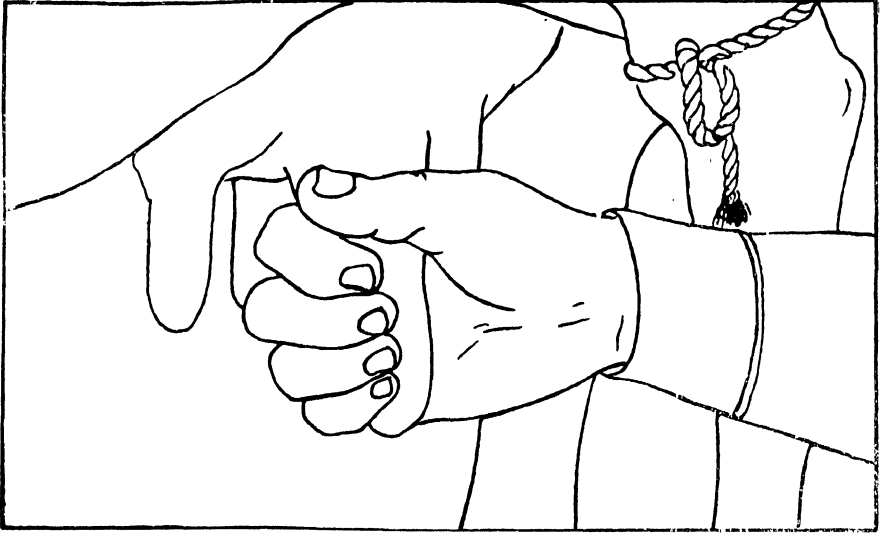
दुहने का गलत तरीक़ा
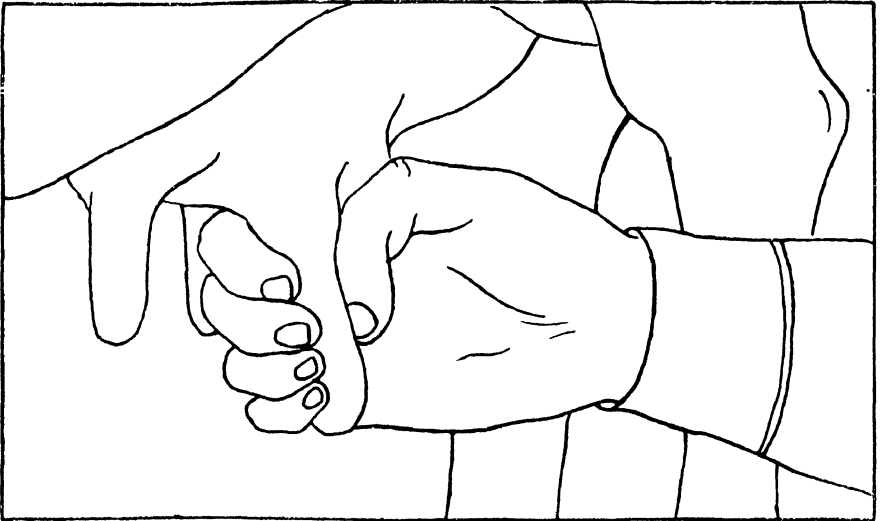
नीचे लिखी बातों का ख्याल रखना चाहिए——

१——सबसे बढ़िया तो यह है कि गाय उस साँड़ से बर्धायी[1] जाय, जिसकी माँ बहुत दूध देने वाली हो, एवं जिसकी कुल-परम्परा (Pedegree) ज्ञात हो। इसका स्पष्ट वर्णन प्रजनन-विज्ञान में किया गया है।

२——यदि गाय ने चौंकने, घबराने, या स्थान-परिवर्तन के कारण दूध देना कम कर दिया हो, तो उसे पुचकार कर व रुचिकर सानी खिलाकर, शारीरिक एवं मानसिक शान्ति देनी चाहिए। इस तरह से वह फिर पहले जैसा दूध देने लगेगी।

३——गाय को दुहते समय संगीत या मधुर वचन सुनाने से वह प्रसन्न होकर अपनी शक्ति-भर पूरा दूध देती है। यह प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों ही समय के विद्वानों ने माना है। भगवान् कृष्ण की मोहनी मुरली में गायों के लिए कितना आकर्षण भरा रहता था, यह सभी जानते हैं। अमेरिका आदि देशों की वैभवशाली गोशालाओं में तो रेडियो तक का प्रबन्ध रहता है।

४——गेहूँ या जौ का पतला दलिया राँधकर और उसमें गुड़ मिलाकर मौसम के माफ़िक़ गुन-गुना या ठंडा खिलाने से दूध बढ़ जाता है, क्योंकि इससे गाय की ताक़त बढ़ती है।

५——दूब, सेऊँ, ग्वार, सरसों, मटर और शलजम आदि का हरा चारा समयानुसार गायों को देना चाहिए। नेपियर और हलीम घास भी बढ़िया नीरन[2] हैं। जाड़ों में लूसर्न घास गरम तासीर के कारण लाभदायी होती है। बरसीम घास आश्विन से चैत्र तक खिलानी चाहिए।

६——गाजर को उबाल और उसमें गुड़ मिलाकर के खिलाने से गायों का दूध खूब बढ़ जाता है।

७——ज्वार की हरी चरी यदि पूरी तादाद में दी जाय तो अन्य चारे-दाने की आवश्यकता नहीं रहती।

८——मसूर या अरहर की दाल को उबालकर उसमें शीरा या गुड़ मिलाकर १० या १५ दिन तक खिलाये, तो गाय को पर्याप्त प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट मिलेंगे और दूध बढ़ जायगा।

९——गर्मियों में दूध दुहने के पहले गाय को ठंडे पानी से नहला दे। इससे गाय प्रसन्न हो जाती है, और शीतलता पाकर पूरा दूध देती है।

१०——यदि अजीर्ण से दूध कम हो गया हो, तो पपीते के एक कच्चे फल तथा २ पत्तों की चटनी पीसकर उसमें थोड़ा सा गुड़ या शीरा और गेहूँ का आटा मिलाकर लुगदी के रूप में प्रति-दिन एकबार, छै या सात दिन तक लगातार खिलाये।

दूध बढ़ाने के मध्यम उपाय

इन्हें ख़ास ज़रूरत पड़ने पर ही काम में लाये। इनसे हानि नहीं होगी।

१——एक सेर आटा घोलकर उसमें एक छटाँक नमक और आधा सेर गुड़ मिलाकर बहुत पतला करके दस या पन्द्रह दिन तक बराबर पिलाने से कुछ समय के लिए दूध बढ़ जाता है।

---

[1] गाभिन कराना। [2] चारा या कुट्टी।

२—एक सेर चावल और आध सेर गुड़ को पानी में उबालकर एक सप्ताह तक दे।

३—सन के बीजों का आटा ऽ१ और शीरा ऽ॥ इन दोनों को पानी में औटाकर एक सप्ताह तक खिलाये।

४—अलसी या तिल्ली की ऽ॥ खली पानी में घोलकर पिलाये।

५—ब्याने के १० या १५ दिन बाद पतले गन्ने की बारीक कुट्टी करके कुछ दिन तक खिलाने से भी दूध बढ़ता है। यह शक्ति को भी बढ़ाता है।

६—मोटा चावल ऽ१, उर्द की दाल ऽ॥, गुड़ ऽ॥, हल्दी ऽ=, बेलगिरी ऽ= और नमक ऽ– ले। चावल और दाल को ऽ६ पानी में उबालकर बाक़ी सब चीज़ें भी इसी में मिला दे। इस तरह की खिचड़ी एक सप्ताह तक गाय को खिलाये।

७—गुड़ और काँजी मिलाकर दे।

८—पिसे हुए उर्दों की रोटी बनाकर या उन्हें उबालकर या कच्चा ही भिगोकर काफ़ी मात्रा में देने से कुछ दिनों के लिए दूध बहुत अधिक बढ़ जाता है। किन्तु यह आगे चलकर गाय की शक्ति को क्षीण कर देता है, इसलिए इस उपाय को नहीं बरतना चाहिए।

९—ऽ॥ ग्वार को उबाल और गुड़ मिलाकर दिया जा सकता है।

१०—पक्के या कच्चे बेल को उबाल और गुड़ मिलाकर भी दिया जा सकता है।

११—आधी छटाँक बाँस की पत्तियों को उबालकर १ छटाँक अजवाइन और ६ छटाँक गुड़ मिलाकर पांच सात दिन तक दे।

१२—सन के फूल, महुवा के फूल, हरी दूब और गुड़ को जल में उबालकर दे।

औषधि द्वारा पौष्टिक दूध—स्वस्थ गाय का दूध पीना स्वास्थ्यकारी है। गाय को वैद्य लोग तरह-तरह की लाभप्रद औषधियाँ खिलाकर उसका विशेष प्रकार का उत्तम दूध कमज़ोर मनुष्यों के लिए सेवन करना अच्छा बताते हैं। ऐसा दूध बहुत पौष्टिक होता है। नीचे लिखा हुआ नुसख़ा आयुर्वेद-विशारदों के मतानुसार है।

यह दवा कम से कम चालीस दिन तक गाय को देनी चाहिए। साथ ही गाय को भरपेट हरी नीरन, दाना, खली व नमक मिलाकर नित्य के अनुसार सानी खिलाते रहना चाहिए। गाय एक या दो महीने की ब्यायी हुई हो और दुबारा गाभिन न हुई हो।

दवा खिलाना शुरू करने के १० दिन बाद से इस गाय का दूध सेवन करने से शरीर में नये ख़ून का सञ्चार होता है और कमज़ोरी दूर होती है। कम से कम दो महीने तक तो उपचार के लिए इस गाय का दूध पीना ही चाहिए। इसके धारोष्ण दूध में शहद या मिश्री मिलाकर पीना विशेष लाभदायी है, किन्तु गरम करके भी इसे पिया जा सकता है।

सेमल का मुसला	ऽ१॥
तालमखाना	ऽ१
मखाना	ऽ१।
सतावर	ऽ॥

सफ़ेद मुसली	ऽ।।।
असगन्ध	ऽ।
कौंच के बीज	ऽ१
कंघी की पत्तियाँ	ऽ२
चीनी	ऽ२

इन सब को कूट पीसकर एक में मिलाकर रख ले।

पाव भर गेहूँ और पाव भर उर्द के आटे की रोटी बनाकर उसका चूरा कर ले। इस चूरे में चार तोला तैयार किया हुआ मसाला और पाव भर चीनी मिला ले। फिर इन सब चीज़ों को ऽ।। जौ की राँधी हुई दलिया या ऽ।। अलसी की खली में मिलाकर हर रोज़ गाय को खिलाये।

आयुर्वेद के मत के अनुसार पौष्टिक दूध लेने के और भी कई तरीक़े हैं।

१—किसी तन्दुरुस्त और सफ़ेद रंग की गाय को नीचे लिखी दवा खिलाने के ५ दिन बाद से उसका दूध सेवन करे। यह दूध ख़ासकर सूखा रोग को दूर करता है।

ऽ२ सतावर, ऽ२ असगन्ध, ऽ४ शक्कर या ऽ२ गुड़ इन सबको कूट पीसकर रख ले। यह १½ छटाँक बुकनी जौ या गेहूँ के ऽ१ दलिये में मिलाकर खिलाये।

२—ऽ। सतावर का चूर्ण ऽ१ दूध में पकाकर ऽ। खली या दलिया के साथ दे।

३—ऽ- असगन्ध का चूर्ण ऽ१ दूध में पकाकर ऽ। खली या दलिया के साथ मिला कर गाय को खिलाये।

ऊपर लिखे नुसख़ों के खिलाने से गाय और उसका दूध पीने वाले दोनों ही पुष्ट बनते हैं।

अच्छी तरह पालने से गाय सदैव दुधारू बनी रहेगी और नस्ल दिन पर दिन तरक़्क़ी करती जायगी। सुचारु सेवा पाकर वर्तमान भारत की दीन-हीन गायें भी **कामधेनु गो** के समान बनायी जा सकती हैं।

छठा अध्याय

गो-चारण

व्यायाम--हर एक प्राणी की तरह गाय को भी कुछ शारीरिक परिश्रम अवश्य ही करने देना चाहिए। शरीर के संचालन से उसके प्रत्येक अवयव भली-भाँति काम करते रहेंगे। गाय स्वस्थ रहेगी, तो उसका दूध और बच्चे भी अच्छे होंगे।

बन्द शाला में निरन्तर बँधी रहने से गाय की पाचनशक्ति क्षीण हो जाती है, इस कारण वह दूध कम देने लगती है। पाचन-शक्ति के ठीक न होने से कई तरह के रोगों के होने की भी संभावना हो जाती है। बँधी हुई गाय प्रसन्न नहीं रहती।

स्वतंत्रतापूर्वक धीमी-धीमी गति से अपनी रुचि के अनुसार घूम-घूमकर चरने से गाय प्रसन्न रहती है। हमेशा बँधी रहने पर वह संकुचित हो जाती है।

शाला के बाहर घूमने से गाय को खुली और साफ़ हवा मिलती है। यदि गोचर-भूमि नदी के किनारे हो, तो बहुत अच्छा है, क्योंकि वह प्यास लगने पर बहता हुआ साफ़ पानी भर-पेट पी सकेगी। बहते हुए निर्मल-जल में खनिज-लवण काफ़ी होते हैं।

सूर्य की किरणें गाय को स्वस्थ रखने और उसकी दूध देने की शक्ति को विकसित करने के लिए बहुत ज़रूरी हैं। इन से विटामिन "डी" का संचार होता है।

गाय धीमी-धीमी गति से चलने वाली एक शान्तिप्रिय जीव है, अतएव उसे भगाना और मोटर गाड़ियों से चौंकने देना ठीक नहीं है।

एक बार नियमित रूप से समय और स्थान की आदत के पड़ जाने पर वह शाला से निकल कर स्वतः ही वहाँ से चली जायगी और शाम को उसी तरह लौट भी आयेगी। किन्तु गायों के साथ एक चरवाहा ज़रूर रहना चाहिए, ताकि वे इधर-उधर भटक न जायें।

गायों को सामूहिक चेतना बहुत होती है, जिस तरफ़ एक गाय जाने लगेगी बाक़ी सब गायें भी उधर ही को चल देंगी।

एक गाय को ४-५ मील प्रतिदिन घूम फिर लेना चाहिए। साँड़ तथा बछड़े-बछियों को भी घूमना फिरना इतना ही आवश्यक है। घूमने से वे पुष्ट एवं स्वस्थ बने रहते हैं।

बैल को खेती या गाड़ी का काम करने में ही काफ़ी परिश्रम पड़ जाता है। इसलिए उसे शाला में बैठकर आराम करने देना चाहिए। जिन दिनों उससे काम न लिया जाय, उन दिनों उसे भी फिरा लेना चाहिए।

सारांश यह है कि शाला के सभी पशुओं को नित्य ही टहलाना चाहिए। प्रचण्ड गर्मी, ज़ोरदार बरसात और कड़ाके के जाड़ों से पशुओं को बचाना बहुत ज़रूरी है। परन्तु साधारणतया सभी मौसमों में सुबह से शाम तक उन्हें शाला से बाहर खूब घूमने दें।

स्नान--गाय, बैल व साँड़ को बहती हुई नदी के पानी में नहलाना बहुत अच्छा है। गर्मी के दिनों में उन्हें रोज़ नहलाना चाहिए।

उनके शरीर को साफ़ रखने से वे प्रसन्न रहते हैं। कभी कभी उन पर नारियल की सींकों के बने हुए ब्रुश को फेर देने से उनका चमड़ा साफ़ रहता है तथा रक्त-संचालन भी अच्छी तरह हो जाता है।

रीठों को उबालकर उनके झाग को मलने से गाय का सारा शरीर खूब साफ़ हो जाता है। नीम या भट्ट के पत्ते डालकर उबाले हुए पानी से नहलाने से गाय के शरीर पर लगे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। यदि रीठों या नीम आदि के पानी से गाय को १०-१५ दिन बाद नहला दिया जाय, तो किलनी आदि कीटाणु नहीं हो पायेंगे।

जाड़ों में भी गाय को धूप में खड़ा करके ताज़े या गुनगुने पानी से नहलाना चाहिए।

सातवाँ अध्याय

गोबर

एकता एक विश्वव्यापी नियम है। पशु, पौधा, मनुष्य व पृथ्वी सब की गति एक-सी ही है। ये सभी एक घूमते हुए चक्र के अनुसार हैं। पृथ्वी से पौधा पैदा होता है, पौधे से पशु को पोषण मिलता है, पशु से मनुष्य लाभ उठाता है, फिर उसे सब पदार्थ पृथ्वी को ही वापस दे देने होते हैं।

कोई भी वस्तु नाशवान नहीं है। वह केवल दूसरा रूप बदल लेती है। फिर भी जिस ज़मीन के टुकड़े से मनुष्य बराबर एक ही से तत्त्वों को खींचता रहता है, उन तत्त्वों को खाद के रूप में वापस न पाने पर वह स्थान उन तत्त्वों में कमज़ोर हो जाता है, अतएव खेत में उपयुक्त खाद देना ही चाहिए। खाद पाकर खेत ज़ोरदार बना रहता है।

पत्ते, पौधे और पेड़ पृथ्वी से पैदा होकर अपना अपना कार्य पूरा करके सड़ गल या जलकर उसी में वापस जा मिलते हैं और इस प्रकार पृथ्वी को खाद बराबर मिलता रहता है।

पशु एवं मनुष्य अर्थात् प्राणिमात्र का विसर्जन और शरीर आख़िर में पृथ्वी में ही मिल जाता है। कहा भी है:—

माटी कहै कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोहिं।
एक दिन ऐसा आयगा, मैं रौंदोंगी तोहिं।।

इसी प्रकार यह अनादि काल से चलता आ रहा है और चलता रहेगा। सच है इस हाथ ले और उस हाथ दे। बिना दिये, लेना असम्भव है।

कृषि की उन्नति—कृषि से उत्पन्न अन्न और गोरस से मनुष्य पोषण प्राप्त करता हुआ जीवित रहता है। कृषि गाय के गोबर की खाद से उपजाऊ बनती है और बैलों से जोती जाती है। अतः **गो-जाति राष्ट्र का प्राण है क्योंकि मनुष्य एवं कृषि दोनों ही गोबर पर अवलम्बित हैं।** गो की उन्नति से राष्ट्र समृद्धिशाली बनता है। सुपोषित शरीर में ही पुष्ट-बुद्धि निवास करती है।

सजीव खाद—प्राकृतिक खाद कृत्रिम खादों से सदैव उत्तम रहेगी, यह वैज्ञानिकों ने खोज करके सिद्ध कर दिया है। गोबर की खाद हर फसल के लिए फायदा पहुँचाती है।

डाक्टर वोल्कर (Dr. Volecher) ने अनुभवों द्वारा सिद्ध किया है कि एक टन (२७¼ मन) सूखा गोबर उतनी ही शक्ति देता है, जितनी कि १५५ पौंड (१।।।ऽ७।।) सलफेट-अमोनिया देती है।

सर अलबर्ट हाउवर्ड (Sir Albert Howard) ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि कृत्रिम खाद से आगे जाकर खेती और फ़सल दोनों ही रोगग्रस्त हो जाते हैं। कृत्रिम खाद वाली ज़मीन से पैदा हुई फ़सल को खाने वाले पशु भी कमज़ोर हो जाते हैं, क्योंकि उनमें शरीररक्षक एवं रोगनिवारक शक्ति कम हो जाती है।

बंजर ज़मीन उपजाऊ बनायी गयी—"मेरियन हो" नाम की एक बंजर ज़मीन थी। बहुत से लोगों ने उपजाऊ न होने के कारण उसे ले लेकर फिर बेंच दिया। किन्तु डाक्टर वार्श (Dr. Varsh) ने इसी ज़मीन को बायोडायनैमिक (Biodinamic) रीति—जीव मात्र में स्थित शक्ति के प्रयोग—के द्वारा खाद देकर उपजाऊ बना लिया।

उन्होंने साधारण नस्ल के गाय बैलों को, उस ज़मीन पर उगी हुई घास चराकर पालना शुरू किया तथा प्रकृति की एकता और जीवमात्र में स्थित शक्ति का उपयोग किया। किसी भी चीज़ को बेकार न फेंककर उन्होंने गोबर, गोमूत्र और कूड़े-करकट को मिलाकर कम्पोस्ट तरीक़े से खाद तैयार की। उस ज़मीन को जोत कर खाद देने के बाद उन्होंने जानवरों के चरने योग्य, सरलता से पैदा होने वाली फ़स्लें जैसे—सोयाबीन, संजनी, लूसर्न आदि पहले बोयीं। इन फ़सलों के द्वारा बैक्टीरिया के कीटाणु ज़मीन में सहज ही फैल गये, जिससे खेत में नाइट्रोजन का संचार हुआ और वह खेत उपजाऊ बन गया। जैसे-जैसे ज़मीन अधिक उपजाऊ होती गई, वैसे-वैसे उन्होंने चारे के योग्य ज्वार आदि की बड़ी फ़सलें बोना शुरू किया।

इस प्रकार अच्छा पोषण पाकर उनके पशु भी पुष्ट हो गये और ज़मीन तो इतनी अच्छी हो गयी कि उसमें हर तरह की फ़स्लें उपजायी जाने लगीं।

विभिन्न खाद—प्राकृतिक खाद दी हुई फ़सल को खाने से प्राणी नीरोग, स्वस्थ एवं बलिष्ठ रहते हैं। प्राकृतिक खाद से फ़सल ज्यादा तादाद में उपजती है और गुणकारी भी होती है। क्योंकि उसमें जीव-वस्तु (Organic-Matter) खूब रहता है।

पौधे में प्रोटीन और खनिज-लवण का पृथ्वी से, और कार्बोहाइड्रेट का संचार हवा तथा पानी से होता है। पौधे, जीव-वस्तु में स्थित ऑक्ज़ीमोन्स (Auximones) की शक्ति पाकर बढ़ते हैं। पौधे कई प्रकार के तत्त्वों के मेल से बनते हैं, इनमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फासफोरस, पोटाश, चूना, मैग्नेशियम, लोहा और गंधक प्रधान हैं।

उत्तम प्राकृतिक एवं सजीव खाद भाँति-भाँति से बनती है :—

१—पशु के गोबर व मूत्र से बनायी गयी खाद नाइट्रोजन व ह्यूमस (Nitrogen and humus) प्रधान होती है। इसमें सजीव-शक्ति (Auximones) बहुत होते हैं।

२—पशु की हड्डी से बनायी गयी खाद फासफोरस प्रधान होती है।

३—सड़े गले पत्तों एवं पौधों की खाद नाइट्रोजन, आक्ज़ीमोन्स और हारमोन्स (Nitrogen, Auximones and Harmones) प्रधान होती है।

४—मनुष्यों के विसर्जन की खाद नाइट्रोजन, ऑक्ज़ीमोन्स और हारमोन्स प्रधान होती है।

५—पक्षियों के बीट की खाद फासफोरस (Phosphorous) प्रधान होती है।

६—जली हुई लकड़ी व गोबर आदि चीज़ों की राख 'पोटाश' (Potash) प्रधान है। यह खाद बीजपोषक एवं शक्तिवर्धक होती है। सेवार घास में भी पोटाश बहुत होता है।

७—खली की खाद प्रोटीन-प्रधान होती है। यह बहुत जल्द लाभ पहुँचाती है।

८—पौधों (दाल के पौधे, सरसों, सोयाबीन या सन) को बोकर फिर उन्हीं को ज़मीन में जोतकर दबा दी गयी हरी खाद नाइट्रोजन प्रधान होती है।

९—फ़सल की हेर-फेर करने से भी खेत अधिक उपजाऊ बनाया जा सकता है; जैसे कि धान को काट लेने पर उसी खेत में चने की फ़सल का बोना। इस से उस खेत में बैक्टीरिया के कीटाणुओं का सहज संचार हो जाता है।

विचारपूर्वक और विधिवत् बनायी गयी खाद साधारण तरह से बनायी गयी खाद से कहीं ज़्यादा उपजाऊ होगी; क्योंकि उसमें के सब तत्त्व उसी में रहेंगे और नष्ट न होने पायेंगे। **ठीक तौर पर खाद न बनाने से उसकी बहुत सी ताक़त हवा पानी में मिलकर बेकार हो जाती है।** अच्छे तरीक़े से बनायी गयी खाद जल्दी बनेगी और अधिक उपजाऊ होगी। इस कारण उस पर ख़र्च का औसत कम पड़ेगा तथा सभी बेकार चीज़ें खाद बनाने के काम में आ जाने के कारण उपयोगी सिद्ध होंगी। गन्दगी फैलाने वाले कूड़े करकट की खाद बनाने से सफ़ाई और धनलाभ दोनों होंगे।

गोबर में मेन्थल, नौसादर, फीनैल, इंडोल और फार्मेलीन आदि अनेक तत्त्व होते हैं। गोबर की गन्ध यक्ष्मा के रोगी के लिए फ़ायदेमन्द मानी जाती है।

गोबर के उपले बनाकर ईंधन जलाने से किसान को रुपये डेढ़ रुपये रोज़ का नुक़सान होता है; क्योंकि यदि इसी गोबर की विधिवत् खाद बना ली जाय, तो खेत में ४००) या ५००) के करीब का अन्न अधिक उपजेगा और यों उसे विशेष लाभ होगा।

कम्पोस्ट खाद बनाने की विधि—यह खाद गोबर, पत्तों और सब तरह के कूड़े-कचरे को मिलाकर बनायी जाती है। कम्पोस्ट खाद में आक्ज़ीमोन्स सहज ही में विकसित हो जाते हैं। यही आक्ज़ीमोन्स पौधों में प्राण का संचार करते हैं। इन तत्त्वों से पौधे उसी भाँति पोषित होते हैं जैसे विटामिनों से मनुष्य। सजीव खाद खेत के लिये परम आवश्यक है।

पशु के पेट में ख़ुराक के पचने के बाद कुछ जीवित और कुछ मृत होकर बैक्टीरिया के कीटाणु गोबर और गोमूत्र के साथ ही बाहर निकल आते हैं। ये जीवाणु आर्गेनिक-मैटर कहलाते हैं। इन बैक्टीरिया के जीवाणुओं के प्रभाव से उत्पन्न गर्मी द्वारा गोबर, मल, कूड़ा-करकट, पत्ते और टंहनियाँ आदि सभी चीज़ें सड़-गलकर खाद बन जाती हैं। गो-मूत्र खाद को सड़ने में सहायता पहुंचाता है।

स्थान—खाद बनाने के लिए गोशाला के पास ही यदि जगह हो, तो गोबर आदि के ढोने में ख़र्च और मेहनत कम पड़ेगी। खाद की ढेरी तभी लगानी चाहिए, जब पानी की सतह धरातल से अधिक समीप हो; अन्यथा गड्ढा खोदकर ही खाद बनाना ज़्यादा अच्छा है। खाद तैयार करने

की ज़मीन ऐसी नीची न हो, जिसमें आसपास का सारा पानी इकट्ठा हो जाता हो; साथ ही वह ज़्यादा ऊँची भी न हो, वरना वहाँ से सारा पानी ढल जायगा और इस तरह खाद ज़्यादा ज़ोरदार न होकर कमज़ोर पड़ जायगी। ठीक ज़मीन वह है जो आसपास से ज़रा ऊँची और खुले हुए स्थान में हो, और जहां पानी लाने की भी सुविधा हो।

तरीक़ा—कम्पोस्ट खाद दो तरह से बनायी जाती है।

(१) ढेरी लगाना—(क) यदि ढलवाँ ज़मीन हो तो ज़मीन पर एक फ़ुट ऊँची तह तक नरम व गीले पत्ते, टहनियाँ तथा कूड़ा मिला कर बिछा दे। इसके ऊपर ३-४ इञ्च मोटी गोबर की तह फैला दे। इस गोबर को गोमूत्र और पानी से गीला कर लेना चाहिए; क्योंकि इस प्रकार नीचे की टहनियों में गोबर का गीला अंश सहज ही में प्रवेश कर सकेगा।

इस प्रकार एक एक फ़ुट की तह दी हुई ढेरी ४ या ५ फीट से अधिक ऊँची नहीं होनी चाहिए। फिर इस ढेरी के ऊपर गोशाला की नाली के कीचड़ की गीली मिट्टी को चारों तरफ़ से लेस दे, ताकि खाद की हवा उड़ने न पाये।

इस ढेरी पर फूस का छप्पर छा देना चाहिए, क्योंकि बहुत ज़्यादा धूप लगने से ढेरी बहुत जल्द सूख जायगी और उसके भीतर के नाइट्रोजन आदि तत्त्व हवा में उड़ जायँगे। विशेष वर्षा के दिनों में छप्पर अच्छा होना चाहिए, ताकि बहुत ज़्यादा पानी पड़ने पर भी ढेरी तितर-बितर न हो सके।

(ख) बेहतर तो यह है कि बेकार पत्तों और गोबर को बराबर-बराबर मिलाकर ढेरी बनायी जाय। इसमें गोमूत्र और हर तरह के कूड़े-करकट को भी मिला देना चाहिए। यदि काफ़ी गोमूत्र न हो, तो इसे पानी से गीला कर लेना चाहिए। इसके बाद ४-५ फ़ीट ऊँची ढलवाँ ढेरी, पहाड़ी की तरह, बनाकर उसके चारों तरफ़ गोशाला की नाली के कीचड़ या दूसरी मिट्टी को चढ़ा देना चाहिए। इससे रासायनिक क्रिया जल्दी होने लगेगी।

ढेरी को छप्पर से ज़्यादा दबाना नहीं चाहिए। फूली हुई ढेरी के भीतर के ख़ाली छेदों में हवा सहज ही में प्रवेश कर सकेगी, जिससे उसमें रासायनिक क्रिया जल्दी होने लग जायगी।

बेकार भूसा, सूखे पत्ते और घास-टहनी आदि चीज़ें गोशाला में यदि एक दो दिन बिछा दी जायँ, तो वे गोमूत्र से तर होकर अधिक तत्त्वों वाली और जल्दी सड़ने वाली बन जायँगी। हरे पत्तों आदि को बिना गीला किये ही गोबर की ढेरी में मिलाया जा सकता है। यदि सब झङ्खाड़ सूखा और बड़ा-बड़ा हो, तो उसके ऊपर गाड़ी चलाकर उसका चूरा बनाकर गोबर में मिला ले।

इस ढेरी में अगर नमी कम मालूम पड़े और वह सूख रही हो, तो ऊपर से गोमूत्र या पानी छिड़क देना चाहिए। पाँच सात दिन के बाद बराबर थोड़ा सा छिड़काव करता रहे।

धीमी-धीमी बरसात से खाद को लाभ पहुँचता है। गर्मी के दिनों में खाद में पानी अधिक मिलाये। लू चलने के दिनों में तो उस ढेरी को फूस से ढक देना चाहिए और जब सूखती दिखायी दे तब उस पर गोमूत्र और पानी छिड़क कर गीली कर दे। बरसात के दिनों में खाद ख़ूब जल्दी तैयार होती है, क्योंकि नमी पाकर खाद में जीवाणुओं का संचार जल्दी होने लगता है।

हरे-पत्ते और गीला-कूड़ा मिली हुई खाद जल्दी---और सूखी चीज़ों वाली देर में---सड़ पाती है। हरे पत्तों वाली खाद तीन चार सप्ताह बाद, और सूखे पत्तों वाली सात या आठ सप्ताह बाद, आधी तैयार हो जायगी। इस प्रकार आधी तैयार हुई खाद की ढेरी को दुबारा उलट कर उसकी दूसरी ढेरी पहली के पास ही लगा देनी चाहिए। दुबारा ढेरी लगाते समय ऊपर वाला हिस्सा नीचे और नीचे वाला हिस्सा ऊपर कर दे। इस समय यदि खाद की चीज़ें सूखती दिखायी पड़ें, तो गोमूत्र या पानी में गोबर घोलकर उस पर छिड़क दे। कठोर चीज़ों को ढेरी के बीच में ही रखना चाहिए।

दुबारा वाली ढेरी तीन चार सप्ताह बाद पूरी तौर से तैयार हो जायगी। बनाने के समय से तीन या चार महीने बाद यह कम्पोस्ट खाद खेत में डालने योग्य हो जाती है।

(२) गड्ढा बनाना---यदि पानी की सतह ज़मीन के पास न हो, तो गड्ढा बनाना ही ज़्यादा बेहतर है। यह गड्ढा समतल भूमि पर होना चाहिए, ढलवाँ ज़मीन पर ठीक नहीं रहेगा। गड्ढा दो तरह से बनाया जाता है:—

(क) गड्ढे के फ़र्श पर ईंट की रोड़ी बिछाकर उसे ईंट और सीमेंट से पक्का चुन दिया जाय। गड्ढे की दीवारें भी ईंट से चुनकर सीमेंट से लेस दी जायँ। इस प्रकार से बने गड्ढे में खाद भली-भाँति से बन सकेगी और अधिक गुणकारी होगी; क्योंकि खाद के नाइट्रोजन आदि तत्त्व तथा समस्त रसीले अंश उसी में विद्यमान रहेंगे और वे पृथ्वी में मिलकर नष्ट न होने पायेंगे। इस प्रकार की खाद के उपजाऊपन के कारण गड्ढे को पक्का बनाने की क़ीमत निकल आयेगी।

(ख) यदि पक्का गड्ढा न बनाया जा सके, तो चिकनी मिट्टी से लेसकर खाद के लिए गड्ढा तैयार कर ले। यद्यपि यह कम ख़र्च में बन जायगा, तथापि खाद भी कुछ कमज़ोर ही बनेगी, क्योंकि उसके कुछ रसीले अंश पृथ्वी में मिल जायँगे।

गड्ढे का नाप---एक बहुत बड़े गड्ढे की अपेक्षा चार छोटे-छोटे गड्ढे बनाना ज़्यादा अच्छा है। बड़े गड्ढे को भरने, ढकने तथा ख़ाली करने में ज़्यादा मेहनत करनी पड़ेगी। छोटे गड्ढे महीने भर में ही भरकर ढक दिये जा सकेंगे और उनमें से क्रमशः खाद निकालने में आसानी रहेगी।

ये गड्ढे ३-४ फ़ीट गहरे, ज़रूरत के माफ़िक़ लम्बे और चौड़े, बना लिये जायँ। साधारणतया ४ फ़ीट गहरे, ५ फ़ीट चौड़े और ८ या १२ फ़ीट लम्बे २, ३ गड्ढे बना लिये जायँ।

पहले, एक गड्ढे की तह में, सूखे पत्तों और सभी तरह के कूड़े कचरों एवं घास-पात की एक फ़ुट ऊँची तह बिछा दे। इस पर गोबर को गोमूत्र अथवा पानी में घोलकर ३-४ इंच की तह में बिछा दे। इसके बाद गोशाला की नाली के कीचड़ की गीली मिट्टी इसी पर बिछा देनी चाहिए। रोज़-रोज इसी तरह पत्तों, गोबर और मिट्टी की तहें बिछाते जायँ। गड्ढे के भर जाने पर उसे चिकनी मिट्टी से लेसकर बन्द कर दे। खाद की यह तह गड्ढे के २-३ फ़ीट ऊपर तक लगायी जा सकती है, क्योंकि वह सड़ने पर धीरे धीरे दबकर गड्ढे की सतह तक बैठ जायगी। यह खाद तीन महीने में तैयार हो जायगी।

इस गड्ढे के ऊपर थोड़ा-सा चूना, तूतिया या २% अमोनिया फासफेट (Amonia Phosphate) डाल देना अच्छा होता है। इस गड्ढे की मिट्टी के ऊपर सन या घीचा बो देना भी अच्छा होता है।

कम्पोस्ट खाद का गड्ढा दूसरे तरीक़े (जैसा कि ढेरी वाले में लिखा है) से भी भरा जाता है। किन्तु ऊपर वाली रीति में बार बार उथल-पुथल करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। खाद के ढके रहने के कारण आसपास सफ़ाई बनी रहेगी और मक्खियाँ न हो पायेंगी। खाद बनाने में मेहनत करना कभी बेकार नहीं जाता। गोपालक को यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि कूड़ा कचरा एवं गोबर सोने से भी ज़्यादा क़ीमती चीज़ है।

विधिवत् खाद बनाने के लाभ--भली-भाँति बनायी गयी खाद विशेष उपजाऊ होती है और जल्दी तैयार हो जाती है। साधारण पद्धति की खाद को अच्छी तरह तैयार होने में ३ वर्ष लग जाते हैं, किन्तु कम्पोस्ट विधि की यह खाद ३ से ६ महीने के भीतर ही अच्छी तरह से तैयार हो जाती है। इस विधि से कई फायदे हैं।

१--खाद को विशेष गुणकारी बनाने के लिए सूखे पत्ते, टहनियाँ, मिट्टी अथवा रेत, आदि चीजें दो तीन दिन तक गोशाला में बिछा दे। नरम ज़मीन में बैठने से पशुओं को आराम भी मिलेगा। ख़ासकर जाड़ों में तो सूखी पताई अवश्य बिछा देनी चाहिए। प्रतिदिन अच्छी तरह सफ़ाई होती रहे, तो गोशाला में कीचड़ न हो पायगी और सब चीजें फ़ायदेमन्द बनायी जा सकेंगी। गोमूत्र मिली खाद ख़ूब उपजाऊ बन जायगी।

२--ऐसे पत्तों और मिट्टी आदि में गोमूत्र और गोबर का सारा रसीला अंश समा जायगा, जिससे खाद बहुत ज़ोरदार बन जायगी।

३--शाला के पशुओं का विसर्जन ज़्यादा तादाद में बेकार न जायगा।

४--मिट्टी और पताई आदि के गोशाला में लाने और वापस ले जाने में ख़र्च करना लाभदायी होगा; क्योंकि बढ़िया खाद द्वारा अन्न की उपज कई-गुना अधिक सम्भव होगी।

विभिन्न तरह की खादः—

(१) खली की खाद--कुसुम, महुआ, एरण्डी आदि की जानवरों को न खिलायी जाने वाली और सब तरह की बेकार एवं सड़ी हुई खली की खाद बना ली जाती है। इस खाद से खेत में प्रोटीन-प्रधान तत्त्व पहुँचते हैं। इस खाद में रासायनिक खादों से भी ज़्यादा पोषक तत्त्व रहने के कारण खेत ज़ोरदार हो जाता है। यह बहुत जल्दी लाभ पहुंचाने वाली होती है।

बनाने की रीति--१०० भाग खली, २५ भाग मिट्टी, ५ भाग कोयला और ६०-७० भाग पानी को मिलाकर गड्ढे में भर दे या ढेरी बना ले। इसे चिकनी मिट्टी से अच्छी तरह ढककर ३ महीने तक अच्छी तरह सड़ा लेना चाहिए। दस पन्द्रह दिन बाद ढेरी यदि सूखती नज़र आये तो उस पर कभी कभी पानी छिड़कता रहे।

खली की खाद में नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटाश ख़ूब होता है।

(२) हड्डी की खाद--इस खाद में फासफोरस का अंश विशेष रूप से होता है, इस कारण यह फल, फली और कन्द वाली फ़स्लों के लिए हितकर है। मटियार भूमि में इसकी खाद गोबर की खाद के साथ मिलाकर देना अच्छा है। यह कई रीतियों से बनायी जाती है। नीचे एक तरीका लिखा जाता है।

बनाने की रीति—६ भाग हड्डी का चूरा, ६ भाग रेत, १२ भाग गन्धक, और १ भाग कोयले का चूरा इन सब को मिलाकर पानी से ख़ूब गीला करके गड्ढे में भर दे। यह खाद ६ महीने में सड़कर तैयार हो जाती है।

हड्डी का चूरा बनाने के लिए हड्डियों को इकट्ठा करके आग से जला देते हैं। अच्छी तरह जल जाने पर उनकी सफ़ेद राख बच रहती है।

(३) मछलियों की खाद—यह खाद फासफोरस और नाइट्रोजन प्रधान होती है। कटहल आदि के पेड़ों और अंगूर आदि की लताओं में यह खाद दी जाती है। इन पेड़-पौधों के चारों तरफ़ गड्ढा खोदकर उसमें मछलियाँ भरकर फिर मिट्टी से ढक देते हैं।

(४) राख की खाद—लकड़ी और गोबर के जलाने पर बची हुई राख में पोटाश और फासफोरस बहुत होता है। यह तत्त्व सभी प्रकार के बीजों का पोषण करता है। राख को ठंडी होने पर जुते हुए खेत में फैला दिया जाता है। राख को कम्पोस्ट वाले गड्ढे में मिला देना बेहतर है।

(५) नालियों की खाद—बस्ती से बहती हुई नालियों के पानी में नाइट्रोजन बहुत होता है। इसी पानी से सींचकर खाद खेत में पहुँचायी जाती है। सिर्फ़ इस खाद से ही तैयार की हुई फ़स्ल यद्यपि देखने में सुन्दर और बड़ी होती है, तथापि पोटाश आदि की कमी से वह बेस्वाद और गुणरहित हो जाती है। इस पानी के साथ ही साथ यदि गोबर की भी खाद दी जाय, तो फ़स्ल उम्दा होगी। गोबर की खाद देने के बाद नालियों के पानी से सींचा हुआ खेत ख़ूब जोरदार हो जाता है।

(६) हरी खाद—यह तीन प्रकार की होती है और बड़ी उपयोगी है।

(क) नदी और तालाबों के किनारे सेवार नाम की घास पैदा होती है। इसे गोबर के साथ मिलाकर कम्पोस्ट रीति से खाद बना ली जाय, तो बेकार जाने वाली चीज़ भी एक उपयोगी वस्तु हो जायगी। इन बेकार चीजों से बहुत फायदा उठाया जा सकता है।

हरी सेवार में ४ या ५% पोटाश होता है। सूर्य की रश्मियों के कारण यह जल में पैदा होने पर भी अत्यन्त गरम तासीर वाली और खाद को बेहतर बना देने वाली है।

इसी प्रकार से जलकुन्दी आदि सभी प्रकार की जलज घासों की खाद बनायी जा सकती है।

(ख) सन और घींचे को बोकर उसके उग आने पर उसे ज़मीन में वापस जोत देते हैं। इस तरह खेत में नाइट्रोजन का संचार अच्छी तरह हो जाता है।

(ग) फलीदार जैसे मूँग, उरद, लोबिया, ग्वार और चौलाई आदि की फ़स्लें बोने से ज़मीन में बैक्टीरिया के कीटाणुओं का संचार हो जाता है। इन्हें खेत में ही वापस जोत देने पर उसमें नाइट्रोजन और प्रोटीन प्रधान खाद पहुँच जाती है।

हरी खाद देने की रीति—वर्षा के पहले ही वैशाख के महीने में हरी खाद वाली फ़स्लें बोकर आषाढ़ के दिनों में वापस जोत देना चाहिए। इनको मिट्टी में मिलने के लिए बहुत काफ़ी पानी की ज़रूरत पड़ती है, इस कारण वर्षा ऋतु के ख़तम होने के पहले ही इन्हें खेत में मिला देना चाहिए। इस तरह की खाद पाकर पौधे ख़ूब बढ़ते हैं।

(७) फसल के हेर-फेर से खाद—मक्का, ज्वार और गेहूँ तथा धान की फ़सल काट लेने

के बाद खेत में फलीदार फ़स्लें बो देने से वहाँ बैक्टीरिया के कीटाणुओं का संचार हो जाता है। बैक्टीरिया के कीटाणु फलीदार फ़स्लों की जड़ों के ऊपर रहते हैं और हवा से नाइट्रोजन खींचकर उसका ज़मीन में संचार करते हैं। इन फ़स्लों को खेत में वापस जोत देना भी विशेष लाभदायी है।

(८) ताज़े गोबर की खाद—यह सब से अच्छी खाद है, किन्तु सावधानी से देनी चाहिए।

(क) खेत में ६ फ़ीट के अन्तर से २ फ़ीट गहरी और लम्बी-लम्बी खाइयाँ खोदकर उनको प्रतिदिन ताज़े गोबर और गोमूत्र से पाटकर उन पर मिट्टी ढक दिया करें। इस प्रकार की खाद का कोई भी अंश बेकार नहीं जाता, क्योंकि खाई के दोनों तरफ़ के पौधे सारा पोषण खींचते रहते हैं। यह खाद हर एक फ़स्ल में नहीं दी जा सकती, किन्तु दूब, ज्वार और मक्के आदि की फ़स्लों के लिए यह परम उपयोगी सिद्ध होगी। साथ ही भविष्य के लिए खेत ख़ूब ज़ोरदार हो जायगा। यदि गोशाला पास में ही हो, तो खेत में खाद देने का यह बढ़िया तरीक़ा है।

(ख) ताज़े गोबर को किसी झिरझिरी बोरी में भरकर नाली के बीच में रख दिया जाय और खेत में लगाते वक्त पानी उस पर से बहकर खेत में पहुँचे। इस प्रकार सारी फ़सल में गोबर का अंश मिला हुआ सुनहला पानी ख़ूब अच्छी तरह लग जायगा। यह हरएक फ़सल के लिए अत्यन्त हितकर होगा, क्योंकि ताज़े गोबर के सारे रसीले अंश खेत में मिल जायँगे।

पानी लगाते वक्त यदि छिछले गड्ढे खोदकर उनमें ताज़ा गोबर भर दिया जाय, तो उन पर से बहा हुआ पानी भी बड़ा गुणकारी होगा।

गोबर को एक दिन पहले से ही पानी में भिगो ले। दूसरे दिन इस पानी को निथारकर पौधों में सींचे और गोबर के बचे हुए अंश को खाद वाले गड्ढे में डाल दे।

ताज़े गोबर द्वारा इस विधि से खाद पहुँचाना हर फ़सल को सदैव लाभदायी होगा। इस प्रकार की ताज़ी खाद से कभी नुक़सान नहीं होता और न कीड़े आदि ही लग सकते हैं।

खेतों में खाद देने के तरीक़े

१—आमतौर पर तैयार खाद की छोटी-छोटी ढेरी खेतों में लगा देते हैं और बाद में उसे फैला देते हैं। पानी बरसने या खेत सींचने पर वह ज़मीन में मिल जाती है। यह प्रचलित किन्तु अच्छी रीति नहीं है, क्योंकि गर्मी के दिनों में धूप के कारण तैयार की हुई खाद ज़मीन में मिलने के पहले ही सूखकर गुणहीन हो जाती है। इसलिए इस तरह से खाद को नहीं डालना चाहिए। यदि डाले तो उसे तुरंत मिला देना चाहिए।

२—खेत की मेंड़के पास १ फ़ुट गहरा और चार पाँच फ़ीट लम्बा-चौड़ा गड्ढा खोद ले। इस से निकली हुई मिट्टी को मेंड़ पर डाल दे। इस गड्ढे में हर रोज़ का कूड़ा करकट और गोबर इकट्ठा कर के भरता जाये। उसके भरने के बाद पास ही में दूसरा गड्ढा खोद ले और इस गड्ढे की मिट्टी को पहले गड्ढे पर डालकर खेत की तह के बराबर भर दे। इसी तरह करते-करते सारा खेत खुद जायगा और पुनः पट जायगा। यदि खेत और गोशाला बड़ी हो, तो एक लम्बी खाई खोदी जा सकती है। यह एक फ़ुट लम्बी और २ फ़ीट चौड़ी हो। इसके पट जाने पर इसी के पास दूसरी खाई फिर खोदी जा सकती है। इस तरीक़े से खाद देना बहुत लाभदायी होता है, क्योंकि :—

(क) घरों के आसपास के सारे कूड़े-कचरे तथा गाबर को सीधे खेत में ही डालते रहने से चारों तरफ सफ़ाई बनी रहती है।

(ख) खाद को गड्ढे से निकालकर दुबारा ढोना नहीं पड़ता।

(ग) खेत १ फ़ुट गहरा खुद जाता है; और इससे गहरी जुताई आसानी के साथ की जा सकती है। दूसरी फसल के लिए भी खुदाई जल्दी हो जायगी।

(घ) काँस, दूब, भादा वग़ैरह की जड़ें खेत में काफ़ी दिनों तक पैदा नहीं होने पातीं।

(ङ) इस खेत में १० वर्ष तक घूरा देने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

(च) हर एक फ़सल ज़ोरदार होगी।

३—कम्पोस्ट विधि की बनायी गयी खाद को खेत में डालकर तुरन्त ही फैला दे। बाद में खेत उसी दिन जोत दे, ताकि सारी खाद ख़ूब अच्छी तरह उसी में मिल जाय।

खाद देने और बनाने के ठीक तरीक़े हर एक किसान को ज़रूर मालूम कर लेना चाहिए। **गोबर-पताई-कूड़ा, कीचड़ तथा गोमूत्र से वह धन पैदा हो सकता है, जो सारे राष्ट्र को हरा-भरा कर देगा।** बैंक में पैसा जमा करने पर ज़्यादा से ज़्यादा ३% का लाभ मिलता है; किन्तु कम्पोस्ट खाद दी गयी फ़सल मेहनत की लागत से कई-गुना ज़्यादा फ़ायदा देगी। साथ ही गाँव के आसपास सफ़ाई बनी रहेगी और मच्छर-मक्खी कम पैदा होंगे।

कम्पोस्ट खाद का गड्ढा सोने की खान से कहीं बढ़कर सिद्ध होता है। याद रहे कि बेकार और नुक़सान करने वाली चीज़ें भी फ़ायदेमन्द बनायी जा सकती हैं।

आज हमारे देश में गोबर के उपले (कंडे) जलाकर लाखों की निधि को बेकार उड़ाया जाता है। उसके बचाव का उपाय न करके, विदेशों से करोड़ों रुपये की खाद मँगाना, एक भारी भूल है, जिसे दस बरस बाद हम महसूस करेंगे।

यदि हमारी सरकार कम्पोस्ट खाद बनाने के फ़ायदे का हर गाँव—हर घर—हर शहर में प्रचार करे, तो भारत की खाद्य कठिनाई कुछ समय के भीतर ही दूर हो जायगी।

पृथ्वी को अच्छी खाद देकर उससे क़ीमती अन्न बड़ी तादाद में लिया जा सकता है। अतः सरकार यदि गाँव वालों के लिए लकड़ी देने की योजना बनाये और हर जगह एक ऐसा अधिकारी व्यक्ति नियुक्त कर दे, जो खाद का निरीक्षण करता रहे, तो अवश्य ही हमारा देश शस्यश्यामल हो जायगा। धरती की उर्वरा-शक्ति के बढ़ने से खाद्य संकट अवश्य दूर हो जायगा।

हमारे देश में अधिकांश खेत ऐसे हैं, जिन्हें वर्षों से कभी भरपूर खाद मिली ही नहीं। इसका नतीजा यह हुआ कि खेत में फसलें बहुत कमज़ोर होने लगीं। इस प्रकार अन्न और चारा तो कम हो गया, किन्तु जनसंख्या और पशुसंख्या दोनों ही बराबर बढ़ती रहीं। फलतः जनता और गाय-बैल सभी कमज़ोर पड़ गये।

भरपूर **कम्पोस्ट खाद** देने से उसी खेत में से तिगुना अनाज पैदा किया जा सकेगा। **गोबर और दूध** पाने के लिए गाय का प्रतिपालन अच्छी तरह करना चाहिए। गोबर-पताई-कूड़ा, कीचड़ तथा गोमूत्र से वह धन पैदा हो सकता है, जो सारे राष्ट्र को हरा भरा कर देगा। कम्पोस्ट खाद का गड्ढा सोने की खान से कहीं बढ़कर सिद्ध होता है। खाद ही खेत की खुराक है।

गोबर की खाद

खाद ही है मुख्य कारण देश के कल्याण का,
गोबर स्वयं ही है 'अमृत' हरखेत का, खलिहान का।
फेंको न कूड़े को कहीं, करकट इकट्ठा सब करो,
"गोबर जलाना पाप है" यह बात अब मन में धरो।
होवे पताई, राख, कूड़ा, घास, गोबर जो कहीं,
सोना बना लो इन सभी का रोग फैलाओ नहीं।
सब को मिला कर एक में दो लेस गड्ढा कीच से,
फिर तीसरे ही मास लो, बस, खाद उसके बीच से।
गोमूत्र, कूड़ा और गोबर की मिली गर खाद हो,
भरपूर खेतिहर देश फिर फूला-फला आबाद हो।
है लाभदायक खाद का गड्ढा सुनहरी खान से,
सब मिल बना लें जो उसे मन से तथा सुविधान से।
रुपया जमा कर बैंक में मिलता तनिक-सा ब्याज है,
यह खाद देती दस-गुना ज़्यादा हमें पर नाज है।
हैं व्यर्थ की, नुक़सान की, जो वस्तुएँ, जितनी कहीं,
गोमूत्र, गोबर से मिले, हैं फलवती उतनी वहीं।
खाद से हो खेत बढ़िया, अन्न भी भरपूर हो,
हो अन्न औ गोरस भरा, तो फिर सभी दुख दूर हो।
आज़ाद हिन्दुस्तान की दे ध्यान जो सरकार अब,
लेवे बचा गोबर इन्हें ईंधन दिला घरवार अब।
नारा यही घर-घर फिरे "गोबर जलाना पाप है",
है बचत लकड़ी की नहीं, यह नाश ही बे-माप है।

आठवाँ अध्याय

गोशाला

समुचित गोपालन के लिये शाला सुन्दर, स्वच्छ और विचारपूर्वक बनायी जानी चाहिए। अच्छे स्थान में रहने पर पशु सुखी और स्वस्थ रहते हैं।

विदेशों में बड़ी-बड़ी धनराशि लगाकर भव्य गोशालाओं का निर्माण किया जाता है। वहाँ कहीं-कहीं तो शाला में बिजली तथा रेडियो तक का भी प्रबन्ध होता है।

गोशाला ख़ूब हवादार बनानी चाहिए, क्योंकि गायों को प्राणवायु (आक्सीजन) की काफी ज़रूरत होती है। इमारत पक्की बनायी जाय, तो अच्छा है। साधारण फूस छाकर विधिवत् बनायी गयी कच्ची और सस्ती शाला में भी पशु आराम से रह सकते हैं।

स्थान—जहाँ तक संभव हो, गायों के रहने की जगह शान्त, खुली हुई, और बस्ती से दूर हो, तो अच्छा है। इससे गाड़ी आदि की आमदरफ़्त की गड़बड़, बस्ती के नालों की गन्दगी तथा संक्रमण का भय न रहेगा। यहाँ वे स्वच्छन्दतापूर्वक आ-जा सकेंगी।

शाला समतल तथा ऊँची भूमि पर होनी चाहिए, ताकि वहाँ आसपास का पानी आकर इकट्ठा न हो पाये। शाला के आसपास गन्दे पानी या कूड़ा करकट से भरे, गड्ढे न होने चाहिए। वरना, गन्दी वायु व मच्छर-मक्खी के प्रकोप से गायों को कष्ट पहुँचेगा और उनका दूध भी दूषित हो जायगा। शाला को हमेशा साफ़ रखना चाहिए।

शाला से एक दो मील के फ़ासले पर बहती हुई नदी का होना बहुत सुविधाजनक है, क्योंकि वहाँ जाकर पशु अच्छी तरह नहा सकेंगे और पानी पी सकेंगे। बड़ी गोशालाओं के लिए उपयुक्त स्थान वह है, जो बस्ती से दूर, ऊँचे समतल पर, तथा नदी के निकट हो।

कच्ची शाला—शाला के चारों तरफ़ की बाढ़, मिट्टी की दीवार उठाकर, बना लें। काँटों की बाढ़ से पशुओं के खरोंच लगने का भय रहता है।

पशुओं की संख्या के हिसाब से लम्बा-सा बरामदा बना लें। वहाँ लकड़ी के गोल खम्भों के सहारे फूस का छप्पर बना दिया जाय। इस बरामदे के एक ओर या बीच में नाँद बनी होनी चाहिए। जहाँ तक हो सके, कम से कम नाँद तो पक्की ही बनवाये; अन्यथा मिट्टी और भूसे को मिलाकर बनायी गयी कच्ची नाँद से भी काम चल सकता है। कुम्हार द्वारा बनाये हुए मिट्टी के बड़े बड़े कूँड़े भी नाँद के लिये अच्छे होते हैं।

फ़र्श पर निरी मिट्टी ही होगी, तो वहाँ कीचड़ शीघ्र हो जाया करेगा। कुछ ईंट के टुकड़े और रोड़ी आदि कूटकर फ़र्श को पक्का और समतल बना देना चाहिए। हर दूसरे दिन नयी

मिट्टी और पत्ते आदि बिछाकर पहले दिन की बिछी हुई इन चीजों को कम्पोस्ट खाद बनाने के काम में लाये।

दूध-पीते छोटे बछड़े-बछियों को रखने के लिये बाँस लगाकर बाड़ा बना लें। उनके लिये कम-ऊँची नाँदों में सानी तथा पानी का प्रबन्ध करना चाहिए।

भूसा, दाना, खली और गोरस रखने के लिए अलग अलग कोठरियाँ बना लें। एक झोपड़ी ग्वाले के रहने के लिए भी अलग हो।

पक्की शाला—इसके बनाने में काफ़ी ख़र्च करना होता है, पर इससे बहुत समय के लिए सुविधा हो जाती है। इसे चतुर राज-मिस्त्रियों से बनवाना चाहिए।

यहाँ की चहारदीवारी ६, ७ फ़िट ऊँची हो, ताकि बाहर से आने-जाने वालों की दृष्टि गोशाला के भीतरी कार्य्यक्रम पर न पड़े। दरवाज़ा ख़ूब चौड़ा-सा और सुडौल हो। यहाँ कोई भी चीज़ पैनी और नुकीली नहीं होनी चाहिए।

शाला के बीच में खुला हुआ आँगन होना चाहिए, जहाँ सुबह-शाम गायें बैठ सकें। गायों की संख्या के हिसाब से लम्बे और आठ नौ फ़िट चौड़े बरामदे बना लिये जायँ। एक गाय को बाँधने के लिए ५'×१०' फीट जगह काफ़ी होती है। एक ओर नाँद बनी हो तथा फ़र्श पीछे की ओर ढलवाँ हो, जहाँ कि नाली से गोमूत्र तुरन्त ही बहकर बाहर निकल जाय।

टीन की छत धूप से तप जाने के कारण अच्छी नहीं रहती। कड़ियों की छत में साँप आदि जीव-जन्तु घर बना लेते हैं, अतः वह भी ठीक नहीं है। डाट, लिन्टर या ऐज़बेस्टास (Asbestos) की नाली-दार छत सब से अच्छी रहेगी।

नाँद २' लम्बी, १½' चौड़ी और २½ फ़ीट ऊँची होनी चाहिए। इसमें ऐसी नाली बनी होनी चाहिए, जो डाट लगाकर बन्द कर दी जा सके, तथा साफ़ करते समय खोल ली जाय। नाँद को हर रोज़ धोकर साफ़ कर देना चाहिए।

फ़र्श पर पत्थर या सीमेन्ट बिछाकर उसे चिकना कर देना ठीक नहीं है, क्योंकि फिसलन हो जाने से गाय के गिरने का डर रहता है। कंकरीट और चूने की रोड़ी मिलाले और फ़र्श पर भली-भाँति कूटकर उसे मज़बूत और समतल बना दिया जाय। वह ऊँचा-नीचा और गड्ढेदार न हो। जगह-जगह पर सीमेन्ट से पक्की नालियाँ बनवा लेनी चाहिए। ज़रूरत की जगह पर ईंटें लगवा ले।

शाला में भूसा भरने, खली-दाना रखने, चारा काटने की मशीन लगाने तथा गोरस रखने के लिए अलग-अलग, सुगमतापूर्वक पहुँचवाले, भण्डार होने चाहिए। साइलेज कूप का बनवाना बहुत लाभदायी होगा। ग्वाले के रहने के लिए भी एक दो कोठरी अवश्य हों।

एक दो कमरे ज़रा अलग हटकर ऐसे बने हों, जहाँ बीमार जानवर रक्खे जा सकें। उसके पास ही दवा वग़ैरा सुरक्षित रखने के लिए एक कोठरी भी होनी चाहिए।

अड़गड़ा (Cattle crush)—यह लकड़ी का बना होता है। दवा वाले कमरे के पास इसका

होना भी ज़रूरी है । इसके भीतर जानवर को फाँसकर सहूलियत से खड़ा किया जा सकता है और उसकी बीमारी की जाँच करने में सहूलियत रहती है ।

प्रसूति का कमरा—गाय के ब्याने के लिए बड़ा और साफ़ हवादार एक कमरा होना चाहिए उसमें नरम, साफ़ और सूखी घास वग़ैरा बिछा दी जाय, ताकि ब्याते वक़्त गाय को आराम मिले । बाद में उसे उठाकर खाद बनाने के कूप में डाल दे ।

गोरस भण्डार—दूध रखने, तौलने और किताबें रखने के लिए एक छोटा-सा कमरा होना चाहिए । इसमें जालीदार किवाड़ और खिड़की होनी चाहिए, ताकि मच्छर-मक्खी न घुसने पायें ।

साँड़ के रहने के लिए काफ़ी जगह अलग होनी चाहिए । छोटे बच्चों के लिए भी बाड़ेदार बरामदे अलग बने हों ।

नाप—शाला आवश्यकता के अनुसार लम्बी, चौड़ी और ख़ूब फैली हुई हो । एक पशु को खड़े रहने के लिए कम से कम, ५′×१०′ फीट, जगह चाहिए । पौराणिक मत के अनुसार चौड़ाई को लम्बाई से गुणा करके गुणनफल को ८ से भाग देने पर यदि ५ बच रहें, तो वह वृष-आय वाली शाला शुभ मानी जाती है ।

सिंह अथवा सर्प के मुखवाली शाला बनाना अच्छा नहीं माना जाता ।

पानी—सब से पहले पशुओं के लिए जल का प्रबन्ध करना आवश्यक है । नल के द्वारा ज़मीन से हर समय साफ़ पानी के खींचने का प्रबन्ध होना चाहिए । यदि साफ़ पानी का झरना, सोता या नल बराबर २४ घंटे ही झरता रहे, तो बहुत अच्छा है । कुएँ से भी काम चल सकता है, परन्तु वह ढका हुआ और ऊँचा होना चाहिए । पशुओं की नाँद के पास एक हौज़ में साफ़ पानी सदैव भरा रहना चाहिए, ताकि प्यास लगने पर पशु भर-पेट पानी पी सके ।

शाला में पानी की ज़रूरत निरन्तर बनी रहती है, इसलिए उसके प्रबन्ध करने का विशेष ध्यान रखना चाहिए ।

कुछ सुव्यवस्थित शालाओं में छोटा और दो तरफ़ से खुला हुआ एक हौज़ (Cattle dip) बना होता है, जिसमें पानी भरा और निकाला जा सकता है । इस पानी में कृमिनाशक दवाएँ डालकर गायों को तैरा दिया जाता है, जिससे किलनी आदि व्याधियाँ दूर हो जाती हैं । गायों को नदी में नहलाना भी बहुत लाभदायक है ।

सफ़ाई—शाला हमेशा साफ़ सुथरी रहनी चाहिए । वहाँ बकरी, कुत्ते और मुर्ग़ी आदि जानवरों को न जाने दे, क्योंकि वे गाय की सानी की चीज़ों को अशुद्ध कर देते हैं । वहाँ की दीवारों पर हर साल एक बार चूने की सफेदी करा देनी चाहिए ।

पशुओं को मक्खियों से बचाने के लिए शाला में नीम के पत्तों या लोबान आदि की धूप का धुआँ ज़रूर करना चाहिए । गोशाला की नाली को सुबह शाम पानी से धोकर साफ़ रखना चाहिए । गोशाला के बाहर की ओर जहाँ मुख्य एवं बड़ी नाली गिरती हो, वहाँ एक बड़ा-सा हौज़ बनाकर उसमें लोहे या टीन का एक बर्तन रख दे, जिसमें पशुओं का मूत्र और शाला के धोवन का

पानी इकट्ठा होता रहे। बरतन के भरजाने पर कम्पोस्ट खाद के बनाने में इस पानी को डालना लाभदायी होगा। शाला कभी कभी फिनैल से धुलवा दी जानी चाहिए।

गो-शाला में रात के समय दीपक जलाना अच्छा माना जाता है। शाला के आँगन में नीम या पीपल के एक सघन छायादार पेड़ का होना बहुत स्वास्थ्यकारी और उपयोगी होता है। पेड़ की छाया जाड़े और गर्मियों में हमेशा ही पशुओं को आराम पहुँचाती है।

शाला ऐसी हो कि जहाँ सूर्य्य की रोशनी अच्छी तरह पहुँच सके, ताकि हानिकर कीटाणु वहाँ पैदा न हो पायें। खुली हुई हवादार जगह में रहने से गाय-बैल प्रसन्न रहते हैं।

बर्तन—दूध दुहने और रखने के लिए ख़ास तौर की बनी बाल्टी आदि बरतन शाला में रहने चाहिए। दूध तौलने की घड़ी भी होनी चाहिए। दाना-खली भिगोने के लिए एक बड़ा-सा बर्तन हो, या एक हौज़ ईंट-सीमेन्ट का बनवा लिया जाय। कुछ बाल्टियों और टोकरियों की भी ज़रूरत पड़ेगी। दवा पिलाने के लिए छोटी-बड़ी, बाँस की बनी हुई, २-३ नालें भी रक्खी रहें।

किताबें—शाला में हर एक पशु का जन्मपत्र, दाना-खली का लेखा और दूध का ब्योरा लिखी हुई पुस्तकें होनी चाहिए। महीने भर की आमदनी और ख़र्च भी लिखा रहे। यदि नुक़सान नज़र आये, तो उसके कारण की तुरंत खोज करे। व्यवस्था रखने से नुकसान न हो पायेगा।

औषधि—व्यवस्थित शाला में साधारणतया काम आने वाली सारी औषधियाँ तय्यार करके रखनी चाहिए, ताकि ज़रूरत पड़ने पर इधर उधर भटकना न पड़े।

अन्य हिदायतें—गाय को बाँधने की रस्सी चिकनी और सन की बनी होनी चाहिए, क्योंकि सूत की रस्सी बड़ी जल्दी मैली हो जाती है। लोहे की ज़ंजीर से भी काम लिया जाता है। रस्सी बाँधने के खूँटे नुकीले न हों, बल्कि गोल हों।

पशुओं की गिनती करने की सुविधा के लिए उनके कानों या पुट्ठों पर अंक दाग़ दिए जाते हैं, जो सदा बने रहते हैं। पशुओं को नाम या संख्या के द्वारा सहज ही पहचाना जा सकेगा।

साधारण तौर पर काम में आने वाले औज़ार यथा—चाक़ू, हँसिया, क़ैंची, सुई, सूजा, सँड़ासी आदि का होना ज़रूरी है। इन्हें काम में लाने के पहिले सदा साफ़ कर लेना चाहिए और कृमिनाशक जल में उबाल कर कीटाणु-रहित कर लेना चाहिए। उपचार करते समय हाथ व नाखनों को भी साफ़ करके कृमिनाशक घोल से धो लेना चाहिए।

विभाग—दो

प्रजनन-विज्ञान

अध्याय-सूची

विभाग—दो

पहला अध्याय

गो-जाति

गो का इतिहास—भारतीय-गायों का पालन, मानव-सभ्यता के साथ ही आरम्भ हुआ था। प्राणितत्व-विशारद-जन भारतीय-गाय को ककुद् और गलकम्बलयुक्त ज़ेबू गाय की वंशज मानते हैं। इस वंश के पशुओं के गलकम्बल और ककुद् अवश्य होता है; और यही इस जाति का विशेष लक्षण है। ज़ेबू गाय के वंशज पशु श्याम, चीन, अफ़ग़ानिस्तान, फ़ारस तथा अफ़रीका के किसी-किसी भाग में पाये जाते हैं। भारत और इन देशों के अतिरिक्त ज़ेबू वंश की गायें और कहीं नहीं देखी गयी हैं।

भारतीय गो-जाति योरूप और उत्तरी-एशिया की बॉस्ट्रस (Bostaurus) जाति की गायों से आकृति और प्रकृति में सर्वथा भिन्न है।

कुछ विशेषज्ञ यह मानते हैं कि मध्य-एशिया से आते समय आर्यजाति के मनुष्य इस ककुद् एवं गलकम्बलयुक्त ज़ेबू गाय को अपने साथ ही भारत में लाये थे। अन्य विद्वानों का मत है कि यह ज़ेबू-श्रेणीकी गाय भारत में ईसा से ३,००० वर्ष पूर्व ही पालतू बना ली गयी थी। इसी समय के लगभग यहाँ के निवासी हाथी, घोड़े तथा भैंस आदि पशुओं को भी पालने लगे थे। आर्यों के भारत-वर्ष में प्रवेश करने के पहले ही यहाँ लम्बे व ऊँचे सींगों, भारी ठाठी तथा गलकम्बल वाले गाय-बैल पाले जाने लगे थे। इनसे छोटे क़द के पशुओं की एक और भी गो-जाति थी, जिसके सींग छोटे और ठाठी नहीं के बराबर थी। भूगर्भ-स्थित हड्डियों के द्वारा पता चला है कि यह ज़ेबू नाम की गो-जाति भारत ही की रहनेवाली थी। इसी वंश से उत्पन्न गो-जाति सिन्ध, उत्तर-गुजरात और राजपूताना में पायी जाती है।

वैज्ञानिकों का मत है कि उष्ण-प्रधान प्रदेशों में ज़ेबू-वंश से उत्पन्न गो-जाति ही भली-भाँति पनप सकती है।

गो-जातियों का विकास—समयानुसार शनैः शनैः गो-वंश बढ़ता और फैलता गया। भिन्न-भिन्न जलवायु और लालन-पालन से गो-वंश में विभिन्न गुण-दोष आते गये। आकृति-प्रकृति, गुण-दोष एवं रंग-रूप के ख्याल से विभिन्न गो-जातियों का वर्गी-करण विद्वानों ने किया है।

गाय और बैल तरह-तरह की जाति के होते हैं। किसी में कोई गुण विशेष होते हैं, तो किसी में अन्य कोई विशेषता होती है। सावधानी से पालित एवं पोषित पशु अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे। भिन्न-भिन्न जलवायु और लालन-पालन का गो और उसकी संतान दोनों पर ही प्रभाव पड़ता है। असावधानी के कारण कहीं-कहीं गायों की बड़ी हीन-अवस्था हो गयी है। उनकी नस्ल यहाँ तक

बिगड़ गयी है कि वे बकरी के समान डील-डौल की दीखने लगीं और उनकी दूध देने की शक्ति भी बहुत कम हो गयी। एक ही जाति में अच्छे और बुरे दोनों तरह के पशुओं का होना सम्भव है; परन्तु आमतौर पर जो विशेषताएँ उनमें देखी जाती हैं, उन्हीं से जाति-भेद की पहचान होती है।

नस्ल-सुधारने के लिए उत्तम गाय चुनकर परदेश से भले ही मँगायी जाय; किन्तु यदि उपयुक्त साँड़ का प्रबन्ध न होगा, तो इस गाय की भी नस्ल प्रतिब्याँत में सुधरने के बदले गिरती ही जायगी। यद्यपि उत्तम साँड़ व अच्छी गाय से उत्पन्न नस्ल जल्दी तरक्क़ी कर सकती है, तथापि ऊँची जाति के साँड़ एवं साधारण जाति की गाय से होने वाली नस्ल भी धीरे-धीरे सुधारी जा सकती है। प्रजनन-विज्ञान में नस्ल के सुधारने का विशेष वर्णन किया गया है।

गायों की विभिन्न नस्लें

यद्यपि एक ही जाति की कई गायों की शक्ति अलग-अलग क़िस्म की होती है, तथापि उनके दूध देने की शक्ति और उनके बछड़े-बछियों के गुणों पर जातीय-प्रभाव पाया जाता है।

१—जो गायें दूध ही ख़ूब ज़्यादा देती हैं, किन्तु जिनके बछड़े खेती व गाड़ी के काम में विशेष उपयोगी नहीं होते, उन्हें **दुग्ध-प्रधान-एकाङ्गी-नस्ल** कहते हैं।

२—जो गायें दूध कम देती हैं, किन्तु जिनके बछड़े खेती या गाड़ी आदि के लिए विशेष-उपयोगी होते हैं, वे **वत्स-प्रधान-एकाङ्गी-नस्ल** कही जाती हैं।

३—जिन गायों का दूध ख़ूब-काफ़ी और बछड़े भी बलवान तथा उपयोगी होते हैं, वे **सर्वाङ्गी नस्ल** कहलाती हैं।

आगे लिखी नस्लों का वर्णन गो-शास्त्र-विशारद व्यक्तियों के मत के आधार पर किया गया है। कुछ नस्लें, जो पहले एकाङ्गी मानी जाती थीं, अब सर्वाङ्गी मानी जाने लगी हैं। अतः विभिन्न विद्वानों का इस वर्गीकरण में कुछ मतभेद हो सकता है।

भारत की मुख्य गो-जातियाँ

दुग्ध-प्रधान-एकाङ्गी	सर्वाङ्गी	वत्स-प्रधान-एकाङ्गी
सायवाल या माान्टगुमरी; लाल-सिन्धी	हिसार, हरियाना, थारपरकर, काँकरेज, देवनी, गावलाव, कृष्ण-वल्ली, राठ, लोहानी, सीरी कंगायम, गीर	पँवार, खैरीगढ़, नागौरी, अंगोल, अमृत-महल, मालवी, नीमारी, दज्जल, भगनाड़ी, धन्नी, मेवाती, डाँगी, खिल्लारी, बछौर, आलम-बादी, बारगुर, हल्लीकर।
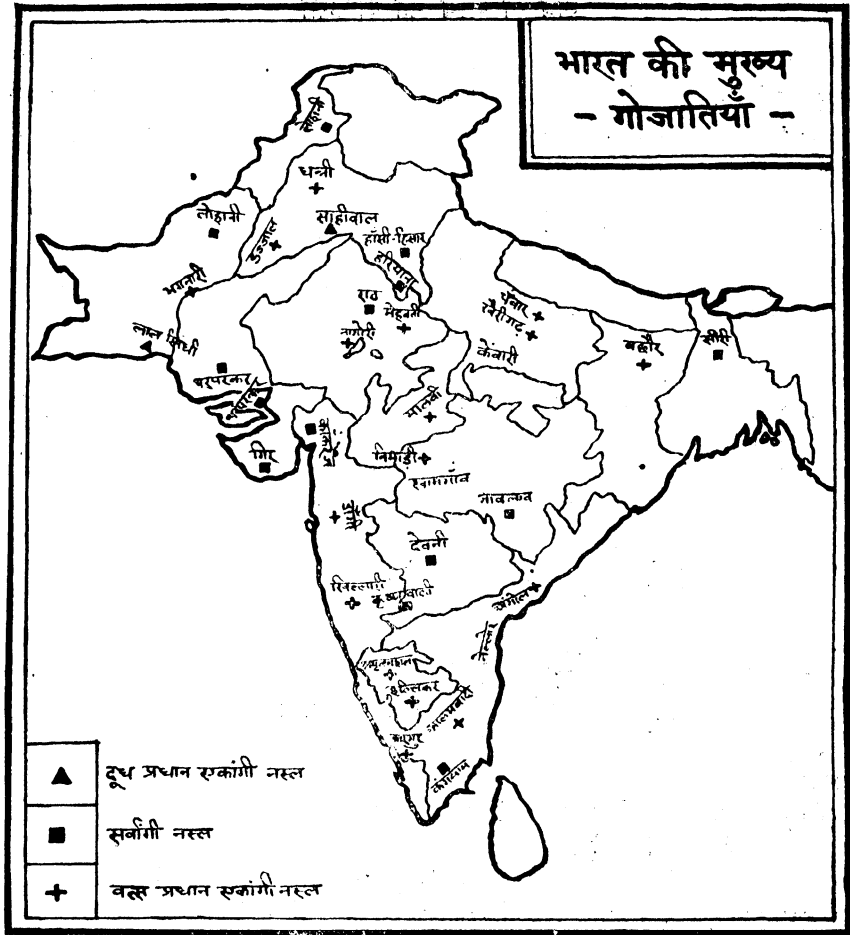
नोट :—उपर्युक्त चित्र से ज्ञात होता है कि दुग्ध-प्रधान नस्लें विशेषतया दो ही हैं, यथा—सायवाल और लाल-सिन्धी; किन्तु गीर, हिसार, कांकरेज, थारपरकर आदि नस्लें भी आमतौर पर दुग्ध-प्रधान मानी जाती हैं।

सर्वाङ्गी गाय की श्रेष्ठता

राष्ट्र को वैभवशाली बनाने के लिए हमें केवल सर्वाङ्गी और स्थानीय गायों को ही पालना चाहिए। गो के दोनों मुख्य-अंशों—दूध और बछड़ों—की हमें बड़ी सख्त ज़रूरत है। अतः इस समय सर्वाङ्गी-नस्ल की तरक्की करने में किया गया खरच सफल होगा। एकाङ्गी-नस्लें हानिकर ही रहेंगी; क्योंकि—

१—सर्वाङ्गी-गाय पर उतना ही ख़र्च पड़ेगा जितना कि एकाङ्गी-गाय पर, किन्तु सर्वाङ्गी-गाय दूध काफ़ी देगी और उसके बछड़े भी उपयोगी रहेंगे।

२—दुग्ध-प्रधान-एकाङ्गी-नस्लें दूध तो खूब देंगी, किन्तु उनके बछड़ों के कम-उपयोगी होने के कारण, राष्ट्र की वह शक्ति छीजती रहेगी, जो हमें बलवान-बैलों से मिलती है।

३—वत्स-प्रधान-एकाङ्गी-नस्लों से ताक़तवर बैल तो मिलेंगे, किन्तु राष्ट्र को सुपोषित करने के लिए हमें दूध पर्याप्त न मिल सकेगा। अतः इन नस्लों पर किये गये खरच से हम पूरा फ़ायदा न उठा सकेंगे।

भैंस-पालने से गाय-पालना कहीं अच्छा है, क्योंकि गाय ही ज़्यादा उपयोगी पशु है। गाय से तुलना करने में भैंस कम-उपयोगी सिद्ध हुई है; क्योंकि :—

(१) भैंस के दूध-घी में गाय के दूध-घी से बहुत कम गुण होते हैं, अतः हमें भैंस के दूध से कम पोषण मिलता है, ऐसा कई लोगों का मत है।

(२) भैंस के पड्डों-पड़ियों को जाड़ा-गरमी बहुत सताती है, अतः वे, पूरी तौर पर संभाल न हो, तो शीघ्र मर जाते हैं। इस कारण हमारा वह धन कम हो जाता है।

(३) भैंसा खेत जोतने व गाड़ी खींचने में बैल के समान उपयोगी नहीं होता, इस कारण उसके पालने में लगायी गयी शक्ति से पूरा लाभ नहीं हो पाता।

(४) भैंस गाय से ज़्यादा ख़ुराक खाती है, अतः उस पर ख़रच का औसत ज़्यादा पड़ता है।

(५) भैंस की नस्ल में उतनी जल्दी और उतना अधिक सुधार नहीं हो पाता, जितना कि गाय की नस्ल में होना संभव है।

इससे यह स्पष्ट है कि राष्ट्र की उन्नति के लिए साधारण गो-पालक को केवल सर्वाङ्गी-गाय ही पालनी चाहिए। दुग्ध-प्रधान-नस्लें तो दूध का व्यापार करने वाले गोपालों के केवल निजी लाभ का कारण होती हैं। इसी प्रकार वत्स-प्रधान-नस्लों से बैल बेचने-वाले ही फ़ायदा उठाते हैं। एक किसान को, अपने बच्चों के लिए दूध, अपनी खेती के लिए बैल, और अपनी सीमित धन-शक्ति के लिए सुलभ, स्थानीय और सर्वाङ्गी गाय ही पालनी चाहिए। दूसरे प्रान्त से गाय मँगाने में ख़र्च ज़्यादा पड़ता है और देश का दूध भी नहीं बढ़ता। अतः स्थानीय नस्लों की ही तरक्की करनी चाहिए। एकाङ्गी तथा दूरस्थ प्रान्तों की नस्लें विशेषज्ञों के प्रयोगों के लिए ही उपयोगी

हैं। वह उनके द्वारा उत्कृष्ट-गुणोंवाली नस्लें पैदा कर लेंगे।

यदि अधिकांश गो-पालक सर्वाङ्गी-गायें पालने लगें, तो देश को भरपूर दूध और बलवान बैल दोनों के ही मिलने से पूरा लाभ होगा।

विभिन्न गो-जातियाँ—सर आर्थर आलवर ने भारत की गो-जाति को कई भागों में बाँटा है। उसी आधार पर अलग-अलग जातियों का वर्णन किया जाता है :—

(क) सायवाल जाति—पञ्जाब प्रान्त की लाल रंगवाली गाय
(ख) हरियाना जाति—उत्तर की सफ़ेद रंग की बड़े रास वाली गाय
(ग) गीर जाति—काठियावाड़ की लम्बे और लटकतेहुए कानोंवाली गाय
(घ) अमृत महल जाति—मैसूर की लम्बे सींगोंवाली गाय
(ङ) धन्नी जाति—उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त की गाय
(च) पहाड़ी जाति—छोटी रास की तथा छोटे सिर वाली गाय।

भारत में जितनी अन्य नस्लें पायी जाती हैं, वे इन्हीं गो-जातियों की उप-जातियाँ हैं।

(क) सायवाल जाति—इस जाति के पशुओं में अफ़ग़ानिस्तानी तथा गीर जाति की गायों का ख़ून पाया जाता है। इनका रंग भी उन गायों से मिलता-जुलता होता है। इनकी गणना भारत की श्रेष्ठ, दुग्ध-प्रधान, एकाङ्गी गायों में है। इनके दूध में मक्खन की मात्रा विशेष होती है। यह गायें स्वस्थ रहती हैं। इनके बछड़े भारीबदन के किन्तु खेती-बाड़ी में कम उपयोगी होते हैं।

यह नस्ल पंजाब के मान्टगुमरी ज़िले में, तथा रावी नदी के आसपास लायलपुर, लोधरान और गंजीवार आदि स्थानों में पायी जाती है। लाहौर में बाज़ार के दिनों पर गाँव-वाले अपने पशु बेचने के लिए लाते हैं। उचित देख-भाल करने पर इस जाति की गायें भारत के किसी भी स्थान में भली प्रकार रह सकती हैं।

यह जाति शान्तस्वभाव की, धीरे-धीरे चलनेवाली, चराई को पसन्द करनेवाली और कम ख़ुराक खाने-वाली होती है। गायें ब्याने के बाद लगभग १० महीने तक दूध देती हैं। इनका दूध एक ही ब्याँत में ५०) से ८०) तक हो जाता है। इनका दूध प्रति-दिन ।) से ।)६ के लगभग होता है। इनका मूल्य २५०) से ४००) तक होता है, जो समयानुसार कुछ घट-बढ़ भी सकता है।

इस जाति के बैल, मेहनती न होने के कारण, हल जोतने में उपयोगी नहीं होते। इनकी चाल धीमी होती है, इसलिए ये केवल गाड़ी खींचने में ठीक रहते हैं। इनका क़द ज़्यादा ऊँचा नहीं होता, केवल ५०″ से ५६″ इंच तक के प्रायः होते हैं।

सायवाल साँड़ का माथा भारी, ठाटी बड़ी, ऊपर के ओठ भारी, सास्ना भी काफ़ी बड़ी, और नाभि लटकती हुई होती है। इसके सिर और पीछे की ओर का रंग शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक गहरा होता है।

इस जाति की गायों का भी सिर चौड़ा, सींग छोटे व कुछ मोटे तथा माथा मँझोला होता है। चेहरा और थूथन भी चौड़े होते हैं। नथने चौड़े व ख़ूब-फैले हुए होते हैं। ओठ पुट्ठेदार और जबड़े पुष्ट होते हैं।
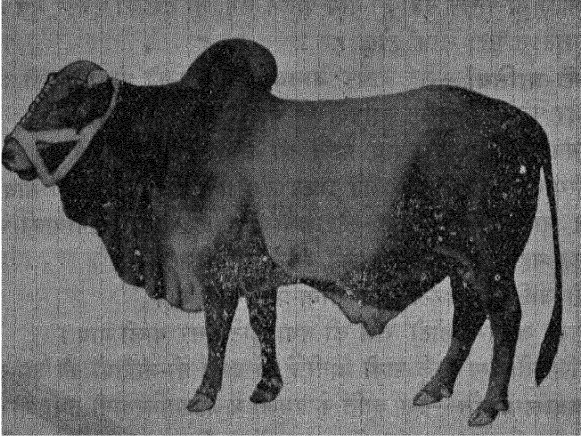
सायवाल साँड़
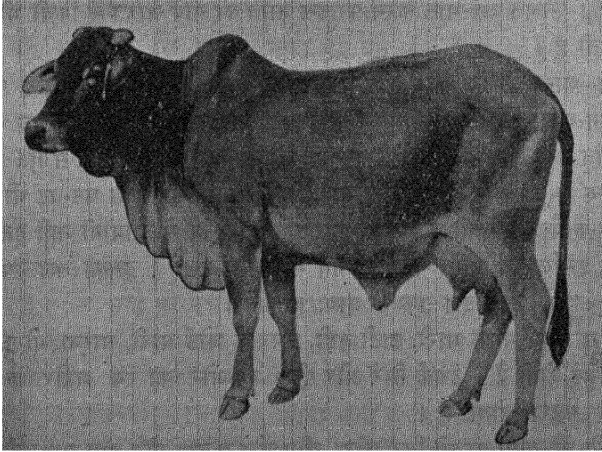
सायवाल गाय

आँखें—स्निग्ध और गम्भीर होती हैं।

कान—बड़े, लटकते हुए और लम्बे होते हैं। कान के भीतरी भाग में काले धब्बे भी प्रायः देखे जाते हैं।

सींग—छोटे और तीन इंच के लगभग लम्बे होते हैं। हिलते हुए कपिला सींग या बिना सींगवाले पशु भी पाये जाते हैं।

गर्दन—छोटी और मोटी तथा कन्धों एवं सिर से सटीहुई-सी प्रतीत होती है।

सास्ना—मुलायम और भारी होती है। साँड़ों की सास्ना विशेष भारी होती है।

छाती—चौड़ी एवं भरी हुई और अगली टाँगों के ठीक पीछे सटी हुई रहती है।

टाँगें—सुगठित, चौड़ी, कम-ऊँची और फ़ासले पर होती हैं। खुर साफ़ होते हैं।

पीठ—सीधी, मज़बूत, लम्बी और रीढ़ स्पष्ट उठी हुई होती है।

पसलियाँ—चौड़ी, फैली हुई और पेट पुट्ठेदार बड़ा होता है।

नाभि—लटकती हुई होती है, किन्तु जवान साँड़ों की नाभि लम्बी और अधिक ढीली नहीं होनी चाहिए।

कूल्हे की हड्डियाँ—काफ़ी-दूर और ऊँची होती हैं।

कमर—चौड़ी और मज़बूत होती है।

बग़लें—काफ़ी-चौड़ी, जाँघें चपटी और काफ़ी दूर-दूर होती हैं, ताकि अच्छे भारी ऐन के लिए काफी जगह रह सके।

पूँछ—लम्बी, मुलायम, घने-बालों और काली-चौंरी वाली होती है।

ऐन—बड़ा, लचकदार, चौड़ा और समतल या गोलाकार होता है। ऐन का अगला भाग चौड़ा व गोल और थनों से आगे बढ़ा हुआ, तथा पिछला भाग गोल एवं बाहर को निकला हुआ होता है। ऐन की चमड़ी कोमल और दूध की स्पष्ट नसोंवाली होती है।

थन—सुडौल, लम्बे, एकसे तथा गोलाकार होते हैं। दूध की नसें बड़ी, लम्बी, लचकदार और स्पष्ट दिखायी देने वाली होती हैं।

चमड़ी—ढीली, मुलायम और चिकनी होती है।

बाल—छोटे, सीधे व मुलायम; किन्तु साँड़ के सिर के बाल कुछ घुँघराले-से होते हैं।

क़द—ठिगना होता है; गायों की ऊँचाई ४८″ से ५०″ इंच तक की होती है।

रंग—लाल, बादामी और सफ़ेद-धब्बेदार होता है, काला रंग भी पाया जाता है।

दोष—इस नस्ल में सफेद रंग के पशु अच्छे नहीं माने जाते।

सिन्धी—इस नस्ल की गायें सायवाल-जाति से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं, क्योंकि इनमें सायवालजाति का असर माना जाता है। यह नस्ल कराँची के आसपास—उसके उत्तर तथा उत्तर-पूर्व के प्रान्तों में—पायी जाती है। इस जाति का मुख्य स्थान सिन्ध का इलाक़ा—कोहिस्तान—है। वहाँ पर इस नस्ल के विशुद्ध जानवर मिलते हैं। बिलोचिस्तान के लसबेला इलाक़े में भी विशुद्ध सिन्धी जाति के पशु पाये जाते हैं। वहाँ बहुत बड़ी गोचर-भूमि है। वहाँ की गायें ज़्यादातर
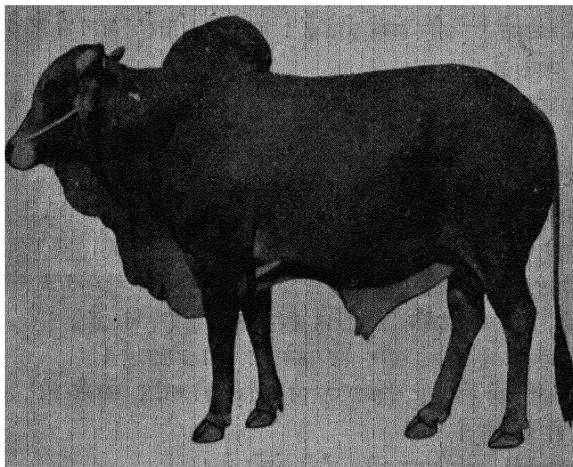
सिंधी साँड़
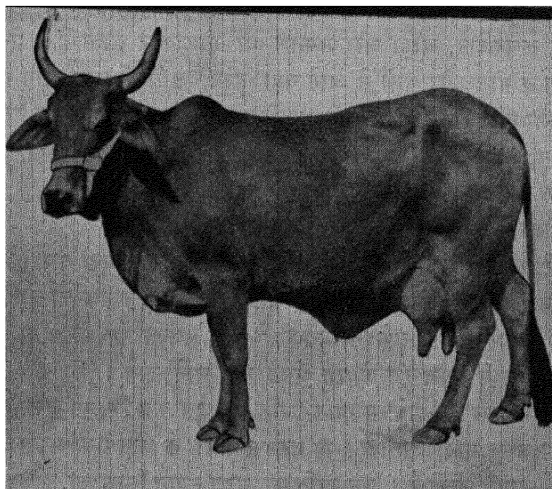
सिंधी गाय

बादामी या गेहुआँ रंग की, लम्बे शरीर और मोटे-चर्मकी तथा अधिक दूध देनेवाली होती हैं।

सिन्ध के ऊँचे-नीचे पहाड़ी प्रदेशों में खेती सम्भव नहीं है, अतः यहाँ के किसान गो-पालन पर ही बहुत ध्यान देते हैं। यही इनका ख़ास व्यवसाय है। यहाँ के अधिकतर ग्वाले मुसलमान हैं। सिन्ध के बुर्रा, भगुरिया और पामर जाति के ग्वाले विशेष चतुर होते हैं।

सिन्ध के सीमाप्रान्त के गाँवों में दोगली नस्ल के पशु पाये जाते हैं, क्योंकि गोचर-भूमि की तलाश में ग्वाले, अपने पशुओं को साथ लिये हुए, एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमते रहते हैं।

सिन्धी गाय सर्व-श्रेष्ठ-गायों में से है। यह छोटे क़द की होने के कारण अङ्गोल, सायवाल आदि बड़े आकार की गायों की अपेक्षा कम खाती है और स्वस्थ रहती है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि **यह भिन्न-भिन्न जलवायु वाले देश-देशान्तरों में भी पनप सकती है।** बीमारियों से मुक़ाबिला करने की इनमें बहुत शक्ति होती है। इन गुणों के कारण ये भारत से अन्यत्र कोरिया, मलाया तथा ब्रेज़िल आदि देशों में भी भेजी जाती हैं। सरकारी गोशालाओं में इनका पालन बहुत होता है।

सिन्धी गायें बड़ी दुधारू होती हैं। इनके दूध में मक्खन की मात्रा काफ़ी होती है। ये एक ब्याँत के लगभग ३०० दिनों के भीतर कम से कम ५०ऽ दूध दे देती हैं। अच्छी गायों का दूध १००ऽ तक पहुँच जाता है।

सिन्धी बैल मँझोले आकार का, गठा हुआ, जानवर होता है; इसके रग और पुट्ठे पुष्ट होते हैं। यह मध्यमगति से काम करनेवाला और खेती तथा गाड़ी दोनों के लिए उपयोगी है।

गहरा-लाल रंग ही इस जाति का ठीक रंग है, परन्तु धुँधले-पीले रंग से लगाकर भूरे-रंग तक के जानवर इस नस्ल में पाये जाते हैं। माथे पर सफ़ेद दाग़ व टिकुली, सास्ना के किनारे और धड़ के नीचे सफ़ेदी का छिड़काव बुरा नहीं समझा जाता; परन्तु सफ़ेद या भूरे रंग के चकत्ते या बुँदके दोगली नस्ल के द्योतक हैं। सदियों से इस नस्ल की देखभाल अच्छी तरह से होती आयी है, इसलिए इनका शरीर सुडौल होता है।

गाय की अपेक्षा साँड़ का रंग अधिक लाल होता है और जब वह पूरा जवान होता है तब उसके शरीर का रंग विशेष-गहरा हो जाता है। साँड़ का शरीर गाय की अपेक्षा अधिक मज़बूत होता है।

सिर—साधारण आकार का होता है।

माथा—आँखों के बीच का हिस्सा चौड़ा, चपटा और कुछ बाहर को निकला हुआ होता है, किन्तु गुद्दी बीच में ज़रा उभरीहुई-सी दीखती है।

चेहरा—साफ़, साधारण-लम्बा और मुँह की तरफ़ भी चौड़ा एवं वर्गाकार-सा होता है।

थूथन—काली व ख़ूब फैली हुई; नथने चौड़े और ओठ पुष्ट होते हैं।

कान—मँझोले-आकार के, आगे झुके हुए, चिकने और चौकन्ने होते हैं। अक्सर इनके भीतर की खाल हल्के-पीले रंग की होती है।

आँखें—काफ़ी-बड़ी, साफ़, और फ़ासले पर होती हैं। भौंहें पतली होती हैं।

सींग—छोटे, मोटे, दूर-दूर और कुन्द-सिरों-वाले होते हैं। ये गुद्दी की बग़ल से निकलकर ऊपर को उठते हुए आगे या भीतर को मुड़ जाते हैं।

अगाई—भरी हुई और खुरदरी होती है।

गर्दन—छोटी, सिर के जोड़ के पास मोटी तथा सटीहुई होती है।

सास्ना—मुलायम, पतली तहों में लटकती हुई और नीचे के जबड़े तक फैली हुई होती है। जबड़े मज़बूत होते हैं।

छाती—चौड़ी और उभरी हुई होती है।

धड़—लम्बा और भरा हुआ होता है।

कन्धे—सटेहुए और कम-भारी होते हैं।

ठाटी—उभरी हुई—और साँड़ की तो विशेषभारी और आगे की तरफ़ झुकी हुई—होती है।

पीठ—सीधी, मज़बूत, कमर पर कुछ चौड़ी तथा रीढ़ की बनावट साफ़ होती है।

पसलियाँ—लम्बी एवं दूर-दूर फैली हुई होती हैं।

पेट—बड़ा होता है।

नाभि—नर की नाभि पतली और लटकती हुई होती है।

पिछाई—दुधारू गायों की तङ्ग ही होती है।

टाँगें—सीधी, मँझोले आकार की, मज़बूत, काफ़ी दूर-दूर, साफ़ जोड़ों और हड्डी वाली होती हैं। घुटने चपटे होते हैं।

खुर—काले, कड़े, मँझोले तथा आगे की ओर को नुकीले होते हैं। इनके ऊपर का भाग उभराहुआ होता है।

कमर—चौड़ी और पेड़ू गोलाकार-सा होता है।

कूल्हे—बीच-मेल के, लम्बे, ढलवाँ होते हैं, तथा हड्डी चौड़ी और ऊँची होती है।

बग़लें—भरी हुई, किन्तु हल्की होती हैं।

जाँघें—फैली हुई और फ़ासले पर होती हैं।

पूँछ—पतली और काली चौंरी वाली होती है।

ऐन—बड़ा, लम्बा-चौड़ा, भरा हुआ तथा शरीर से सटा हुआ होता है।

थन—लम्बे-समआकार के, और बचपन से ही साफ़ मालूम पड़ने लगते हैं।

दूध की नसें—ख़ूब-साफ़ और लचीली होती हैं।

चमड़ी—ख़ासी-ढीली व मुलायम होती है। बालों के नीचे का रंग काला होता है।

बाल—छोटे और नरम होते हैं।

क़द—मँझोला ४५" से ५०" तक ऊँचा होता है।

बदन—गठीला होता है।

स्वभाव—साधारण-अच्छा होता है।

रंग—गहरा लाल होता है।

दोष—पहले लिखे गये चकत्ते-वाले लाल रंग के सिवाय और किसी भी काले या सफ़ेद—एक से—रंग का होना बुरा माना जाता है।

उत्तर-भारत की सफ़ेद रङ्ग वाली बड़ी रास की गौ—इस जाति की गायें प्रायः सारे भारत में देखी जाती हैं। सर आर्थर आलवर के मत से इस श्रेणी के भीतर कई वर्ग की गायें आती हैं। इनमें काँकरेज, मालवी, नागौरी, थारपरकर, सीतामढ़ी, पामर, भगनाड़ी, गावलाव, हरियाना, हाँसी, हिसार, अङ्गोल, तथा राठ नस्ल की गायें होती हैं। केनवारिया तथा खैरीगढ़ की नस्लें भी इन्हीं में से हैं। इस नस्ल के मुख्य दो भेद हैं। एक चौड़े मुँह की और दूसरी सँकरे मुँह की होती हैं।

उत्तरी भारत की चौड़े मुँह, मुड़े हुए सींग और बड़ी रास की गौ:—

काँकरेज—गुजरात की काँकरेज नस्ल इस जाति की प्रधान नस्ल है। इस जाति के पशु विशेष क़ीमती समझे जाते हैं। ये चलने में बहुत तेज़ होते हैं। इसका मूल-स्थान कच्छ की छोटी खाड़ी से दक्षिण-पूर्वका प्रदेश है, जो सिन्ध के दक्षिण-पच्छिमी कोने से अहमदाबाद और रधनपुरा तक फैला है। यह नस्ल काठियावाड़, बड़ौदा और सूरत तक में पायी जाती है। इस नस्ल के पशु अमेरिका आदि देशों को भी भेजे जाते हैं।

काँकरेज बैल का रंग रुपहला-भूरा, लोहिया-भूरा या काला होता है। टाँगों में काले चिह्न होते हैं तथा खुरों के ऊपर का भाग काला होता है। इनकी चाल बड़ी विचित्र होती है, क्योंकि टाँगों के अलावा शरीर के अन्य किसी भाग में गति नहीं होती। इनके क़दम लम्बे और सम पड़ते हैं। ये सिर उठाकर चलते हैं। बोझा ढोने में ये विशेष समर्थ होते हैं। यह जाति अधिकतर वत्स-प्रधान एकाङ्गी मानी जाती थी, किन्तु अब यह सर्वाङ्गी और उत्तम नस्ल मानी जाती है। इनका—

माथा—चौड़ा किन्तु भीतर की ओर धँसा हुआ होता है।

चेहरा—छोटा और नाक के पास से कुछ उठा हुआ मालूम होता है। नाक का पाँसा सीधा और धँसाहुआ-सा होता है।

आँखें—बड़ी, चौकन्नी, और पलकों के ऊपर पुट्ठेदार-तहवाली होती हैं। आंखों के चारों ओर काले रंग का होना अच्छा है; विशेषकर आँख के ऊपर इस रङ्ग का होना जरूरी है।

कान—लम्बे, ढीले, लटकते हुए और प्रायः नाक के किनारे तक पहुँचनेवाले होते हैं। ऐसे लम्बे कान, जो मुँह के नीचे मिल जायँ, बहुत अच्छे माने जाते हैं। इनके भीतर की चमड़ी लाल या भूरी और काले चिह्नों से युक्त होती है।

सींग—मोटे और नुकीले होते हैं। यह पहले आगे की ओर बढ़कर कुछ ऊपर को उठते हैं, इसके बाद पीठ की ओर झुकते हुए और सिरे पर फिर ऊँचे और सामने की तरफ़ बढ़ते हैं। सींगों की जड़ काफ़ी दूर तक चमड़ी से ढकी रहती है।

गर्दन—लम्बी, पतली और शरीर से सटी हुई होती है। सिर से ऊपर की गर्दन में एक झुकाव होने के कारण वह महराबदार-सी हो जाती है।
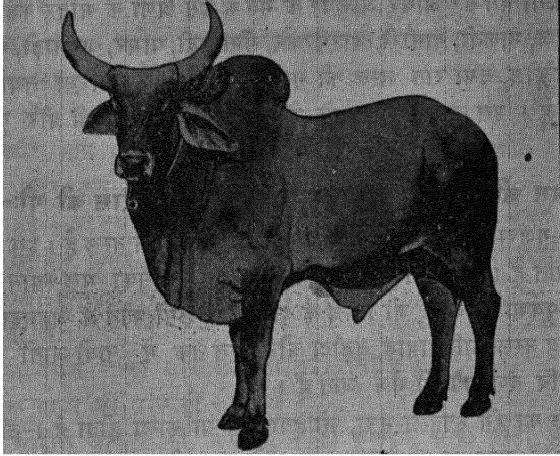
कांकरेज सांड़
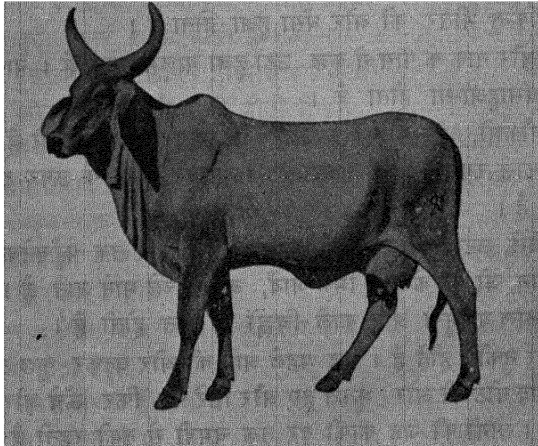
कांकरेज गाय

सास्ना—पतली और लटकनेवाली अच्छी मानी जाती है।

छाती—चौड़ी और ख़ूब पुट्ठेदार होती है।

ठाटी—साफ़ एवं बड़ी किन्तु किसी-किसी की झुकी हुई होती है। बायीं तरफ़ झुकी हुई ठाटी श्रेष्ठ मानी जाती है। परन्तु यह लक्षण बहुत कम मिलता है। दायीं तरफ़ या आगे को झुकी हुई ठाटी अच्छी नहीं समझी जाती।

कन्धे—चौड़े, ढलवाँ और ख़ूब विकसित होते हैं।

टाँगें—सभी गठी हुई होंगी, परन्तु आगेवाली दोनों टाँगें सीधी और पीछेवाली कुछ गोलाकार होती हैं।

टख़ने—सीधे और मज़बूत होते हैं।

खुर—काले, मज़बूत और गठे हुए होते हैं।

धड़—सीधा, बड़ा, भारी और सुडौल होता है।

पीठ—सीधी होती है।

पसलियाँ—लम्बी, ख़ूब फैली हुई और दूर-दूर होती हैं।

नाभि—मादा के स्पष्ट, पर नर के दरम्यानी और लटकती हुई होती है।

पिछाई—विकसित, पुट्ठेदार, लम्बी और भरी हुई होती है।

कमर—चौड़ी तथा ढलवाँ एवं कूल्हे ज़रा-भारी होते हैं।

बग़लें—चौड़ी और जाँघें भरी हुई होती हैं।

पूंछ—ख़ूब सटी हुई, सीधी, कम-लम्बी और घनी-काली-चौंरीदार होती है।

ऐन—सुडौल और आगे की ओर को अधिक-झुका हुआ होता है। अगले दोनों थन भी पिछले दोनों थनों से कुछ बड़े होते हैं।

चमड़ी—मुलायम और चिकने बालोंवाली होती है।

स्वभाव—ग़ुस्सैल तथा अनसधे आदमियों से जल्दी उत्तेजित होनेवाला होता है।

दोष—इस नस्ल में लाल रंग, उभरा-हुआ माथा, बकरी की-सी नाक, फैले हुए खुर, दायीं ओर या आगे को झुकी हुई ठाटी और सफ़ेद चौंरीवाली पूंछ अच्छी नहीं मानी जाती।

मालवी नस्ल—मध्य-भारत में ग्वालियर के आस-पास यह जाति पायी जाती है। गायें ज़्यादा दुधारू नहीं होतीं। इनका रंग ख़ाकी और गर्दन कुछ काली होती है। इस नस्ल के बैल गठीले और भारी बनाव के होते हैं। इन पशुओं का रंग उमर के बढ़ने पर सफ़ेद हो जाता है।

नागौरी नस्ल—यह जाति मारवाड़ प्रदेश में जोधपुर और उसके आस-पास पायी जाती है। यहाँ के बैल शरीर में हल्के, बड़े और ख़ूब तेज़ी से भागनेवाले होते हैं। किसी समय यह रथ में जोते जाते थे और इनकी चाल घोड़ों के समान तेज़ मानी जाती थी।

शरीर के पतले होने के कारण ये बहुत बोझा नहीं ढो सकते।

इनके सींग साधारण लम्बे; माथा गोल, मुँह सँकरा और लम्बा; पीठ के पीछे का भाग पतला; पूंछ पतली और चौंरीदार होती है। पैर लम्बे होते हैं। इनका रंग सफ़ेद और भूरा होता है।
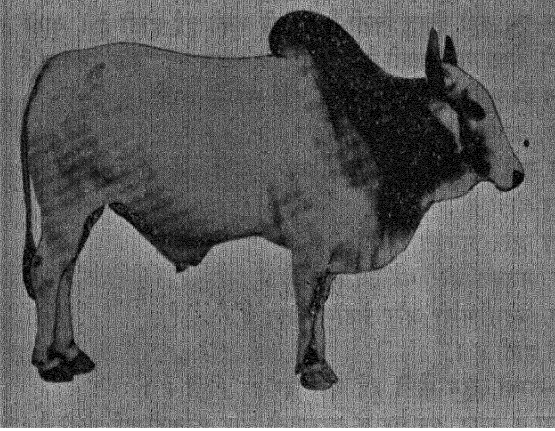
थारपरकर साँड़
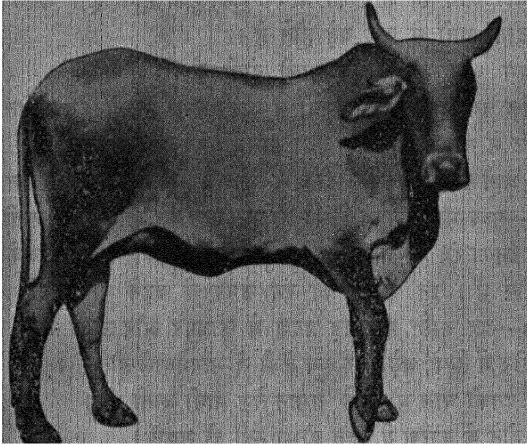
थारपरकर गाय

यह गायें ज़्यादा दुधारू नहीं होतीं और न अधिक बच्चे ही देती हैं। किन्तु ब्याने के काफ़ी समय वाद तक दूध देती रहती हैं।

थारपरकर नस्ल—यह जाति कच्छ, जोधपुर एवं जैसलमेर के राज्यों में और सिन्ध के दक्षिण-पश्चिमी रेगिस्तान में पायी जाती है। इस प्रदेश में वर्षा कम होती है, अतएव यह पशु कम खुराक खाकर पलते हैं। इस नस्ल के जानवर दरम्यानी क़द के होते हैं। गायें ख़ासी-दुधारू होती हैं। बैल परिश्रमी होते हैं। इनका मुँह लम्बा, ललाट उभरा-हुआ और थूहा बीच के मेल का होता है। इनका रंग ख़ाकी या भूरा-सफ़ेद होता है।

बचौर नस्ल—इस नस्ल के पशु बिहार-प्रान्त के अन्तर्गत सीतामढ़ी ज़िले के बचौर एवं कोइलपुर परगनों में पाये जाते हैं। इस जाति के बैल काम करने में अच्छे होते हैं। इनका रंग ख़ाकी, ललाट चौड़ा, आँखें बड़ी और कान लटकते हुए होते हैं। ये गायें दुधारू नहीं होतीं, केवल सेर-दो-सेर ही दूध प्रतिदिन देती हैं। यह एकाङ्गी नस्ल है।

पवाँर नस्ल—यह संयुक्त-प्रान्त के पीलीभीत ज़िले की पूरनपुर तहसील और खीरी के उत्तर-पश्चिम भाग में पायी जाती है। शुद्ध पवाँर नस्ल के गाय-बैलों का मुँह सँकरा तथा सींग लम्बे और सीधे होते हैं। इनके सींगों की लम्बाई १२ से १८ इंच तक होती है। इनका रंग प्राय: कुछ काला-सा-सफ़ेद होता है। इनकी पूँछ लम्बी होती है। ये बड़े फुर्तीले तथा क्रोधी होते हैं और मैदान में स्वच्छन्द-रूप से चरना पसन्द करते हैं। इस जाति की गौएँ दूध कम देती हैं। ये वत्स-प्रधान एकांगी मानी जाती हैं, पर प्रयत्न करने पर इनका दूध शीघ्र बढ़ सकता है और ये सर्वाङ्गी व उपयोगी बन सकती हैं।

उत्तर एवं मध्य भारत की सँकरे-मुँह एवं छोटे-सींगोंवाली सफ़ेद गौः—

भगनाड़ी—मध्य-भारत के जैकाबाद की नाड़ी नदी के किनारे यह जाति पायी जाती है। गायें साधारणतया अच्छा दूध देती हैं। इस प्रदेश की ख़रीफ़वाली फ़सल में ज्वार बहुतायत से बोयी जाती है। इस कारण बैलों को ज़्यादातर ज्वार का दाना खिलाया जाता है, जिससे ये पशु मज़बूत और उपयोगी होते हैं।

इस प्रदेश में नाड़ी नदी के आस-पास एक ख़ास तरह की घास बहुतायत से पायी जाती है। इस घास का नाम नाड़ी, बाँसी, घामड़ा व बैम्बू (Bamboo grass) है। बरसात के दिनों में यह अधिक होती है। इसे ऊपर से काट-काटकर पशुओं को खिलाया जाता है। इस घास की जड़ बहुत मज़बूत और गहरी होती है। नाड़ी घास में दाना बहुत होता है। पशु इस घास के दाने को प्रसन्नता-पूर्वक खाते हैं। इस घास के दाने की रोटी भी ज़रूरत पड़ने पर खायी जाती है।

दज्जल—पंजाब के डेरा-ग़ाज़ी-ख़ाँ ज़िले में इस नस्ल के पशु पाये जाते हैं। यह नस्ल भगनाड़ी तथा स्थानीय-नस्ल के मेल से बनी है। इस जाति की गायें साधारण दूध देनेवाली और बैल गठीले एवं मज़बूत होते हैं।

गावलाव—यह मध्य-प्रान्त की सर्व-श्रेष्ठ नस्ल है। ये सतपुड़ा की तराई, वर्धा, छिन्दवाड़ा, नागपुर, सिवनी तथा बहियर स्थानों में पायी जाती हैं। इनका क़द मँझोला होता है। ये गायें

प्रायः साधारण दूध देनेवाली और निरे-सफ़ेद-रङ्ग की होती हैं। बैलों के सिर, गर्दन, ठाटी तथा
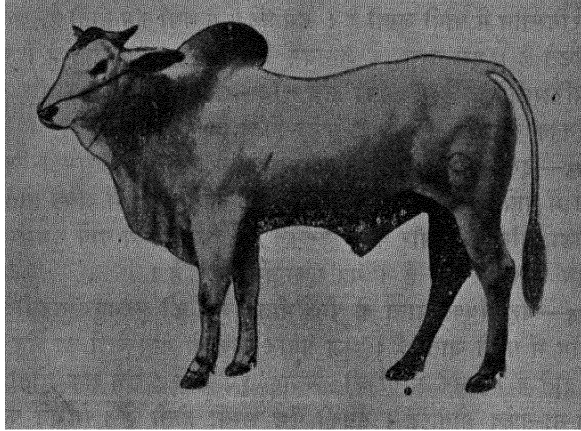
हरियाना साँड़
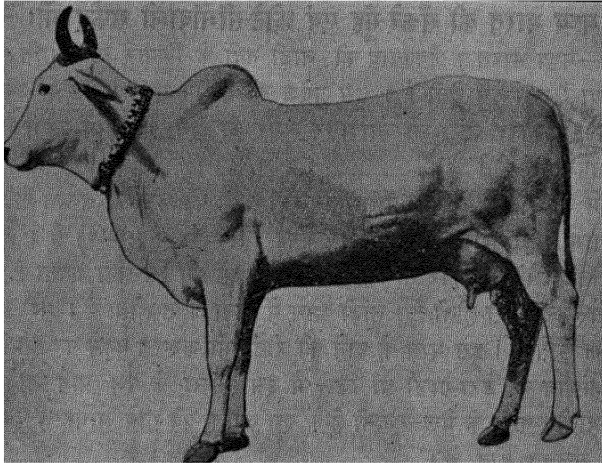
हरियाना गाय

पुट्ठे कुछ भूरे-से होते हैं। इन पशुओं का सिर लम्बा, सँकरा तथा गोल; सींग छोटे; कान दरम्यानी आकार के; और सास्ना बड़ी होती है। ये पशु कान उठाकर सतर्कता से चलते हैं। अच्छी तरह से देखभाल न होने के कारण ये प्रायः दुर्बल रहते हैं। उचित पालन-पोषण से यह नस्ल बहुत तरक्क़ी कर सकती है, जैसा कि वर्धा के गो-सेवा-संघ ने सिद्ध किया है। अब यह नस्ल सर्वाङ्गी मानी जाती है।

हरियाना--यह रोहतक, हिसार, सिरसा, करनाल, गुरगाँव, दिल्ली के आस-पास और जिन्द के स्थानों में मिलती है। इसका रंग प्रायः सफ़ेद-मोतिया या हल्का-भूरा होता है। युक्तप्रान्त, भरतपुर, और अलवर में हरियाना जाति के पशु विशेष रूप से पाले जाते हैं। ये बहुत-ऊँचे क़द के और देखने में सुन्दर मालूम होते हैं। यह गठीले, फुर्तीले तथा सिर उठाकर चलनेवाले होते हैं। इन बैलों के सींग लम्बे, चन्द्राकार व अन्दर की तरफ़ को झुके हुए होते हैं। परन्तु गायों के सींग कम-लम्बे होते हैं। यह जाति बड़े क़द की होने के कारण चारा-दाना ख़ूब खाती है। इस जाति के बैल ऊँचे, बलिष्ठ, भारी, ऊँची ठाटी के और परिश्रमी होते हैं। **ये हल जोतने व गाड़ी खींचने में विशेष उपयोगी हैं।** बैलों की ऊँचाई ५८" से ६४" तक की होती हैं। कृषि के कामों में इनका बड़ा मान है। इनकी गर्दन और थूहे प्रायः काले होते हैं। इनका वज़न १०५ से १२५ तक होता है।

इस जाति की गायें काफ़ी समय तक दूध देती हैं। इनका दूध प्रतिदिन ५८ से ५२ तक होता है। वर्ष या सवावर्ष के भीतर ही यह दुबारा ब्या जाती हैं। इनका दूध कुछ-कफ-प्रधान होता है। इनकी ऊँचाई आमतौर पर ५२" से ५६" तक होती है, किन्तु ६०" तक सम्भव है। इनका—

सिर—हल्का और सुडौल; चेहरा लम्बा एवं पतला; माथा चपटा; थूथन काली; और नथने चौड़े होते हैं।

आँखें—बड़ी, चमकीली और साफ़ होती हैं।

कान—छोटे और कम लटकते हुए होते हैं।

सींग—ख़ूबसूरत और छोटे होते हैं। प्रायः ४" से ९" तक लम्बे, सिर की तरफ़ को झुके हुए और चमकदार होते हैं।

गर्दन—कुछ लम्बी, पतली, और ख़ूबसूरत तथा सास्ना छोटी व पतली होती है।

टाँगें—लम्बी एवं पतली होती हैं; खुर छोटे, मज़बूत व सुडौल होते हैं।

छाती—पुष्ट और चौड़ी; तथा धड़ लम्बा होता है। गायों का अगला हिस्सा हल्का और पतला होता है; किन्तु पुट्ठे भारी और चौड़े होते हैं।

पीठ—आगे की ओर ढलवाँ होती है।

पसलियाँ—मज़बूत और ख़ूब गसी हुई होती हैं।

नाभि—छोटी और कड़ी होती है।

कूल्हे—चौड़े तथा बड़े होते हैं।

रानें—चपटी, चौड़ी और पुट्ठेदार होती हैं।

ऐन—फैला और भरा-हुआ होता है। दूध की नसें साफ़ दिखायी पड़ती हैं। अगले थन पिछलों के मुक़ाबले कुछ बड़े होते हैं।

जाँघें—मज़बूत और कुछ महराबदार होती हैं।

पूँछ—पतली तथा काले बालों की चौंरीदार व छोटी होती है।

चमड़ी—सुन्दर, पतली और शरीर से सटी हुई होती है।

साँड़—इस जाति के साँड़ का सिर कुछ-भारी, गर्दन बहुत-मोटी और छोटी दीखती है। इसकी ठाटी तथा अगला भाग भारी, किन्तु पिछला हल्का होता है। पुट्ठे चौड़े और ढलवाँ, किन्तु किसी-किसी के एकसार भी होते हैं। शेष लक्षण गाय से मिलते-जुलते होते हैं। साँड़ की ठाटी खूब विकसित होती है।

दोष —नाभि ढीली या लम्बी; पूँछ कड़ी और सफ़ेद-चौंरीदार तथा ज़मीन को छूती हुई लम्बी; पुट्ठे बहुत ज़्यादा ढलवाँ; सिर बड़ा, भोंड़ा, चपटा और उभरा हुआ; कान बड़े और लटकते हुए; सींग पतले और आगे की ओर को झुके हुए; तथा काला या लाल रंग बुरा माना गया है।

हरियाना जाति के पशुओं में सफ़ेद या भूरा रंग ही होना चाहिए। इनके अतिरिक्त और कोई भी रंग इस जाति के लिए अच्छे नहीं माने जाते।

हाँसी-हिसार—पंजाब के हिसार ज़िले में हाँसी नदी के किनारे यह उपजाति पायी जाती है। यद्यपि यह पशु रूप, रंग, गुण, एवं आकार में हरियाना जाति के समान होते हैं, तथापि गायें उतनी दुधारू नहीं होतीं।

इस नस्ल के बैल हरियाना नस्ल के बैलों की अपेक्षा अधिक मज़बूत, भारी और परिश्रमी होते हैं।

अंगोल या नीलोर जाति—यह जाति भारत के दक्षिण में मद्रास तथा हैदराबाद, गंतूर, नीलोर, बपटल्ला, सदनपल्ली आदि स्थानों पर पायी जाती है। इस जाति के बैल बहुत बलवान, उपयोगी, ऊँचे क़द के और सुन्दर होते हैं। ये अपने सींगों से पहचाने जाते हैं। इनके छोटे सींग ४″ से ८″ तक ही लम्बे और गुट्ठल होते हैं। वे नुकीले नहीं होते किन्तु कुछ आगे की ओर झुके रहते हैं। इनकी ऊँचाई ६०″ से ६४″ तक होती है। वजन १५ऽ से १८ऽ तक होता है। इनकी आँखें, खुर और पूंछ की चौंरी, काली होती है। ये हल को चलाने एवं भारी बोझ को ढोने के उपयुक्त हैं, किन्तु इनकी चाल तेज़ नहीं होती। यह नस्ल अभी तक वत्स-प्रधान-एकाङ्गी मानी गयी है।

ये जानवर भारत से बाहर अमेरिका और यूरोप आदि स्थानों में नस्ल सुधारने के लिए भेजे जाते हैं। ये पशु नीरोग रहते हैं। इनमें रोग-निवारक-शक्ति बहुत होती है। ये थोड़े-से चारे पर भी गुज़र कर लेते हैं। ये पशु अपने लम्बे, ऊँचे और गठीले बदन के लिए प्रसिद्ध हैं।

इस नस्ल की गायें काफ़ी दुधारू, सुन्दर, सीधी, ऊँचे सिर की, धीरे-धीरे चलनेवाली तथा

अंगोल साँड़
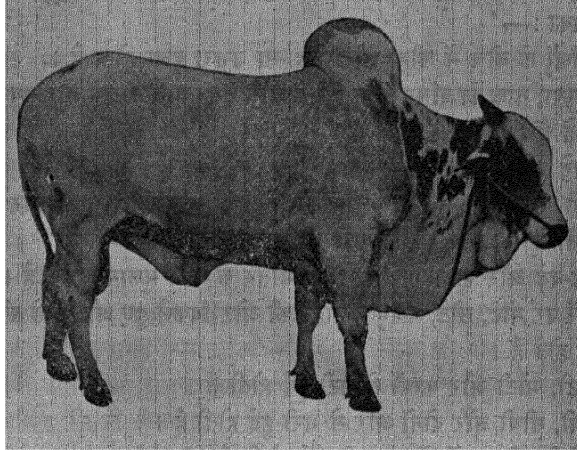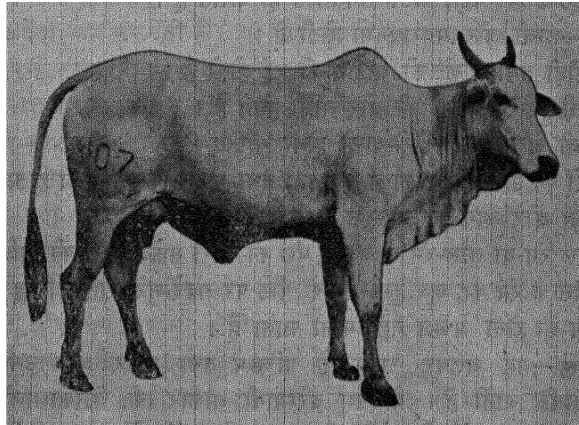
अंगोल गाय

शानदार होती हैं। इनका रंग सफ़ेद होता है, किन्तु लाल या काले रंग के धब्बेदार पशु भी देखने में आते हैं। इनका :—

माथा—आँखों के बीच में चौड़ा और थोड़ा-सा उभरा हुआ होता है।

चेहरा—लम्बा, नाक का पाँसा सीधा, नथने चौड़े तथा काले रंग के और थूथन खूब विकसित होते हैं।

जबड़े—चौड़े और खूब मज़बूत होते हैं।

आँखें—बड़ी, लम्बी, शान्त और चमकदार होती हैं और इनके चारों ओर का घेरा काला होता है। आँखों की बिन्नियाँ भी काली होती हैं।

कान—कुछ-बड़े और भुके-हुए तथा इनके भीतर के बाल मुलायम होते हैं।

सींग—जड़ों पर मोटे, छोटे, मज़बूत, बाहर की ओर निकले हुए और पीछे की तरफ़ को घूमे हुए होते हैं।

गर्दन—छोटी, मोटी और कन्धों से सटी हुई होती है।

ठाटी—ऊँची, सीधी और दोनों ओर से भरी हुई होती है।

सास्ना—मोटी और तहों में लटकती हुई होती है।

छाती—चौड़ी और भरी हुई होती है।

टाँगें—मज़बूत, लम्बी और दूर-दूर पर होती हैं।

कन्धे—लम्बे व ढलवाँ; और बग़लें चौड़ी तथा भरी हुई होती हैं।

पीठ—लम्बी, तथा चौड़ी और पुट्ठों पर कुछ उठी हुई होती है; परन्तु पीछे से देखने पर पुट्ठे ढलवाँ नहीं, बल्कि समतल-से ही दीखते हैं।

पसलियाँ—लम्बी और महराबनुमा होती हैं।

कमर—चौड़ी तथा कूल्हों की ओर भुकी हुई होती है।

जाँघें—भरी-हुई तथा पीछे की ओर सीधी होती हैं।

पूँछ—लम्बी और काली-चौंरी-वाली होनी चाहिए।

खुर—खुरों का ऊपरी भाग काला व ढलवाँ तथा संकीर्ण-फटान-वाला होता है।

ऐन—चौड़ा और आगे की ओर फैला होता है।

दोष—लाल रंग या लाल-रंग के चकत्ते, पूँछ की चौंरी सफ़ेद, आँख की बिन्नियाँ सफ़ेद, थूथन मांस के रंग का, खुर हल्के-रंग के, पीठ पर गहरे-भूरे रंग के चिह्न, और चितकबरे रंग का होना अच्छा नहीं माना जाता है।

राठ नस्ल—यह अलवर राज्य के पच्छिम तथा उत्तर और उसके आस-पास के इलाक़ों में पायी जाती है। ये पशु दरम्यानी आकार के, शक्तिशाली, अच्छी गठन के तथा तेज़ी से चलनेवाले होते हैं। इन इलाक़ों में सूखा अधिक होता है। यहाँ पर कुएँ की सिंचाई से ही खेती होती है, और गोचरभूमि थोड़ी है, इस कारण यह पशु थोड़े से चारे पर ही निर्वाह कर लेते हैं। गायें काफ़ी दुधारू

होती हैं और बैल उपयोगी होते हैं। ये देखने में हरियाना-की-सी किन्तु कुछ छोटी होती हैं।

केनवारिया नस्ल—यह उत्तर एवं मध्य भारत के पशुओं के मिलान से पैदा हुई है। यह बुन्देलखंड तथा युक्तप्रान्त के बाँदा ज़िले में पायी जाती है। इन गायों का दूध कम होता है। इस जाति के पशु ख़ाकी रंग के, ओछे क़द के, किन्तु चौड़े माथे के, मजबूत एवं तीखे सींगों के होते हैं। यह साधारण श्रेणी की गाय है।

खैरीगढ़ नस्ल—यह जाति अवध के खैरीगढ़ परगने में पायी जाती है। इसका रंग सफ़ेद और सींग १२″ से १८″ तक लम्बे होते हैं। ये पशु क्रोधी, छोटे क़द के और फुर्तीले होते हैं। गायें दुधारू नहीं होतीं। ये केनवारिया नस्ल के पशुओं के समान होते हैं।

काठियावाड़ की गीर जाति की गौ—इस नस्ल का मूल-स्थान काठियावाड़के गीर जंगल में था। वहाँ की जूनागढ़ रियासत में असली गीर नस्ल की गायें मिलती हैं। बम्बई के निकट भी ये पायी जाती हैं। राजपूताना, बड़ौदा और बम्बई के सूबे में इस नस्ल के मिश्रित (दोगले) पशु अधिक मिलते हैं।

इनका मूल-रंग सफ़ेद होता है और उस पर विविध रंगों के धब्बे होते हैं, जो किसी-किसी पशु पर बड़े और किसी-किसी पर छोटे होते हैं। ये पशु काफ़ी बड़े आकार के होते हैं। इस जाति के बैल बलवान, भारी, बोझा ढोने और धीरे-धीरे चलनेवाले होते हैं। किसी समय इनसे तोपों के खींचने का काम लिया जाता था।

गीर जाति की गायें अच्छी-दुधारू होती हैं। ये प्रतिदिन ६२ से ६८ तक दूध देती हैं। परन्तु आमतौर पर ५७ से ५८ तक दूध देनेवाली होती हैं। ये इस प्रान्त से बाहर ले जाने पर जलवायु के बदलने से दूध देना कम कर देती हैं। ये गायें १४ से १६ मास के भीतर दुबारा ब्या जाती हैं। कुछ विद्वान इन्हें वत्स-प्रधान-एकाङ्गी और कुछ सर्वाङ्गी मानते हैं।

इस नस्ल के पशु गठीले, मज़बूत और सीधे होते हैं। इनका माथा भारी, सींग अनोखे ढंगसे मुड़े हुए और कान लटकते हुए होते हैं। इनके लाल-रंग के ऊपर सफ़ेद या भूरे, अथवा सफ़ेद-रंग के ऊपर लाल धब्बे होते हैं।

सिर—भारी तथा माथा बहुत ज़्यादा उभरा हुआ होता है; और सींगों के बीच की चौड़ाई ज़्यादा होती है।

चेहरा—पतला, दोनों तरफ़ सीधा और आँखों के नीचे गोल आकार का होता है।

नथने—चौड़े और थूथन काली होती है।

सास्ना—गले तक अधिक लटकी हुई होती है।

आँखें—एक रेखाकी-सी सीधी और बड़ी होती हैं और पलकें भारी होती हैं।

कान—बहुत-बड़े और मुड़े हुए पत्तों के समान एवं बीच में सबसे ज़्यादा चौड़े होते हैं।

सींग—मोटे और छोटे तथा सिर से निकलकर पीछे की ओर को मुड़ते हुए ऊपर को झुकते हैं, साथ ही भीतर की ओर से गोलाकार होते हैं।

गीर सांड़
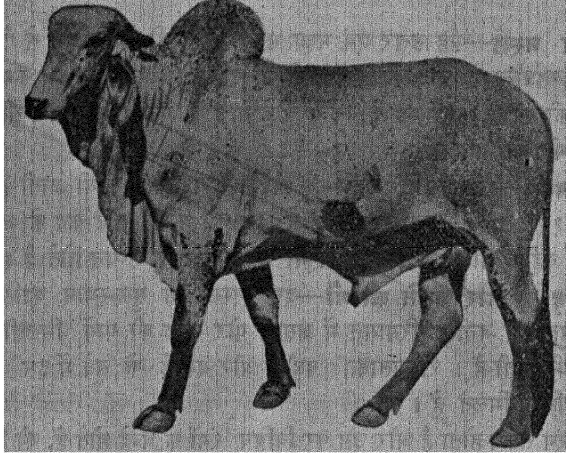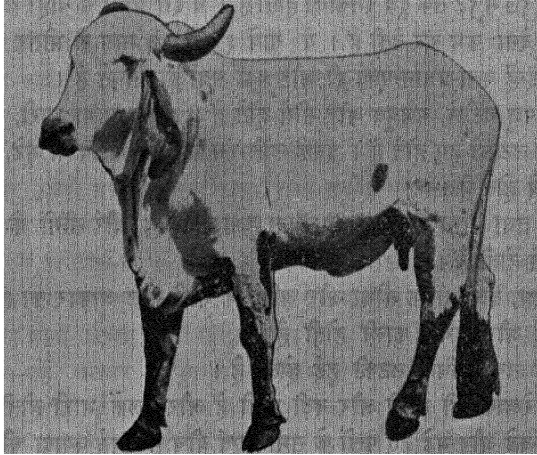
गीर गाय

गर्दन—पतली एवं कन्धों से सटी हुई होती है, और कन्धे धड़ से सटे हुए होते हैं।
ठाटी—फैली हुई और बीच के मेल की होती है।
टख़ने—गोल तथा पिँडलियाँ छोटी होती हैं।
खुर—खुरों का रंग काला होता है। ये पास-पास होते हैं।
पीठ—लम्बी, चौड़ी और ठाटी की ओर को गहरी होती है।
पसलियाँ—लम्बी, फैली तथा एकसी-झुकी हुई होने के कारण धड़ का अगला और पिछला हिस्सा एक-सा दिखायी पड़ता है।
नाभि—साफ़ परन्तु लटकती हुई नहीं होती।
कूल्हे—लम्बे व चपटे होते हैं।
जाँघें—खुली हुई परन्तु खोंच से एकदम ढलवाँ होती हैं।
ऐन—चौड़ा और पेट बड़ा होता है। थन ४ इंच लम्बे होते हैं।
चमड़ी—ढीली और मुलायम होती है।
पूँछ—जड़ के पास से चपटी और लम्बी तथा काली चौंरीदार होकर ज़मीन को छूती रहती है।
दोष—लाल-रंग के सिवाय और कोई भी पूरा एक-सा रंग, चपटा माथा, सीधे और छोटे कान, जो १० इंच से कम हों, सीधे सींग एवं गुलदार के-से अर्थात् पीली चमड़ी पर काले चकत्ते (दाग़) बुरे माने जाते हैं।

देवनी नस्ल—दक्षिण-हैदराबाद तथा हिंगोल में यह नस्ल पायी जाती है। इनके सिर और सींग गीर-नस्ल के माफ़िक़ होते हैं। रंग कई तरह के होते हैं, किन्तु सफ़ेद व काले एवं सफ़ेद व लाल रंग ही विशेष रूप से होते हैं। ये गायें काफ़ी दूध देनेवाली, और बैल विशेष उपयोगी होते हैं। इनका माथा बड़ा होता है।

डाँगी नस्ल—अहमदनगर, नासिक, धरमपुर तथा डांग्स नामक स्थानों में इस नस्ल के पशु पाये जाते हैं। ये बड़े परिश्रमी और धान के खेतों में ख़ूब काम करनेवाले होते हैं। इनकी चमड़ी चिकनी होती है, क्योंकि उसमें तेल की मात्रा विशेष है और इसी कारण वह वर्षा से इनकी रक्षा करती है। ये गायें कम दूध देती हैं। इनके खुर विशेष-रूप से काले होते हैं।

मेवाती नस्ल—अलवर के पूर्वी और भरतपुर के पश्चिमी भाग में यह नस्ल पायी जाती है। इसमें हरियाना तथा गीर नस्लों के लक्षण मिलते हैं। गायें साधारण दूध देनेवाली, किन्तु बैल भारी और हलों में जोतने योग्य होते हैं। इनका रंग सफ़ेद किन्तु माथा काले रंग का और टाँगें ऊँची होती हैं। यह वत्स-प्रधान-एकाङ्गी नस्ल है।

नीमाड़ी नस्ल—नर्मदा नदी की घाटी में यह पायी जाती है। इसके मुँह की बनावट और रंग दोनों गीर जाति की नस्ल के समान होते हैं। इन पशुओं के लाल रंग पर सफ़ेद धब्बे होते हैं। गायें काफ़ी दुधारू होती हैं। ये पशु बहुत फुर्तीले होते हैं।

देवनी साँड़
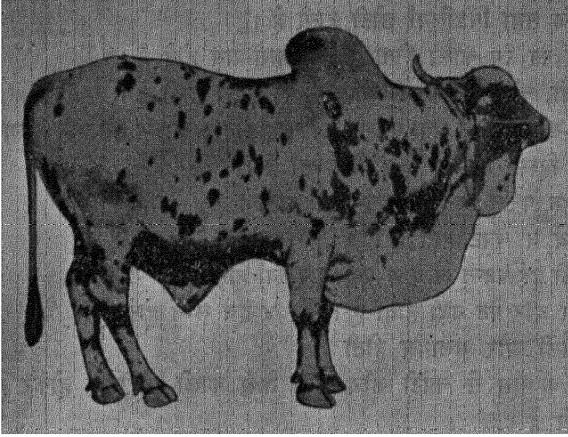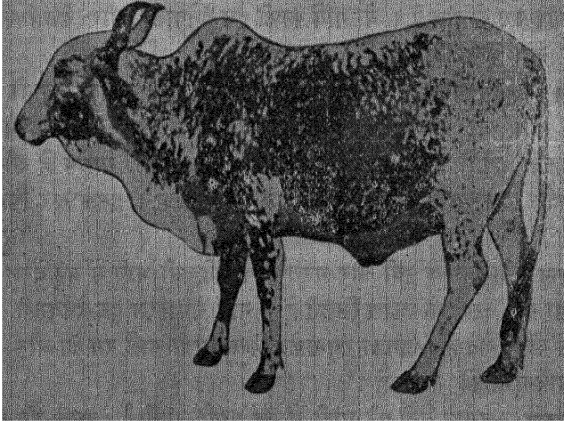
देवनी गाय

मैसूर की लम्बे सींगोंवाली गौ :—

अमृतमहल नस्ल—मैसूर राज्य के आस-पास यह नस्ल पायी जाती है। इस नस्ल के बैल मध्यम क़द के, फुर्तीले, गुस्सैल तथा जीवटदार होते हैं। पहले यह लड़ाई में सामान को ढोने के काम में आते थे। गायें कम दूध देती हैं। इनका रंग ख़ाकी होता है। इन पशुओं के मस्तक, गले और थूहे काले रंग के होते हैं। इनका सिर लम्बा, मुँह और नथने सँकरे, तथा ललाट उभरा हुआ होता है। यह वत्स-प्रधान-एकाङ्गी नस्ल है।

हल्लीकर नस्ल—मैसूर राज्य के मैसूर, हस्सन और तंकूर इलाक़ों में ये पशु मिलते हैं। इनके सींग लम्बे और नुकीले, कान छोटे, चेहरा लम्बा और ललाट उभरा एवं बीच में चिरा हुआ होता है। इस जाति के बैल भारी वज़न को ढोनेवाले और गायें साधारण दूध देनेवाली होती हैं। इन्हें भी वत्स-प्रधान-एकाङ्गी माना जाता है।

कंगायम नस्ल—इस नस्ल के पशु कोयंबटूर के दक्षिणी ताल्लुक़ों में मिलते हैं। ये गायें केवल १० या १२ वर्ष तक ही ब्याती हैं। प्रायः ये दूध काफ़ी देती हैं। ये पशु छोटे क़द के पर मज़बूत और पालने में सस्ते होते हैं। इनके कान छोटे, गर्दन ओछी तथा पूँछ लम्बी होती है। ये बैल भी अच्छे होते हैं। इन्हें सीलोन तक भेजा जाता है। यह नस्ल सर्वाङ्गी मानी गयी है।

कृष्णावल्ली नस्ल—दक्षिण-भारत की कृष्णा नदी के तट पर ये पशु पाये जाते हैं। ये कई नस्लों के मिलान से पैदा हुए हैं। इनकी ठाटी और सास्ना बड़ी, किन्तु सींग और पूँछ दोनों छोटे होते हैं। गायें अच्छा दूध देनेवाली होती हैं। यह सर्वाङ्गी-नस्ल मानी जाती है।

बरगूर नस्ल—दक्षिणी-भारत के कोयंबटूर ज़िले में बरगूर पहाड़ पर ये जानवर मिलते हैं। ये स्वच्छन्द और तेज़ चालवाले होते हैं। गायें बहुत कम दूध देती हैं। इनका सिर लम्बा, माथा उभरा हुआ और पूँछ छोटी होती है।

आलमबादी नस्ल—यह अमृतमहल नस्ल की ही एक शाखा है। इस जाति के बैल बहुत बलवान और सहनशील होते हैं। इनके सींग २′ से ३′ फुट तक लम्बे होते हैं। ये गायें दूध देने में साधारण होती हैं। इनका रंग मोतिया-सफ़ेद होता है। इनकी ऊँचाई ४८″ से ५४″ इंच तक होती है।

धन्नी नस्ल—भारत के उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त में एवं पंजाब के झेलम, रावलपिंडी तथा अटक के इलाक़ों में इन जानवरों का पालन साधारण तरीक़े से होता है। यहाँ के पालक इनकी खिलाई-पिलाई पर ज्यादा ध्यान नहीं देते। कभी-कभी यहाँ तक होता है कि गायें भी हल में जोत दी जाती हैं। यह वत्स-प्रधान-एकाङ्गी नस्ल है।

धन्नी नस्ल एक स्वतन्त्र जाति है। इसके बैल तेज़ और गठीले होते हैं, परन्तु गायें दुधारू नहीं होतीं। इनका प्रधान रंग सफ़ेद रोओं पर काले या लाल धब्बों का होता है। वैसे तो लाल-काले या सफ़ेद रंग पर चकत्ते भी पाये जाते हैं। इन इलाक़ों में पानी के कम बरसने के कारण चारे की कमी रहती है।
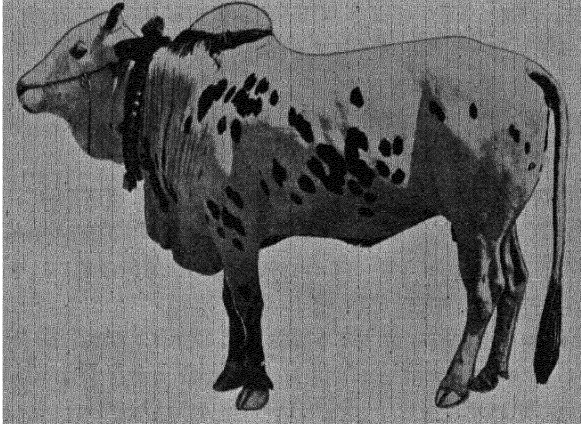
धन्नी सांड़
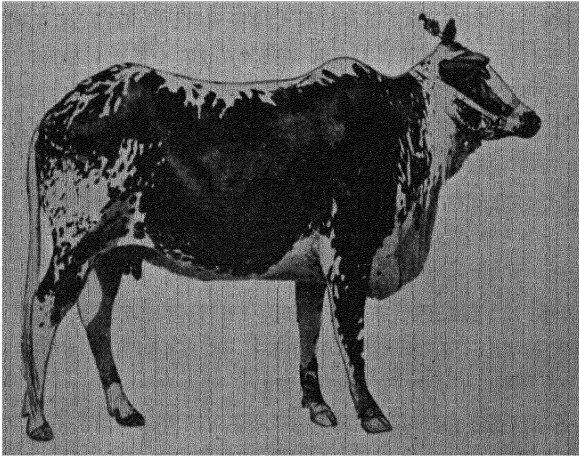
धन्नी गाय

प्राचीन भारत की पहाड़ी गौ—सारे भारत में और ख़ासकर हिमालय प्रदेश एवं बलूचिस्तान के पहाड़ों में छोटे रास की, ललाट एवं गल-कम्बल में सफ़ेद धब्बेदार, तथा पूँछ और पैरों के आख़िरी सफ़ेद भागोंवाली ये गायें पायी जाती हैं। यह जाति आर्यों के आने के पहले ही भारत में विद्यमान थी।

ये पशु बहुत थोड़े से चारे पर गुज़र कर लेते हैं और भारत के किसी भी स्थान पर सरलता से पाले जा सकते हैं। यह जाति नीलगिरि, राजपूताना, मध्य-भारत के जंगलों तथा कन्याकुमारी से आसाम तक भी मिलती है।

इनका क़द और सिर दोनों छोटे होते हैं। गायें दूध कम देती हैं।

श्री-जाति—यह भूटान दार्जिलिंग तथा सिक्किम में पायी जाती है। इसके बाल घने एवं लम्बे होते हैं, जिससे कड़ाके की सर्दी तथा ज़ोर की वर्षा से इसकी रक्षा होती है। इसका माथा चौकोर और छोटा, ललाट चपटा, थूहा लम्बा, कान छोटे और शरीर भारी होता है।

इस जाति के बैल बोझा खींचने में अच्छे, और गायें प्रतिदिन ر५ या ر६ दूध देने वाली होती हैं। किन्तु इनके दूध में चिकनाई का अंश अधिक होता है, जो ५ से ६% तक सम्भव है।

लोहानी नस्ल—इस नस्ल का मूल-स्थान बलूचिस्तान की लूराई-एजेन्सी है। ये पशु बहुत-छोटे क़द के, कड़ी गर्मी और सरदी को सहन करनेवाले और बोझा ढोने में ख़ूब उपयोगी होते हैं। गायें साधारणरूप से दुधारू होती हैं।

महाराष्ट्री गायें—इनमें तीन चार उपजातियाँ हैं। इनके मुँह और पैर काले तथा मुँह से नीचे पैरों तक बादामी रंग की लकीरें होती हैं। गायें साधारण-दूध देनेवाली होती हैं।

चमरी गौ—हिमालय के उत्तर दिशा के पहाड़ों पर यह जाति पायी जाती है। इसके शरीर पर घने और लम्बे रोएं होते हैं, इस कारण बर्फ़ की ठंडक को सहने की शक्ति इसमें आ जाती है। इसका मुँह नीचे की ओर को झुका हुआ, सींग पीठ की ओर को मुड़े हुए, गर्दन तथा पीठ बराबर और पैर छोटे होते हैं।

जंगली गायों का रंग कुछ काला होता है, किन्तु पालतू गायों का रंग सफ़ेद और काला मिला-हुआ होता है। उनके सींग भी छोटे होते हैं। उनकी पूँछ के बाल घने और सफ़ेद होते हैं, इसलिए इनसे चँवर बनाया जाता है। उनके रँभाने का स्वर भी भिन्न प्रकार का होता है। ये साधारण दूध देनेवाली और ठिगने क़द की होती हैं।

मिश्र की गायें—यहाँ की गायें हिन्दुस्तान की गायों से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। मद्रास के अमृतमहल-जाति की गायें यहाँ लायी गयी थीं। ये अधिकतर ज़ेबू जाति की वंशज हैं। इनके भी झूल और ठाटी होती है।

अफगानिस्तान (फारस)—यहाँ की गायें रूप, रंग एवं गुणों में सिन्धी गायों से मिलती-जुलती होती हैं। सिंगापुर, चीन, जापान आदि देशों में स्थानीय नस्ल के अतिरिक्त भारत की आलमबादी (मैसूरी) नस्ल की गायें भी पायी जाती हैं।

दूसरा अध्याय

विदेशी गो-जाति

संसार भर के सभी देश-देशान्तरों में दूध के लिए गायें पाली जाती हैं। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव-प्रदेशों पर, जहाँ निरन्तर बर्फ़ जमी रहने के कारण प्राणि-मात्र का रहना असम्भव है, उन्हीं शीत प्रधान प्रदेशों के सिवाय सब जगह दूध देनेवाले जानवर पाले जाते हैं।

योरुप की गाय—भारतीय गाय से आकृति और स्वभाव में कुछ भिन्न होती है। योरुप की गाय की पीठ—कन्धे से लेकर पूँछ तक—बिल्कुल सीधी होती है, किन्तु भारतीय गाय की पीठ ठाटी से नीची एवं पुट्ठों पर के हिस्से से कुछ गोलाकार होती हुई उठ जाती है। इन जातियों के अन्तर का वर्णन आगे किया जाता है—

विदेशी गाय	देशी गाय
१—पीठ सीधी होती है।	१—पीठ गोलाकार होती है।
२—कुल पसलियाँ २६ होती हैं।	२—कुल पसलियाँ २८ होती हैं।
३—ठाटी बिल्कुल नहीं होती।	३—ठाटी गायों के होती है और बैलों तथा साँड़ों के तो विशेष बड़ी होती है।
४—झूल नहीं होती है।	४—झूल होती है।
५—लम्बाई अधिक होती है।	५—लम्बाई साधारण होती है।
६—उँचाई कम होती है।	६—उँचाई अधिक होती है।
७—सींग छोटे होते हैं।	७—सींग प्रायः बड़े होते हैं।
८—कान छोटे होते हैं।	८—कान बड़े व नुकीले होते हैं।
९—पूँछ घनी चौंरीदार होती है।	९—पूँछ साधारण-चौंरीदार होती है।
१०—ऐन विशेष बड़ा व घुटनों तक होता है।	१०—ऐन साधारण होता है।
११—मुखाकृति भिन्न होती है।	११—मुखाकृति भिन्न एवं ममताभरी होती है।
१२—दूध में मक्खन की मात्रा ३·६ % होती है।	१२—दूध में मक्खन की मात्रा ४·६ % होती है।
१३—ब्याने का समय ३०० से ३१० दिन तक का होता है।	१३—ब्याने का समय २७० से २८३ दिन तक का होता है।
१४—रँभाने का स्वर दबा हुआ होता है।	१४—रँभाने का स्वर ऊँचा होता है।
१५—दूध अधिक देती है।	१५—दूध साधारण देती है।
१६—बैल परिश्रमी नहीं होते।	१६—बैल उपयोगी और परिश्रमी होते हैं।

सदियों से पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भाँति-भाँति के प्रयोगों द्वारा गायों की नस्ल को सुधारने

फ्रीजियन साँड़
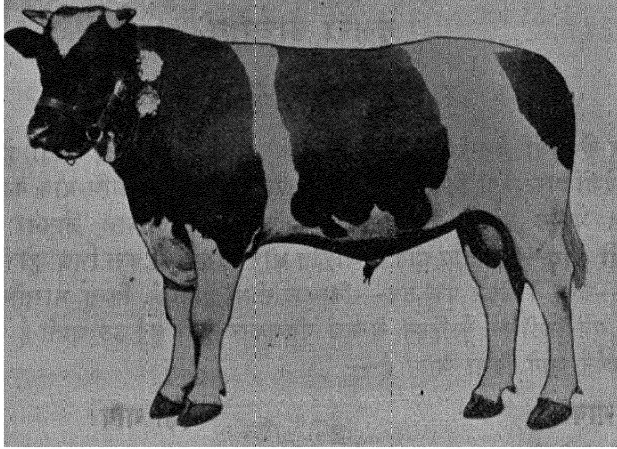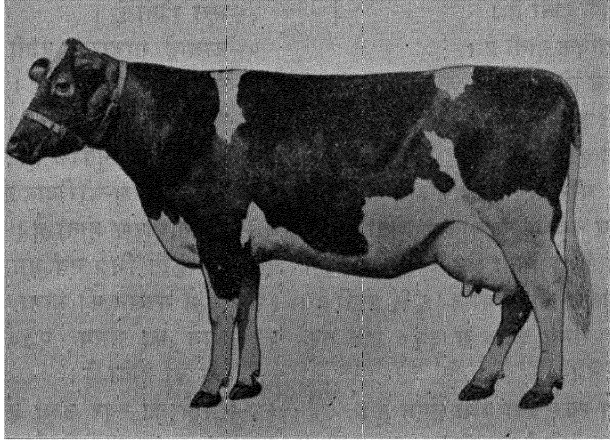
फ्रीजियन गाय

एवं उनमें इच्छित गुण और शक्ति को लाने का सतत प्रयत्न किया है। इसी वजह से वहाँ की गायें खूब दुधारू होती हैं।

हालैण्ड—यह कृषि-प्रधान देश है। यहाँ बहुतायत से गायें पाली जाती हैं। ये बहुत दूध देनेवाली होती हैं, क्योंकि इनके खिलाने-पिलाने और सेवा करने का विशेष ध्यान रक्खा जाता है। सारे संसार की गायों से यहाँ की गायें अधिक दुधारू होती हैं। यहाँ दूध बहुत होता है, इसलिए मक्खन, पनीर व दूध से बनी कई तरह की वस्तुएँ व्यापार के लिये देश-विदेशों में भेजी जाती हैं। हाल्स्टीन, फ्रीजियन, लेङ्कन-फील्ड, डचवेल्ट आदि गो-जातियाँ इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं। ये बड़े-बड़े आकार की, सुन्दर तथा शान्त होती हैं। ये एक ही ब्याँत में साधारणतः १००ऽ या १५०ऽ दूध देती हैं। किन्तु कोई-कोई तो २००ऽ तक दूध दे देती है। इँगलैण्ड की गायों में इस वंश का खून है। यहां गो-पालन बड़ी रुचि से किया जाता है।

बेलजियम की गायें—यहाँ की गो-जाति आकृति, रूप, रंग और गुणों में हालैण्ड की गायों से मिलती-जुलती है। इनमें भी कई उपजातियाँ हैं। ये बड़ी दुधारू होती हैं।

स्विटज़रलैण्ड—यहाँ की गायें बहुत सुन्दर एवं सुपालित होती हैं। इनका ऐन सुगठित होता है। इस देश को लोग योरुप का गो-गृह कहते हैं। आल्प्स पर्वत की तराई में गर्मी के दिनों में हरी दूब बहुतायत से होती है, जिसे ये गायें प्रसन्नता-पूर्वक चरती हैं। यहाँ का दूध, मक्खन, व दूध की बनी हुई चीजें उत्तम होती हैं।

डेनमार्क—यह स्थान भी दुधारू गायों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ से भी दूध की बनी हुई चीज़ें देश-विदेशों को भेजी जाती हैं। इन गायों में आलेनबर्ग तथा रेड-डेनिस नस्ल की गायें ज़्यादा अच्छी होती हैं। ये दूध-मक्खन खूब देती हैं। यहाँ के गोपालक घास और चारे का इन्तज़ाम बहुत ध्यान लगाकर करते हैं। इसलिए बरफ़ और ठंड के पड़ने पर भी गायों को भर-पेट साइलेज वग़ैरह के हरे चारे मिलते रहते हैं। यहाँ पर स्त्रियाँ ही विशेषरूप से गो-सेवा का कार्य करती हैं और अपनी गायों को खूब साफ़ व प्रसन्न रखती हैं।

इटली—यहाँ की गायें उपर्युक्त देशों की गायों से कम दूध देनेवाली होती हैं। इनमें कोई ख़ास भिन्न गुण नहीं पाये जाते, क्योंकि इनपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। यहाँ की गायें योरुप की ही जाति की किन्तु साधारण-शक्तिवाली होती हैं। कहीं-कहीं अच्छी गायें भी पायी जाती हैं।

फ्रांस और जर्मनी—यहाँ "नार्मन" जाति की गायें बहुतायत से पाली जाती हैं। इनके लाल रंग के ऊपर सफ़ेद धब्बे होते हैं और पैर पतले एवं लम्बे होते हैं। ये खूब दुधारू होती हैं। नार्मण्डी में अच्छी गोचर-भूमि है, इस कारण वहाँ की गायें विशेष हृष्ट-पुष्ट होती हैं।

इँगलैण्ड—यहाँ की गायों में कई तरह की उपजातियाँ एवं गुण हैं। इनमें जर्सी, एयर-शायर, शार्टहार्न और केरी आदि नस्लें विशेष दुधारू होती हैं।

अमेरिका—योरुप और भारत आदि देशों से उम्दा चुनी हुई नस्ल और गुणों वाली गायों और साँड़ों को लाकर यहाँ गोपालन किया जाता है। गोचरभूमि और चारे-दाने की प्रचुरता एवं वैज्ञानिकों के सहयोग से इनमें अच्छी शक्ति पैदा की गयी है।

जर्सी साँड़
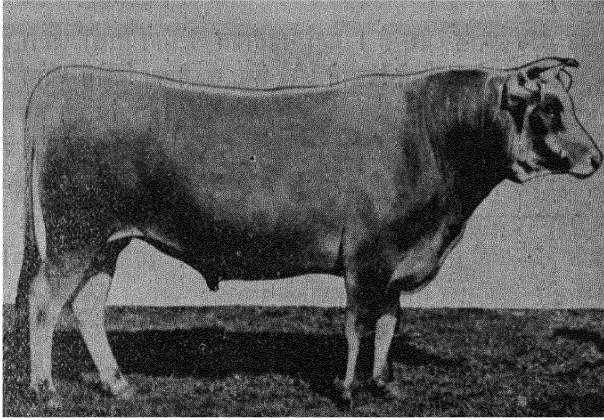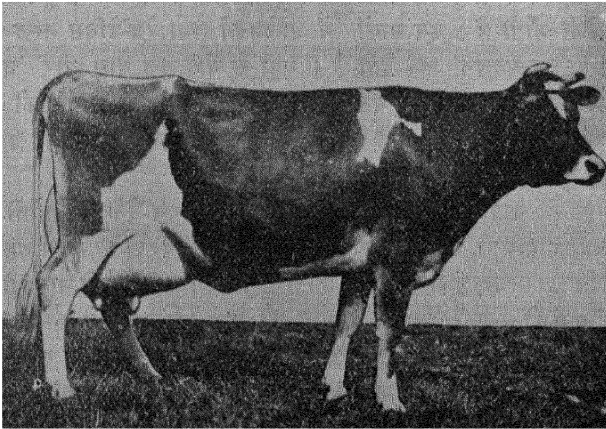
जर्सी गाय

मेक्सिको—अमेरिका और कनाडा की तरह यहाँ भी अच्छी गायें होती हैं। यहाँ के निवासी **साँड़** को खूब बलिष्ठ और मतवाला बनाकर उससे तलवार द्वारा युद्ध करने की बड़ी रुचि रखते थे।

कनाडा—यहाँ भी अमेरिका की तरह विदेशों से पशुओं को लाकर गो-पालन किया गया है। ख़ासकर इंगलैण्ड की जर्सी और गर्नसी नस्लें लायी गयी हैं। चारे-दाने के बाहुल्य एवं सतर्कता से पालने के कारण यहाँ पशु उत्कृष्ट होते हैं।

आस्ट्रेलिया—यहाँ की गायें बहुत उन्नत दशा में हैं। यहाँ बड़े-बड़े डेरी-फ़ार्म हैं। यहाँ से दूध के बने पनीर आदि कई तरह के पदार्थ व्यापार के लिए विदेशों में भेजे जाते हैं। यहाँ भारत और योरुप से गाय, एवं साँड़ लाये गये हैं।

अफ्रीका—यहाँ भारतीय ज़ेबू तथा योरोपीय बास्ट्रस दोनों ही वंशों की नस्लें पायी जाती हैं। यहाँ की गायें साधारणतया अच्छी दशा में हैं।

कविरैण्डों नामक प्रान्त में तेज़ दौड़नेवाले साँड़ों का बड़ा शौक़ है। पालक लोग बाज़ी वदकर अपने साँड़ों को दौड़ाते हैं।

अफ़ीका के घने जंगलों में 'आइलैण्ड' नाम के हिरन होते हैं। ये देखने में कुछ-कुछ गायों के-से दिखायी पड़ते हैं, परन्तु ये बड़े आकार के और बहुत बलिष्ठ होते हैं। इस जाति के पशु दुधारू नहीं होते।

विदेशी गो-पालन

यूरोप में बास (Bos) नाम के आदि-पशु से क्रमविकास के अनुसार यूरस तथा बॉस्ट्रस जातियों की उत्पत्ति हुई, और ये गायें सदियों से दूध देती आ रही हैं।

पाश्चात्य गायों की दूध देने की शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है। वहाँ के गो-पालक गायों की सेवा और लालन-पालन विधिवत् करते हैं। वे विज्ञान के सहारे उनकी नस्ल, चारे-दाने एवं स्वास्थ्य का प्रबन्ध करते रहते हैं। इसी कारण वहाँ की गो-जाति बहुत उन्नत दशा में हैं। वे लोग यद्यपि गो-मांस खाते हैं, तथापि गो के दूध के गुणों से भी वे भली-भाँति परिचित हैं।

बम्बई, मद्रास, पंजाब और काश्मीर आदि प्रान्तों में विलायत से गाय और साँड़ लाकर पाले गये थे, परन्तु विदेशी नस्ल यहाँ असफल सिद्ध रही। उन्हें यहाँ की गर्मी माफ़िक़ नहीं आती, कुछ बीमारियाँ—जैसे मुँह-पका, खुर-पका आदि—जल्दी हो जाती हैं और उनके बछड़े-बछिया यहाँ जल्दी मर जाते हैं। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि यदि अच्छी तरह देखभाल की जाय, तो विदेशी गायें यहाँ पनप सकती हैं।

भारतीय ज़ेबू और योरोपीय बॉस्ट्रस—इन दो बिल्कुल भिन्न जातियों के मिलान से पैदा हुई, पहली पीढ़ी की, नस्ल में दूध देने की शक्ति बढ़ी हुई होती है, क्योंकि उनमें मिश्रित शक्ति (Hybrid vigour) का प्रादुर्भाव हो जाता है; किन्तु पीढ़ी दर पीढ़ी यह शक्ति कम होती जाती है।

सर आर्थर ऑलवर (Sir. Aurthor Olver) का मत है कि विलायती गौ को भारत में लाना व्यर्थ और हानिकारक होगा, क्योंकि वैज्ञानिक खोजों द्वारा मालूम किया गया है कि—

(१) भारतीय-श्रेष्ठ गाय व साँड़ के चुनाव करते रहने से २५ वर्ष के भीतर ही जो शक्ति यहाँ की गाय में आ गयी थी, वह किसी योरोपीय गाय से कम नहीं थी।

(२) विदेशी ख़ूनवाली दोगली नस्ल यहाँ धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है।
(३) हर साल विलायती साँड़ ख़रीदने होंगे, इससे यहाँ का धन बाहर जायगा।
(४) इस मिश्रित-नस्ल के बछड़े खेती तथा गाड़ी में अच्छी तरह काम न कर सकेंगे।
(५) इस नस्ल के बछड़े-बछिया यहाँ कम समय तक जीवित रह पाते हैं, क्योंकि वे यहाँ जल्दी बीमार पड़ कर मर जाते हैं।
(६) इस नस्ल के पशु उष्ण-कटिबन्धी देशों में असफल रहते हैं।
(७) केवल अपने थोड़े से शौक़ के लिए देश का धन विदेशों में भेजना ठीक नहीं है। भारत में भारतीय गो-जाति की उन्नति सुविधा से हो सकती है। भली-भाँति लालन-पालन करके देशी गाय की शक्ति ख़ूब विकसित की जा सकती है, साथ ही इससे उत्पन्न बैल भी उपयोगी रहेंगे।

अतः विलायती पशुओं को केवल अनुसन्धान की दृष्टि से ही रखना हितकर है। उनके पालने में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना ज़रूरी है:—

१—विलायती गायों की समय-समय पर डाक्टरी परीक्षा करानी चाहिए, क्योंकि उनके रोग-ग्रस्त होने की संभावना अधिक रहती है।

२—जिस क़िस्म के चारे-दाने को खाने की आदत उन्हें उनके देश में हो, उसी के अनुसार उन्हें खिलाने का यहाँ भी प्रबन्ध करना चाहिए। यदि उसमें परिवर्तन करना हो, तो उन्हें नयी चीज़ों की आदत धीरे-धीरे डालनी चाहिए।

३—उनकी ख़ुराक के गुण-दोषों का अच्छी तरह से विश्लेषण कर लेना चाहिए।

४—सरसों की खली की तासीर गरम होती है, इस वजह से उन्हें माफ़िक़ नहीं आती। उनके लिए मूँगफली, अलसी, तिल या नारियल की खली ठीक रहती है।

५—उन्हें गर्मी बहुत सताती है, अतः गर्मियों में उनके रहने के स्थान को ठंडा रखना चाहिए।

६—सीलन-भरी जगह में वे बहुत घबराती हैं, इसलिए उनकी शाला बड़ी हवादार और साफ़ होनी चाहिए।

७—प्रत्येक गाय पर एक सेवक रखकर उसकी सेवा का ज़्यादा ख़्याल रखना चाहिए। उन गायों के रखने में ख़र्च भी अधिक पड़ेगा।

मिश्रित जाति—देशी हिसार, मान्टगुमरी और नीलोर आदि जातियों की गायें, विदेशी शार्ट-हार्न, एयर-शायर व जरसी साँड़ों से हरी करायी गयीं। इनसे उत्पन्न बछियाँ यद्यपि दुधारू हुईं, तथापि आगे की पीढ़ियों में यह तरक्क़ी क़ायम न रही। इनके बछड़े खेती और गाड़ी के काम में कमज़ोर पाये गये। यह पशु कम-उमरवाले और जल्दी बीमार होनेवाले सिद्ध हुए। इस कारण कई लोगों ने इस प्रकार की नस्ल पैदा करना बंद कर दिया है। यह नस्ल असफल रही।

कुछ लोगों का मत है कि बछड़े-बछियों में उनके पिता साँड़ के ही गुण-दोषों का अधिक असर पड़ता है, इस कारण देशी साँड़ और विलायती गाय की नस्ल यहाँ फिर भी पनप सकती है।

श्रेयस्कर तो यही है कि भारत में स्थानीय गायों की ही नस्ल सुधारी जाय।

तीसरा अध्याय

गायों के लक्षण

गाय का चुनाव––गाय बड़ी सतर्कता से ख़रीदनी चाहिए। गाय का वंश-परिचय, दूध देने की शक्ति, व्याँत-संख्या, आयु, एवं गुण-दोषों की पूरी जानकारी प्राप्त करके सुलक्षणी गाय ख़रीदनी चाहिए। कम-मूल्य में मिले, तो भी कुलक्षणी गाय को नहीं लेना चाहिए। गाय ख़रीदते समय देख लेना चाहिए कि––

१. **नस्ल**––वह कौन सी नस्ल की है। अपनी ज़रूरत व देश की जलवायु का ख़्याल करके दुग्ध-प्रधान या वत्स-प्रधान एकाङ्गी, अथवा सर्वाङ्गी नस्ल चुन ले। साधारण गोपालन के लिए सर्वाङ्गी जाति की दुधारू और क़ीमती एक गाय, सस्ती और कम दूध देनेवाली दो या तीन गायों के मुक़ाबले में, कहीं बेहतर रहेगी; क्योंकि––

(क)––सुपालित गाय का दूध ज़्यादा गुणवाला एवं पौष्टिक होगा। (ख) उसके दूध में मक्खन की मात्रा विशेष होगी। (ग) बड़ी नस्ल की गाय की ख़ुराक ज़्यादा होने पर भी दो-तीन साधारण गायों के चारे-दाने के ख़र्च से ऐसी एक गाय पर कम ही ख़र्च होगा। (घ) इसके बछड़े-बछिया अधिक मूल्य में बिक सकेंगे, और बैल ख़ूब उपयोगी तथा बछिया दुधारू गायें सिद्ध होंगी।

यदि साधारण नस्ल की गाय ख़रीदी जाय, तो उससे भी किसान को लाभ होगा। बड़ी गो-शालाओं में तो स्थानीय नस्लों का ही पालना ठीक है। विधिवत् सेवा करने से साधारण नस्ल में काफ़ी उन्नति हो सकेगी और देश में दूध बढ़ाया जा सकेगा।

२. **जलवायु**––अपने यहाँ से जहाँ की जलवायु में ज़्यादा अन्तर हो, इतने दूर-देश की गायों का ख़रीदना आमतौर पर उचित नहीं होगा। यदि काफ़ी सावधानी और सुप्रबन्ध किया जाय, तो दूर-देश की गायें, प्रयोग करने की दृष्टि से, मँगायी जा सकती हैं।

३. **ज्ञात-वंशज**––जिन गायों के माता-पिता तथा २-३ पीढ़ी पूर्व के पशुओं का वर्णन और माता की दूध देने की शक्ति का ज्ञान हो, उनका ख़रीदना सर्वोत्तम है; क्योंकि उनमें क्या गुण-दोष होंगे, इसका बहुत कुछ ज्ञान हो सकेगा। अतः पालक को सुविधा रहेगी। ऐसी गाय की नस्ल में वाञ्छित गुण शीघ्र ही प्रखर किये जा सकते हैं।

४. **असली नस्ल**––अपनी जाति के शुद्ध पशुओं का ख़रीदना बहुत अच्छा है, क्योंकि उनमें जातीय गुण पूरी-तौर से रहेंगे। ज्ञात-वंशज एवं शुद्ध-नस्लवाले पशु मूल्यवान और कम मिलने-वाले होते हैं। अधिकतर दोगली नस्ल की गायें और साँड़ ही सुविधा से मिलते हैं।

५. **ब्याँत**--अपनी आयु भर में गाय ८-१० या १२ बार तक ब्याती है। ओसर गाय के शरीर में गर्भ का विकास ऊपर से कम दिखायी पड़ता है, किन्तु दूसरे ब्याँत के बाद वह जल्दी खुलने लग जाती है। ओसर गाय की, प्रसव के समय, विशेष देखभाल करनी पड़ती है, और वह अपनी पूरी शक्ति-भर दूध भी नहीं दे पाती, अतः गाय दूसरे ब्याँत की तथा हाल ही की ब्यायी हुई लेनी चाहिए। चौथे-पाँचवें से ज़्यादा ब्याँत की गाय का ख़रीदना ठीक नहीं होता; क्योंकि इसके बाद वह केवल ५-६ बार ही और बिया पायेगी।

६. **आयु**--५-६ वर्ष से ज़्यादा उम्रवाली गाय का ख़रीदना ठीक नहीं होगा, क्योंकि बड़ी उम्र की होने पर वह ज़्यादा बार न ब्यायेगी।

७. **तूना**--जिस गाय को तूना अर्थात् बच्चा गिराने का संक्रामक-रोग हो चुका हो, उसे नहीं ख़रीदना चाहिए। क्योंकि सम्भव है कि उसके गर्भाशय में कोई विकार हमेशा के लिए आ गया हो और आइन्दा के ब्याँत में भी उसे वही व्याधि हो जाय।

८. **ओछी-गाय**--पूरे दिनों के उचित समय से पहिले ही ब्यायी हुई गाय को कभी न ख़रीदे; क्योंकि ऐसा बच्चा विशेष सावधानी से पालने पर ही जीवित रह सकेगा और यदि वह मर गया, तो गाय दूध देना बन्द कर देगी।

९. **ऐन**--गाय का ऐन सुडौल एवं भरा हुआ हो; दूध की नसें साफ़ दिखायी पड़नेवाली और चारों थन एक-से व समानान्तर पर होने चाहिए। कभी-कभी तीन थन की गाय भी काफ़ी दुधारू हो सकती है, किन्तु वह ज़्यादा-अच्छी नहीं मानी जाती।

उत्तम गाय के अवयवों की व्याख्या--गाय की पहचान उसके अवयवों को देख कर करनी चाहिए।

(१) रंग--सर्वाङ्ग-काली श्यामा एवं कपिला गाय सर्वोत्तम मानी जाती हैं। लाल, बादामी या चितकबरे रंगवाली गाय भी श्रेष्ठ मानी गयी है। सफ़ेद-मोतिया या भूरे आदि रंग की भी गायें अच्छी होती हैं।
(२) चर्म--पतला, चिकना और रेशम-से नर्म बालोंदार हो।
(३) ऊँचाई--जाति के अनुसार काफ़ी बड़े क़द की हो।
(४) लम्बाई--शरीर लम्बा और छाती चौड़ी होनी चाहिए।
(५) सिर--छोटा, मस्तक चौड़ा और गर्दन लम्बी व पतली हो, किन्तु सायवाल आदि जातियों के पशु भारी और छोटी गर्दनवाले होते हैं।
(६) सास्ना--भारी व झालरदार और ठाटी ख़ूब विकसित हो।
(७) सींग--छोटे और चिकने तथा जाति के अनुसार आकारवाले हों। कपिला गाय के सींग हिलते या नीचे की ओर झुके हुए और चपटे होते हैं।
(८) कान--उभरे हुए और बड़े हों, उनके भीतर की चमड़ी मुलायम व पीले रंग की हो।
(९) आँखें--साफ़, बड़ी, ममतामयी एवं स्निग्ध हों।
(१०) नाक--साफ़ हो और उससे पानी न बहता हो।

(११) ओठ––कोमल, सटेहुए एवं ताँबे के-से लाल रंग के हों।

(१२) दाँत––सफ़ेद मज़बूत एवं कीड़े-रहित हों।

(१३) जीभ––साधारण लम्बी, कुछ लाल-सी, मुलायम और काँटेरहित हो।

(१४) गला––साफ़, सुरीला और ऊँचे स्वरवाला हो।

(१५) पूँछ––पतली, काली चौंरीवाली और जाति के अनुसार लम्बी एवं ज़मीन को छूती हुई हो। सफ़ेद चौंरीवाला लक्षण किसी नस्ल में ही अच्छा किन्तु अधिकतर में दोष माना जाता है।

(१६) पुट्ठे––चौड़े, खुले हुए, स्थूल और ऊँचे हों।

गाय के हिस्से
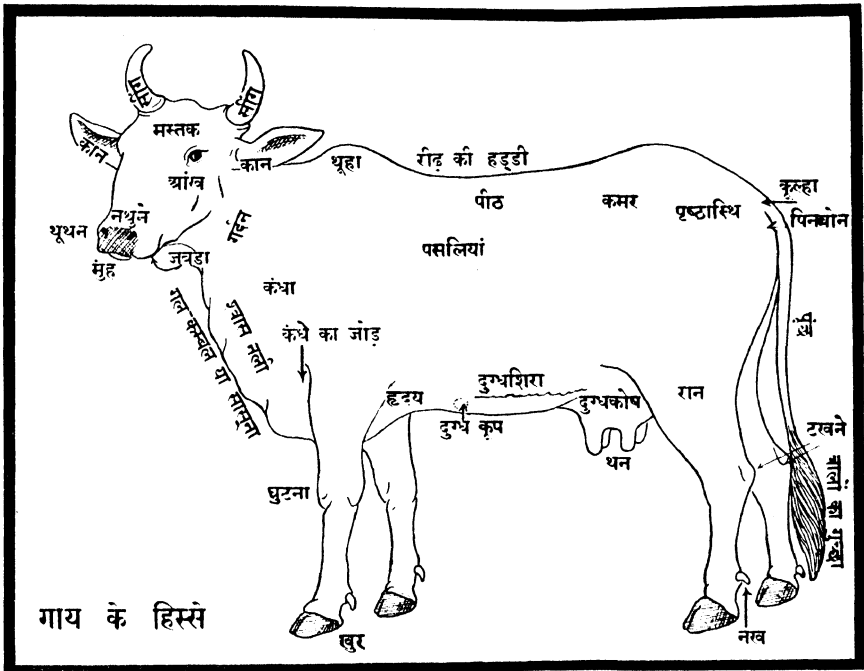
(१७) धुन्नी––(पेट के नीचे की चमड़ी) बड़ी, फैली हुई और मुलायम हो।

(१८) जाँघें––चौड़ी और फ़ासले पर हों।

(१९) पैर––सुडौल, मज़बूत एवं लम्बे हों, किन्तु चलते-वक्त आपस में न लगते हों।

(२०) खुर––सटे हुए, गोल, एवं मज़बत हों और इनके भीतर की चमडी पीली एवं मुलायम हो।

(२१) ऐन––खुला, चौकोर, चौड़ा तथा बड़ा हो। अगले पैरों की तरफ़ से, उभरी हुई रस्सी के आकार की, दूध की नसें ऐन की तरफ़ को आती दिखायी पड़ती हों।

(२२) थन––लम्बे, मुलायम, व दूर-दूर पर हों। चारों चूँचियाँ एक-सी और बड़ी हों।

(२३) शरीर––नीरोग और भरा हुआ, किन्तु मोटा न हो। मोटी गाय में केवल मांस ही ज़्यादा बढ़ जाता है, जिससे उसकी दूध देने की शक्ति कम हो जाती है।

(२४) पसमाव––(दूध का बहाव) एक-सा और मोटी धार का हो और बरतन से टकराकर घर-घर की-सी गम्भीर ध्वनि करनेवाला हो।

(२५) दूध––पीलीझलकवाला और गाढ़ा हो।

(२६) स्वभाव––गम्भीर, सीधा, प्रेममय, एवं उत्तेजना-रहित हो। वह ऐन के छूने पर क्रोध न करनेवाली और सबसे सरलतापूर्वक दुहालेनेवाली हो।

(२७) चाल––मन्द और सीधी हो।

(२८) ज्ञातवंशज––दुधारू गायों तथा बलिष्ठ साँड़ों के कुल की हो।

(२९) गुण––जातीय नस्ल के सभी गुण शुद्ध एवं पूरे हों।

(३०) रुचि––सभी क़िस्म के अच्छे चारे-दाने को रुचिपूर्वक खानेवाली हो, ईतर[१] न हो।

(३१) गर्भ––वह श्रेष्ठ साँड़ से गाभिन हुई हो।

उदर, कुक्षि, कूल्हे दोऊ, माथा, छाती, पीठ।
ऊँचे उभरे अंग छै, यह शुभ लच्छन दीठ॥
युगल नेत्र अरु कर्ण हों, विस्तृत और समान।
मस्तक ऊँचो लेखिये, सब बिधि उत्तम जान॥
गल-कम्बल गर्दन तथा, पूँछ रु थन दोउ रान।
लम्बे चौड़े अङ्ग लखि, उत्तम कहत सुजान॥

परीक्षण विधि––गाय को बग़ल से देखिये। अच्छी गाय की यह पहचान है कि :––

१––वह कन्धे से पूँछ तक ख़ूब लम्बी हो। पीठ सीधी व मज़बूत हो और लचकी हुई न हो। उसकी रीढ़ की हड्डी उठी हुई और रीढ़ की गुरियाँ स्पष्ट और पृथक् पृथक् मालूम होती हों। उसके पेट का घेरा बड़ा हो। पसलियाँ उभरी एवं फैली हुई हों, ताकि वह ख़ूब ख़ुराक खाकर दूध दे सके। दुधारू गाय विशेष भारी व मांसल नहीं होती। गाभिन गाय की देह भारी होती है। गाय की देह पर चारों ओर हाथ फेर कर देख ले कि उसकी चमड़ी पतली व मुलायम है या नहीं। स्वस्थ गाय की सास्ना पतली और झालरदार होती है।

२––गाय को पीठ पर से देखिये। उसके पुट्ठे चौड़े हों, ताकि उसका गर्भ भली-भाँति विकसित हो सके। थन बड़े और भारी हों, जाँघें भरी हुई व फ़ासले पर हों तथा धुन्नी फैली हुई हो।

---

[१] ईतर––जो अच्छी तरह चारा-दाना न खाती हो।

३—गाय को पेट के नीचे से झुककर देखिये। दुग्धवाहिनी नाड़ियाँ पुष्ट और लम्बी होंगी, तो थनों से दूध खूब आयेगा। दुधारू गाय की यह नाड़ियाँ विशेष विकसित होती हैं, इसलिए वे
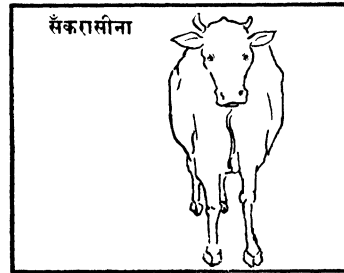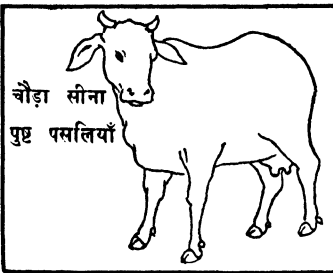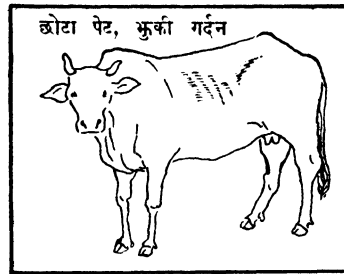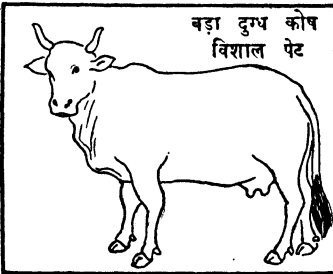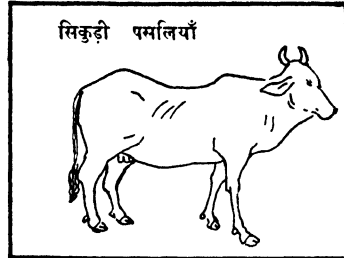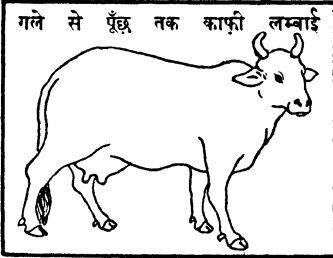
पेट के नीचे साफ़तौर पर दिखायी देंगी। थन पेट के बराबर में हों, ऐन ज़्यादा लटकता हुआ-सा न हो और चारों चूंचियाँ एक-सी लम्बी और भरी हुई हों।

४—गाय का पसमाव देखिये। ब्यायी हुई गाय को दुह कर उसके दूध के बहाव व ध्वनि का निरीक्षण कर ले। दूध का बहाव एक-सा और शीघ्र गतिवाला होना चाहिए।

५—गाय के बच्चे की नस्ल देख ले। उसका बछड़ा या बछिया बड़े आकार और बड़ी जाति का एवं श्रेष्ठ साँड़ से पैदा हुआ हो।

६—गाय के दाँतों को देखिये। गाय की आयु का अनुमान दाँतों या सींगों से ही लगाया जा सकता है।

इस तरह गाय की सभी बातें देखकर बाद को सावधानी से प्रत्येक गाय ख़रीदनी चाहिए।
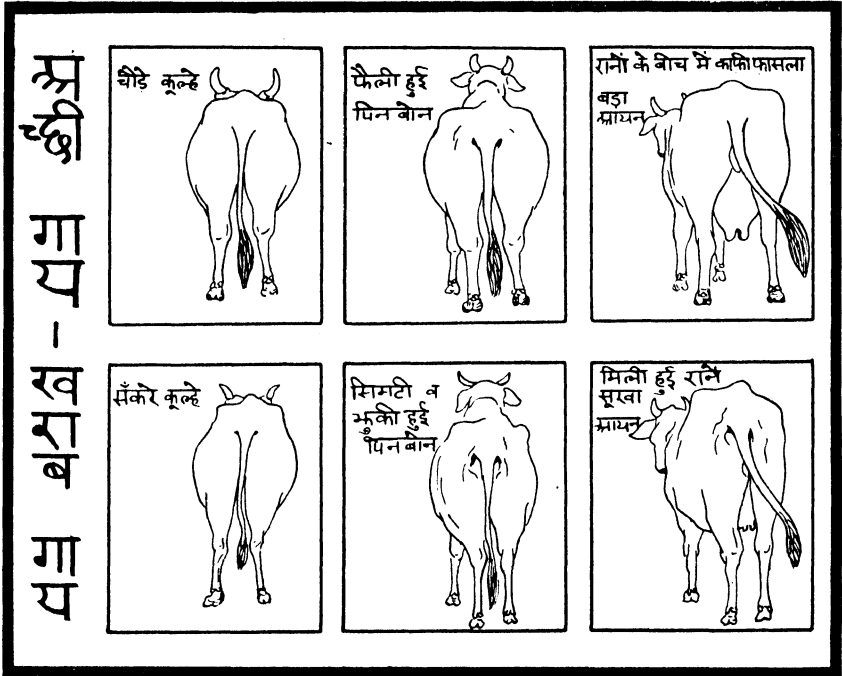
निकृष्ट गाय—जिसका रङ्ग गदहे का-सा मटमैला, चर्म मोटा, खुरदरा और क़द नाटा हो; शरीर की लम्बाई कम, सिर और मुँह अधिक लम्बा, गर्दन छोटी और झूल (सास्ना) हल्की हो; सींग नुकीले, आगे की ओर को झुके हुए या जाति के हिसाब से अधिक लम्बे या छोटे हों; कान दबे हुए तथा कड़े बालोंवाले और कनपटी चौड़ी हो।

आँखें जलती हुई-सी विशेष लाल या काले रङ्ग की हों; अथवा उनसे पानी बहता हो; पलकों की बिन्नियाँ सफ़ेद हों; नाक या आँखों से पानी बहता रहे और ओठ रूखे तथा फैले हुए हों।

दाँत कीड़े लगे हुए ढीले हों। संख्या में दस, सात या पाँच दाँत वाली गायें आमतौर पर बुरी मानी जाती हैं। जीभ काली, अधिक लम्बी, पतली और नुकीली तथा साँप की जीभ की तरह चंचल और निरन्तर हिलनेवाली हो।

रँभाने का स्वर दबा हुआ एवं कर्कश, पीठ और पसलियाँ धँसी हुई और पुट्ठे सिमटे हुए व नीचे हों। धुन्नी छोटी और कड़ी, जाँघें पास-पास और पैर आपस में लड़ते हों। चाल टेढ़ी हो, लँगड़ी, तरकनी[1] या निरन्तर हिलनेवाली हो। घुटने विशेष-पतले या विशेष-मोटे और खुर फैले हुए हों। खुरों से जमीन खोदनेवाली हो।

थन मोटे और बालोंवाले हों। ऐन हलका, ज़्यादा लटकता हुआ तथा तीन या उससे भी कम चूँचियोंवाला हो। बहुत कष्ट से दुहानेवाली, दुहते समय बैठ जानेवाली या दूध को चुरा लेनेवाली हो। दूध में हल्की नीली झलक हो। जो ज़्यादा क्रोधी स्वभाव की हो।

पूँछ छोटी व ऊँची हो और चौंरी कम बालोंवाली या जाति के विपरीत रङ्गवाली हो। शरीर की चमड़ी मोटी, खुरदरी व घने और कड़े रोएँवाली हो। जिसका शरीर दुबला, मोटा या कम-बेश अङ्गोंवाला हो। जो अज्ञात-कुल और हीन-पशुओं से पैदा हुई हो और जिसकी जाति का निश्चय न हो। जो इतरा के खानेवाली, मिट्टी चाटनेवाली अथवा कूड़ा सूँघनेवाली हो। जो रोगी, बाँझ और अन्य पशुओं को मारनेवाली हो।

इनमें से कोई भी लक्षण जिसके हों, ऐसी निकृष्ट और क्रोधी गाय को कभी न ख़रीदिये। इस प्रकार की गाय की नस्ल भी अच्छी नहीं होगी।

क्षय आदि कष्टसाध्य रोगों से ग्रस्त गाय को गो-शाला से हटा देना चाहिए। रोगी गाय को भी कभी न ले।

विशेषज्ञों के निरीक्षण में संभव है कि कुछ कम अच्छी गायों की भी नस्लें धीरे-धीरे सुधार ली जायँ।

सरकारी गो-शाला (Government Dairy Farm)से निकाली हुई गायों का खरीदना ठीक नहीं है, क्योंकि उन्हें कोई न कोई व्याधि रहती है।

एक गाय से १० बरस के भीतर ही कई बच्चे पैदा हो जायँगे, और पीढ़ी दर-पीढ़ी फैल कर नस्ल खूब बढ़ जायगी। अतः चाहे कुछ कीमत ज्यादा ही क्यों न देनी पड़े, बढ़िया गाय को ही खरीदना चाहिए। निकृष्ट गाय से कभी भी फ़ायदा न होगा।

---

[1] एक टांग झाड़कर चलनेवाली।

चौथा अध्याय

साँड़ों के लक्षण

चुनाव—गोशाला के लिये श्रेष्ठ, मूल्यवान एवं सर्वगुण-सम्पन्न साँड़ सावधानी और सतर्कता से खरीदना चाहिए। साँड़ ही शाला का प्राण एवं भविष्य है। साँड़ पर ही गायों के दूध-देने की शक्ति और आगे आनेवाली नस्ल निर्भर रहती है। एक ही साँड़ अनेक बछड़े और बछियों का पिता बनता है, और इस दृष्टि से वही शाला का प्रधान-पशु है। साधारण गाय की नस्ल भी बढ़िया साँड़ के संयोग से सुधारी जा सकती है।

साँड़ अच्छी गोशाला से ख़रीदा जा सकता है, या सरकारी फ़ार्म से बिना मूल्य दिये ही मँगाकर रक्खा जा सकता है। यह सरकारी साँड़ हर तीसरे या चौथे साल बदल दिया जाता है। मँगानेवाले से साँड़ की कोई क़ीमत नहीं ली जाती। केवल ३० रु० के लगभग राह-ख़र्च ही लिया जाता है। साँड़ के चुनाव में किफ़ायत कभी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उससे उत्पन्न बढ़िया नस्ल के बछड़े-बछिया क़ीमती सिद्ध होंगे; और इस प्रकार पहले ही साल में श्रेष्ठ-साँड़ की क़ीमत निकल आयेगी।

शाला में एक उत्तम साँड़ अवश्य होना चाहिए। साँड़ के न होने से गायों का सोया मारा जाता है। बार-बार गरम होने पर भी गाय यदि बर्धायी न जाय, तो वह निर्बल या मांसल हो जायगी और उसे फिर से गरम होने में समय भी लगेगा। देर से ब्याने पर गाय के दाने-चारे के लिए व्यर्थ ही ज़्यादा ख़र्च करना पड़ेगा और दूध भी देर में मिलेगा। शाला में साँड़ के न होने से गाय और पालक दोनों को हानि होगी।

पालक के पास केवल एक-दो गायें हों, तो भी किसी अच्छी गोशाला के सुपालित साँड़ से ही उनको हरी कराना चाहिए। इधर-उधर घूमते हुए, अज्ञात जाति एवं कुलवाले, रोगी, बुड्ढे और रक्षकरहित साँड़ से अपनी गाय को कदापि हरी न कराये।

साँड़ का लालन-पालन अन्य सब पशुओं से बढ़कर होना चाहिए। उत्तम साँड़ से गाभिन होने पर गाय में दूध देने की शक्ति बढ़ जायगी। ८२ सेर दूध देनेवाली गाय उत्तम साँड़ से गाभिन होकर ब्याने पर तीन-चार सेर तक दूध देने लगेगी, क्योंकि प्रकृति बड़े बच्चे के पोषण के लिए उसके शरीर में ज़्यादा दूध का संचार करायेगी,[1] ऐसा कुछ गोप-विशारदों का मत है।

---

[1] कुछ विशेषज्ञ यह कहते हैं कि अच्छे साँड़ के द्वारा आगामी नस्ल की दूध देने की शक्ति बढ़ायी जा सकती है, किन्तु वर्तमान गाय की नहीं।

बढ़िया साँड़ से उत्पन्न बछड़े एवं बछियाँ अपनी माँ से उन्नत होंगे। बछड़े बलवान और बछियाँ दुधारू सिद्ध होंगी। हर पीढ़ी के लिए एक गुणवान साँड़ का चुनाव करते रहने से नस्ल सुधरती रहेगी और गायों के दूध देने की शक्ति बढ़ती जायगी। यदि साँड़ बढ़िया न हो, तो बढ़िया नस्ल की दुधारू गाय भी हर-ब्याँत में कम दूध देने लगेगी और उसके बछड़े-बछिया उससे निर्बल होंगे।

यदि साँड़ और गाय दोनों ही उत्तम हों, तो नस्ल पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुधरती जायगी। इस विषय पर विशेष उल्लेख "प्रजनन-विज्ञान" नामक अध्याय में है। एक ही नस्ल के पशुओं में गाय की दूध देने की शक्ति विशेष-उत्तम, साथ ही खेती में उपयोगी, श्रेष्ठ एवं बलवान बैल नहीं मिल सकेंगे। अतएव पालक को जिन गुणों की विशेष आवश्यकता हो, उन्हीं गुणों में प्रधान जाति के साँड़ को चुनना चाहिए; जैसे :—

दुधारू बछियाँ चाहिए तो सायवाल, सिन्धी या थारपरकर जाति के।

लम्बे और ऊँचे बैल चाहिए तो काँकरेज और नागौरी जाति के।

साधारणतया, यदि काफ़ी दूध चाहिए और साथ ही अच्छे बैल भी चाहिए, तो हरियाना, गीर या अंगोल आदि जातियों के सांड़ का चुनाव करे। ऐसी सर्वाङ्गी नस्लों के साँड़ व स्थानीय नस्ल की गायें सबसे ज़्यादा उपयोगी होंगी।
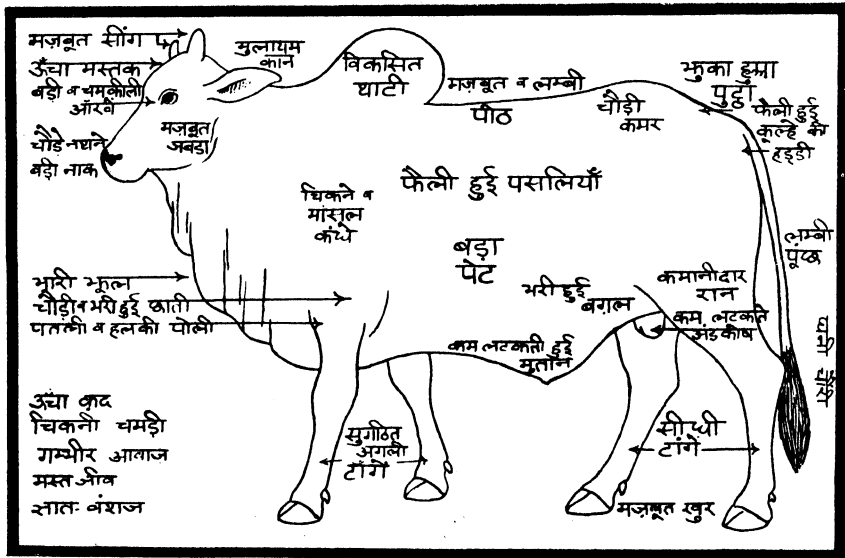
श्रेष्ठ साँड़ के लक्षण

अपनी आवश्यकता तथा प्रान्त की जलवायु और नस्ल का ख्याल करके उत्कृष्ट-जातीय-गुण-वाले साँड़ को दूर-देश से भी मँगाकर नस्ल सुधारी जा सकती है। स्थानीय पशु बढ़िया हों, तो

उनमें से ही श्रेष्ठ-लक्षणों-वाले, ज्ञात-बंशज, और यदि संभव हो तो ज्ञात-शक्ति-वाले, साँड़ को छाँट कर उससे गो-वंश को सुधारना चाहिए। हर हालत में साँड़ को गाय से बलवान, ऊँचे-आकार का और भारी होना चाहिए। आगे के लिए गो-जन्म-पत्र ज़रूर बना लेना चाहिए।

श्रेष्ठ साँड़ के लक्षण--

(१) **ज्ञात-वंशज**--साँड़ दुधारू गायों तथा उत्तम साँड़ों के कुल का हो। जिस साँड़ की माता, दादी, नानी भी दुधारू गायें रही हों और जिसके पिता, दादा एवं नाना सद्गुणी साँड़ सिद्ध हो चुके हों, वही साँड़ सर्व-श्रेष्ठ होता है। कम से कम साँड़ के माता-पिता को तो सद्गुणी होना ही चाहिए।

ऐसे बढ़िया साँड़ से गाभिन हुई गाय अधिक दूध देगी और उसकी बछिया दुधारू गाय एवं बछड़ा बढ़िया साँड़ बनेगा।

जहाँ तक संभव हो, साँड़ के माता-पिता के गुण, दोष, जाति और शक्ति का पता लगाकर शाला के जन्मपत्र में उसके पूरे इतिहास को लिख ले। इससे आगामी नस्ल को सुधारने व किसी विशेष-शक्ति को बढाने में सहायता मिलेगी।

(२) **शुद्ध नस्ल**--साँड़ अपनी जाति के शुद्ध गुण एवं कुल वाला होना चाहिए। विभिन्न-जाति के मिलान से पैदा हुई दोग़ली नस्लवाले पशु के शरीरमें नाना-प्रकार के गुणोंवाले क्रोमोसोम्स (Chromosomes) का समावेश हो जाता है। गर्भाधान के समय उसमें जो गुण प्रभावशाली होंगे, वे ही उसकी सन्तति में आजायँगे। असली-नस्ल-वाले साँड़ में अधिकतर जाति-विशेष के ही गुण जाग्रत और प्रभावशाली रहेंगे। अतः अधिकांश में वह उन्हीं गुणों का संचार अपनी संतति में करेगा। ऐसे साँड़ से होनेवाली इस नस्ल के बछड़े-बछियों की शक्ति का बहुत-कुछ सही अनुमान पहले से ही हो सकेगा। यद्यपि शुद्ध-नस्ल का साँड़ मूल्यवान होता है, तथापि वही उत्तम और उपयोगी है। अच्छे बछड़े एवं बछियों के द्वारा साँड का मूल्य निकल आयेगा।

(३) **आयु**--साँड़ की उम्र ३ वर्ष से कम और ९-१० वर्ष से ज़्यादा नहीं होनी चाहिए। पूर्ण युवा साँड़ के चार पक्के-दाँत होते हैं। कच्ची-उमर वाले साँड़ को सावधानी से पालना और गाय के समागम से बचाना चाहिए, अन्यथा बढ़िया होनेवाला साँड़ भी क्षीण हो जायगा। थोड़ी उम्र-वाले या बुड्ढे साँड़ की सन्तति दुर्बल, अल्पायु और क्षीण होगी।

३½ वर्ष से ९ वर्ष तक की उम्र का साँड़ उत्तम होता है।

(४) **अवधि**--४ वर्ष से अधिक समय तक एक साँड़ का उसी गोशाला में रहना अच्छा नहीं है। चार वर्ष के भीतर इस साँड़ से उत्पन्न बछिया तीन वर्ष की होकर गर्भ धारण करने योग्य हो जायगी। अतः इसी साँड़ के संयोग से उसे बचाना चाहिए। निकटतम सकुटुम्बी-संयोग (In-breeding) और सवर्गीय-संयोग (Line-breeding) विशेषज्ञों के निरीक्षण में ही फलदायी हो सकते हैं। साधारण गो-पालक के लिए हर-पीढ़ी में नये ख़ून का संचार ही वाञ्छनीय रहेगा। प्रजनन-विज्ञान में इन संयोगों की स्पष्ट व्याख्या की गयी है।

चार वर्ष के बाद गोपालक को अपना साँड़ किसी दूसरी गोशाला के साँड़ स बदल लेना या बेच देना चाहिए, क्योंकि नये ख़ून का संचार होते रहने से एक ही पशु में माता-पिता के कुछ दोष-विशेषों के इकट्ठा होने का अंदेशा न रहेगा और शाला की नस्ल भी नये ख़ून के संयोग से तरक्क़ी करती जायगी।

एक गोशाला में दो साँड़ों के रखने का प्रबन्ध हो सके, तो चार वर्ष के बाद भी नस्ल के बढ़ाने में सुविधा रहेगी और साँड़ बदलने नहीं पड़ेंगे।

(५) **संयोग**—एक साँड़ से सप्ताह में एक बार एक गाय से अधिक गायें हरी नहीं करानी चाहिए, नहीं तो वह कमज़ोर हो जायगा। रोगी-गाय के समागम से भी उसे बचाना चाहिए। शाला की हर ४०-५० गायों के पीछे एक साँड़ का होना ज़रूरी है। आजकल वैज्ञानिक लोग एक श्रेष्ठ, एवं ज्ञात-शक्ति-वाले साँड़ के वीर्य्य का इंजेक्शन बनाकर गाय के ऋतुमती होने पर उसे लगा देते हैं। इस प्रकार एक ही साँड़ के वीर्य्य से बहुत सी गायें गाभिन हो सकती हैं। (देखिये प्रजनन-विज्ञान)

(६) **परिचर्या**—साँड़ को गर्मियों में यदा-कदा घी और पिसी हुई काली मिरच पिलानी चाहिए। जाड़ों में उसे यदि अधिक शक्तिमान बनाने की आवश्यकता हो, तो सरसों के पाव-भर तेल में मुर्ग़ी के दो अंडों को फेंटकर पिलाया जा सकता है। गाय से संयोग कराने के बाद साँड़ को पौष्टिक चारा, दाना व गुड़ ज़रूर खिलाना चाहिए।

ऋतु के अनुसार साँड़ को स्नान कराना और उस पर ब्रुश फेरना चाहिए। गर्मी के मौसम में उसे रोज़ ही नदी, तालाब या शाला में नहलाना चाहिए। जाड़ों में कभी-कभी धूप में नहलाकर पोंछ देना ठीक रहता है। उसका सारा शरीर ख़ूब सुखा देना चाहिए। साँड़ को सर्वदा स्वच्छ एवं निरोग रखना चाहिए; उसके शरीर पर किलनी, बग्घी आदि जन्तु क़तई न रहने पायें।

(७) **व्यवहार**—साँड़ को छेड़ना व चिढ़ाना नहीं चाहिए, वरना वह भयंकर बदला लेगा। वह स्वतंत्रजीवी है, और स्वच्छन्दता को पसंद करता है। अपनी गोशाला से बाहर जाने पर वह स्वतः ही लौट आयेगा। आवश्यकता पड़ने पर नाथ डालकर दो-चार दिन तक वह बाँधकर रक्खा जा सकता है। अपने परिचित पालक या सेवा करनेवाले ग्वाले के सिवाय वह अन्य किसी के क़ाबू में कदापि नहीं आयेगा।

(८) **परिश्रम**—साँड़ को हमेशा बन्द रखकर ज़्यादा-भारी, मोटा और आलसी नहीं बनाना चाहिए। उसके लिए भी घूमना-फिरना और स्वतन्त्र होकर घास चरना बहुत ज़रूरी है। साँड़ से कभी-कभी थोड़ी-सी मेहनत भी करायी जा सकती है, किन्तु उसे थकाना या परेशान करना ठीक नहीं है।

(९) शरीर के अवयव—

रंग—जाति के अनुसार काला, लाल, चितकबरा या सफ़ेद और सुन्दर हो।

चर्म—पतला, चिकना और रेशम-से नरम-बालों-वाला हो।

क़द—ऊँचा, लम्बा, सुगठित और भारी हो।

सिर—लम्बा; माथा चौड़ा; और गर्दन भारी हो।

झूल—मोटी एवं भारी, झालरदार; सींग छोटे और गुट्ठल; तथा कान बड़े हों।

दृष्टि—तेज़, आँखें लाल रंग की; और दाँत तीखे व मज़बूत हों।

ठाटी—ऊँची, भारी, एवं चलते समय हिलनेवाली; तथा सीना चौड़ा हो।

कन्धे—ऊँचे; पुट्ठे चौड़े; और पीठ लम्बी हो।

पूँछ—सीधी, मोटी, घनी-चौंरीदार और ज़मीन को छूती हुई लम्बी हो।

पैर—गठीले व मज़बूत, नाभि लम्बी, और मुतान लटकता हुआ किन्तु ढीला न हो।

रँभाना—मेघ के समान गम्भीर और स्वभाव शान्त, किन्तु स्वतन्त्र हो। वह छोटे बछड़े-बछियों से चिढ़नेवाला न हो।

शेष अवयव उत्तम गाय के समान हों।

(१०) पौराणिक-विधि के अनुसार साँड़ों की जातिव्याख्या—

१. **श्रेष्ठ**—वह है, जिसके सींगों के आगे का भाग और नेत्र तो लाल रंग के हों, किन्तु शेष शरीर सफ़ेद रंग का; खुर चिकने व कोमल; मस्तक चौड़ा तथा गर्दन ऊँची हो। रोकने पर वह दाहिनी ओर घूम जानेवाला हो।

२. **विचित्र-सिद्धिदायक**—जो ध्वजा, पताका एवं शक्ति के चिह्नों-वाला हो।

३. **भाग्यवर्धक**—जिसके कमल की आकृति के चिह्न या धब्बे हों।

४. **नील-वृषभ**—जिसकी टाँगें, मुँह और पूँछ सफ़ेद रंग के किन्तु शेष शरीर लाख के रंग का हो, और आगे का धड़ उभरा हुआ तथा पूँछ मोटी एवं ज़मीन को छूती हुई हो। ऐसे लक्षणों वाले साँड़ को छोड़ने से पितरों की विशेष तृप्ति होती है, ऐसा माना जाता है।

५. **नन्दी-मुख**—जिसका कानों तक मुँह सफ़ेद रंग का हो और शेष शरीर लाल रंग का हो।

६. **समुद्रक**—जिसकी केवल पीठ या पेट ही सफ़ेद रंग का हो और शेष शरीर काले, पीले या लाल रंग का हो।

७. **धन्य**—जो चितकबरा हो।

८. **करट**—जिसके दो या सभी पैर सफ़ेद हों और शेष शरीर पीले रंग का हो।

९. **निकृष्ट**—वह है, जिसके तालु, ओठ एवं मुँह काले रंग के हों; सींग और खुर खुरदरे हों; क़द नाटा और ठिंगना हो; रंग गीधका-सा भूरा, या कौए-का-सा काला हो। आँख कानी, भेंड़ी या चञ्चल हों। जो रोगी, निर्बल या बूढ़ा हो; जिसके पैर बराबर न पड़ते हों; जो अज्ञात जाति और वंश का हो और जिसका कोई संरक्षक न हो; ऐसे दोषयुक्त साँड़ को गोशाला के पास भी नहीं आने देना चाहिए।

हीन साँड़—रद्दी साँड़ गोवंश के लिए एक अभिशाप है। अतएव हीन-साँड़ को बधिया कराकर उससे बैल की तरह काम लेना चाहिए। दोषयुक्त एक साँड़ से कई गायों की नस्ल खराब

हो जायगी, और निर्बल साँड़ से गाभिन हुई गाय ब्याने पर कम दूध देगी, ऐसा कुछ लोगों का मत है। हीन साँड़ से गायों को सदैव बचाना चाहिए। ऐसे साँड़ को गायों के पास भूलकर भी न आने दे।

साँड़ का लालन-पालन—गोशाला में वाञ्छित-गुणों और श्रेष्ठ लक्षणोंवाले गाय व साँड़ हों, तो उन्हीं के बछड़ों में से एक बछड़े को छाँटकर साँड़ बनाना चाहिए। स्वतः की शाला में उत्पन्न बछड़े के माता-पिता के गुण-दोषों का पूरा-पूरा बोध होने से संरक्षक को अपने भावी साँड़ की शक्ति का बहुत कुछ सही अनुमान हो सकेगा।

यदि दो साँड़ों के रखने का प्रबन्ध हो सके, तो आगे चलकर नस्ल को बढ़ाने और बछड़ों को साँड़ बनाने में सुभीता रहेगा। साथ ही साँड़-बदलने की फ़िक्र भी न करनी पड़ेगी। नयी नस्ल के सब बछड़े-बछिया एक ही साँड़ के हों, तो इनमें से चुनकर बनाया हुआ साँड़ इस शाला में उपयोगी नहीं होगा, क्योंकि वे सभी गायें उसकी आधी-बहिनें होंगी। ऐसी परिस्थिति में अपना साँड़ दूसरी शाला के साँड़ से बदल लेना चाहिए।

बड़ी गोशालावालों को हर दूसरे साल, दो भिन्न-वंश के श्रेष्ठ बछड़ों को छाँटकर साँड़ बनाते-रहना चाहिए। यह बछड़े जब तक पूर्ण-युवा होंगे, तब तक पहलेवाले साँड़ों के बदलने का समय आ जायगा।

सर्वाङ्ग-सुन्दर, स्वस्थ, शुभ-लक्षणोंवाले और अच्छी नस्ल के बछड़े को ही साँड़ बनाना चाहिए। उसकी बचपन से ही विशेष-अच्छी शुश्रूषा करके उसे निरोग और सुपोषित रखना चाहिए।

१—ऐसे बछड़े को अपनी माँ का दूध भरपेट पीने देना चाहिए।

२—वह जब घास खाने योग्य हो जाय, तब उसे अच्छी जाति के चारे व दाने देने चाहिए। ख़ासकर हरी-दूब या हरी-चरी और चने के महीन-दाने की सानी देना ठीक रहेगा।

३—लगभग ८ या ९ महीने तक के बछड़े को खली नहीं देनी चाहिए।

४—सप्ताह में एक बार उसे पावभर सरसों के तेल में थोड़ी सी हल्दी और चुटकीभर नमक मिलाकर देने से उसका पेट साफ़ रहेगा।

५—सेंधानमक का ढेला चाटने के लिए उसके सामने रक्खा रहने देना चाहिए।

६—थोड़ी सी राँधी-हुई दाल, तरकारी और रोटी भी, यदि मन हो तो, खिलायी जा सकती है।

७—जाड़ों में गुड़ खिलाना अच्छा रहता है। हरा चारा तो ज़रूर ही देते रहना चाहिए।

८—लगभग सालभर की आयु के होने पर उसे अँकुराये हुए भीगे चनों को थोड़ा-सा नमक मिलाकर देना गुणकारी होता है। अँकुराये हुए अनाज में विटामिन "इ" विशेषरूप से प्रस्फुटित हो जाता है, जो प्रजनन-शक्ति पर अच्छा प्रभाव डालता है।

९—उसे अँकुराये हुए ज्वार आदि के दानों का देना भी हितकर है; किन्तु बिनौला न खिलाये।

१०—यदा-कदा उरद की दाल को उबालकर खिलाना भी पौष्टिक होता है।

११——उसके चरने के लिए अच्छी भूमि का प्रबन्ध होना चाहिए और घुमा-फिराकर तथा खुली एवं साफ़ हवा में रखकर उसे पुष्ट रखना चाहिए।

साँड़ की ख़ुराक——पशु के डील-डौल और प्रकृति के अनुसार उसकी ख़ुराक खाने की क्षमता भिन्न-भिन्न होती है। चारे और दाने की जाति के अनुसार भी, दी जानेवाली मात्रा में, अन्तर कर देना चाहिए। इसका स्पष्ट विवरण "चारे-दाने" में लिखा गया है। एक पूर्ण साँड़ की प्रतिदिन की औसतन ख़ुराक निम्नलिखित होगी:——

दाना चने का और भूसी गेहूँ की मिली हुई	ऽ२॥
खली सरसों की या अलसी की	ऽ१।
नमक	ऽ-
हरी-दूब या हरी-चरी	॥ऽ

सूखा-भूसा कम वजन में देना होगा।

पाँचवाँ अध्याय

बैलों के लक्षण

उत्तम बैल के बहुत-कुछ गुण प्राय: साँड़ के सदृश ही होते हैं। साँड़ कुछ आलसी, भारी बदन का और मन्द-गतिवाला होता है, किन्तु बैल को तेज़, गठीले एवं फुर्तीले शरीर का होना चाहिए।

बैलों से हल जोतने का कठिन काम लिया जाता है, इसलिए उन्हें दिन में दो बार भरपेट सानी देनी चाहिए; किन्तु यदि उनसे अधिक काम लिया जाय तो सबेरे, दोपहर और शाम को—तीन बार—सानी खिलानी चाहिए।

विशेष परिश्रम के पहले या बाद तुरन्त ही बैलों को सानी न खिलाये। ख़ुराक खिलाने के बाद घंटे-भर तक उसे आराम कर लेने दे। बैलों को घुमाने-फिराने की विशेष आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे मेहनत का काम काफ़ी कर लेते हैं। उन्हें नहलाकर साफ़ रक्खे और उनके किलनी आदि न होने दे।

३ वर्ष से ५ वर्ष तक की आयु-वाले बैलकी क़ीमत अधिक से अधिक होगी; क्योंकि इस समय तक वह पूर्ण-युवा और काम करने योग्य हो जायगा।

बधिया करना—बछड़े को सालभर की उम्र के आस-पास का देखकर बधिया कराना चाहिए। यह संस्कार जाड़ों में ही कराना अच्छा होता है, ताकि घाव जल्दी भर जाय। बहुत छोटी उमर में बधिया कराने से यद्यपि कम तकलीफ़ होती है, तथापि बछड़े भर-पूर बढ़ नहीं पाते और वे कमज़ोर रह जाते हैं। ज़्यादा उम्र के हो जाने पर उन्हें बहुत तकलीफ़ होगी।

बधिया करने पर बछड़े के शरीर में बहुत परिवर्तन होते हैं। कुछ समय तक वे निर्बल तथा गाय के सदृश आकृतिवाले हो जाते हैं, किन्तु घाव के ठीक हो जाने पर वे अच्छी तरह फिर बढ़ने लगते हैं। उनका वीर्य क्षीण नहीं होता, इस कारण वे दीर्घ-जीवी, बलिष्ठ और ऊँचे क़द के होते हैं।

पशु-चिकित्सक (वेटेरनरी डाक्टर) द्वारा बछड़े को बधिया-कराना चाहिए, ताकि उन्हें तकलीफ़ कम हो। उसके घाव को फिनायल पड़े हुए पानी से २-३ बार धोता रहे और मक्खियों से भी बचाये। पीसीहुई हल्दी कों सरसों के तेल में मिलाकर घाव पर लगाना लाभदायी होता है।

बधिया करने के बाद बछड़े को ५-७ दिनतक दाना या खली न खिलाये, उसे केवल हरी दूब या चरी खिलानी चाहिये। फिर कुछ दिनों तक सरसों के तेल से चुपड़ी हुई चने की रोटी ख़िलाये। **इससे उसकी शक्ति ख़ूब बढ़ेगी।**

बधिया करने के कई तरीक़े होते हैं :—

१—**बर्डिजो कैस्ट्रेटर**—नाम की सँड़सी से बछड़े के अंडकोष के ऊपर की नसों को दो बार दबाकर छोड़ देते हैं। दबने के कारण नसें टूट जाती हैं, जिससे रक्त का बहाव कम हो जाता है और अंडकोष शनैः शनैः सूखने लगते हैं। इस क्रिया के बाद उस अंग को ठंडे पानी से धोकर उस पर टिंचर-आइडीन लगा दिया जाता है।

२—बछड़े के अंडकोषों को हँसिया से काट देते हैं।

३—बछड़े के अंडकोषों को किसी कड़ी चीज़ पर रखकर किसी दूसरी अन्य कड़ी चीज़ से कुचल देते हैं। इसके लिये लकड़ी, पत्थर, लोहा आदि काम में लाये जाते हैं। इन पिछले दोनों तरीक़ों से पशु को तकलीफ़ बहुत होती है, और कभी-कभी उसके घाव हो जाता है।

बछड़ों का लालन-पालन—बैल बननेवाले बछड़ों को ग्वाले अधिकतर केवल चराई पर ही रखते हैं, किन्तु गोचर-भूमि का प्रबन्ध अच्छी तरह नहीं करते। स्मरण रहे कि पशु को भर-पेट खिलाने से आर्थिक हानि कभी नहीं होगी, क्योंकि वह बड़ा होकर अपने पोषण से दुगुने मूल्य में बिक सकेगा। सुफल पाने के लिए हर काम में पहले मेहनत करना लाज़िमी है।

कम से कम महीने-भर तक बछड़े को अपनी माँ का काफ़ी दूध पीने देना चाहिए, ताकि वह बलिष्ठ बन सके। महीने-भर बाद वह थोड़ी-थोड़ी हरी दूब खाने लगेगा और केवल गाय के दूध पर ही निर्भर न रहेगा।

दुहने के बाद बछड़े को कुछ समय तक गाय के पास ही रहने देना चाहिए। बच्चे को चाटने व दुलारने से गाय व बच्चे दोनों को ही तृप्ति मिलती है।

दूध पी लेने के बाद ही बछड़े को सानी खिलाये। तीन महीने की उम्र के होने पर उसको हरी दूब या चरी की कुट्टी में दाना मिलाकर खिलाना शुरू कर दे। कम-उम्र-वाले बछड़े को खली नहीं देनी चाहिए। चूनी-भूसीवाले चने, उरद और मसूर की दाल के दानों में हड्डी को पोषण करनेवाले फास्फोरस-द्रव्य होते हैं। गेहूँ, चना या ज्वार का दलिया भी उबालकर खिलाया जा सकता है।

छोटे बछड़ों को महीने में दो तीन बार ‌ऽ= गुड़, ऽ०। नमक और ऽ०— गन्धक, इन सब को मिलाकर खिलाये, या कभी-कभी तेल में हल्दी मिलाकर पिलाये। इससे उनका पेट साफ़ रहता है और शक्ति बढ़ती है।

सानी में नमक ज़रूर मिलाना चाहिए। बछड़ों के चाटने के लिए सेंधा नमक का ढेला हमेशा सामने रक्खा रहने देना चाहिए। खनिज-पदार्थों की कमी होने से वे मिट्टी चाटने लगते हैं।

बछड़े की ख़ूराक उम्र के साथ-साथ बढ़ती जायगी। लगभग डेढ़ वर्ष की उम्र के होने तक वह पूरी ख़ुराक खाने लगेगा।

पशुओं को हमेशा साफ़ पानी पिलाना चाहिए और ऋतु के अनुकूल स्नान भी कराना चाहिए। रीठे या नीम के पत्तों को डालकर उबाले हुए पानी से नहलाया जाय, तो "रुज" आदि कीटाणु न होने पायेंगे।

बछड़े को बाँधकर संकुचित और सीलन-भरे बन्द स्थानों में नहीं रखना चाहिए। बचपन से ही स्वतन्त्रता-पूर्वक घूमने से उसके अवयव पुष्ट होते हैं।

बछड़े-बछियों को गायों से अलग दिन-भर चराने का प्रबन्ध करना हितकर होगा, क्योंकि चरने व घूमने से वे तृप्त और स्वस्थ रहेंगे। नियमित कार्यक्रम हो, तो बछड़े स्वतः ही शाला से निकल-कर स्थान-विशेष पर चले जायंगे और फिर उसी प्रकार लौट भी आयेंगे।

जाड़ों में बछड़ों को ठंड से बचाने के हेतु झूल का प्रबन्ध करना चाहिए। ज़मीन पर सूखे पत्तों को बिछा देने से भी उन्हें सर्दी नहीं लगती। लापरवाही से वे ठंड खाकर मर भी जाते हैं। बछड़ों को मज़बूत व फुर्तीला बनाए। बछियों के सदृश उनपर हाथ फेरकर उन्हें नम्र नहीं बनाना चाहिए।

बछड़ों की जन्मतिथि, नस्ल, लम्बाई, चौड़ाई और बधिया करने की तिथि एवं तरीक़ा, इन सभी का विवरण एक पुस्तक में लिखा रहना लाभकारी होता है।

उत्तम लक्षण—सीना और माथा चौड़ा, आँखें बड़ी तथा नाक छोटी एवं चिकनी हो। पुट्ठे और घुटनों के जोड़ मज़बूत हों, बाल नरम और पूँछ पिछले घुटनों से ऊँची हो। गर्दन जितनी छोटी और मोटी होगी, उतना ही वह शक्तिशाली होगा। यदि खुरों से लेकर घुटनों तक की लम्बाई अधिक हो और फिर पैर भी मज़बूत हों, तो वह तेज़ चलनेवाला होगा।

पौराणिक विधि के अनुसार बैलों की जातियाँ—

सुगत—वे हैं जिनके ओठ कोमल, सटे-हुए, एवं ताँबे के समान लाल रंग के हों; झूल हल्की; कान पतले; सींग ऊँचे; पुट्ठे एवं कमर कृश; पिंडलियाँ उभरी हुई; छाती चौड़ी; टाटी ऊँची; खुर सटे और कुछ ललाई लिये हुए; चमड़ी चिकनी; पूँछ पतली और छोटी हो; और जो चलते समय ज़ोर-ज़ोर से साँस लेनेवाले हों।

हंस—जिनका रंग सफ़ेद, आँखें पीली, सींग ताँबे के रंग के, और मुँह बड़ा हो।

प्रशस्त—जिनके बायीं ओर वामावर्त या दाहिनी ओर दक्षिणावर्त हो, अथवा दाहिनी ओर फूल के-से चिह्न हों तथा खुर सटे हुए हों।

भाग्य-वर्धक—आँखें लाल, कमर ताँबे के रंग की और शेष शरीर चितकबरा हो।

अशुभ लक्षण—जिसकी पिछली टाँगों के पास का पेट तथा कनपटी बहुत-सी नसों से भरी हुई, छाती पतली, आँखें बिलावकी-सी, ओंठ, जीभ व तालु काले रंग के हों और जो चलते समय ज़ोर-ज़ोर से साँस न लेता हो।

अत्यन्त निकृष्ट—जिसके ललाट की हड्डी, सींग और गोबर मोटा हो तथा पेट का रंग सफ़ेद और शेष शरीर काले रंग का हो।

बैल ख़रीदने के पहले उसकी अच्छी तरह परीक्षा कर लेनी चाहिए। पशु सद्गुणी ही लेना चाहिए।

छठा अध्याय

बछिया

उत्तम दुधारू गाय बनाने का ध्यान रखकर बचपन से ही बछिया की अच्छी तरह से सेवा करनी चाहिए। उसका लालन-पालन बछड़ों के लालन-पालन के समान ही होना चाहिए। उसके लिए विशेष सर्दी-गर्मी से बचाने, नहलाकर साफ़ रखने, तथा स्वच्छ पानी, संतुलित सानी और साफ़-सुथरी शाला का प्रबन्ध करना चाहिए। हर-रोज़ चरने के लिए भी उसे ज़रूर भेजना चाहिए।

पशु को सद्व्यवहार की बड़ी पहिचान होती है। शरीर पर हाथ फेरने एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार करने से वह अपने पालक से हिल जायगी और नाम लेकर पुकारने पर निकट आ जायगी। उसे कभी खिझाना, मारना या हैरान नहीं करना चाहिए।

उत्तम-लक्षण---अच्छी बछिया के बहुत से लक्षण, उत्तम गाय के लक्षणों के समान ही जानना चाहिए। उसका माथा सँकरा, गरदन लम्बी व पतली और शरीर मुलायम होगा, पेट के नीचे की धुन्नी यदि बड़ी व फैली हुई, कुछ पीली और ढीली होगी, तो वहाँ ऐन अच्छी तरह विकसित हो सकेगा। अगले पैरों के मूल से निकलती हुई दुग्ध-वाहिनी नाड़ियाँ ऐन की तरफ़ को आती हुई साफ़ दिखायी देंगी। जन्म के कुछ दिन बाद ही थनों के छोटे-छोटे चिह्न उसके स्पष्ट प्रकट होंगे।

उत्तम बछिया वह है, जो ज्ञात-वंशज एवं ज्ञात-शक्ति साँड़ तथा दुधारू गाय की सन्तान हो। उसकी देह पुष्ट, किन्तु भारी और मांसल न हो, क्योंकि ज्यादा चर्बी के बढ़ जाने से प्रजनन-शक्ति क्षीण हो जाती है। साथ ही ऐसी बछिया को ब्याने के समय भी विशेष तकलीफ़ होती है। परन्तु वह अधिक दुबली और कमज़ोर भी न हो, वरना उसकी नस्ल भी कमज़ोर पैदा होगी। अतएव बछिया को सुगठित एवं पुष्ट रखने के लिए संतुलित सानी देनी चाहिए। (देखिये "पोषण विभाग")

इसके आगे बछिया के गर्भाधान के विषय की चर्चा "गो-प्रसूति" में की गयी है।

सातवाँ अध्याय

आयु

गाय, बैल और भैंस की अधिक से अधिक आयु २५ वर्ष की होती है। जलवायु, लालन-पालन तथा परिश्रम वग़ैरह की वजह से इसमें कमी-बेशी भी हो सकती है। आमतौर पर इनकी औसतन उम्र १२ बरस के लगभग होती है। एक बछिया ३ वर्ष की उम्र के आस-पास बिया जायगी। कोई-कोई गायें १२-१४ महीने बाद दुबारा बिया जाती हैं। कम से कम गाय को १८-२० महीने बाद दुबारा ज़रूर बिया जाना चाहिए।

दस-बारह वर्ष की उम्र तक गाय ५-७ अच्छे बछड़े-बछिया दे देती है। कोई कोई गाय १०-१२ बच्चे भी जनती है, परन्तु प्रायः १५-१६ वर्ष की उम्र के बाद वह बच्चे देना बन्द कर देती है।

दाँत और सींगों के द्वारा इनकी उम्र पहचानी जाती है।

नये बच्चे के दूध के २ दाँत होते हैं।

१५ से २१ दिन तक के बच्चे के दूध के ४ दाँत होते हैं।

एक महीने के बच्चे के दूध के ८ दाँत होते हैं।

तीन-चार महीने के बाद यह दाँत पुष्ट होने लगते हैं, और १५ से १८ महीने की उम्र तक सब पुष्ट हो जाते हैं। फिर उम्र पाकर ये उखड़ जाते हैं और इनके स्थान पर असली पक्के-दाँत निकल आते हैं।

२-२½ वर्ष की उम्र में २ पक्के-दाँत आ जाते हैं।

३-३½ वर्ष की उम्र में ४ पक्के-दाँत आ जाते हैं। (अब पशु पूर्ण युवा हो जाता है।)

४-५ वर्ष की उम्र में ६ पक्के-दाँत आ जाते हैं।

५-६ वर्ष की उम्र में ८ पक्के-दाँत आ जाते हैं।

इस प्रकार मुँह में काफ़ी समय तक रहनेवाले आठो-दाँत पूरे हो जाते हैं। यदि इनमें से कोई दाँत टूट जायगा, तो वह दुबारा नहीं निकलेगा; इसीसे ये स्थायी या पक्के कहलाते हैं।

गाय-बैलों के निचले जबड़े में दाँत होते हैं और ऊपर के जबड़े में ख़ाली कड़ी-हड्डी होती है। वे नीचे के दाँतों से चारा कुतर-कुतर कर पहले जल्दी-जल्दी अपना पेट भर लेते हैं। फिर आराम से बैठने पर उस खाये हुए चारे को मुँह में वापिस लाकर दोनों जबड़ों की किनारेवाली मज़बूत दाढ़ों से महीन जुगाली करके आमाशय में पहुँचाते हैं।

दस-बारह वर्ष की उम्र के बाद जैसे-जैसे गाय ढलने लगती है, वैसे-वैसे उसके दाँत भी घिस-कर ठण्टी सरीखे हो जाते हैं।
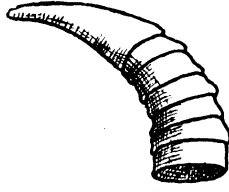
सींग के छल्ले

सींगों के ऊपर पड़े हुए छल्लों से भी उम्र और ब्याँत की पहचान की जा सकती है। मगर कई लोग सींगों को रेती से रगड़कर छोटे और चिकने कर देते हैं। अतः इस पहचान में भ्रम हो सकता है।

आठवाँ अध्याय

प्रजनन-विज्ञान

वैज्ञानिकों द्वारा बतायी गयी विधि के बरतने से भारत की वर्तमान गो-जाति की उन्नति शीघ्र सम्भव होगी। इनके सहयोग से हमारे बैल पुष्ट और गायें दुधारू बन जायँगी। अतः हर एक गोपालक को प्रजनन-विज्ञान (Principles of genitics) का कम से कम साधारण-ज्ञान तो अवश्य ही होना चाहिए।

नस्ल पर गाय और साँड़ के किन-किन गुण-दोषों का कितना प्रभाव पड़ता है, इसकी खोज विद्वानों ने की है। यद्यपि प्रकृति में भिन्नता विद्यमान रहती है, तथापि उसकी सभी क्रियाएँ एक विशिष्ट नियम का पालन करती रहती हैं। इस कारण साँड़ व गाय के गुण-दोषों का नस्ल पर पड़नेवाला प्रभाव बहुत कुछ अंशों तक सही-सही जाना जा सकता है।

इस विज्ञान का भली-भाँति अध्ययन संयुक्त-प्रान्त के बरेली ज़िले में आइजटनगर की सरकारी पशु-अन्वेषणशाला में किया जा सकता है। इस संस्था में गोपालक-जन पशु-सम्बन्धी अपनी सभी समस्याओं को हल करा सकते हैं।

गो की नस्ल में स्थायी और सच्चा सुधार दूर-दर्शिता से ही सम्भव है। यदि उनकी एक पीढ़ी अधिक-गुणोंवाली हो जाय, किन्तु आगे बढ़ने पर उसमें क्षीणता आ जाय, तो लाभ के बदले हानि ही होगी। किसी मुख्य ध्येय तक पहुँचने के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी के गुणों को सुधारते जाने की चेष्टा करनी चाहिए। भविष्य में भी वे गुण नस्ल में स्थिर रहें, इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

गो-वंश—ऐतिहासिक काल के पहले ही मनुष्य ने गाय को पालतू बना लिया था। फिर उसने क्रमशः अपने देश की जलवायु तथा आवश्यकता के अनुसार गौ में विभिन्न गुणों का विकास कर लिया। इन विशेष-गुणोंवाले पशुओं का चुनाव करके उनकी नस्ल चलाने और विभिन्न रीति से लालन-पालन करने के कारण पशुओं में अलग-अलग तरह-तरह के गुण प्रस्फुटित हुए। हर एक गो-जाति के अपने अलग-अलग गुण होते हैं, जो प्रधान नस्लों के असली नस्लवाले पशुओं में भली-भाँति दिखायी पड़ते हैं।

गो-वंश के सुधार से आज भी भारत में **गो-धन ही सब उद्योग-धन्धों से प्रधान हो सकता है; क्योंकि गो-रस की आवश्यकता मनुष्य को निरन्तर बनी रहेगी।**

नस्ल को सुधारने के लिए पशुओं का चुनाव (Selection)—योग्य साँड़ और उत्तम गाय से पैदा हुई नस्ल अच्छे-गुणोंवाली सिद्ध होगी। ऐसे पशुओं से उत्पन्न नस्ल पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुधरती

जायगी। अतएव गुणवान साँड़ों और शुभ-लक्षणोंवाली गायों की ही नस्ल को चलाना चाहिए। साथ ही दोषयुक्त क्षीण-पशुओं की प्रजनन-शक्ति को नष्ट कर देना चाहिए।

पालन-पोषण का भी पशु की नस्ल पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस कारण संतुलित एवं पोषक खाद्य का प्रबन्ध करना भी ज़रूरी है। बलप्रद खाद्य व उपयुक्त संयोग से उत्तम पशु-जाति की उत्पत्ति सम्भव हो सकती है।

गाय और साँड़ का पीढ़ी-दर-पीढ़ी चुनाव करते रहने से नस्ल दस-पन्द्रह वर्ष के भीतर ही बहुत कुछ सुधर जायगी, इसलिए मिलान करने के पहले साँड़ और गायके गुणों का चुनाव कर लेना चाहिए।

हीन-पशु-समस्या—हीन-पशु वे हैं, जो रोगी, कमज़ोर, बुड्ढे, बहुत छोटे क़द के और बुरे-लक्षणोंवाले हों। बहुत कम दूध देनेवाली, क्षीण और अशुभ लक्षणोंवाली गाय एवं साँड़ से नस्ल नहीं चलानी चाहिए। ऐसे हीन-पशुओं की हत्या कर देने से ही उनके कम करने की समस्या हल न हो पायेगी, क्योंकि यदि "प्रजनन-विज्ञान" पर उचित ध्यान नहीं दिया जायगा, तो बाद की दूसरी पीढ़ी फिर वैसी ही निकम्मी हो जायगी। अच्छा तो यह है कि निकृष्ट गाय को बाँझ बना दे और निकृष्ट साँड़ को बधिया करके उससे बैल का काम लिया जाय। ऐसे पशुओं के गोबर और मूत्र की खाद अगर विधिवत् बनायी जाय, तो उनके लिए गोचर-भूमि पर किया गया ख़र्च भर-पूर वापस मिल जायगा।

सूरज या ब्राह्मी साँड़—प्राचीन काल में नस्ल-सुधार का अच्छा प्रबन्ध था। आज से कुछ समय पूर्व तक बत्तीसों-गुणवाले उत्तम साँड़ को स्वतन्त्रता-पूर्वक चरने और घूमने के लिए छोड़ दिया जाता था। सब लोग इस साँड़ का बड़ा मान करते और आदरपूर्वक खिलाते थे। इस तरह सब के सहयोग से यह साँड़ सुपोषित होता हुआ गायों की नस्ल को बढ़ाता था। किन्तु आजकल लोग रद्दी साँड़ को दाग देते हैं। सब जगह से दुतकारे जाने के कारण उसकी दशा आश्रयहीन और शोचनीय हो जाती है। इस तरह के साँड़ से गो-वंश अवनत होता जाता है। यह गो-वंश का अभिशाप है।

नस्ल-विज्ञान—पशुओं के बहुत से गुण-दोष उन्हें उनके माता-पिता से ही मिलते हैं। गाय और साँड़ के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भी कई गुण सन्तति में आ जाते हैं। बछिया की दूध देने की शक्ति तथा दूध में स्थित मलाई के अंश आदि के ऊपर इसके पिता साँड़ का भी बहुत बड़ा असर पड़ता है।

उन्नत-नस्ल के पशुओं में नाना प्रकार के गुण होते हैं, किन्तु वे सभी के सभी समान रूप से उसकी सन्तति में प्रकट नहीं होते। किसी सन्तान पर कुछ गुणों का असर ज़्यादा पड़ता है और किसी पर अन्य कुछ गुणों का प्रभाव विशेष रूप से आता है। असली नस्ल में अपने वंश के कुछ गुण-दोष एकत्रित रहते हैं, किन्तु दोगली नस्ल में विविध गुणों की मिलावट हो जाती है।

(१) असली-नस्ल (Pure-breed)—असली या शुद्ध नस्ल का पशु अपनी ही जाति के विशुद्ध गुणवाले गाय और साँड़ से पैदा हुआ होता है। ऐसे पशुओं में उनके पूर्वजों तथा जाति के

अनुसार रूप, रङ्ग, आकृति, स्वभाव, शक्ति और प्रायः सभी या अधिकांश गुण होते हैं। शुद्ध जातीय गुणवाले साँड़ और गाय से उत्पन्न हुई सन्तति ही असली नस्लवाली कहलाती है, क्योंकि उसमें अपने वंश के अनुकूल प्रायः सभी गुण रहते हैं, और उसके क्रोमोसोम्स ज़्यादा निश्चित होते हैं। ऐसे पशुओं की नस्ल बढ़ाना लाभकारी होगा।

(२) दोगली-नस्ल—भिन्न-भिन्न गुणवाली जातियों के मिलान से इस तरह के पशुओं में विविध प्रकार के गुण-दोषों का संचार हो जाता है। इसी कारण उनसे होनेवाली मिश्रित सन्तति के गुण-दोषों का सच्चा अनुमान लगाना बहुत मुश्किल होता है। इनसे होनेवाली नस्ल में कई तरह के गुण-दोष प्राकृतिक रूप से ही होते हैं, क्योंकि उनके क्रोमोसोम्स मिश्रित-गुणोंवाले होते हैं।

(३) ज्ञात-वंशज (Pedigree)—वे हैं, जिनके पूर्वजों की जाति, आयु, शक्ति, प्रकृति, रूप, रङ्ग एवं गुणों का समुचित इतिहास "गो-जन्मपत्र" द्वारा ठीक से मालूम हो। नस्ल को सुधारने, नयी शक्ति को पैदा करने एवं वर्तमान गुणों को बढ़ाने व क़ायम रखने के लिए ऐसी ही गाय और ख़ासकर साँड़ का चुनाव करते रहना चाहिए। इन पशुओं के पूर्वजों के गुण-दोषों की जानकारी रहने से उनकी होनेवाली नस्ल के संभावित गुण-दोषों का सहज ही में विचार किया जा सकेगा और मिलान करते समय उनके गुणों का चुनाव करके संवर्धन करने में सहायता मिलेगी।

(४) ज्ञात-शक्ति साँड़—वे हैं, जिनसे उत्पन्न बछिया के ब्याने पर उसकी दूध देने की शक्ति की परीक्षा कर ली गयी हो। ऐसे परीक्षित-शक्तिवाले साँड़ से होनेवाली बछियों की दूध देने की शक्ति का बहुत-कुछ सही अन्दाज़ा लग सकेगा।

(५) उत्कृष्ट साँड़—वह है, जो बत्तीसों-गुणोंवाला, शुभ लक्षणों वाला एवं ज्ञात-वंशज हो, और जिसकी माँ ख़ूब दुधारू रही हो, साथ ही उत्तम साँड़ से संयुक्त हुई हो तथा जिसकी दादी, एवं नानी भी अपनी नस्ल के उत्तम-गुणोंवाली हों। यह साँड़ ज्ञातशक्ति का हो, तो और भी अच्छा है।

पूर्वजों का सन्तति पर प्रभाव—पशु के गुणों पर सबसे ज़्यादा असर उसके निकटतम पूर्वज अर्थात् माँ और बाप का पड़ता है। अन्य पूर्वजों का असर कुछ कम आता है। जितना निकट का सम्बन्ध होगा, उतना ही ज़्यादा और जितना दूर का होगा, उतना ही कम असर पड़ेगा।

माँ बाप की प्रकृति का सन्तति पर २५% असर पड़ता है। दूसरी पीढ़ी अर्थात् नाती-पोतों पर उनका ६·२५%, तीसरी पीढ़ी अर्थात् परनाती एवं परपोतों पर १·५६%, और चौथी पीढ़ी में तो केवल ०·३९% असर बाक़ी रह जाता है। ऐसा कुछ लोगों का मत है।

यद्यपि माँ और बाप दोनों की प्रकृति का बच्चे पर प्रभाव पड़ता है, तथापि इस प्रभाव का विभाग सदा सम नहीं रह सकता। बच्चे में कभी किसी एक के, और कभी किसी दूसरे के, उत्तेजित एवं शक्तिशाली गुण ज़्यादा आ जाते हैं।

माँ-बाप में से जिसके भी जो गुण ज़्यादा शक्तिशाली होंगे, वे ही बच्चे पर अधिक प्रभाव डालेंगे। यद्यपि बच्चा अपने अधिक शक्तिमान पूर्वज के गुण ग्रहण कर लेता है, तथापि अन्य कई सुप्त-गुण भी उसमें आजाते हैं। यह भी सम्भव है कि वह माता-पिता से पाये हुए अपने सभी शक्तिशाली गुण अपनी होनेवाली सन्तति को न दे पाये।

यदि किसी पशु के ख़ून में दोगली-नस्ल के जीवाणु मिले हुए होंगे, तो वह अपने बच्चों को, अपने में केवल प्रभावशाली दिखलायी पड़नेवाले गुणों को ही देने के बदले, अपने अधिकांश सुप्त-गुणों को भी दे सकता है। अतः दोगली नस्लवाले पशु के बच्चे में उसके माता-पिता के सुप्त-गुण जाग्रत हो सकते हैं।

एक गाय कुछ बच्चों में ही अपने गुणों का प्रभाव डाल सकती है, किन्तु एक ही साँड़ के शुक्र का अनेक गायों के कई बच्चों पर प्रभाव पड़ेगा। **इसी कारण साँड़ गोशाला का प्रधान-पशु होता है।**

गुणों की परिवृत्ति (Reversion to type)—गाय अथवा साँड़ के सारे गुण-दोष उसकी सन्तति में प्रायः नहीं आ पाते। ज़्यादा-प्रभावशाली एवं उभरेहुए गुण-दोष ही यद्यपि उसकी सन्तति में प्रायः दिखायी देंगे, तथापि न तो उभरेहुए गुण-दोष सदैव उभरे ही रहेंगे और न दबेहुए गुण-दोष सदैव दबे ही रहेंगे। बच्चे में प्रत्यक्ष न दिखायी पड़ने पर भी पूर्वजों के अनेक गुण-दोष सुप्त-दशा में विद्यमान रहते हैं। इसीलिए उन सुप्त-गुणों की उलट-फेर कभी-कभी सन्तति में दिखायी पड़ती है। जैसे दोगली नस्ल के लाल-रंगवाली गाय तथा साँड़ से काले-रंग की नस्ल का होना भी सम्भव है।

इसका कारण लाल-रंग के पशुओं के किसी पूर्वज का काले-रंगवाला होना है।

इस समय एक पशु में जो गुण उभरे हुए हैं, वे गुण सदैव उसकी सन्तति में भी उभरेहुए न रहेंगे। गाय और साँड़ के कई दबेहुए गुण कई पीढ़ियों तक अचेत रहने के बाद भी सन्तति में उभर आते हैं। इस तरह वंश के संस्कारों का तीन-चार पीढ़ियों के बाद भी असर आ जाता है।

एक अधिक-दूध-देनेवाली गाय से उत्पन्न बछड़ा साँड़ बनने पर अपनी सन्तति में अधिक-दूध-देने की शक्ति का प्रभाव डालेगा। इसी प्रकार अच्छी गाय और अच्छे साँड़ से उत्पन्न बछिया भी अधिक दूध देनेवाली सिद्ध होगी। किन्तु कभी-कभी यह भी सम्भव है कि उनसे उत्पन्न बछिया ख़ूब दुधारू न हो, क्योंकि उस पर परदादी या परनानी का असर उभर आया हो।

जिनमें एक ही प्रकार के वंश-संस्कार निश्चेष्ट दशा में विद्यमान हों, ऐसे गाय और साँड़ के संयोग से होनेवाली नस्ल में उनके दबे हुए गुण-दोषों के उभर आने की सम्भावना विशेष हो जाती है। जैसे लाल-रंग के दोनों पशुओं से काले-रंग की नस्ल का पैदा होना संभव है क्योंकि इन दोनों के पूर्वज काले-रंग के थे।

निकटतम कुटुम्बियों का संयोग (In-breeding)—निकटतम ख़ून के सम्बन्धवाले पशुओं के मिलान से पैदा हुई नस्ल में अपनी वंश-परम्परा के सभी गुण एकत्रित हो जाते हैं। भाई-बहन, बाप-बेटी और माँ-बेटे के मिलान से इस प्रकार की नस्ल पैदा होती है।

इस नस्ल के पशुओं में अपने पूर्वजों के अधिक-शक्तिशाली गुण और दोष दोनों ही बिना किसी परिवर्तन के ज्यों के त्यों आ जाते हैं। माता-पिता के शक्तिशाली और उभरेहुए गुण-दोष, अन्य दूसरे क़िस्म के मेल के न होने से, शुद्धता के साथ इस नस्ल में मज़बूत जड़ पकड़कर बढ़ते जाते हैं।

अतः इस पद्धति की नस्ल से पैदा होनेवाली सन्तति में अपने वंश के असली गुण-दोष निश्चय ही प्रकट होंगे।

इस क़िस्म की नस्ल, किसी गुण-विशेष की दृष्टि से शुद्ध तथा दृढ़ होती चली जायगी। किन्तु इस पद्धति में एक बड़ी ख़राबी यह है कि गुणों के साथ ही वंश के दोष भी मज़बूत और प्रभावशाली बन जायँगे तथा इस नस्ल के पशुओं की प्रजनन एवं जीवन शक्ति धीरे-धीरे घट जायगी।

निकटतम कुटुम्बियों के संयोग से यद्यपि वंश की उत्तम प्रकृति और गुण शक्तिशाली एवं दृढ़ होते जायँगे, तथापि उपर्युक्त तीनों प्रकार की हानियाँ भी अवश्य होंगी। अतः केवल विशेषज्ञ ही इस रीति की नस्ल चला सकते हैं। जनसाधारण के लिए इस पद्धति का बरतना ठीक नहीं है, क्योंकि इसका परिणाम भयंकर भी हो सकता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने इसी रीति से नस्ल को चलाकर अपने पशुओं में इच्छित गुणों का संचार बढ़ाया और दृढ़ किया था।

स्ववर्गीय-संयोग (Line-breeding)——उपर्युक्त प्रकार से कुछ दूरस्थ सम्बन्धियों की सन्तान में भी वंश-परम्परा के गुण अच्छी तरह दृढ़ होते जायँगे। इस पद्धति की नस्ल में एक ही ख़ून और दूध का बचाव किया जाता है। इस तरह से कई सम्बन्ध——जैसे, चचेरे भाई-बहिन, आधे भाई-बहिन, चाचा-भतीजी और मौसी-भांजे आदि, तथा इसी प्रकार और भी, कई तरह के मिलान हो सकते हैं। एक ही कुटुम्ब के, किन्तु,परस्पर दूर का सम्बन्धरखनेवाले, पशुओं से इस क़िस्म की नस्ल चलायी जाती है।

एक ही वंश के, परन्तु जिनमें दूध का सम्बन्ध न हो और जो कुछअलग हटे हुए हों, ऐसे कुटुम्बियों के संयोग से पैदा हुई नस्ल के पशुओं में उभरेहुए और शक्तिशाली गुण अधिक स्पष्ट आयेंगे और साथ ही सुप्त-दोष ज़्यादा जाग्रत न हो पायेंगे; क्योंकि पशु का कोई न कोई निकट पूर्वज नये और अलग ख़ून का अवश्य होगा। इस प्रकार की नस्ल का ठीक चुनाव करते रहने से उनके गुणों को स्थायी बनाया जा सकता है।

सजातीय बाह्य-संयोग (Out-crossing)——एक ही जाति, किन्तु भिन्नकुटुम्ब, के साँड़ तथा गाय से इस तरह की नस्ल चलायी जाती है। जैसे दोनों पशु सायवाल जाति के ही हों, किन्तु अलग-अलग वंशों के हों और परस्पर रिश्तेदार न हों। इनसे पेदा हुई नस्ल सजातीय बाह्य-संयोग वाली कहलायेगी। इस क़िस्म के भी पशु शुद्ध जातीय-गुणवाले एवं असली नस्ल के होते हैं।

उच्च कोटि के श्रेष्ठ साँड़ के चुनाव से इस पद्धति की नस्ल सुधरती जायगी। गोपालक अपने पशुओं में इस रीति से इच्छित शक्ति का संचार और इच्छित गुणों का विकास कर लेते हैं। इसके बाद इन्हीं प्राप्त गुणों को क़ायम रखने के लिए वे स्ववर्गीय-संयोगवाली पद्धति को बरतते हैं।

विजातीय-संयोग (Cross-breeding)——इस पद्धति की नस्ल को चलाने के लिए भिन्न जातियों के, उत्तम, शुद्ध-नस्ल एवं वाञ्छनीय-गुणोंवाले पशुओं को छाँटकर उनके द्वारा दोग़ले पशु उत्पन्न किये जाते हैं।

इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी भिन्न-जातीय एवं भिन्न-वंशीय उत्तम पशुओं के संयोग से उत्पन्न

नस्ल में दोनों जातियों तथा वंशों के कुछ गुण आ जाते हैं। इन पशुओं में यथोचित चुनाव करते रहने से उनकी होनेवाली नस्ल में इच्छित गुण मजबूत हो जाते हैं और साथ ही उनके खून में आगामी सन्तति को भी उन्हीं गुणों के देने की शक्ति आ जाती है।

विजातीय-संयोग से पैदा हुई नस्ल का जब सजातीय, अर्थात् एक ही प्रकार के विजातीय संयोग से उत्पन्न गाय और साँड़ दोनों का संयोग हो, तब उनसे होनेवाले बच्चों में दोगली नस्ल के गुणों का पूरा-पूरा असर पड़ता है।

परन्तु दो बिल्कुल भिन्न-जातीय एवं भिन्न-कुटुम्बी पशुओं से उत्पन्न नस्ल में भिन्न परिणाम भी देखा जाता है। कदाचित् इस नस्ल में इसके माता-पिता दोनों के ही गुण न आ सकें, क्योंकि भिन्न-गुणों के संयोग से उनमें बिल्कुल नये वे गुण भी प्रकट हो सकते हैं, जो गाय और साँड़ दोनों में ही प्रत्यक्ष न दिखायी पड़ते हों। साथ ही यह भी सम्भव है कि इस दोगली नस्ल में उनके सद्गुण बिल्कुल ही न आयें और दोष ही विशेष-प्रभावशाली हो जायें।

कभी-कभी यह भी सम्भव है कि विजातीय-संयोग से पैदा हुई दोगली नस्ल में अपने माता-पिता दोनों के ही सद्गुण विशेषरूप से आ जायँ और इस कारण इन मिश्रित-गुणों के प्रभाव से यह नस्ल अपने पूर्वजों की जाति से कहीं ज़्यादा उन्नत हो जाय। अतः माता-पिता के गुण-दोष इस नस्ल में घट और बढ़ सकते हैं।

उपर्युक्त कारणों से विजातीय बाह्य-संयोग द्वारा पैदा दोगली नस्ल में परिणाम अनिश्चित रहेंगे। यद्यपि यह भी सम्भव है कि पहली पीढ़ी में मिश्रित शक्ति के प्रादुर्भाव के कारण आशा-जनक बहुत से सद्गुण आ जायँ, तथापि आगे एक-दो पीढ़ी बाद, दो बिल्कुल ही भिन्न जातियों और देशों के पशुओं के संयोग से नतीजा बुरा ही होता है। जैसे विलायती बास्ट्रस और भारतीय ज़ेबू-जाति के पशुओं का संयोग दो पीढ़ी बाद असफल सिद्ध रहा। इस विषय का स्पष्ट-वर्णन "विदेशी-गोपालन" में किया गया है।

वंश का दूध देने की शक्ति पर प्रभाव——गाय की दूध देने की शक्ति उसके क़द पर भी बहुत कुछ निर्भर है। उसका क़द उसके माता-पिता के क़द एवं जाति पर निर्भर रहता है। अतएव अपनी जाति की उत्तम गाय लेनी चाहिए। कभी-कभी छोटे क़द की गायें भी खूब दुधारू होती हैं।

बछिया की दूध देने की शक्ति पर गाय से साँड़ का ही असर ज़्यादा पड़ता है। अतः गोशाला में उत्तम एवं परीक्षित साँड़ अवश्य रखना चाहिए। श्रेष्ठ पशुओं के संयोग से उत्तम नस्ल पैदा होती है। अच्छे पशुओं से अच्छी नस्ल की दुधारू गायें होंगी, किन्तु ओसर-गाय के दूध देने की शक्ति का पहले से ही एक निश्चित ज्ञान नहीं हो सकता। कभी-कभी गुणों की परिवृत्ति, पालन-पोषण तथा जलवायु के असर से दुधारू गाय तथा उत्कृष्ट साँड़ से पैदा हुई बछिया भी कम दूध देनेवाली हो सकती है। फिर भी उच्च-कुल के पशुओं में ही शीघ्र उन्नति की जा सकती है।

नस्ल का क्रमशः विकास (Grading-up)——इस रीति के अनुसार शुद्ध जाति के सद्गुणी साँड़ और साधारण श्रेणी की गाय के मिलान से आगामी नस्ल सुधारी जाती है। शुद्ध नस्ल के साँड़ हर-बार और हर-पीढ़ी में इस्तेमाल किये जाते हैं। इस प्रकार के संयोग से उत्पन्न

साधारण गाय की भी नस्ल चार-पाँच पीढ़ियों के बाद शुद्ध साँड़ के गुणोंवाली एवं उत्कृष्ट हो जायगी। इनसे पैदा हुई नस्ल में विजातीय मिश्रित-शक्ति (Hybrid-vigour) ख़ूब रहती है।

साँड़ ऐसा चुनना चाहिए, जो शुद्ध नस्लवाला, उत्तम श्रेणी का और स्थानीय परिस्थितियों के ख्याल से उपयोगी गुणोंवाला हो।

ऐसे श्रेष्ठ साँड़ और स्थानीय साधारण-श्रेणी की गाय से उत्पन्न नस्ल अपनी माता से अधिक गुणोंवाली होगी। साँड़ ऐसी जाति का कदापि नहीं चुनना चाहिए, जिसमें अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल गुण व प्रकृति न हो और जो वहाँ पनप न सकती हो। जैसे गठीले, भारी बदन और चराई की आदतवाली सायवाल जाति के साँड़ की नस्ल बङ्गाल-ऐसे धानों से भरे गीले-खेतोंवाले प्रान्त में उपयुक्त चारा न पाने के कारण ठीक न रहेगी।

नस्ल का चुनाव—उत्कृष्ट साँड़ और उत्कृष्ट गाय से होनेवाली नस्ल ख़ूब जल्दी तरक्क़ी करेगी। यह सब में उम्दा और चलने योग्य नस्ल है। इनके सद्गुणों को स्थिर रखने के लिए हर पीढ़ी में श्रेष्ठ साँड़ का चुनाव करते रहना चाहिए। कुटुम्बी-संयोगवाली पद्धति को बरत कर इनके विशेष-गुणों को स्थायी बनाया जा सकता है।

नस्ल का सुधार—उत्कृष्ट साँड़ और साधारण गाय से पैदा हुई नस्लवाली बछिया की दूध देने की शक्ति उसकी माँ से सुधरी हुई होगी, और बछड़ा भी कुछ अधिक शक्तिवाला होगा। उत्तम साँड़ से गाभिन होकर गाय व्याने पर दूध अधिक देने लगती है, क्योंकि तब शक्तिशाली बच्चे के पोषण के लिए प्रकृति उसके शरीर में अधिक दूध बनायेगी। (ऐसा कुछ विद्वानों का मत है।)

नस्ल को बिगाड़ना—निकृष्ट-साँड़ और उत्कृष्ट-गाय से उत्पन्न बछिया अपनी माँ से कम दूध देनेवाली और बछड़ा भी कमज़ोर ही सिद्ध होगा। छोटे बच्चे के पोषण के लिए कम दूध की ज़रूरत होने के कारण गाय का ऐसे ब्याँत में दूध भी कम हो जायगा (यह कुछ विशेषज्ञ मानते हैं)। बढ़िया गाय रद्दी साँड़ से दो-तीन बार बर्धायी जाने के बाद यदि चौथे-पाँचवें ब्याँत में उत्कृष्ट साँड़ से पुनः बर्धायी जायगी, तो भी नस्ल साधारण ही होगी।

खराब नस्ल—निकृष्ट-साँड़ और निकृष्ट-गाय से होनेवाली नस्ल और भी कमज़ोर होगी। अतएव ऐसी रद्दी नस्ल को कभी नहीं चलाना चाहिए। इन पशुओं पर किये जानेवाले खर्च से पालक को यथेष्ट लाभ नहीं मिल सकता। ऐसे पशु गो-वंश का अभिशाप हैं। इनकी प्रजनन-शक्ति को अवश्य ही नष्ट कर देना चाहिए।

जिन लोगों को गो-हत्या ही करनी हो, वे ऐसे हीन-पशुओं को कम कर सकते हैं, लेकिन जब तक हीन-नस्ल का प्रजनन ही बन्द न किया जायगा, तब तक यह हीन-पशु-समस्या हल न हो पायेगी। देश में ऐसे बहुत से बेकार पशु हैं, जिनका लालन-पालन केवल अन्धविश्वास के कारण किया जाता है। छाँट-छाँटकर प्रजनन बन्द करना भी एक कठिन काम है, अतः सब गोपालक अपने-अपने पशुओं का ध्यान रखें और जहाँ कहीं फ़ालतू-साँड़ दिखायी पड़े, उसे पशु-चिकित्सालय (Veterinary hospital) में भेजकर उसकी जाँच करवा लें तो अच्छा है।
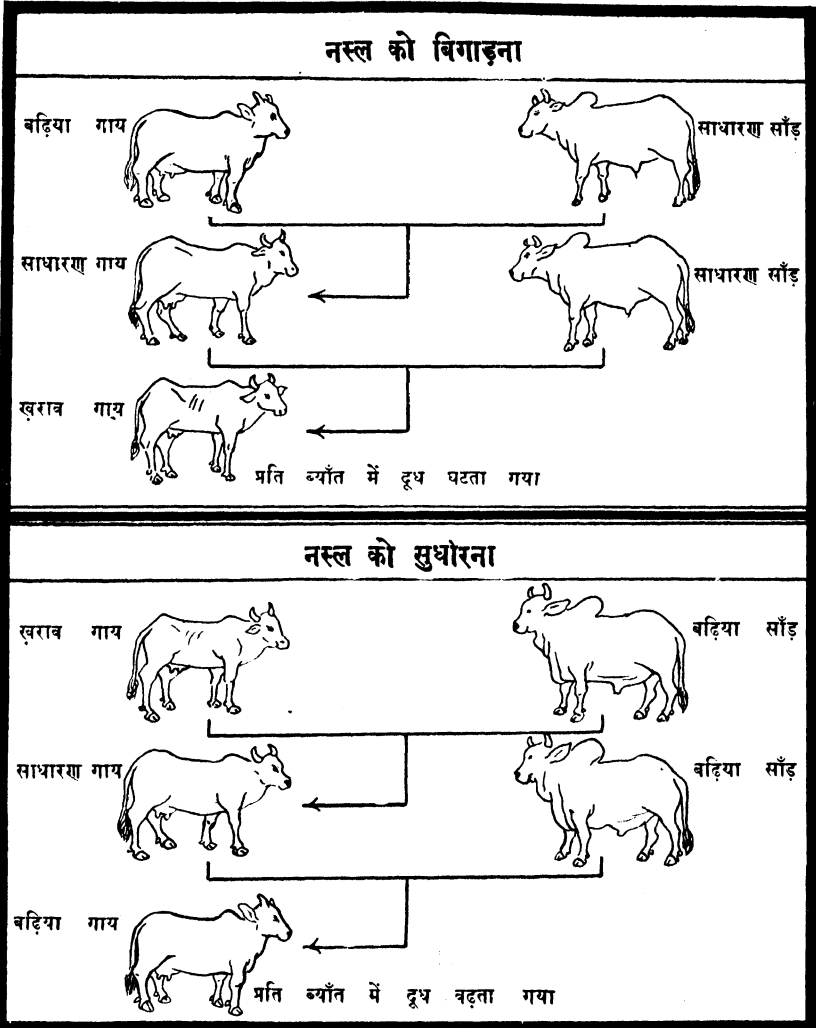
रोगी, दुर्बल, बुड्ढी और ऐसी गायें, जो बेकार हो गयी हों, उन्हें किसी पास की गोचर-भूमि में भेज देना चाहिए। यदि उनके गोबर की खाद ठीक तौर पर बनायी जायगी, तो उनके लिए गोचर-भूमि पर रखने में किया गया ख़र्च निकल आयेगा। उनकी मृत्यु के होने पर उनका चमड़ा निकाल कर बरता जा सकता है। उनके शेष अवयवों की खाद बना ले।

गो-सेवा संघ, वर्धा में अपना मृत्यु स मरे गाय-बैलों के चमड़े की चप्पल आदि चीज़ें बनायी जाती हैं। वहाँ गो-सेवा के अन्य सब पहलुओं—यथा नस्ल-सुधार, पोषण तथा चिकित्सा आदि—के साथ अहिंसात्मक गो-चर्मालय भी है।

जीव विज्ञान—पौधे तथा प्राणी सभी के शरीर सेल्स (Cells) से बनते हैं। सेल्स दो क़िस्म के होते हैं। सफ़ेद रङ्ग के सेल्स "श्वेताणु" और लाल रङ्ग के सेल्स "रक्ताणु" कहलाते हैं।

रक्ताणु हड्डी के भीतर भी रहते हैं और अपना लाल-रङ्ग लोहेवाले तत्त्वों से ग्रहण करते हैं। ये रक्ताणु एक ही आकार के गोल पहिये के सदृश होते हैं। ये फेफेड़ों से शुद्ध वायु को शरीर के अवयवों में ले जाते हैं और वहाँ से उसे वापस लाते हैं।

श्वेताणु तरह-तरह के आकार-प्रकार के होते हैं। ये रोग-निवारण भी करते हैं। ये बढ़कर विभाजित हो जाते हैं। अधिकांश श्वेताणुओं के भीतर प्राण-संचार करनेवाला विन्दु, जिसे केन्द्र (Nucleus) कहते हैं, विद्यमान रहता है। जब सफ़ेद सेल विभाजित हो जाता है, तब इसके साथ ही केन्द्र भी विभाजित हो जाता है। परन्तु इस पर भी यह नये और पुराने दोनों ही सेल—मय न्यूक्लिस के—पूर्ण सेल्स के रूप में बने रहते हैं।

न्यूक्लिस में अति सूक्ष्म और बहुसंख्यक क्रोमोसोम्स (Chromosomes) होते हैं। इन क्रोमोसोम्स के दो अंश अर्थात् एक जोड़ा सदैव साथ-साथ रहता है। क्रोमोसोम्स की यह जोड़ियाँ लम्बी, गोल, बड़ी, छोटी, आदि कई विभिन्न-आकारों की होती हैं। एक न्यूक्लिस के एक जोड़ी क्रोमोसोम्स में से एक क्रोमोसोम पिता के वीर्य तथा एक क्रोमोसोम माता के रज से बनता है।

एक क्रोमोसोम रंग-ग्रहण करनेवाले अतिसूक्ष्म हज़ारों क्रोमोमियर ग्रेन्स (Chromomere grains) से बनता है। इन क्रोमोमियर ग्रेन्स की एक विशिष्ट संख्या से ही एक क्रोमोसोम का निर्माण होता है। इन्हीं क्रोमोमियर के द्वारा प्राणी में पूर्वजों के गुण-दोषों का संचार होता है। वंश-परम्परा के इसी एक अंश को जेनी (Gene) कहते हैं। यह जेनी ही सेल्स के रासायनिक द्रव्यों में मिलकर प्राणी में गुणों का विकास और नियन्त्रण करते हैं।

हारमोन नामक प्रजनन-बीजाणु (Reproductive or germ cells) शरीर के जीवाणुओं (Body-cells) से भिन्न होते हैं। हारमोन्स मस्तिष्क से पैदा होकर गलग्रंथि (Thyroid glands), गर्भाशय और वृषण (Testicles) पर अपना प्रभाव डालते हैं। इन्हीं प्रजनन-जीवाणुओं से नवगर्भ की स्थापना होती है।

प्रजनन-जीवाणु ही से नवजीवन विकसित होता है। गाय और साँड़ दोनों के ही प्रजनन-जीवाणु संयुक्त होने पर नवजीवन को स्थापित करते हैं। प्रजनन-कार्य में दो कोष्ठों (cells) का संयोग, जिनमें एक नर का शुक्रकीट और दूसरा मादा का डिम्ब होता है, वही नव-उद्भिज की उत्पत्ति करता है। यह उद्भिज आगे बढ़कर भावी शिशु होता है। इस शिशु में मातापिता के गुणावगुणों का समावेश रहता है, क्योंकि माता-पिता के गुण और अवगुण शुक्रकीट और डिम्ब में उपस्थित थे। जिस विशेषवस्तु से ये क्रियाएँ होती हैं, उन्हें वैज्ञानिक लोग क्रोमोसोम्स कहते हैं। ये

क्रोमोसोम्स छोटे-छोटे केवल सूक्ष्मदर्शक-यन्त्र से ही देखे जा सकते हैं और इनके छोटे-छोटे भागों को, जिनसे कि ये बने हुए हैं, क्रोमोमियर या जीम्स कहते हैं। गाय-बैलों में क्रोमोमियर की संख्या ४६ है, ऐसा माना जाता है।

शरीर के कोष्ठों में भी ये क्रोमोसोम्स पाये जाते हैं, जिनकी संख्या भिन्न-भिन्न प्राणियों में भिन्न-भिन्न होती है, परन्तु वैज्ञानिकों द्वारा ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह संख्या निश्चित है। सन्तानोत्पत्ति के लिए जब शुक्रकीट या डिम्ब बनते हैं, तब इन क्रोमोसोम्स की संख्या उन कोष्ठों में आधी हो जाती है। डिम्ब और शुक्रकीट के संयोग के बाद क्रोमोसोम्स की संख्या शारीरिक कोष्ठों के अनुसार पूरी हो जाती है।

यद्यपि माता और पिता दोनों का ही बच्चे पर असर पड़ता है, तथापि क्रोमोसोम्स के बहुसंख्यक होने के कारण गर्भाधान के समय कौन से विशेष गुण जागृत होंगे और वे बच्चे में किन विशेष-गुणों की स्थापना करेंगे, यह अनिश्चित है।

विभिन्न गुणों का प्रभाव—जार्ज मेंडल नाम के एक विज्ञान-विशारद आस्ट्रियन भिक्षु ने पौधों के मिश्रण का अध्ययन करके नस्ल-मिश्रण के परिणामों पर प्रकाश डाला है। पौधों और पशुओं के सेल्स की बनावट कुछ एक-सी होने के कारण पौधों के मिश्रण पर लागू होनेवाले नियम पशुओं पर भी घटित होंगे।

उन्होंने पीली और हरी मटर का संयोग करके मिश्रित दो-नस्ली मटर पैदा की, जो पीले रंग की थी, परन्तु जिसमें पीले और हरे दोनों के ही सुप्त-गुण—वज़न, स्वाद, रूप और रंग—विद्य-मान थे। उपर्युक्त-मिश्रित गुणवाली पीली मटर को बोने पर, एक हरी और तीन पीली १:३, के अनुपात में मटर उत्पन्न हुई।

दूसरी पीढ़ी में हरी मटर से हरी मटर ही उत्पन्न हुई। पीले दो दानों से १ हरी और ३ पीली के अनुपात में मटर पैदा हुई। शेष एक पीले दाने से पीली ही मटर उत्पन्न हुई। इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी शुद्ध-गुणोंवाली से केवल शुद्ध और मिश्रित से १:३ के अनुपात में मटर पैदा होंगी—
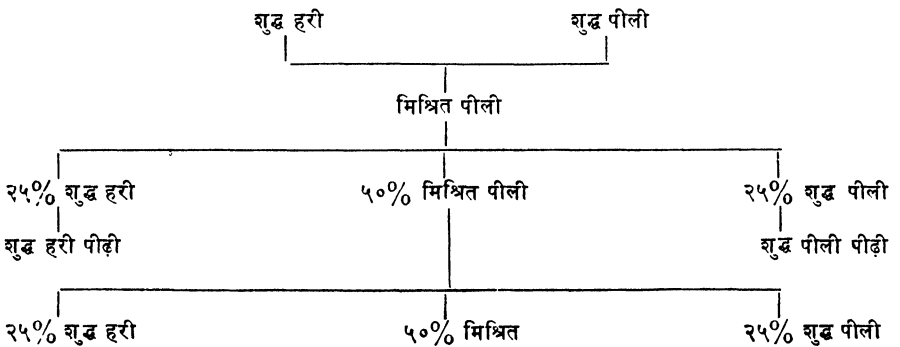
आगे वाला चित्र इसी नियम को स्पष्ट कर के बताता है:—
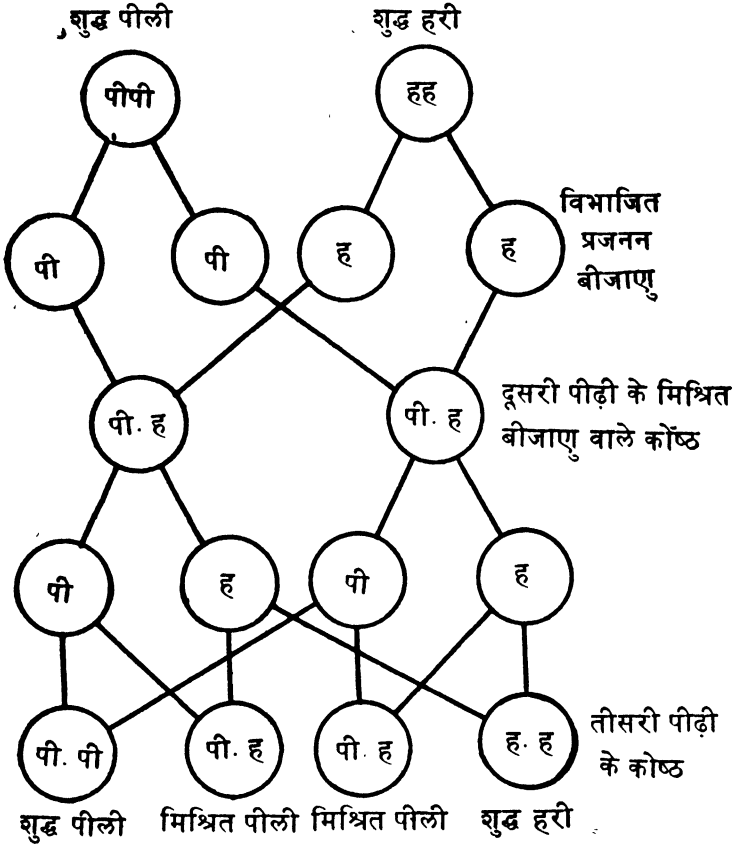
उपर्युक्त चित्र गो-विज्ञान-विशारदों के आधार पर है।

विभिन्न गुणों के क्रोमोसोम्स का प्रभाव—

श्रीयुत मेंडल के मटरवाले अनुसन्धान के अनुसार एक ही क़िस्म के युगल क्रोमोसोमवाले किन्तु भिन्न-गुणवाले सेल्स (कोष्ठों) का संयोग करने पर दूसरी पीढ़ी में ३ भिन्न गुण––शुद्ध-हरा, शुद्ध-पीला, और मिश्रित-पीला––उत्पन्न हुए।

इस से यह ज्ञात होता है कि जब सेल्स में विभिन्न-गुण वाले क्रोमोसोम होते हैं, तब उनके संयोग से उत्पन्न सन्तति में कई प्रकार के गुण आ जाते हैं। इन मिश्रित-क्रोमोसोम वाले जोड़े में कभी कोई

एक अंश दूसरे से अधिक प्रभावशाली होता है। इस प्रभावशाली अंश का गुण पशु में प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है। दूसरे मिश्रित-गुण सुप्त होते हैं, किन्तु विद्यमान रहते हैं। पिता या माता के जो भी गुण विशेषरूप से प्रखर होंगे, बच्चे में वे ही गुण प्रत्यक्ष दिखायी पड़ेंगे। अस्तु, एक ही नर-मादा के बच्चों में अलग-अलग गुण दिखायी पड़ते हैं।

शुद्ध सेल्स उन्हें कहते हैं, जिनमें एक ही प्रकार के गुणोंवाले क्रोमोसोम होते हैं। ऐसे बीजाणुओं-वाला पशु शुद्ध-नस्ल का कहलाता है। इनकी सन्तति में अपनी नस्ल के ही गुण प्रकट होते हैं।

मिश्रित-सेल्स में विभिन्न गुणों का समावेश रहता है, ऐसे बीजाणुओंवाला पशु दोगली नस्ल का कहलाता है। इनकी सन्तति में कई प्रकार के गुण उत्पन्न हो सकते हैं। इनके गुणों का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

मान लीजिये क+क एक-से ही शुद्ध-गुणवाले क्रोमोसोम की जोड़ी वाला सेल है, जिसका गुण काले रंग का है। अतएव क+क क्रोमोसोम की जोड़ीवाले नर तथा क+क वाले मादा से काले रंग की ही सन्तान होगी। यह असली-नस्ल की कहलायेगी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी शुद्ध नस्ल के पशुओं का संयोग होता रहे, तो हमेशा सन्तति में अपने वंश के काले-रंगवाले गुण स्थायी रहेंगे और नस्ल शुद्ध बनी रहेगी।

क+क वाले शुद्ध-काले और स+स वाले शुद्ध-सफ़ेद रंग के गुणों वाले पशुओं के संयोग से उत्पन्न-सन्तति में क+स वाले मिश्रित-गुणों की क्रोमोसोमवाली जोड़ी रहेगी, अर्थात् इस पीढ़ी के पशु में
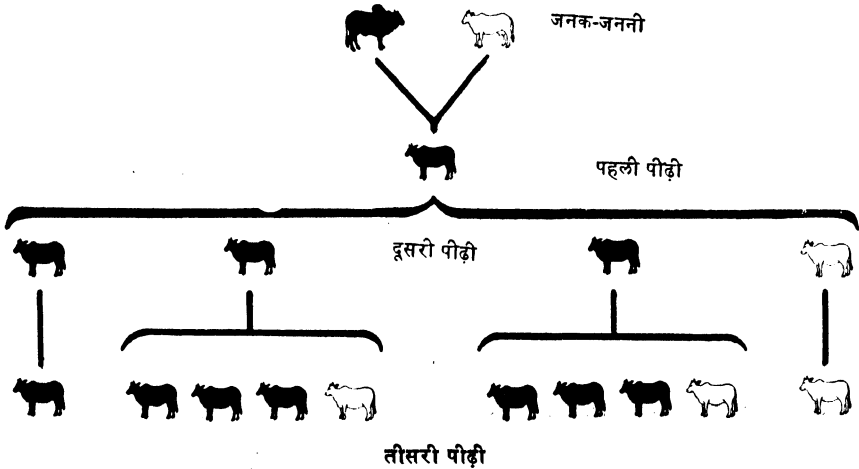
काले एवं सफ़ेद दोनों ही रंगों के गुण व क्रोमोसोम विद्यमान रहेंगे। किन्तु काला या सफ़ेद, जो भी गुण विशेषरूप से प्रखर होगा, वही गुण इस पशु में बाहर से दिखायी देगा। ऐसा पशु काला, सफ़ेद या काले+सफ़ेद (मिश्रित) रंगवाला हो सकता है।

शुद्ध-काले (क+क) और मिश्रित काले (क+स) के संयोग से नस्ल में काले-गुण ही प्रखर होंगे। अतएव अधिकतर सन्तति कालेरंग की ही होगी। यद्यपि इनमें प्रभावशाली गुण काला होगा, तथापि ऐसी नस्ल के पशुओं में सफ़ेद-गुणों का अंश विद्यमान रहेगा, जो उनसे होनेवाली नस्ल में दिखायी पड़ सकता है। इसी कारण दो काले ही दिखायी पड़ने वाले नर-मादा से सफ़ेद-सन्तान भी हो जाती है। इसको गुणों की परिवृत्ति (Reversion to type) कहते हैं।
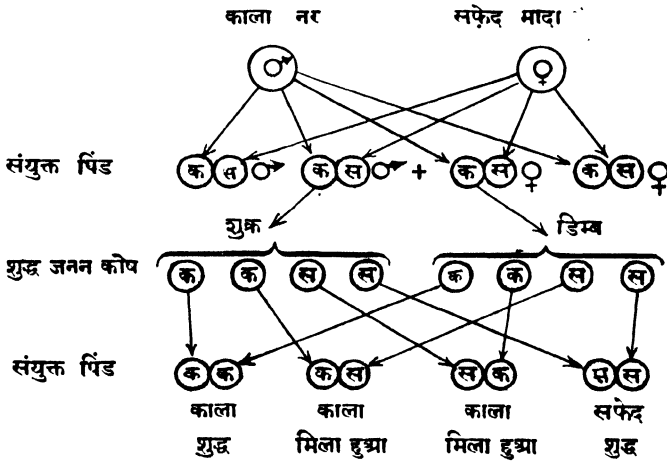
काले दिखायी पड़नेवाले किन्तु मिश्रित-क्रोमोसोम क+स वाले नर तथा क+स वाली मादा से तो विभिन्न-गुण वाली २५% शुद्ध काली, ५०% मिश्रित काली-सफ़ेद तथा २५% शुद्ध-सफ़ेद नस्ल पैदा होगी। फिर शुद्ध कालों से काली, शुद्ध सफ़ेद से सफ़ेद तथा मिश्रित काले-सफ़ेद से उपर्युक्त अनुपात के अनुसार ही शुद्ध-काले, मिश्रित-काले-सफ़ेद तथा शुद्ध-सफ़ेद नस्ल पैदा होगी।

मिश्रित-गुण वाले पशुओं से कभी किसी नूतन गुण की सन्तति का उत्पन्न होना भी सम्भव है। अथवा यह भी हो सकता है कि इनमें अपने किसी दूरस्थ पूर्वज के गुण प्रकट हो जायँ।

नवाँ अध्याय

गो-प्रसूति

पहलोठा या ओसर गाय के गाभिन होने का समय—बछिया को समय पर ही गाभिन होना चाहिए, क्योंकि समय से पहले या पीछे गाभिन होने पर पालक और बछिया दोनों को ही नुकसान रहता है। १½ वर्ष की उमर के आसपास की होने पर बछिया की विशेष निगरानी करते रहना चाहिए। २ या २½ वर्ष के अर्धविकसित साँड़ के साथ से भी उसे बचाना चाहिए।

बछिया को बिनौला या अधिक खली नहीं देनी चाहिए। इन चीज़ों की तासीर गरम होने के कारण वह जल्दी गरम हो जायगी। यदि पूर्ण-विकास पाकर भलीभाँति पुष्ट होने से पहले ही उसके शरीर के अवयवों पर गर्भ का भार पड़ जायगा, तो वह स्वस्थ एवं बलिष्ठ न रह सकेगी। वह दूध भी थोड़े समय तक ही देगी और उसके बछड़े-बछिया उत्कृष्ट श्रेणी के पशु न हो पायेंगे।

यदि असावधानी-वश कोई बछिया छोटी उमर में गाभिन हो जाय, तो उसे अच्छा व पौष्टिक चारा-दाना खिलाना चाहिए और ब्याने तक खासतौर पर उसकी देखभाल करनी चाहिए।

ठीक समय पर साँड़ का संयोग न पाने के कारण यदि बछिया ज़्यादा बड़ी उमर के बाद गाभिन होगी, तो उसे ब्याने के समय अधिक कष्ट होगा, और उसके पालने में भी व्यर्थ का खर्च पड़ेगा। बछिया २¼ से ३½ वर्ष की उमर के लगभग गरम होती है। इस समय तक उसको गाभिन हो जाना चाहिए।

युवावस्था को प्राप्त करने पर बछिया के ऋतु के लक्षण विकसित होकर प्रगट होने लगते हैं। यह लक्षण ३ सप्ताह बाद २-३ दिन तक पुनः-पुनः प्रगट होते हैं और गाभिन हो जाने पर बन्द हो जाते हैं।

दुहला गाय के गाभिन होने का समय—पहलोठा गाय को जल्दी गाभिन नहीं होने देना चाहिए। गाय के दूध देने की क्रिया अभ्यास पर बहुत कुछ अवलम्बित है, अतएव पहले-पहल के ब्याँत में ज़्यादा दिनों तक उसका दूध दुहना चाहिए, जिससे उसकी दूध की ग्रन्थियाँ अगले ब्याँत के लिए खूब खुल जायँ। इसी बीच में प्रसव के कारण क्षीण हुई शक्ति को वह समय पाकर पुनः संचित करके पुष्ट भी हो जायगी।

सुपालित गाय ठीक समय आने पर ही गरम होगी, परन्तु खुराक आदि के कारण यदि वह जल्दी—१-२ महीने के भीतर ही—गरम हो जाय, तो उपचार करके उसे शान्त कर दे; किन्तु ध्यान रहे कि उसकी उत्पादन-शक्ति न मारी जाय। असमय में गाय के गरम होने पर नीचे लिखे उपचार किये जा सकते हैं।

१––उसकी ख़ुराक में से २-४ दिन तक खली, बिनौला तथा ज़रूरत पड़ने पर दाना भी कम कर दिया जाय या बिल्कुल निकाल दिया जाय।

२––ठण्डे पानी से नहला दे।

३––गरमी के मौसम में बेल को भून कर अथवा पके बेल के गूदे में, कच्ची खाँड़ और सौंफ मिलाकर शरबत पिलाये।

४––लसोड़े की पत्ती का थोड़ा रस पिला दे।

५––गन्ने का रस ऽ२॥ सुबह और दुपहर को पिला दे।

सुपालित गायों को ब्याने के ३ मास के भीतर ही दुबारा फिर गाभिन हो जाना चाहिए। बहुत जल्दी-जल्दी ब्याने से उनकी शक्ति गिरती जायगी और उनके बच्चे भी कमज़ोर होंगे। गायें बहुत देर से ब्यायें, तो पालक को हानि होगी। इसलिए गायें ठीक समय पर दुबारा गाभिन हों, इसका ध्यान रखना जरूरी है।

ब्याने के ३ से ५ महीने तक गाय को दुबारा ज़रूर गाभिन हो जाना चाहिए, ताकि पालक को समय पर दूध और बच्चे मिलते रहें।

गाय के ऋतुमती या गर्म होने के लक्षण (Oestrum)––गरम होने पर गाय ज़ोर-ज़ोर से रँभाने लगती है। वह उस समय एक जगह पर स्थिर नहीं रहती और चंचल होकर दूसरी गायों पर कूदती है। उसकी पूँछ बराबर उठी हुई और हिलती रहती है। उसका स्वभाव भी उन दिनों कुछ उग्र-सा हो जाता है। वह बार-बार मलमूत्र करने, पूँछ को हिलाने, और खुरों से मिट्टी खोदने लगती है, साथ ही खाना-पीना छोड़ देती है। कुछ गायें तो केवल धीरे-धीरे रँभाती हैं और एक ही स्थान पर उदास-सी पड़ी रहती हैं।

गाय के गर्म होने पर उसके गर्भद्वार के पास विशेष खून इकट्ठा हो जाता है। अतः वह स्थान कुछ लाल और सूजा-सा दिखायी देता है। उसके गर्भाशय के नलों से डिम्ब के परिपक्व होने पर सफ़ेद-सा गाढ़ा और चिकना द्रव गर्भ-मार्ग से बाहर निकलता है। ऋतु के यह लक्षण ३ सप्ताह बाद पुनः-पुनः प्रगट होते हैं, किन्तु गाय के गाभिन हो जाने पर बन्द हो जाते हैं। किसी-किसी गाय के गाभिन होने के बाद भी दो-एक बार इस तरह का चिकना स्राव हो जाता है, एवं गरम होने के लक्षण प्रगट होने लगते हैं। ख़ुराक में गरम तासीर की चीज़ों के ज़्यादा होने से ऐसा हो जाता है। कुसमय की यह "गरमी" अस्वाभाविक और नुकसान करनेवाली होती है। इसके उपचार ऊपर लिखे जा चुके हैं।

गर्भाधान––गाय २४ से ४८ घंटे तक गर्म रहती है। उसके गर्म होने पर साँड को तुरन्त छोड़ देना चाहिए। वह आकृष्ट होकर स्वतः ही गाय के पास जायगा और उसे सूँघेगा। गाय को स्वतंत्र-रूप से साँड़ से पाल खाने देना चाहिए। कोई-कोई ओसर बछिया या गाय भी साँड़ से बहुत घबराती है। ऐसी गाय के सींग और पिछला एक पैर खूँटों के बीच में रस्सी से बाँधकर उसे साँड़ से बरधवाये।

गाय की गरमी के उतर जाने या कम हो जाने पर साँड़ उसको नहीं बरधायेगा, इसलिए साँड़ को तुरन्त छोड़ देना चाहिए।

गाभिन होने के बाद गाय गरम नहीं होती, किन्तु यदि गरम हो जाय तो भी साँड़ अधिकतर उसके पास न जायगा; फिर भी गाभिन गाय को साँड़ से बचाने का ख्याल रखना चाहिए।

बहुत ज़्यादा दाना-खली खानेवाली मोटी गाय २-३ बार पाल खाने के बाद कष्ट से ही गाभिन होगी, क्योंकि उसके शरीर में डिम्ब देर में बनेगा और जो डिम्ब बनेगा भी वह कमज़ोर सिद्ध होगा। इस दशा में उसकी ख़ुराक में से दाना-खली निकाल देना चाहिए, किन्तु हरा-चारा अच्छी तरह देता रहे। इस प्रकार उसका मोटापा घटा देना हितकर होगा।

कम ख़ुराक मिलने के कारण कमज़ोर और दुबली गाय बार-बार पाल खाने पर भी गाभिन नहीं होगी। यदि गाभिन हो भी जाय, तो उसके गर्भ के गिरने की आशंका बनी रहेगी। ऐसी गाय को उपयुक्त चारा-दाना, खली और लवण आदि आवश्यकता के अनुसार देकर पोषण पहुँचाना चाहिए।

पाल खाकर गाभिन हो जाने पर गाय एक स्थान पर शान्त बैठी रहेगी। कुछ देर बाद उसे नहला दे। तीन-चार दिन तक उसकी ख़ुराक में से बिनौला आदि गरम तासीर की चीजें निकाल देनी चाहिए। यदि उसे बिनौला खिलाना हो, तो गाभिन होने के दो महीने बाद तक थोड़ी मात्रा में ही वह खिलाया जा सकता है, किन्तु इस समय के बाद बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। गाभिन गाय को अच्छा और भरा हुआ हरा-चारा, जिसमें प्रोटीन और विटामिन होते हैं, ज़्यादा देना चाहिए; क्योंकि गर्भस्थ शिशु के लिए उसे साधारण मात्रा से अधिक प्रोटीन और विटामिन की ज़रूरत पड़ेगी।

गाय के गाभिन होने पर उसकी गर्भाधान-तिथि, साँड़-**परिचय, दोनों** की आयु आदि सभी बातों को "गो-जन्मपत्र" में लिख लेना चाहिए। इस से संरक्षक को गाय के ब्याने के समय की ठीक जानकारी रहेगी और प्रसूति के समय उसकी विशेष देख-रेख की जा सकेगी। जन्मपत्र के द्वारा अन्य गायों के ब्याँत को भी उचित रीति से नियंत्रित करके उनसे निरन्तर दूध लिया जा सकेगा।

साँड़ का शुक्रकीट गाय के डिम्ब (Ovum) के संयोग से जीवित अवस्था में ही गर्भ में पहुँच जाता है। गर्भाशय में इसके पहुँचने पर गर्भाशय का खुला हुआ मुँह सिकुड़ कर छोटा हो जाता है और उसपर एक डाट सी बन जाती है, जिससे बाहर की कोई अशुद्धि भीतर पहुँचकर भ्रूण को हानि न पहुँचा पाये। यही जीवाणु लगभग ९ महीने के बाद अर्थात् (२८३ दिन में) पूरा बच्चा बन जाता है।

कृत्रिम-गर्भाधान (Artificial insemination)—वैज्ञानिकों ने गाय को गाभिन बनाने का यह नया तरीका ढूंढ़ा है। इसका प्रचार विदेशों में बहुत है।

सब-गुणों-वाले, ज्ञात-वंशज, ज्ञातशक्ति, स्वस्थ और युवा साँड़ के शुक्र को लेकर उसकी नीरोगिता की परीक्षा करने के बाद उसे ठंडा कर लेते हैं। फिर इस ठंडे शुक्र में अंडे का पीला रस मिला कर उसे पतला करके वायु-शून्य शीशे की नली में भरकर बरफ़ की ठंडक में रख देते हैं।

साधारणतया यह तीन चार दिन तक शक्तिमान बना रहता है। विशेषरूप से रक्खे जाने पर यह और भी अधिक समय तक शक्तिशाली बना रह सकता है।

गाय जब गर्म होती है, तब जननेन्द्रिय के मार्ग से इस संचित शुक्र को पिचकारी के द्वारा उसके गर्भाशय में पहुंचा देते हैं।

इस रीति से गाय को गाभिन कराने में कुछ फ़ायदे हैं, जैसे :—

१—एक ही सर्वगुणसम्पन्न सांड़ के एक बार के शुक्र से कई गायें गाभिन हो सकेंगी।

२—दूर-दूर की गायों से भी इच्छित जाति और गुण वाली नस्ल पैदा हो सकेगी।

३—कई साँड़ों को रखने और पालने का कष्ट व व्यय न करना पड़ेगा।

इस पद्धति से लाभ के साथ ही अप्राकृतिक प्रयोग की सम्भव हानियाँ भी विचार करने योग्य हैं। अभी तो वैज्ञानिक लोग इस पद्धति को बड़ा सराहनीय मानते हैं, किन्तु सम्भव है कि दो-तीन पीढ़ी बाद यह नस्ल कमज़ोर सिद्ध हो।

पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के कृत्रिम-गर्भाधान द्वारा हज़ारों व लाखों पशु पैदा किये गये हैं। वहाँ साँड़ों की कमी के कारण इस पद्धति का प्रयोग बहुत किया जाता है।

हारमोन—वे पदार्थ हैं, जो खून में मिलकर अपने पैदायशी स्थान मस्तिष्क से अन्यत्र, खास कर गलग्रंथि (Thyroid glands), गर्भाशय और वृषण पर अपना प्रभाव डालते हैं। इनके भीतर स्थित तरल पदार्थ पर हारमोन (Hormones) का असर पड़ता है। यह प्रजनन-उत्तेजना पैदा करता है।

गाभिन गाय के मूत्र में हारमोन-तत्त्व बहुत होते हैं। इस कारण उसका ताजा मूत्र कीटाणु-रहित पात्र में इकट्ठा करके उसको फिल्टर-पेपर से छान लेते हैं। किसी गाभिन न होने वाली गाय के १०० पौंड वज़न पीछे १० सी० सी० (C. C.) के हिसाब से गाभिन गाय के मूत्र का इंजेक्शन चार-पांच दिन तक बराबर लगाते रहने से उसके गरम होने की संभावना हो जाती है।

किन्तु, कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि गाभिन गाय के मूत्र में हारमोन्स सुप्त अवस्था में होते हैं, अतः इस इंजेक्शन का कामयाब होना निश्चित नहीं है। आजकल गाभिन घोड़ियों के रक्त से (P. M. S.) पी०एम०एस० सीरम बनते हैं। इन दवाओं के प्रयोग से गाय अधिकतर गाभिन हो जायगी।

गाभिन गाय की साधारण पहचान :—

१—वह साँड़ को अपने पास न आने देगी।

२—वह शान्तप्रकृति और सहज में ही थकनेवाली होगी।

३—उसके पेड़ू पर की खाल लटकने लगेगी।

४—गाभिन गाय का हवाना और थन उभर आते हैं। उसके थनों को दबाने पर कुछ चेंप-वाला तरल-द्रव निकलेगा।

५—पाँच या छै महीने की गाय खुल जाती है। उसकी सीधी कोख को दबाने पर बच्चा हिलता

हुआ मालूम होगा। गाय के पेट पर ठंडे पानी के छींटे डालने से भी बच्चे का हिलना-डुलना मालूम होगा।

६——चार-पांच महीने की गाभिन गाय के पेट पर कान लगाकर सुनने से बच्चे के हृदय की धड़कन अनुभवी व्यक्तियों को सुनायी देने लगेगी।

७——गाय के दूध की बूंद को तिनके से पानी में टपकाये। गाभिन गाय के दूध की बूंद पानी में बैठ जायगी। यदि दूध पानी में घुल जाय, तो वह गाय गाभिन न होगी। किन्तु दो महीने के अन्दर की गाभिन गाय का भी दूध पानी में घुल जायगा। यह एक प्रचलित परीक्षा है।

८——गाभिन गाय की बगल और थनों को छूने से बच्चे का भार मालूम देगा।

९——हाथ को विधिवत् साफ़ करके गाय के मलद्वार में डालकर गर्भाशय को टटोलने से गर्भस्थिति और उसके अवयवों की अवस्था ठीक तौर से जानी जा सकती है। किन्तु यह परीक्षा अनुभवी व्यक्ति ही कर सकते हैं।

१०——सात महीने के बाद से गाभिन गाय का योनिमार्ग कुछ सूज सा जायगा। यह सूजन प्रसव तक बढ़ती जायगी।

११——दुग्ध-नालिका प्रखर हो जायगी।

गर्भ विकास——गर्भ रहने पर ओसर गाय के शरीर के भीतर बहुत परिवर्तन होते हैं। उसके गर्भाशय और योनिप्रान्त के अङ्ग ये दोनों ही बढ़ जाते हैं, किन्तु ब्याने के बाद यद्यपि वे फिर से सिमट जाते है, पर फिर भी कुछ ढीले और बड़े रह जाते हैं।

गाभिन होने पर ओसर गाय की दुग्धवाहिनी नसें धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। ब्याने के निकट वाले दिनों मे थन को दबाने से कुछ चेंप-सा निकलने लगता है। ब्या जाने पर गाय के दूध में तीन-दिन तक खीस बहुत ज़्यादा होता है, परन्तु धीरे-धीरे दस दिन तक यह पदार्थ कम हो जाता है और शुद्ध दूध बढ़ जाता है।

इक्कीस दिन के बाद सुपोषित गाय अपनी पूर्ण शक्ति भर अधिक से अधिक दूध देने लगती है, किन्तु तीन महीने बाद जब बच्चा हरी घास खाने लगता है और अपने पोषण के लिए गाय पर ही पूरी तौर से निर्भर नहीं रह जाता तब गाय का दूध कम होने लगता है, किन्तु उसे अच्छा पोषण देकर उसकी दूध देने की शक्ति ज़्यादा दिनों तक क़ायम रक्खी जा सकती है। हर बार गाभिन गाय के गर्भाशय, योनि-प्रान्त के अङ्ग और मूत्राशय की नाड़ियां विशेष रूप से बढ़ जाती हैं, और यद्यपि वे ब्याने के बाद सिकुड़ जाती हैं, तथापि पहले से कुछ ज्यादा ही फैली रहती हैं।

गर्भस्थ भ्रूण एक झिल्ली की थैली के भीतर तरल द्रव में डूबा हुआ बढ़ता रहता है। बच्चा गर्भ में खुद साँस नहीं लेता, परन्तु साँस द्वारा ख़ून साफ़ करने की क्रिया गाय के शरीर की क्रियाओं के द्वारा होती रहती है।

आँवल या ज़ेर गर्भाशय के पास रहती है। आँवल से लगी हुई नाल गर्भाशय के भीतर जाती हुई बच्चे की नाभि से जुड़ी रहती है। गाय का साफ़ ख़ून रक्तवाहिनियों द्वारा आँवल में प्रवेश करता है। वहाँ से वह नाल में जाकर बच्चे के सारे शरीर में घूमकर उसे पोषण पहुँचाता है।

फिर वह नाल के पास की ही दूसरी नसों से सारी अशुद्धियों को आँवल में पहुँचाता है। इसके बाद यह अशुद्ध खून आँवल से गाय के शरीर की—साँस आदि—अन्य क्रियाओं द्वारा शुद्ध होता है।

बच्चे के बढ़ने के साथ ही साथ गर्भाशय पेट के बहुत बड़े भाग को घेर लेता है और पेट बड़ा हो जाता है।

गर्भ का क्रमशः विकास—

पहली स्थिति——गर्भाधान के समय नर का जीवित शुक्राणु डिम्ब से मिलकर गर्भ में पहुँच जाता है। वहाँ वह १४ दिन के भीतर ,१/२" लम्बा हो जाता है।

५ सप्ताह का भ्रूण

४ मास का भ्रूण

६ मास तक का गर्भ

दूसरी स्थिति—तीन-चार सप्ताह तक भ्रूण ½" लम्बा हो जाता है और बच्चे के सिर एवं शरीर के चिह्न बनने लगते हैं।

तीसरी स्थिति—पाँच से आठ सप्ताह तक यह भ्रूण १¾" लम्बा हो जाता है और बच्चे के अङ्ग पर खुरों के चिह्न बनने लगते हैं।

चौथी स्थिति—नौ से बारह सप्ताह तक भ्रूण ५½" लम्बा हो जाता है।

पाँचवीं स्थिति—तेरह से बीस सप्ताह तक गर्भ १२" लम्बा हो जाता है। बच्चे के शरीर पर नर या मादा के चिह्न बनने लगते हैं। ओठ और भौहों के बाल, तथा मादा के थन के चिह्न भी बनने लगते हैं।

छठी स्थिति—इक्कीस से बत्तीस सप्ताह तक गर्भ २४" लम्बा हो जाता है। बच्चे के पूँछ और सिर के बाल बनने लगते हैं।

सातवीं स्थिति—तैंतीस से चालीस सप्ताह तक गर्भ अपनी पूरी लम्बाई ३६" का हो जाता है। उसके खुर पूरी तौर पर बन जाते हैं, किन्तु कोमल रहते हैं। उसका सारा शरीर बन जाता है और उस पर बाल आने लगते हैं।

जब बच्चे के पूरे अङ्ग बनकर पुष्ट हो जाते हैं, तब बच्चा गर्भाशय से बाहर पृथ्वी पर आता है।

गाय २८० से २९० दिन के भीतर ब्या जाती है।

नये उत्पन्न बच्चे में द्रवांश ७५ % और मांसल ठोस पदार्थ २५ % रहता है। यदि बच्चे का वज़न २० सेर होगा, तो द्रवांश १५ सेर और ठोस पदार्थ ५ सेर वज़न के होंगे। गाय के कुम्भ को ऐन या हवाना भी कहते हैं।

ब्याने के कुछ पहले किसी किसी गाय का हवाना दूध से भर जाता है और उसकी दुग्धवाहिनी नली भी भारी हो जाती है। इन दिनों ख़ासकर जाड़े के मौसम में गाय को नहलाना नहीं चाहिए, क्योंकि सर्दी लगने का डर रहता है।

यदि गाभिन गाय के थन बहुत अधिक दूध से भर जायँ, तो दूध को दुहकर निकाल देना चाहिए और हवाने को नमक मिले हुए गरम पानी से सेंकना चाहिए। इस तरह गाय को एकबार दुहने पर हर रोज़ थोड़ा-थोड़ा दुहना चाहिए। यह दूध अच्छा नहीं होता, अतएव इसे फेंक दे। दुहने के बाद सरसों के तेल में कपूर मिलाकर उससे हवाने की मालिश कर देनी चाहिए।

ब्याने के निकट के लक्षण—ब्याने के दिन के पास आने पर गाय की कोखें ढीली पड़ जाती हैं और आगे की ओर को खिसक आती हैं। उसके दोनों पुट्ठों में गड्ढे पड़ जाते हैं। इसे पुट्ठे का छोड़ना या तोड़ादेना कहते हैं। पुट्ठों की मांसपेशियाँ नीचे की ओर झुक जाती हैं, साथ ही उसका पिछला अङ्ग—पूँछ के नीचे का भाग—फैल जाता है। गाय के शरीर में ऐसे परिवर्तनों के दिखायी पड़ने पर उसके ब्याने का समय निकट आया हुआ समझना चाहिए।

गाभिन गाय की सँभाल—गाभिन गाय की देख-रेख अच्छी तरह करनी चाहिए। उसे पोषक एवं गर्भ पोषक खुराक देनी चाहिए। गरम तासीर की चीजें—यथा बिनौला, खली, सन की पत्ती या बीज और ज़्यादा दस्तावर दवाएँ भी—उसे नहीं देनी चाहिए। (देखिए पोषण विज्ञान)

गाभिन गाय को सुरक्षित रक्खे, क्योंकि दूसरे पशु से धक्का या चोट खा जाने अथवा डर जाने से उसके गर्भ के गिरने की आशंका है। गर्भ के गिरने से गाय को तकलीफ़ होती है, और रोग होने का डर रहता है। जिसका गर्भ गिर गया हो किन्तु जो स्वस्थ एवं सुपोषित हो, ऐसी गाय फिर से दुबारा जल्दी ही गाभिन हो जायगी; वह ज़्यादा परेशान होजाय, तो कभी-कभी बहुत देर बाद फिर से गाभिन होगी।

गाभिन गाय को टहलाने ओर चराने के लिए ज़रूर ले जाना चाहिए, किन्तु उसे जल्दी-जल्दी नहीं हाँकना चाहिए। वह अपनी धीमी गति से चलकर रुचि के अनुसार चरती रहने से प्रसन्न एवं स्वस्थ रहती है। केवल बाँधकर ही रक्खी हुई गाय को ब्याते-समय कष्ट अधिक होगा, अतः उसको घुमाना-फिराना बहुत आवश्यक है। उसके पीने के लिए साफ़ पानी का समुचित प्रबन्ध रखना चाहिए। उसके कमरे में नरम पयाल बिछाते रहना चाहिए।

गाभिन होने के सात महीने बाद से गाय के ऐन व थनों पर रोज हलके-हलके मालिश कर देने से वह ब्याने पर खूब अच्छी तरह दूध देगी। खासकर ओसर गाय के ऐन की सेवा इस प्रकार अवश्य करनी चाहिए।

खुराक—सुपोषित और सुरक्षित गाय दूध देते-देते दुबारा गाभिन हो जाती है। अतएव जैसे-जैसे वह दूध देना कम करती जाय, वैसे-वैसे उसे दूध देने की शक्ति के लिए दिये जाने वाले उत्पादक दाने को भी कम कर देना चाहिए। किन्तु चारा और पोषक ख़ुराकवाला दाना तो सदैव ही दे। गर्भ के बढ़जाने पर गर्भ-पोषक खुराक का भी देना शुरू करदे। जब दूध बिल्कुल सूख जाय, तब अगर अच्छे क़िस्म के हरे चारे भरपेट चरने को मिलें, तो उसे पोषण के लिए दाना-खली न दे। किन्तु अच्छे क़िस्म का पर्याप्त चारा न मिले, तो पोषक खुराक की दाना-खली भी ज़रूर देते रहना चाहिए। दाल के हरे पौधों में प्रोटीन बहुत होती है, अतः ऐसी फ़सल बोयी हुई गोचर-भूमि की चराई उसके लिए सर्वश्रेष्ठ है। पोषण-विभाग में यह साफ़-साफ़ लिखा गया है।

गाभिन गाय को ज़्यादा दाना और खली खिलाकर मोटी कर देना ठीक नहीं है, क्योंकि इस प्रकार उसके पेट में चरबी के अधिक बढ़ जाने से गर्भाशय को बढ़ने के लिए जगह कम मिलेगी, और बच्चा पूरी तौर से बढ़ न पायेगा। किन्तु यदि गाय कमज़ोर हो, तो उसे दाना और थोड़ी-सी खली द्वारा पोषण पहुँचाना बहुत ज़रूरी है।

जाड़ों में ब्याने के दस-पन्द्रह दिन पहले से आध सेर गेहूँ के दलिये में पावभर गुड़ डालकर राँध ले, यह दलिया तुरंत ब्याने वाली गाय को खिलाना लाभदायक होता है। कभी कभी तीन-चार छटाँक सरसों के तेलका पिलाना भी अच्छा होता है। इन चीज़ों से गाय को कार्बोज, प्रोटीन और वसा काफी मिलेगी, जिससे ब्याने के समय उसे विशेष परिश्रम व दुःख न उठाना पड़ेगा।

गर्मियों में गेहूँ या जौ का दलिया थोड़ी-सी शक्कर के साथ देना ठीक होता है। तेल पिलाना हो, तो तिल का तेल अच्छा रहता है।

गाभिन गाय को हरा-चारा देने का विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि इसमें विटामिन "ए" बहुत होता है। यह तत्त्व गाय और गर्भस्थ बच्चे के लिए बहुत आवश्यक है।

दूध का दुहना—दुबारा गाभिन होने पर सात महीने तक गाय के दूध की नलियाँ धीरे-धीरे सिकुड़ जाती हैं और वह दूध देना बन्द कर देती है। आठवें महीने से वे फिर विकसित होने लगती हैं और ब्याने के आसपास के दिनों में थनों को दबाने से कुछ "चेंप" सा निकलता है।

गाभिन होनेके सात महीने बाद भी यदि गाय दूध देती रहे, तो उसे धीरे-धीरे सुखा देना चाहिए। इस समय के बाद दूध दुहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से गाय कमज़ोर हो जाती है और ब्याने पर दूध भी कम देती है। ऐसी परिस्थिति में ब्याने के बाद दूध बढ़ाने के उपाय करने पर कुछ भी लाभ नहीं होता।

गर्भ का पोषण—गर्भस्थ बच्चा अपना पोषण माँ के शरीर से खींचता है, अतः गाय को तन्दुरुस्त रखना चाहिए। उसके चारे अच्छे क़िस्म के, हरे और ठीक भरे-हुए होने चाहिए, पोषण-विभाग में इसका साफ़ वर्णन किया गया है।

प्रकृति की प्रेरणा से अपने गर्भस्थ बच्चे के पोषण के लिए गाय अपनी सारी शक्ति लगा देती है। यदि पोषक चारा न मिले, तो भी वह अपनी शक्ति से ही अपने स्वतः के पोषण के बदले पहले अपने बच्चे का पोषण करती है। परन्तु इस तरह वह स्वतः कमज़ोर हो जाती है। गाय के विशेष कमज़ोर होने पर ही बच्चा कमज़ोर पैदा होगा। कमज़ोर गाय के ब्याने पर उसके दूध को बढ़ाने के लिए उपाय करने से यथेष्ट लाभ नहीं होगा।

गाभिन गाय की सेवा—गाभिन गाय को नहला-धुलाकर साफ़ रखना चाहिए, उसे किलनी-आदि कीड़ों से बचाते रहना चाहिए। वह सद्व्यवहार से प्रसन्न रहती है। उसे अधिक गर्मी, ठंड और आँधी आदि से भी बचाते रहना चाहिए।

गाभिन होने के बाद गाय कुछ महीनों तक तन्दुरुस्त दीखने लगती है, किन्तु ब्याने के समय के निकट आने पर वह कुछ उतर-सी जाती है।

ब्याने के दिनों में गाय के बैठने के लिए सूखा व नरम पयाल बिछा दे और उसके गोबर से भर जाने पर उसे दूसरे तीसरे दिन बदल दिया करे। उसे दूसरी गायों से लड़ने देना ठीक नहीं है। उसे चोट आदि न लगे इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

प्रसूति-परिचर्या—

पहली स्थिति—तोड़ा-देना या पुट्ठे-तोड़ना—गाय के ब्याने का समय तब निकट समझना चाहिए, जब उसके पुट्ठे कुछ खिसके-से मालूम दें। उसका पिछला भाग भारी हो जाता है तथा पाकस्थली छाती की ओर झुक जाती है। गर्भमार्ग का बाहरी मुख कुछ सूजकर लाल रङ्ग का और चौड़ा हो जाता है। वहाँ से लाल, सफ़ेद या मटमैले रङ्ग के चिकने तरल पदार्थ का निकलना जारी हो जाता है। यह चिकनई पूँछ और पैरों में चिपट-सी जाती है।

इस परिस्थिति में गाय दो या चार दिन तक रह सकती है, किन्तु कभी कभी वह इसके ३-४ घंटे बाद ही ब्या जाती है।

गाय के बच्चा देने की तिथि जानने की तालिका, २८३ दिन

गाभिन होने का दिन	बच्चा देने का दिन	गाभिन होने का दिन	बच्चा देने का दिन
चैत बदी १	**पौष** बदी १४	**आश्विन** बदी ८	**आंसाढ़** सुदी ७
,, ,, ८	,, सुदी ७	,, ,, १५	,, ,, १४
,, ,, १५	,, ,, १४	,, सुदी ८	**सावन** बदी ७
,, सुदी ८	**माघ** बदी ७	,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४
,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४	**कार्तिक** बदी ८	,, सुदी ७
वैशाख बदी ८	,, सुदी ७	,, ,, १५	,, ,, १४
,, ,, १५	,, ,, १४	,, सुदी ८	**भादों** बदी ७
,, सुदी ८	**फाल्गुन** बदी ७	,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४
,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४	**मार्गशीर्ष** बदी ८	,, सुदी ७
जेठ बदी ८	,, सुदी ७	,, ,, १५	,, ,, १४
,, ,, १५	,, ,, १४	,, सुदी ८	**आश्विन** बदी ७
,, सुदी ८	**चैत** बदी ७	,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४
,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४	**पौष** बदी ८	,, सुदी ७
आसाढ़ बदी ८	,, सुदी ७	,, ,, १५	,, ,, १४
,, ,, १५	,, ,, १४	,, सुदी ८	**कार्तिक** बदी ७
,, सुदी ८	**वैशाख** बदी ७	,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४
,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४	**माघ** बदी ८	,, सुदी ७
सावन बदी ८	,, सुदी ७	,, ,, १५	,, ,, १४
,, ,, १५	,, ,, १४	,, सुदी ८	**मार्गशोर्ष** बदी ७
,, सुदी ८	**जेठ** बदी ७	,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४
,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४	**फाल्गुन** बदी ८	,, सुदी ७
भादों बदी ८	,, सुदी ७	,, ,, १५	,, ,, १४
,, ,, १५	,, ,, १४	,, सुदी ८	**पोष** बदी ७
,, सुदी ८	**आसाढ़** बदी ७	,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४
,, पूर्णिमा ३०	,, ,, १४		

दूसरी स्थिति—ब्याने के समय के निकट आने पर गाय कुछ परेशान-सी हो जाती है। उसकी आँखें चमकीली और धँसी हुई दीखने लगती हैं। वह अन्य सब पशुओं से अलग जा बैठती है और बार-बार पूंछ हिलाने तथा उठने-बैठने लगती है।

ऐसे समय पर उसके बैठने के लिए नरम पयाल, घास या रेत बिछाकर उसके गले की रस्सी वगैरह के बन्धन खोल देने चाहिए, ताकि वह हिलने-डुलने से कहीं फँस न जाय ।

उसके सामने हरी दूब वगैरह की कुछ अच्छी घास रख देने से वह थोड़ा-थोड़ा खायगी और इससे उसका जी बहला रहेगा । कुत्ते, बिल्ली आदि पशुओं को उसके पास नहीं जाने देना चाहिए, क्योंकि वह इनसे चिढ़ती है और ये उसके बच्चे को हानि पहुँचा सकते हैं ।

इस समय धीरे-धीरे दरद शुरू हो जाते हैं । गर्भाशय का मुख और मार्ग तथा वहाँ की झिल्ली चौड़ी होने लगती है । गर्भाशय पर बच्चे के दबाव के पड़ने से यह झिल्ली फट जाती है । गर्भाशय ऊपर की ओर से सिकुड़ने भी लगता है ।

इस प्रकार दबाव पाकर गर्भाशय के भीतर की थैली गर्भाशय के बाहर की ओर आने लगती है । इस थैली के भीतर तरल पदार्थ में बच्चा डूबा रहता है । धीरे-धीरे यह थैली गर्भाशय के मुख पर आकर अटक जाती है और उसका मुँह खुल जाता है ।

प्राकृत प्रसूति
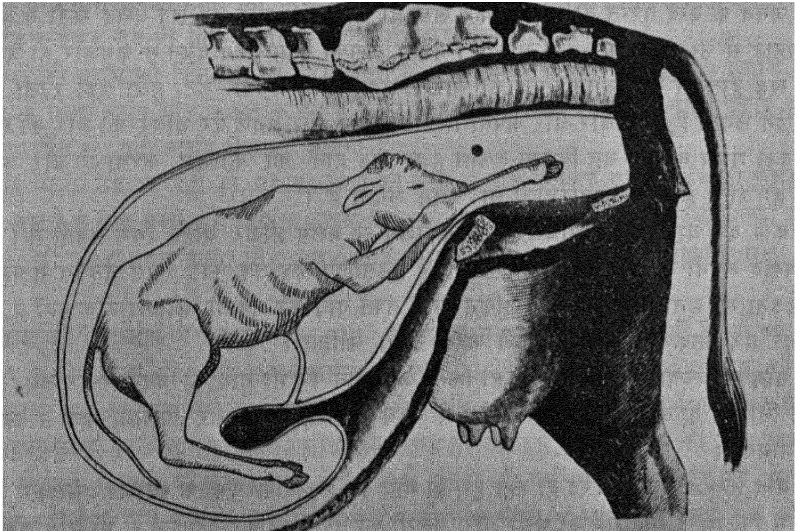
गर्भाशय के सिकुड़ने के दबाव से थैली का मुँह और ज़्यादा बड़ा होने लगता है । साथ ही गर्भाशय का मुंह भी खुलने लगता है । इस प्रकार मुँह के खुलने से गाय के दरद होने लगता है । यह दरद धीरे-धीरे उठता और फिर बन्द हो जाता है, ताकि गाय को आराम करने का मौक़ा मिले ।

तीसरी स्थिति—जैसे-जैसे दरद जोरदार और जल्दी आने लगते हैं, वैसे-वैसे गर्भाशय का मुंह बड़ा होने लगता है और कुछ देर में वह खुलकर ऐसा हो जाता है कि वहाँ से गर्भमार्ग तक एक-सी और साफ़ खुली हुई राह बन जाती है।

गर्भमार्ग के पूरी तौरपर खुल जाने के बाद गर्भाशय ऊपर की ओर से और भी ज़्यादा सिकुड़ता है, जिससे बच्चा बाहर आने लगता है। पानी की थैली पहले ही फूट जाती है, ताकि बच्चा सुगमता से निकल सके। परन्तु उसे कभी फोड़ना नहीं चाहिए, नहीं तो बड़ी हानि हो सकती है।

प्रसव-समय के निकट आ जाने पर गाय ज़मीन पर बैठकर बायीं ओर को करवट लेती है। सबसे पहले बच्चे के खुर बाहर दीखने लगते हैं। खुरों तथा पैरों पर उसका मुँह सटा और ठुड्डी टिकी रहती है। प्रसव-वेदना (दरद) के बढ़ने पर बच्चे के अगले पैर बाहर आने लगते हैं।

बच्चे की पीठ गाय की पीठ की तरफ़ होती है। बच्चे के सिर को पूरी तौर पर बाहर निकालने के लिए एक बार खूब ज़ोर का दरद होता है। सिर के निकलने के १ या २ मिनट बाद ही बच्चे का धड़ और पिछले पैर भी बाहर आ जाते हैं। इसी समय बच्चे की नाभि से लगी नाल टूट जाती है और बच्चा गाय से बिल्कुल अलग हो जाता है।

जनने के बाद तुरन्त ही गाय बैठकर खड़ी हो जाती है। यदि वह ख़ुद-बख़ुद खड़ी न हो सके, तो सहारे से उसे खड़ी कर देना चाहिए। वरना, उसकी कोमल रगें दबने से कमज़ोर हो जायँगी।

खड़े होते ही गाय अपने बच्चे को चाटने लगती है। बच्चा लेटा हुआ पड़ा रहता है और साँस लेने लगता है। वह धीरे-धीरे अपना सिर उठाता है और अगले पैर भीतर की ओर को समेटता है। कुछ समय के बाद वह हिलता-डुलता हुआ खड़े होने की कोशिश करता है और अन्त में खड़ा हो जाता है, और लड़खड़ाता-सा चलने लगता है।

कुछ देर बाद ज़ेर—आँवल—भी गर्भाशय से अलग होकर बाहर गिर पड़ती है। क़ुदरत ख़ुद-बख़ुद अपनी सारी क्रिया पूरी कर लेती है। इसलिए जब तक कोई ख़ास ज़रूरत न पड़े, गाय को छेड़ना या छूना नहीं चाहिए। लेकिन ब्याते वक्त गाय को अकेली छोड़ना ठीक नहीं है, बल्कि कुछ दूर पर बैठकर उसकी निगरानी करते रहना चाहिए।

गाय का बच्चा ठीक स्थिति पर हो किन्तु दरद होने पर भी गाय को जनने में देर लगे, तो २॥ तोला निर्बिसी के बीजों को पीसकर थोड़े से गरम पानी में मिलाकर पिलाये; इस से वह शीघ्र ब्या जायगी।

यदि ८-१० दिन से दरद हो रहा हो, तो गाय को १ छटाँक चित्रक की जड़ पीसकर गुनगुने पानी में पिलाये। गुड़, गेहूँ की भूसी और अलसी का तेल मिलाकर खिलाने से भी गाय शीघ्र ब्या जाती है। इस दशा में एरगट-मिक्शचर (Ergot-Mixture) का देना भी लाभकारी होता है। विशेष परिस्थितियों में पशु-चिकित्सक को तुरन्त ही बुला ले।

ब्याने पर यदि बच्चा साँस न लेता हो और मरा-सा जान पड़े, तो साँस-संचालन की क्रियाएँ करने से उसमें जागृति आ जायगी। बच्चे के मुँह और पीठ पर ज़ोर-ज़ोर से थपथपाये, मुंह पर ठंडे

और गरम पानी के बारी-बारी से छींटे दे। मुँह में अँगुली डालकर जीभ को कुछ बाहर खींचे। नाक बन्द हो, तो साफ़ कर दे और फेफड़ों की जगह धीरे-धीरे तेल की मालिश कर दे।

जनने के बाद बच्चे और गाय की सेवा—

बच्चे की देख-रेख—पैदा होते ही बच्चे की नाल को नाभि से २ इंच की ऊँचाई पर तागे से बाँध देना चाहिए। इस तागे को किसी कृमिनाशक द्रव—जैसे नीम की पत्ती के रस, पोटैशियम-परमैगनेट या टिंचर-आयोडीन आदि के घोल—से धोकर साफ़ कर लेना चाहिए। सामान्यतया प्रसव के बाद नाल की प्रणाली सिकुड़ जाती है और इससे रक्तादि नहीं निकलते।

बच्चे के पैदा होते ही नाल को तेज-धारवाली साफ़ कैंची या छुरी से काट देना, कुछ लोग पसन्द करते हैं। प्रायः नाल अपने आप ही टूट जाती है, किन्तु यदि न टूटे, तो गाय उसे अपने दाँतों से काट देगी। यदि नाल लम्बी रह जाय, तो उसे ऊपर लिखी विधि से तागे से बाँधकर काट दे। नाल को लम्बी लटकती हुई छोड़ने से फोड़े आदि के होने की सम्भावना रहती है।

नाल के टूट जाने या काट देने के बाद, जब कि गाय बच्चे को पूरी तौर से चाटकर साफ़ कर चुकी हो, बच्चे की नाल को किसी कृमिनाशक दवा के हल्के घोल से पोंछकर साफ़ पट्टी पेट से लपेटकर बाँध देना अच्छा होता है। इससे गर्द व मक्खियों से उसका बचाव हो जाता है। ५-७ रोज़ बाद नाल सूखकर खुद ही गिर पड़ती है और नाभिद्वार सिकुड़ जाता है।

बच्चे की नाभि को फिनायल या गरम पानी से २-४ दिन तक रोज़ धो दे। २ छटाँक तिल का तेल, १ तोला कपूर और १ छटाँक तारपीन का तेल, इन सब को मिलाकर नाभि पर २ या ३ बार लगा देने से, वह जल्दी ठीक हो जायगी।

यदि विशेष ठंड पड़ रही हो, तो नव-शिशु को आग के पास रखकर गरमी पहुँचानी चाहिए। गाय के चाटने के बाद बच्चे को, ऋतु के अनुसार गुनगुने या ताज़े पानी से, नहला देना अच्छा रहता है। बच्चे की आँख, नाक, कान, और हाथ-पैरों के जोड़ों को खूब अच्छी तरह पोंछकर सुखा देना चाहिए।

गाय की देखभाल या परिचर्या—ब्याने के बाद गाय तुरन्त खड़ी हो जाती है, अन्यथा उसे खड़ी कर दे और बच्चे को उसके सामने चाटने के लिए रख दे। बच्चे को चाटने से गाय का जेर शीघ्र गिरता है, एवं गर्भाशय की क्रियाएँ भी तेज़ी से होने लगती हैं, जिससे गर्भ का मैल अच्छी तरह निकल जाता है। चाटने से बच्चा शीघ्र ही चैतन्य हो जाता है, क्योंकि गाय की जीभ खुरदरी व गरम होती है। बच्चे का शरीर गाय के शरीर के भीतर की गर्मी से बाहर आने पर शीत का अनुभव करता है। गाय चाटकर बच्चे में धीरे-धीरे गर्मी पहुँचाती है, साथ ही उसके मैल को भी दूर करती है। धोने से ऐसी सफ़ाई तब तक नहीं होती, जब तक कि विशेष सावधानी से अच्छी तरह मलकर बच्चे को स्नान न कराया जाय।

पश्चिमी ढंगवाले गाय के सामने से उसके बच्चे को हटा देते हैं और उसे अलग ले जाकर साफ़ करते तथा नहलाते-धुलाते हैं। वे केवल उन्हीं बछड़ों को पालते हैं, जिन्हें साँड़ बनाना होता है।

ज़ेर––प्रायः गाय के ब्याने के २-४ घंटे बाद ज़ेर गिर जाती है। जब तक ज़ेर बाहर न आ जाय, प्रसूति की क्रिया को आधी ही समझना चाहिए और उस समय तक गाय की पूरी सँभाल करनी चाहिए। गाय को ठंडा पानी न पीने दे। स्वस्थ गाय की ज़ेर खुद-बखुद निकल आयेगी। ज़ेर के निकलते ही उसे उठाकर गोशाला से दूर ज़मीन में गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिए। ध्यान रहे कि गाय कहीं अपनी ज़ेर को खुद न खा ले।

गाय के ब्याने के बाद उसे सूखे धान, बाँस की हरी-पत्ती या पयाल का खिलाना लाभदायी पाया गया है, क्योंकि इनसे उसकी ज़ेर अच्छी तरह बाहर निकल पड़ती है। कई गायों को सूखे-जौ और गुड़ का खिलाना हितकारी देखा गया है।

ज़्यादा से ज़्यादा २४ घंटे के अन्दर ज़ेर ज़रूर गिर जानी चाहिए। यदि घबराहट या कम-ज़ोरी आदि के कारण ज़ेर न निकले, तो नीचे लिखे हुए साधारण उपचार कर ले।

१––गाय को बाँस की पत्ती और पुराना गुड़ खिलाये।

२––गेहूं के उबले हुए चोकर में थोड़ी सी हल्दी, सरसों का तेल और जरा-सा नमक मिलाकर कुछ गरम-गरम दे।

३––गुड़ ऽ॥, मेथी ऽ।, सोंठ १ तोला, अजवायन १ तोला, इन सबको थोड़े से पानी में पकाकर गुनगुना ही पिलाये।

४––पान के पचास पत्ते खिलाये।

५––सूखे धान या जौ गुड़ के साथ खिलाये।

यदि किसी विकृति के कारण जेर बाहर न आये, तो तुरन्त किसी अनुभवी व्यक्ति या वेटरनरी-डाक्टर की सहायता लेनी चाहिए। ज़ेर न गिरने का परिणाम भयंकर होता है, अतएव इस विषय में खूब सावधान रहना चाहिए। जेर न निकलने तक गाय को गरम रक्खे, ठंड न लगने दे और ठंडा पानी न पीने दे। तब तक उसे दाना-खली भी बिल्कुल न खिलाये और अन्य गायों से हटाकर रक्खे। ऐसी गाय की विशेष देखभाल करनी चाहिए।

यदि अधिक देर हो जाय, तो गाय की जेर हाथ से निकाल लेनी चाहिए। निकालने से पहले हाथ के नाखूनों को काटकर खूब साफ़ धो लेना चाहिए। धोने के लिए नीम के पत्तों का उबाला हुआ, फिनाइल डाला हुआ या पोटैशियमपरमैंगनेट पड़ा हुआ, गरम पानी बरतना चाहिए। फिर हाथ पर कुहनी तक थोड़ा-सा तिल या सरसों का तेल लगाकर गाय के योनि-मार्ग में चिपकी हुई ज़ेर को हाथ से बाहर निकाल ले। गाय के योनि-मार्ग के भीतर कोई घाव न बनने पाये, इसलिए थोड़ी सी अच्छी शराब या रेक्टीफाइड स्प्रिट (Rectified spirit) योनिमार्ग के अन्दर लगा देना चाहिए। पूँछ के नीचे के भाग को शुद्ध गरम पानी से ४-५ दिन तक रोज धोकर साफ़ सरसों का तेल हल्दी मिलाकर मल दे। जेर निकलने के बाद गाय को गरम रक्खे और खाने के लिए गरम ही चीजें दे।

गाय यदि ज़ेर खा लेगी, तो उसे कई तरह के रोग हो जायँगे, उसकी पाचनशक्ति कमज़ोर हो जायगी और वह दूध कम देगी।

यदि गाय ने ज़ेर डाली न होगी, तो ज़ेर का कुछ अगला भाग गाय के गर्भद्वार पर लगा हुआ-सा प्रायः दिखायी देगा, गाय प्रसन्न न रहेगी, जुगाली न करेगी, कभी बैठेगी, कभी उठेगी या चुपचाप उदास और बेचैन रहेगी। ऐसी हालत होने पर नीचे लिखी रीति से उपचार करना चाहिए।

१—पान की ५० पत्तियाँ खिलानी चाहिए।

२—तुलसी के पत्तों का २ छटाँक रस ½ सेर पुराने शीरे के साथ मिलाकर दे।

गाय को ५-७ दिन तक दस्तावर दवाएँ दे। ऽ- ज़ीरा, ऽ- अजवायन, ऽ- सोंठ, ऽ≡ गुड़ में पकाकर कुछ गुनगुनी औटी दो खुराकों में पिलानी चाहिए।

३—गाय के शरीर से बाहर लटकती हुई ज़ेर की नाल में वज़नी लकड़ी का टुकड़ा बाँध दे।

४—गाय को पोटैशियम-परमैंगनट के हलके घोलका डूश दे। (डूश देने की क्रिया चिकित्सा-विभाग में देखिए) पिलाने के लिए क्लिनसिंग ड्राफ़्ट (Cleansing draught) नाम की दवा बरते। जिस में टिंचर-अरगट (Tincture ergot) और मैग-सल्फ होता है।

५—पिटयूट्रीन (Pituitrin) के इन्जेकशन भी फ़ायदेमन्द होते हैं।

खुराक—व्याने के बाद कम से कम २४ से ४८ घंटे तक गाय को ठंडा पानी या भीगा हुआ दाना-खली नहीं देना चाहिए। उसे भरपेट साफ़ और हरी दूब या हरा-चारा खिलाये।

गेहूँ का चोकर, हल्दी और गुड़ पानी में पकाकर देने से गाय को अच्छा पोषण मिलता है, इससे ब्याने के बाद के दरद कम हो जाते हैं और गर्भाशय अपनी पूर्वस्थिति में आने लगता है।

दो दिन बाद निम्नलिखित हरीरा थोड़ा-थोड़ा कुछ दिनों तक खिलाये। यह गाय के गर्भाशय को साफ़ करता है, पौष्टिक होता है और दूध को बढ़ाता है।

हरीरा—ऽ= हल्दी, ऽ। अजवायन, ऽ= सोंठ, ऽ। ज़ीरा, ऽ। मेथी, ऽ। पीपरामूल, ऽ= सेंधाकचरी, ऽ। बेलगिरी, ऽ- काला नमक, इन सब को कूट-पीसकर चूर्ण बना ले। फिर इसे सरसों के तेल में भूनकर ऽ२ गुड़ मिलाकर ऽ५ पानी में पका ले। जब कुछ गाढ़ा हो जाय और सब चीज़ें अच्छी तरह से गलकर एक में मिल जायँ, तो इसे तैयार समझे। यह चार ख़ुराकों का नुस्ख़ा है।

जाड़ों में यदा-कदा दूध देने वाली किन्तु जो गाभिन न हों, ऐसी गायों को भी यह हरीरा खिलाना लाभदायी देखा गया है।

ब्याने के ४-५ घंटे बाद कुछ लोग गाय को बाजरा उबालकर या उरद की दाल और चावल की खिचड़ी भी खिलाते हैं। लेकिन जहाँ तक सम्भव हो सके, यह न दे। गेहूँ का चोकर, नमक और हल्दी तथा गुड़ देना चाहिए। यही ख़ुराक अच्छी है। इसी को ७ या १० दिन तक खिलाये। गाय को तीसरे दिन ऽ॥ अलसी या सरसों के तेल का पिलाना भी अच्छा पाया गया है।

दस दिन तक गाय को चने का दाना, खली, बिनौला या ग्वार नहीं देनी चाहिए, क्योंकि इससे उसकी पाचनशक्ति पर भार पड़ता है।

दूध दुहना—बच्चा उत्पन्न होने के २ घंटे बाद जब गाय के दर्द कम हो जाय और ज़ेर गिर जाय, तब उसको दुहकर थोड़ा-सा खीस निकाल लेना चाहिए। यह प्रथम बार का दूध विशेष चिप-

कना होता है। इसे फेंक दे। एक बार थोड़ा-सा दुह लेने से गाय के थन कुछ नरम पड़ जाते हैं। अब बच्चे को दूध पीने के लिए गाय के थन के पास ले जाय। वह इधर-उधर ढूँढ़कर थन को मुँह में लेकर पीने लगेगा। बच्चे के थन चूसने से गाय का गर्भाशय अच्छी तरह सिकुड़ने लगता है तथा अपने स्थान पर वापस आ जाता है और प्रसव के दरद भी कम हो जाते हैं।

प्रसव-काल का दूध—प्रथमबार के इस खीस या कोलोस्ट्रम (Colostrum) में रेचक-पदार्थ बहुत होते हैं। इससे बच्चे का पेट साफ़ हो जाता है। साधारण दूध की अपेक्षा इसमें चीनी और पानी का अंश कम रहता है और क्षार तथा प्रोटीन का भाग बहुत अधिक होता है।

हर गाय के कोलोस्ट्रम के पदार्थों की मात्रा एक-सी नहीं होती। आगे लिखी तालिका तुरन्त की ब्यायी हुई गाय के खीस में होनेवाले कम से कम या ज़्यादा से ज़्यादा द्रव्यों की है।

खीस में प्रतिशत	अधिक से अधिक मात्रा	कम से कम मात्रा
पानी का भाग	७५·५१	८२·३६
वसा ,,	६·३२	१·३
शक्कर ,,	२·१७	१·५१
प्रोटीन ,,	१४·७	१३·७१
खनिज-लवण ,,	१·२६	१·०६

(उपर-लिखित तालिका गोप-विशारद जनों के आधार पर है।)

खीस में अलब्यूमिन का बहुत बड़ा भाग रहता है, जो कि गरम करते ही जमकर थक्का बन जाता है। खीस बछड़े-बछियों के लिए मांसपोषक व आवश्यक वस्तु है। इस कारण प्रथम १० दिन तो बच्चे को खीस अवश्य ही भर-पेट पिलाये। बच्चे को कुछ समय तक गाय के पास रहने दे, ताकि वह अपनी माँ के द्वारा चाटा जा सके। बच्चे को दिन में तीन-बार दूध पिलाना चाहिए। बच्चे के दूध पीने के बाद गाय को अच्छी तरह पूरी तौर से दुह लेना चाहिए। गाय के थनों में खीस के अंश के बाक़ी रह जाने पर वह वहाँ जमकर रोग उत्पन्न करेगा।

बच्चा पैदा होने के कुछ देर बाद ही खड़ा होने की चेष्टा करने लगता है। बच्चे को खड़े होने में बिना ज़रूरत के सहायता नहीं देनी चाहिए। गाय के बच्चे को साबुन के पानी का एनिमा दे।

ब्याने के बाद गाय के ऐन में ख़ूब खीस भर आयेगा। दुधारू गाय के ऐन में बच्चे को पिलाने के बाद भी काफ़ी खीस बच रहेगा, इसलिए उसे ज़रूर दुह लेना चाहिए।

नये दूध में मक्खन की मात्रा कम रहती है, किन्तु वसा का यह अंश गाय के दिनारी होते जाने पर बढ़ता जाता है और दूध गाढ़ा पड़ने लगता है।

बालकों तथा रोगियों के लिए खीस हितकारी नहीं है, किन्तु कुछ लोग इसे औटाकर इसके ठोस पदार्थ को रुचि से खाते हैं। गाय के बच्चे को यदि काफ़ी खीस न मिले, तो एक छटाँक अण्डी का तेल पिलाये या साबुन का एनिमा दे।

वैद्य-लोग फेफड़ों के रोगों में खीस का सेवन करना अच्छा मानते हैं।

वास्तव में जब तक दूध में जमने का स्वभाव बना रहता है, तब तक वह मनुष्यों के व्यवहार-योग्य नहीं समझा जाता। पाँच-छै दिन बाद खीस का जमने का स्वभाव कम होने लगता है। दसवें या बारहवें दिन तक दूध बहुत कुछ स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है, और व्यवहार के लिए ठीक हो जाता है। यदि गाय रोगी हो जाय, तो खीस का समय और बढ़ जाता है। अधिक से अधिक २१ दिन में गाय का दूध स्वाभाविक बन जाता है।

गाय के बच्चे को कम से कम महीने भर तक तो अपनी माँ का दूध अवश्य ही भर-पेट पीने देना चाहिए। यह प्रारम्भिक पोषण उसे जीवन-भर स्वस्थ रहने में सहायक सिद्ध होता है। धीरे-धीरे वह हरी घास खाने लगेगा और अच्छे-चारे पाकर पुष्ट रहेगा। प्रसूति-सम्बन्धी रोगों का इलाज चिकित्सा विभाग-चार में लिखा गया है।

बच्चे को अपनी रुचि के अनुसार पेट-भर खीस पी लेने दे, क्योंकि प्रकृति स्वयं ही खीस की आवश्यक मात्रा और बच्चे की रुचि का निर्माण करती है। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा अधिक खीस या दूध न पी जाय।

बच्चे को साफ़-सुथरी, गरम व हवादार जगह में रखने का प्रबन्ध करे। छोटे बच्चों को किलनी और जूँ आदि कीटाणु सहज ही लग जाते हैं, अतएव उन्हें चार-पाँच दिन के बाद नीम के पानी से धूप में खड़े कर के नहलाकर सुखा दिया करे।

विभाग—तीन

पोषण-विज्ञान

अध्याय-सूची

विभाग—३

पहला अध्याय

आहार (चारा-दाना)

गाय-बैलों का स्वास्थ्य एवं शक्ति नस्ल के अलावा और भी अन्य कई बातों पर निर्भर रहती है। उन पर उनके खान-पान का बहुत बड़ा असर पड़ता है, अतएव गोपालन में चारा-दाना एक प्रमुख वस्तु है। चारे-दाने के गुणों और अवगुणों के वैज्ञानिक-विश्लेषण का ज्ञान होने से पालक को यथोचित रूप से ख़ुराक का नियन्त्रण करने में सहायता मिलती है।

प्रकृति के विधान के अनुसार पशु यदि दिन-भर चरता रहे, तो वह स्वतः ही भर-पेट घास खा सकता है। किन्तु मनुष्य ने सारी ज़मीन पर अपना कब्जा जमाकर पशुओं को उनके चरने-योग्य भूमि से वञ्चित कर दिया है। इस पर भी वह उनसे ज़्यादा से ज़्यादा काम लेना चाहता है; जैसे, बैल से खेती आदि में परिश्रम लेना, और गाय से बच्चे को पिलाने के बाद भी अपने लिए अधिक दूध दुहना। खेती करने एवं गाड़ी के खींचने में बैल की, और विशेष-रूप से दूध देने में गाय की, ताक़त ज़्यादा ख़र्च होती है। इनसे काम लेकर मनुष्य को इनकी सेवा और उचित भरण-पोषण का प्रबन्ध करना ही चाहिए। इसी कारण उसे चारे-दाने के बोने और काटने का परिश्रम करना पड़ता है। अतः हमें कुछ खेतों में ऐसी चीज़ों को, जिनमें ज़मीन कम घिरे किन्तु उपज ज़्यादा हो, बोकर चारे-दाने का इन्तज़ाम करना पड़ता है।

- आज की साधारण गाय -
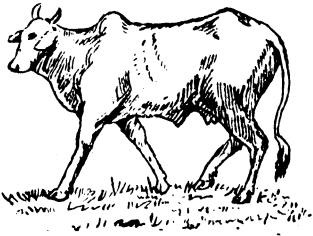
- आज का दुर्बल साँड़ -
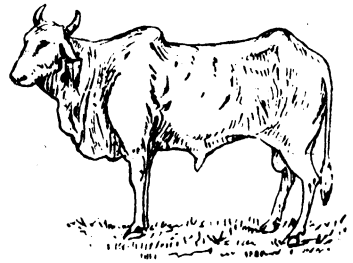
गो-पालक को मालूम होना चाहिए कि किस मौसम में, किस चीज़ को, कितनी मात्रा में और किस प्रकार, खिलाने से पशुओं पर क्या असर पड़ता है; क्योंकि चारे-दाने में कुछ चीजें हानिकर और कुछ लाभप्रद होती हैं।

दाना खाने से पशु को यद्यपि उचित पोषण मिल सकता है, तथापि केवल दाना ही काफ़ी नहीं होता। उसके लिए चारा-घास भी बहुत ज़रूरी है। चारे-दाने की ख़ुराक से उसके शरीर की गर्मी बनती रहती है और वह कम नहीं होने पाती।

चारादाना खाने व पानी पीने से पाचन-क्रिया द्वारा जो रस बनते हैं, उनका कुछ अंश दुग्ध-वाहिनी-नाड़ियों में होता हुआ दूध के रूप में प्रवाहित होता है। दूध पर पशु के खान-पान का असर शीघ्र पड़ता है। यहाँ तक कि यदि एक वक्त की ख़ुराक में कुछ कमी की जायगी, तो उस वक्त के दूध पर भी उसका असर पड़ेगा। अस्तु, स्पष्ट है कि चारा-दाना गो के लिए बहुत ही ज़रूरी चीज है। इस कारण इसकी पूरी जानकारी हासिल करने के लिए हर-एक पालक को कोशिश करनी चाहिए।

अलग-अलग चीज़ों के अलग-अलग गुण होते हैं। उनके बोने, काटने, रखने एवं खिलाने के तरीक़े भी ऋतु के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं।

किसी के खाने से दूध की, किसी से दूध में स्थित ठोस पदार्थों की और किन्हीं से उसमें घी की मात्रा बढ़ जाती है।

पौधा—वायु, जल तथा पृथ्वी से पौधा जल, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज-लवण आदि पदार्थों को खींचकर अपनी जाति के अनुसार अपने में सञ्चित करता और बढ़ता है। पौधों में उपर्युक्त पाँचों पदार्थ विभिन्न मात्रा में रहते हैं। यही पदार्थ पोषण के लिए मूल तत्त्व हैं। इन्हें खाने से गाय के अवयव पुष्ट होते और बढ़ते हैं, तथा उनमें नव-शक्ति का सञ्चार होता है।

शरीर-क्रिया—चारा-दाना खाकर पशु पौधों से जो तत्त्व ग्रहण करता है, उन्हें वह अपने शरीर की पाचन-क्रिया द्वारा पचाकर उनसे रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र या रज एवं दूध आदि का निर्माण करता रहता है। चारा-दाना खाने से उनकी तीन प्रकार की ज़रूरतें पूरी होती हैं—

१—शरीर के हर-एक अङ्ग का निर्माण होता है।

२—शरीर-सञ्चालन, गोबर-मूत्र आदि के त्याग, तथा दूध देने से जो ताक़त ख़र्च होती है, वह फिर से बनती रहती है।

३—शरीर की गर्मी भी कम नहीं होने पाती।

पाचन तथा श्वास आदि क्रियाएँ—पशु ख़ुराक को पचाकर शरीर के तत्त्वों में बदल देता है और इन तत्त्वों से शक्ति को खींच कर हिलने-डुलने आदि की क्रियाओं में लगाता है। इन क्रियाओं में रक्त से मिलनेवाली शक्ति निरन्तर खर्च होती रहती है। इस शक्ति के लिए रक्त नाड़ियों में घूमता रहता है। रक्त-वाहिनी नाड़ियों में शुद्ध-रक्त छीजता यानी खर्च होता रहता है, और वह अशुद्धियों को कार्बन्-डाइऑक्साइड के रूपमें छोड़ता रहता है। यह कार्बन्-डाइ-ऑक्साइड शिराओंद्वारा फेफड़ों में जाकर वहाँ से श्वास आदि के द्वारा शरीर के बाहर निकल जाता है। इसके अतिरिक्त शक्ति-निर्माण में और भी कई अशुद्ध पदार्थों का विसर्जन होता रहता है,

जो पसीना, मूत्र और गोबर वग़ैरह के द्वारा देह के बाहर निकलते हैं। बाहर से प्राणवायु (आक्सीजनगैस) नाक की राह से भीतर पहुँचकर शरीर में नवशक्ति का संचार करती रहती है।

रक्त—शरीर की क्रियाओं के लिए ख़ून बहुत ज़रूरी है। यह कई पदार्थों से बनता है। ख़ून में उसके नियमित मूल तत्त्वों की मात्रा में कमी-बेशी के होने पर उसके ठीक तापमान (Temperature) में फ़र्क़ पड़ जाता है, इस कारण शरीर के रोगी हो जाने की सम्भावना हो जाती है। जुगाली करते समय पशु की रक्त-वाहिनी-नलिकायें विशेष रूप से जाग्रत हो जाती हैं। अपनी ख़ुराक को वह दुबारा अच्छी तरह से चबाकर पेट में पचने के लिए पहुँचाता है। पचने के वाद ख़ुराक के उपयोगी विभिन्न-रस रक्त में मिलकर रक्त-वाहिनियों में जाते हैं।

चारे में जल के अतिरिक्त और पाँच प्रकार के रासायनिक पदार्थों का मेल होता है।

(१) **कार्बोहाइड्रेट** (Carbohydrate)—इसमें शक्कर, माँड़ और तन्तुयुक्त पदार्थ होते हैं। शक्कर से ग्लाइकोजन (Glycogen) बनती है। यह मांसपेशियों की क्रियाओं में व्यवहृत होने वाली शक्ति को उत्पन्न करती है। तन्तुयुक्त पदार्थ से मल-त्यागने में सहायता मिलती है। माँड़ से मांसपेशियाँ पुष्ट होती हैं।

(२) **चर्बी या वसा**—चर्बी से शरीर को गर्मी मिलती है और पाचन-शक्ति बढ़ती है।

(३) **प्रोटीन**—इसमें अलब्यूमिन, केसिन और लेक्टोग्लोब्यूमिन आदि होते हैं। इससे मांस बनता है और नख एवं बाल आदि अङ्गों का निर्माण तथा उनका जीर्णोद्धार होता है। गाय की दूध देने की शक्ति भी इसी तत्त्व पर अवलम्बित है। प्रोटीन-तत्त्वों को हिन्दी में आमिष कहते हैं।

(४) **खनिज-लवण**—इनमें तरह-तरह के क्षार होते हैं, जिनमें फासफोरस (स्फुर), चूना, लोहा और गन्धक प्रधान है। फासफोरस से दिमाग़ के कोषों तथा हड्डियों की बनावट में सहायता मिलती है। चूना भी फासफोरस के साथ मिलकर हड्डियों को बनाता है। लोहा लाल-रङ्ग के रक्ताणुओं को सहायता देता है। गन्धक रक्त को साफ़ करता है।

(५) **विटामिन**—यह एक विशेष प्रकार की शक्ति है। इनमें ५ प्रधान हैं, जिनके नाम ए, बी, सी, डी और ई हैं। इनसे शरीर की वृद्धि होती है और वह बीमारियों से बचता रहता है।

आगे इन पाँचों तत्त्वों का अलग-अलग वर्णन किया जाता है:—

(१) **कार्बोहाइड्रेट**—यह आक्सीजन, कार्बन और हाइड्रोजन से बनता है। इसमें माँड़, शक्कर एवं तन्तु (cellulose) होते हैं। सेल्यूलोज़ पौधे के गूदा-रहित, तन्तु-युक्त, डण्ठलवाले, अंश में होते हैं। ये शरीर से मल को बाहर निकालते हैं। माँड़ और चीनी सहज ही में घुलने और शरीर में गर्मी पहुँचाने वाले होते हैं।

पौधे के हरे, कच्चे हिस्सों (पत्ते, टहनी आदि) में स्थित कार्बन्-डाइ-आक्साइड—जो शक्तिदायी नहीं होते—सूर्य्य की रोशनी को पाकर शक्तिदायी कार्बोहाइड्रेट में बदल जाते हैं।

सूखे हुए पौधे में कार्बोहाइड्रेट का $\frac{3}{4}$ और अन्य चीज़ों का $\frac{1}{4}$ भाग होता है। किन्तु जब पौधे नये और कम पके हुए होते हैं, तभी वे सुपाच्य रहते हैं। कड़े पड़ने पर वे कम-पचनेवाले होजाते हैं।

कार्बोहाइड्रेट पौधे के लकड़ीदार हिस्से, बीज, जड़ एवं क़न्द में विशेष होते हैं। यह गोंद तथा चिकने पदार्थों, गेहूँ चना ज्वार आदि अनाजों, शलजम आदि कन्दों, और खली एवं गुड़ में बहुत होता है। ये शरीर में गर्मी पहुँचाते हैं।

शक्कर——यह कार्बोहाइडेट के अन्तर्गत है। प्राणी के ख़ून में इसका एक निश्चित अंश होता है। लार के मिलने से माँड़ भी शक्कर के रूप में बदल जाता है। शरीर-संचालन में रक्त छीजता रहता है, इसलिए शक्तिदायी शक्कर की भी कमी होती रहती है।

गाय के दूध की मिठास इसी अंश से बनती है।

ख़ुराक के भिन्न-भिन्न पदार्थ पचकर रस-रूप में रक्तवाहिनी-नलियों में प्रवेश करते हैं। शक्कर यकृत् में संचित होकर वहाँ से रक्त में मिलती रहती है। इसका अंश गुड़, राब, चीनी और शीरे में विशेष होता है। गेहूँ आदि अनाजों में तथा गाजर, शलजम और चुक़न्दर आदि कन्दों में यह ख़ूब होता है।

माँड़ (Starch)——यह भी कार्बोहाइड्रेट के ही अन्तर्गत है। यह गाय के शरीर के मांसल अंगों की शक्ति को बढ़ाने के काम आता है। यह जौ, मक्का, गेहूँ तथा चावल में अधिक होता है। खली व शकरकन्द में भी यह पाया जाता है।

तन्तु (Fibre)——गाय जो चारा खाती है, उसके बहुत से अंशों में तन्तुओं का भाग रहता है। ये तन्तु शरीर में आँतों के भीतर पहुँचकर, उनकी गति को बढ़ाने में सहायक होने के कारण, मल को शरीर से बाहर निकालने में सहायता देते हैं। तन्तु-पदार्थ हरी घास, सूखे-भूसे, तथा वनस्पतियों और गाजर, करमकल्ला, मूली एवं फूलगोभी के पत्तों में अधिक होते हैं। सूखे काष्ठ-तन्तु सुपाच्य नहीं होते।

(२) वसा (Fat)——यह स्टार्च से मिलकर बनती है। इसमें आक्सीजन की मात्रा कम और कार्बन व हाइड्रोजन की मात्रा कार्बोहाइड्रेट से अधिक होती है। वसा में गर्मी तथा पोषण-शक्ति रहती है।

यकृत् (Liver)——में कार्बोहाइड्रेट को इकट्ठा कर रखने की शक्ति सीमित होती है। कार्बोहाइड्रेट का कुछ अंश यकृत् में सदैव संचित रहता है। अतः, जो कार्बोहाइड्रेट अधिक होते हैं, वे शरीर में चर्बी बनकर जहाँ-तहाँ त्वचा के नीचे फैले रहते हैं। विशेष शक्ति के ख़र्च होने पर यकृत् चर्बी से शक्ति को खींचकर अन्य अवयवों में उसका संचार करता रहता है। कम खाने और अधिक परिश्रम करने से जानवर कमज़ोर और दुबला हो जाता है। अतएव उसे कुछ वसा-वर्द्धक पदार्थ ज़रूर खिलाना चाहिए। परन्तु छोटे बछड़े-बछियों की ख़ुराक में इसका ज़्यादा अंश रखना ठीक नहीं।

तेल व बिनौला, ग्वार, मूँगफली आदि की सभी खलियों और दानों में चिकनाई, वसा या चर्बी का अंश ख़ूब होता है। वसा शक्तिवर्द्धक, पोषक तथा पाचन-शक्ति को बढ़ानेवाली होती है।

(३) प्रोटीन——ये पदार्थ शरीर निर्माण का कार्य निरन्तर करते रहते हैं। शरीर के मुख्य-तया सभी अवयव तथा मांसपेशियाँ, बाल, नख, खुर, और सींग आदि इस पर अवलम्बित रहते हैं।

इसी कारण इनकी आवश्यकता बहुत रहती है, और ख़ुराक में ये सबस आवश्यक पदार्थ हैं।

यह प्रोटीन रक्त के साथ बहती हुई शरीर के विभिन्न अङ्गों तथा दूध को बनाती एवं उनकी छीज को पूरा करती रहती है। प्रोटीन का अंश दूध में 'पनीर' के रूप में रहता है।

इस तत्त्व की कमी से गाय का दूध और बछड़े-बछियों की बाढ़ कम हो जाती है।

प्रोटीन शरीर में बहुत मूल्यवान् वस्तु है, इसलिए इसकी कमी अथवा अधिक-बेशी भी ठीक नहीं है। अधिक परिश्रम करने पर कार्बोहाइड्रेट से प्राप्त शक्ति जब पर्याप्त नहीं होती, तब इसका उपयोग होने से शरीर क्षीण होने लगता है। साथ ही यदि प्रोटीनवाले पदार्थ ज़रूरत से ज़्यादा खाये जायँगे, तो वह प्रोटीन भी कार्बोहाइड्रेट की तरह शरीर में जलने लगेगा, जिससे गुर्दे पर अनावश्यक दबाव पड़ेगा और गोबर व मूत्र दूषित हो जायँगे।

पशुओं के लिए एक हिस्सा प्रोटीन और ४ से ८ हिस्से तक कार्बोहाइड्रेट की ज़रूरत पड़ती है।

प्रोटीन चना, मसूर और अरहर आदि की दालों तथा सरसों आदि की खली में ख़ूब होता है। दूब, बरसीम व लूसर्न नाम की हरी-घासों में यह अंश ख़ूब होता है।

(४) खनिज-लवण—इनका भी खाद्य में रहना बहुत ज़रूरी है। यद्यपि इनकी मात्रा कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन की अपेक्षा बहुत ही कम होती है, तथापि इनके बिना ख़ुराक बे-स्वाद और कम-पचनेवाली हो जाती है। इनकी कमी का रक्त पर बुरा असर पड़ता है, क्योंकि उसके लिए खनिज-लवणों की भी आवश्यकता रहती है।

खनिज-लवण कई प्रकार के होते हैं, जिनमें कैलशियम (चूना), फासफोरस (स्फुर), सोडियम, पोटैशियम, मैगनेशियम, आयोडीन तथा लौह प्रधान हैं।

कैलशियम तथा फासफोरस से दाँत और अस्थियाँ बनती हैं। लवण की कमी से पशु दीवार और मिट्टी को चाटने लगता है। ये खनिज-तत्त्व शरीर को बढ़ाने के साथ-साथ हड्डी, सींग, बाल एवं खुरों के निर्माण के लिए आवश्यक हैं। कैलशियम दूब-आदि हरी-घासों के चारे में ख़ूब मिलती है।

कैलशयिम और फासफोरस परस्पर बहुत सम्बद्ध हैं। इनकी कमी का हड्डियों पर असर पड़ता है। इस कारण पशु क्षीण और दुर्बल हो जाता है और उसकी सन्तति भी कमज़ोर होती है। दूध में कैलशियम बहुत होता है, इसलिए गो की ख़ुराक में भी इसका होना बहुत ज़रूरी है। दालों, दालों के हरे-पौधों और फलियों में कैलशियम होता है। चोकर में फासफोरस का अंश ख़ूब होता है। खली में भी यह थोड़ा-सा है।

(५) विटामिन—ये शरीर के पोषक एवं आवश्यक पदार्थ होते हैं। शरीर को इनकी विशेष आवश्यकता रहती है। ये कई प्रकार के होते हैं, जिनमें आमतौर पर पाँच प्रधान माने जाते हैं :—

(१) विटामिन 'ए'—प्राणपोषक और जीवनदायी तत्त्व है। यह त्वचा को स्वस्थ रखता, और दूध देने की शक्ति को बढ़ाता है। इसके द्वारा श्वास-क्रिया को निरन्तर सहायता मिलती रहती है और इसी तत्त्व के कारण बाहर से बैक्टीरिया आदि कीटाणु शरीर में घुसने नहीं पाते।

यह आँखों की रोशनी के लिए बहत ज़रूरी है। इसकी कमी से अन्धापन आ जाता है तथा

शरीर की वृद्धि रुक जाती है । इस तत्त्व की कमी से कमज़ोर गाय के गर्भ के गिरने की आशंका रहती है, और ऐसी परिस्थिति में यदि बच्चा पैदा हो भी जाय, तो उसका शरीर और आँखें कमज़ोर रहती हैं । छोटे बच्चों के लिए तो यह विटामिन विशेष उपयोगी है, क्योंकि इससे उनका शरीर बढ़ता है ।

यह विटामिन यकृत् में संचित रहता है और वसा में सरलता से घुल जाता है । इसी कारण घी में इसका अंश विशेष रहता है । धारोष्ण-गोदुग्ध तथा गोघृत में यह विटामिन ख़ूब रहता है । यह अण्डे की ज़र्दी में और मछली तथा पशुओं के यकृत में भी पाया जाता है ।' हरी-घास, हरे-पत्ते तथा हरे-डण्ठलों में भी यह विटामिन ख़ूब होता है । इसीलिए पशु को हरा-चारा हमेशा देना चाहिए ।

दूध, मक्खन और घी का पीला-रङ्ग विटामिन 'ए' का द्योतक है । यह विटामिन कैरोटीन (Carotene) के मिलाने पर ही पीले-रङ्ग में बदलता है ।

कैरोटीन—यह पीले रङ्ग का पदार्थ है, जो गाजर तथा घी के पीले-रङ्ग से प्रकट होता है । पौधों के प्रायः सभी विटामिन कैरोटीन के अन्तर्गत रहते हैं ।

यह हरे-पत्तों में ख़ूब रहता है । इस कारण हरा-चारा खानेवाले जानवरों को कैरोटीन ख़ूब मिलता रहता है । गाय के दूध व घी के पीलेपन का कारण भी यही द्रव्य है । दूध में इसके परमाणु अपने घुले-हुए रूप में रहते हैं ।

हरे-पत्ते और चारे जब सूखकर पीले दीखने लगते हैं, तब उनमें स्थित कैरोटीन दिखायी पड़ने लगता है । परन्तु सूखे-चारों में इसका अंश बहुत कम रह जाता है ।

(२) विटामिन 'बी'—यह अनाज के ऊपरी छिलके अर्थात् चोकर में रहता है । पौधों के हरे-हिस्से, हरे-चारे एवं सूखे-भूसे में भी यह रहता है । दूध में विटामिन 'बी' विशेषरूप से रहता है ।

यह पानी में घुलनेवाला तत्त्व है । जौ, गेहूँ, चना, मटर और सोयाबीन में विटामिन 'बी' रहता है, जो इन अनाजों के भीगकर अँकुरा-जाने पर विशेष रूप से विकसित हो जाता है ।

विटामिन 'बी' के अभाव में आँतें कमज़ोर, स्नायुमण्डल क्षीण, तथा नाड़ी-सम्बन्धी रोग भी हो जाते हैं ।

(३) विटामिन 'सी'—यह हरे-पत्तों, रसीले और खट्टे फलों तथा गाजर और टमाटर में ख़ूब होता है । हरा-चारा-खानेवाले पशुओं में इस विटामिन की कमी नहीं होती ।

इसकी कमी से दाँत ढीले पड़ जाते हैं, मसूड़े सूज जाते हैं, हड्डी कमज़ोर हो जाती है और घाव होने पर वह जल्दी भरने नहीं पाता ।

(४) विटामिन 'डी'—यह सूर्य की रोशनी से मिलता है । यह जानवरों और ख़ासकर गाभिन एवं दूध देनेवाली गायों तथा बच्चों के लिए बहुत जरूरी है ।

सूर्य की रश्मियों से प्राणी के शरीर में स्थित एरगास्टरल (Ergosteral) तत्त्व ही विटामिन 'डी' के रूप में बदलते रहते हैं । अतः धूप में घूमनेवाले पशुओं में यह विटामिन कम नहीं होने पाता ।

इसी विटामिन के द्वारा खाद्य के कैलशियम और फासफोरस तत्त्व रक्त में घुल-मिल जाते हैं। सूर्य की किरणों तथा धूप में सुखाये हुए चारों में यह विटामिन रहता है, किन्तु हरे-चारे में नहीं होता। विटामिन 'डी' दूध में स्थित वसा तथा तेल में भी होता है।

(५) विटामिन 'ई'—यह सभी तरह के बीजों, अनाज के दानों तथा तेल और बिनौलों में विशेष होता है। यह सूखी घास में भी रहता है। यदि अनाज मशीनों द्वारा बहुत साफ़ कर दिया जाय, तो उसमें इसका अंश कम पड़ जाता है। यह विटामिन बीजों के अँखुओं में खूब होता है और यह प्रजनन-शक्ति को स्वस्थ रखता है।

कुछ पदार्थों की कमी को पूर्ण करने के उपाय—जिस तत्त्व की विशेष कमी हो, उसी तत्त्व-प्रधान खाद्य को खिलाने से पशु सहज ही में स्वस्थ हो जाता है।

(१) कार्बोहाइड्रेट की कमी—गेहूँ, जौ, चना, गुड़ और गोंद के खिलाने से दूर होगी।

(२) वसा की कमी—तेल या चिकनाईवाली चीज़ें—जैसे, खली एवं बिनौला—देने से पूरी हो जायगी।

(३) प्रोटीन की कमी—खली, दालों, तथा दालों के हरे-पौधों एवं उनके सूखे पत्तों के खिलाने से दूर हो जायगी।

(४) खनिज-लवण की कमी—सेंधा-नमक की सिल को चटाने या साँभर नमक को दाने में मिलाकर देने से दूर होती है। अधिक पोटैशियम से होनेवाली हानि भी नमक के खिलाने से दूर हो जाती है। थोड़ी मात्रा में चूना (एक वक्त की सानी मे ½ तोला) मिलाकर खिलाने से कैलशियम की कमी दूर होती है। इसी तत्त्व के लिए हड्डी का तैयार किया हुआ चूरा भी उपयोगी होता है। फ़ासफ़ोरस की कमी गेहूँ या चने के चोकर से दूर होती है। चावल के घूटे में फ़ारफ़ोरस बहुत होता है, अतः उसे भी इस कमी को दूर करने के लिए ठीक मात्रा में दिया जा सकता है।

चूना और अन्य शेष नमक हरी-घास के चरने पर पशु को काफ़ी तादाद में मिलेंगे।

(५) विटामिन 'ए' की कमी—अच्छे क़िस्म के हरे-चारों और हरी-घास से भली-भाँति दूर हो जाती है। गाजर के खिलाने से भी इस विटामिन की पूर्त्ति होती है। यह विटामिन कैरी (कच्ची अमियों) की गुठली के अन्दर की तुतली (मींगी या बीज) में बहुत होता है। इस कारण इसे सुखाकर और पीसकर इसका चूरा सानी में थोड़ा-थोड़ा मिलाने से केवल सूखा-चारा खानेवाले पशु को फ़ायदा होता है। किन्तु स्मरण रहे कि यदि अधिक चूरा सानी में मिला दिया जायगा, तो पशु सानी को छोड़ देगा। यह चूरा लाभदायी पाया गया है।

विटामिन 'बी' की कमी—चोकर और अंकुरवाले अनाजों से दूर होती है।

विटामिन 'सी' की कमी—जानवरों में प्रायः नहीं पायी जाती।

विटामिन 'डी' की कमी—यदि हो जाय, तो पशु को धूप में घुमाना-फिराना चाहिए।

विटामिन 'ई' की कमी—बिनौलों या सोयाबीन को भिगोकर अंकुर आ जाने पर खिलाये।

जल—यह प्राणी-मात्र के लिए खाद्य से भी ज़्यादा आवश्यक है। श्वास, पसीना, थूक और

मूत्र आदि के द्वारा जल का भाग शरीर से सदैव निकलता रहता है। रक्त-संचालन के लिए भी जल बहुत ज़रूरी है। यह शरीर की गर्मी को दूर करता तथा रोगों को हटाने में सहायता देता है और निस्सार भाग को शरीर के बाहर निकालकर पोषण-द्रव्यों के पचाने में भी सहायता देता है। हरे-चारे में जल ज़्यादा होता है, परन्तु सूखे-चारे में कम रह जाता है।

दूध देनेवाली गायों के लिए तो जल और भी ज़रूरी है। गोशाला में नाँद के पास ही स्वच्छ-जल सदैव रहना चाहिए, ताकि प्यास लगने पर पशु तुरन्त ही पानी पी सके। जानवरों को तालाबों या गड्ढों में इकट्ठा हुआ गँदला पानी पिलाने से उन्हें कई तरह के भयंकर रोग भी हो सकते हैं। किसी-किसी गड्ढे का सड़ा हुआ पानी तो मृत्यु तक का कारण बन जाता है, क्योंकि उस पानी में विषैले पदार्थ प्रवेश कर जाते हैं।

पशुओं को सदैव नदी, झरने और कुएँ का साफ़ पानी ही पिलाना चाहिए। गँदला पानी पीने से गाय का दूध भी दूषित हो जाता है।

वायु—सभी के लिए स्वच्छ हवा बहुत ज़रूरी है। वायु-मण्डल से श्वास के द्वारा ऑक्सीजन आदि हवाएँ खिचकर शरीर का पोषण करती रहती हैं और वे ही कार्बन्-डाइ-आक्साइड बनकर प्रश्वास-द्वारा बाहर निकलती रहती हैं।

ऑक्सीजन ख़ून को साफ़ करती है, अतः उसकी ज़रूरत बहुत होती है। यह प्राण-वायु साफ़ और खुली हवा में भरपूर रहती है।

पशु को सदैव खुली और साफ़ हवा में रखना चाहिए। जहाँ तक हो सके, उसकी शाला खुली और हवादार होनी चाहिए। केवल विशेष वर्षा, जाड़ा या गर्मी से उसका बचाव करने के लिए उसे बांधकर रखना चाहिए। साधारणतया खुले हुए खेतों में और पेड़ों के नीचे रहने से पशु प्रसन्न और स्वस्थ रहता है।

सूर्य्य-रश्मियाँ—इनसे शरीर में गर्मी पहुँचती है और वह स्वस्थ रहता है। सीलन-भरी बन्द-जगह में रहने से प्राणी रोगी हो जाता है। अतः, सूरज की रोशनी सभी के लिए बहुत ज़रूरी और जीवन-संचार करनेवाली है।

सञ्चालन-शक्ति—शरीर-संचालन और मेहनत करने के अनुपात से प्राणी को ख़ुराक खानी चाहिए। शरीर की भीतरी-क्रियाओं के लिए भी सब तत्त्वों की ज़रूरत बराबर बनी रहती है, इसलिए ख़ुराक बहुत आवश्यक है।

पशु के शरीर की भीतरी क्रियाएँ तथा बाहरी अवयव दोनों ही ठीक तौर पर संचालित होते रहने चाहिए। घूमने-फिरने से अवयव खुल जाते हैं और ख़ुराक पच जाती है।

गाय, साँड़, या बछड़े-बछियों को एक ही स्थान पर बाँधे रखने पर वे ख़ुश और स्वस्थ नहीं रहते। उनकी पाचन-क्रिया भी ठीक नहीं हो पाती। अतः, इन पशुओं को ज़रूर घुमाना-फिराना चाहिए।

बैल को खेत जोतने या गाड़ी खींचने में काफ़ी मेहनत पड़ जाती है। अतः, उसे आराम करने देना चाहिए। लेकिन बेकारी के दिनों में उसे थोड़ा-बहुत घुमा दे।

पाचन-शक्ति—हर-एक क़िस्म के चारे-दाने की पचने की शक्ति अलग-अलग होती है। कुछ सरलता से और कुछ देर में पचनेवाले होते हैं। इसलिए ख़ुराक की शक्तिदायी मात्रा के साथ ही उसकी पाचन-शक्ति पर भी ध्यान देना होगा।

खायी हुई ख़ुराक सारी की सारी नहीं पचा करती, बल्कि उसका कुछ अंश पचकर शरीर में मिल जाता है। बाक़ी बेकार चीज़ें, गोबर व मूत्र आदि के रूप में, बाहर निकाल दी जाती हैं। सरलता से पचनेवाली चीज़ों के खाने से शरीर के लिए आवश्यक रस अच्छी तरह से बनते हैं और आमाशय पर व्यर्थ का बोझ नहीं पड़ता, अतः, शरीर स्वस्थ रहता है।

किसी तत्त्व की विशेष-कमी हो जाने पर ख़ुराक बेस्वाद और कम-पचनेवाली हो जाती है। सुपोषित गाय ऐसी ख़ुराक को खायगी ही नहीं, किन्तु भूख से सतायी जाने पर वह जो कुछ पायेगी, पेट में भर लेगी।

ख़ुराक को पौष्टिक होने के साथ ही सुपाच्य भी होना चाहिए। सरलता से पचनेवाली चीज़ों के खाने से गाय स्वस्थ रहेगी और दूध भी ज़्यादा देगी।

जुगाली—गौ के ऊपर के जबड़े में सामने की तरफ़ दाँत नहीं होते। नीचे के जबड़े में दाँत होते हैं। जुगाली करने वाले पशु चारे-दाने को, जल्दी-जल्दी खाकर, बहुत-सी तादाद में ओझड़ी में जमा कर लेते हैं। फिर आराम से बैठकर उस खायी हुई ख़ुराक को दाढ़ों से अच्छी तरह चबाकर आमाशय में ले जाते हैं। इस तरह ख़ुराक सुपाच्य हो जाती है। यदि गो-पशु जुगाली करना बन्द कर दे, तो उसे बीमार समझना चाहिए।

ज़मीन—कई प्रकार के खेत होते हैं और उनकी उपजाऊ-शक्ति भी अलग-अलग क़िस्म की होती है। जिस प्रकार की ज़मीन तैयार की जायगी, वैसी ही फ़सल भी होगी। अच्छी फ़सल लेने के लिए ज़मीन को भली-भाँति जोतकर उसमें गोबर से तैयार की हुई खाद ख़ूब डालनी चाहिए। गोबर की खाद में सभी आवश्यक गुण रहते हैं। यदि यह काफ़ी मात्रा में डाली जाय, तो अन्य किसी खाद की ज़रूरत नहीं रहती। कृत्रिम अथवा रासायनिक खादें आगे चलकर हानि पहुँचाती हैं, ऐसा वैज्ञानिकों ने अनुभव से जाना है। किन्तु, गोबर की खाद हर-एक फ़सल के लिए लाभदायी है।

बीज—उत्तम, पुष्ट और भारी अनाज को ही बीज के लिए बरतना चाहिए। बीज जितना अच्छा होगा, पैदावार भी उतनी ही अच्छी होगी। बीज की सावधानी से रक्षा करनी चाहिए। उसे सीलन और विशेष-धूप से बचाना चाहिए। बीज पर ही सारी फ़सल निर्भर होती है, अतः बीज अच्छे से अच्छा बोना चाहिए।

पौधा—हाल के उगे हुए पौधों में पानी का अंश विशेष होता है। फिर ज्यों-ज्यों वे बढ़ते और पकते जाते हैं, उनकी ठोस-सामग्री बढ़ती जाती है। जब पौधों में बीज आने लगते हैं, तब उनमें पूर्ण-गुण आ जाते हैं। इसके बाद, पशु को खिलाने की दृष्टि से, पौधे की पोषण-मात्रा घटने लगती हैं, क्योंकि उनका लकड़ीदार हिस्सा मज़बूत होने और बीज पकने लगता है।

चारे के लिए बरते जानेवाले पौधों को उनके बीजों के भर आने पर, किन्तु कोमल ही अवस्था

में, और पूरी तौर से पकने के पहले ही, काट लेना चाहिए। गेहूँ, ज्वार, मक्का, जौ, जई, सरसों आदि की फ़सलों को नरम-बीजों के भर आने पर चारे के लिए काट लेना उत्तम होता है।

बीजों के पूरी तौर से पक जाने पर पौधा सूख जाता है और उसमें लकड़ी की ही मात्रा अधिक हो जाती है, अतः ऐसा चारा तत्त्वहीन हो जाता है।

उगने से पकने तक पौधा ज़मीन से अपनी जाति के लिए ज़रूरी तत्त्वों को खींचकर बढ़ता रहता है। पूरी-तौर से पक जाने के बाद वह ज़मीन से और शक्ति नहीं खींच सकता। पकने के समय पौधे के पत्ते, डण्ठल, जड़ आदि सारे भाग अपनी सम्पूर्ण-शक्ति बीज के बनाने, भरने और पककर तैयार करने में लगा देते हैं, ताकि ज़मीन पर सूखकर और निर्जीव होकर गिरने के बाद भी वह नवजीवन पा सकें। इसलिए पौधे की सारी जीवन-शक्ति बीज में केन्द्रित हो जाती है। समय पाकर इन्हीं बीजों से नवीन-पौधे विकसित होते हैं और इस प्रकार सृष्टि का क्रम चलता रहता है।

सूखे-चारे से हरे-चारे में पोषक-तत्त्व कहीं ज़्यादा होते हैं। सूखने के समय पौधे में स्थित कार्बोहाइड्रेट की शरीर में घुलमिल जाने वाली शक्ति कम हो जाती है, क्योंकि तब लकड़ीवाला अंश मज़बूत हो जाता है। सुखाने व रखने की रीति से भी चारे के पोषक तत्त्वों में कमी-बेशी हो जाती है। अतः, चारे को ठीक समय पर काटकर संचित कर लेना चाहिए।

दूसरा अध्याय

खुराक की विवेचना

खुराक—

१—चारे-दाने भाँति-भाँति के होने चाहिए। एक ही प्रकार का चारा-दाना खाते-खाते गाय ऊब जायगी, और उसकी रुचि कम हो जायगी। गाय के लिए सानी मौसम के माफ़िक़ बदल-बदलकर करना चाहिए इससे वह खुश और तन्दुरुस्त रहेगी।

२—चारे-दाने के मेल करने में पशु की आदत का भी ध्यान रखना चाहिए। हर एक पशु एक ही प्रकार की सानी नहीं खा पाते। कोई-कोई जाति किसी विशेष चीज़ को पसन्द करती है।

३—यदि उन्हें नयी तरह की खुराक खिलानी हो, तो धीरे-धीरे और थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खिलाकर आदत डालनी चाहिए। साइलेज-कूप के चारे पहले-पहल जानवर नहीं खाते, परन्तु एक बार आदत पड़ने पर वे उसे रुचि से खाने लगते हैं।

४—चारे-दाने की प्रत्येक खुराक में नमक और पानी का मिलाना ज़रूरी है, क्योंकि इस प्रकार की मिलायी हुई सानी सरलता से पच जाती है। किन्तु कई स्थानों में सूखे दाने और खली के देने की भी प्रथा है।

५—जाड़ों में दाना देर में फूलता है, इसलिए छः-सात घण्टे तक उसे भिगोना चाहिए। रात में नमक और खली मिलाकर दाना भिगो दे और इससे सुबह की सानी करे। सुबह को भिगोया हुआ दाना-खली शाम की सानी के काम में लाये। ठंड के दिनों में गाय को बिनौला उबाल कर और उसमें गुड़ मिलाकर खिलाये। इससे दूध में मक्खन तथा मिठास का अंश बढ़ जायगा।

६—गर्मी के दिनों में अधिक देर तक भिगोने से दाने और खली में खटास आ जाती है, इसलिए सानी करने के केवल तीन-चार घण्टे पहले ही इन्हें भिगोये।

इस मौसम में गाय को बिनौला खिलाना ठीक नहीं है। किन्तु यदि थोड़ा-सा बिनौला ठण्डे पानी में चार-पाँच घण्टों तक भिगो कर, जौ के दलिये के साथ दिया जाय, तो हानि नहीं करेगा।

७—चारे में भीगाहुआ दाना-खली-नमक मिलाकर सानी को ख़ूब पलट देना चाहिए, ताकि सभी चीज़ें भली-भाँति मिल जायँ।

८—चारा अच्छी तरह बारीक-कटा होना चाहिए। महीन कटाहुआ चारा जल्दी पचता है, और सानी करने पर वह अच्छी तरह मिल जाता है। मोटा-कटा हुआ चारा इधर-उधर बिखर-कर बेकार और ख़राब जाता है।

९—सूखे-चारे के बजाय हरा-चारा रसीला होने के कारण जल्दी पचता है, और ज़ायक़ेदार भी

होता है। हरे-चारे में विटामिन 'ए' खूब होता है, किन्तु सूखे-चारे में यह नहीं होता। इस विटामिन की कमी का पशु पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इससे उसकी रोग निवारक-शक्ति, आगामी नस्ल और आँखें कमज़ोर हो जाती हैं। लूसर्न, बरसीम और दूब आदि की हरी-घासों में यह विटामिन खूब होता है।

१०—चारे को ठीक समय पर, जब कि पौधों में दूध-भरे बीज भर आयें, किन्तु पककर सूखने के पहले ही, काट ले और अच्छी तरह से सुखाकर साफ़-सुथरे और ऊँचे स्थान पर रक्खे। ज़रा-सा भी गीला रहने या सीलन-भरे स्थानों में रखने से चारा सड़ जायगा। ध्यान रहे कि चारा कहीं बहुत ज़्यादा न सूख जाय, क्योंकि ऐसे चारे में अधिकांश विटामिन बहुत कम रह जाते हैं और वह साररहित हो जाता है।

११—हरे-चारे को संचित कर रखने की उपयोगी विधि साइलेज-कूप की है। इस विधि से संचित चारा, हरा बना रहने के कारण, पोषकतत्त्वोंदार होता है। इसको खिलाने के बाद दाना देने की ख़ास ज़रूरत नहीं पड़ती।

१२—बीजरहित सूखे चारे में पोषक-तत्त्व तथा विटामिन 'ए' नहीं होते, इसलिए केवल भूसे पर ही रक्खी गयी गाय का स्वास्थ्य अच्छा नही रहता। किन्तु आम तौर पर ख़ुराक में चारे का थोड़ा सा सूखा अंश भी रहना चाहिए।

१३—ख़ुराक की चीज़ें अच्छी और बढ़िया क़िस्म की हों। पशुओं को सड़ा-गला दाना-चारा और ख़राब रोटी कभी न खिलाये। बढ़िया क़िस्म का दाना-चारा लाभदायी होने के कारण ज़्यादा मँहगा न पड़ेगा।

१४—पशु को बहुत-ज़्यादा दाना खिलाना भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे उसकी पाचनशक्ति पर ज़रूरत से ज़्यादा भार पड़ जाता है; इस कारण पशु का गोबर और मूत्र दूषित हो जाता है।

१५—आवश्यकता से अधिक दाना तथा खली खिलाने से गाय की केवल चर्बी ही विशेष बढ़ जायगी, इस कारण वह दूध देना कम कर देगी। मोटी और मांसल गाय जल्दी गाभिन भी नहीं हो पाती, क्योंकि उसके शरीर में हारमोन्स अच्छी तरह विकसित नहीं होते, इसी कारण ऋतु के लक्षण प्रकट होने में देर लगती है। ऐसी मोटी गाय को मीठी—जैसे गुड़, शीरा और कार्बोहाइड्रेटवाली चीज़ें—नहीं देनी चाहिए। अधिक मात्रा में मीठी चीज़ों के खाने से प्रजनन-शक्ति, पर बुरा असर पड़ता है।

१६—कम ख़ुराक पाने के कारण दुबले व कमज़ोर हुए जानवर की भी दूध-देने, प्रजनन तथा काम करने की शक्ति कम हो जायगी। कमज़ोर गाय देर में गाभिन होगी और उसका बच्चा भी पूर्ण-बलवान न होगा। ऐसे पशु को पौष्टिक चारा-दाना खिलाकर उसकी हालत सुधारनी चाहिए।

१७—गाय को ऐसा चारा-दाना देना चाहिए, जिसे वह सहज ही में लौटाल कर जुगाली कर सके। अच्छी तरह जुगाली न की जा सकनेवाली ख़ुराक पचने नहीं पाती।

१८—गाय की ख़ुराक 'चारा-दाना, खली-नमक' की क़ीमत देश, काल व स्थिति के अनुसार कम-ज़्यादा होती रहती है, किन्तु साधारणतया ख़ुराक की क़ीमत गाय के दूध की क़ीमत के $\frac{१}{४}$ या $\frac{२}{५}$ के अनुपात में होनी चाहिए।

१९—पशु को चरने के लिए अवश्य भेजना चाहिए। जाड़ा, गर्मी तथा बरसात आदि सभी ऋतुओं में अपनी रुचि के अनुसार हरियाली चरतेहुए पशु का शरीर-संचालन भली-भाँति हो जाता है और इस प्रकार वह स्वस्थ एवं प्रसन्न रहता है।

२०—दुहने के पहले गाय को भर-पेट ख़ुराक ज़रूर ही खिला देनी चाहिए। ख़ाली-पेट दूध दुहने से गाय के अवयवों पर बहुत ज़ोर पड़ता है।

२१—गाय एक स्वच्छताप्रिय जीव है। इसकी नाँद व ख़ुराक की चीज़ें दोनों ही साफ़ होनी चाहिए। मिट्टी, गोबर या अन्य अशुद्धियाँ मिल जायँ, तो वह ऐसी सानी नहीं खायगी।

२२—कुत्ते, सुअर, बकरी व मुर्ग़ी आदि जानवरों को चारा-दानावाले स्थान के निकट नहीं जाने देना चाहिए, क्योंकि वे मुँह डालकर उसे गन्दा कर देंगे और बीमारी फैलायेंगे।

दूध देनेवाले पशुओं को खिलाने-योग्य चारे—

१—ज्वार की चरी—यह चारों में मुख्य है, क्योंकि इसे हरी, सूखी या साइलेज-कूप में भर कर सभी तरह से खिलाते हैं। किन्तु हरी-चरी ही उत्तम चारा है।

२—सरसों की चरी—हरी नरम और सिंगरीदार सरसों दूसरे चारों के साथ मिलाकर खिलानी चाहिए। यह दूध बढ़ानेवाली और गर्म-तासीर की होती है।

३—जौ तथा जई (सेऊँ) की चरी—ये पौधे दूधर-दानों के भर-आने पर हरे-हरे खिलाये जाते हैं। ये दुग्ध-वर्धक हैं। जौ का तो सूखा-भूसा भी खिलाया जा सकता है, किन्तु जई (सेऊँ) का भूसा बेकार होता है।

४—मटर का पौधा—नर्म फलियों के भर आने पर इसे खिलाये। इसमें सड़नेवाले कार्बो-हाइड्रेट बहुत होते हैं, अतएव इसे जौ आदि के चारे या भूसे के साथ में मिलाकर ही खिलाना चाहिए।

५—हरे मक्के की करबी—पानी का प्रबन्ध करके मक्का को चैत्र में बोदे, और जेष्ठ से भाद्रपद तक ग्वार और लोबिया के पौधों के साथ मिलाकर इसकी हरी-करबी खिलाये। गर्मी के दिनों में—साइलेज के अतिरिक्त—यही एक (करबी की) हरियाली मिल सकती है।

६—हरी ग्वार और लोबिया की करबी चैत से भादों तक बोये और मक्के की चरी के साथ खिलाये।

७—उर्द तथा मूँग का हरा पौधा—इसे भादों से कार्तिक तक बोये और नरमफली-सहित अन्य चारों के साथ खिलाये। उपर्युक्त दाल के पौधों के चारों में प्रोटीन के तत्त्व ख़ूब होते हैं।

८—गेहूँ का हरा पौधा—यह दूधर-दानों सहित खिलाया जाय, तो बहुत लाभकारी होगा। गेहूँ निकालकर इन पौधों का सूखा-भूसा ही प्रायः खिलाया जाता है, किन्तु यह भूसा पोषक नहीं होता।

९—चना और मसूर का पौधा—चने के पौधे में भी क्षार बहुत-अधिक होता है, इसलिए इसे भी दूसरे चारों के साथ मिलाकर ही खिलाये।

१०—लूसर्न और बरसीम—ये दोनों तरह की घासें बहुत पोषक हैं। यदि काफ़ी तादाद में दी जायँ, तो पशु को दाना देने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

११—दूब, हलीम, और भरुआ आदि तरह-तरह की घासें अच्छी होती हैं। इनमें दूब सर्वश्रेष्ठ है। भरुआ भी एक अच्छी और दानेदार घास है। इसे भरपेट देने पर दाने की जरूरत नहीं पड़ती।

१२—गाजर और मैंगोल्ड की कंद पोषक और दूधबढ़ानेवाली होती है।

१३—मोठ का पौधा बहुत गर्म होता है, अतः इसे ༼२ या ༼२॥ से ज़्यादा न दे और सदा दूसरे चारों के साथ मिलाकर ही खिलाये।

ऊपर लिखे हुए सभी चारे बैल और साँड़ को भी खिलाये जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर बैलों को तो बाजरे की हरी-चरी या गन्ने के अगौले भी खिलाये जा सकते हैं, परन्तु गायों को नहीं।

दूध देनेवाले पशुओं को खिलाने-योग्य दाने—

१—गेहूँ का दलिया और चोकर बहुत बढ़िया होता है।

२—चने का दाना और चूनी मिली हुई भूसी।
३—अरहर की चूनी-भूसी।
४—मूंग की चूनी-भूसी।
५—मसूर की चूनी-भूसी।

(इन दानों में प्रोटीन-प्रधान तत्त्व बहुत होते हैं और भूसी में फ़ासफ़ोरस का काफ़ी अंश होता है, अतः इनका खिलाना अच्छा है।)

६—जौ का दलिया। यह भी बहुत अच्छी चीज़ है।

७—बिनौले उचित मात्रा में तथा ऋतु का ख्याल करके उबाल या भिगो कर दे।

८—खली सरसों, लाही, तिल, मूंगफली, अलसी और बिनौले आदि की खिलाये।

९—ग्वार का दाना दलकर और उबालकर या भिगोकर दे। यह ज़्यादा देने पर क़ब्ज़ करता है।

१०—गुड़ और शीरा, थोड़ा-सा, खिलाये।

११—राँधी हुई चीज़ें जैसे—दाल का पानी, चावल का माँड़, रोटी और थोड़ा-सा दलिया दिया जा सकता है।

ऊपर लिखी हुई चीज़ें साँड़ों व बैलों को भी हितकारी हैं। उन्हें उर्द की चूनी-भूसी भी खिलायी जा सकती है। ज्वार का दाना भी उनके लिए बल-वर्धक खुराक है। साँड़ को अंकुर-आये हुए चनों में नमक मिलाकर खिलाना गुणकारी है।

दूध देनेवाले पशुओं को न खिलाने-योग्य चारे—

१—मक्के की सूखी-चरी।

२—बाजरे की हरी व सूखी-चरी।

३—गन्ने की पत्तियाँ (अगौले)।

४—चने के पौधों का भूसा।

५—ग्वार की सूखी लकड़ी का भूसा।

६—चैना और कँगनी की सूखी पुराली।

७—धान का सूखा हुआ पुआल।

८—चावल का घूटा—जिसे कम्मू और फक्क भी कहते हैं।

९——हरी या सूखी सन की पत्ती, जो बहुत गर्म होती है। यह केवल दवा के काम में आती है।

१०——ऐसी फ़स्लें जो केवल-मात्र शहर के गन्दे-नालों के पानी से सींचकर तैयार की गयी हों। ये नाइट्रोजन की अधिकता के कारण ऊपर से सुन्दर और पुष्ट दिखायी देती हैं, किन्तु पौष्टिकतत्त्व-रहित होती हैं, और कभी-कभी रोग का कारण भी बन जाती हैं।

उपर्युक्त चीज़ें बैलों को भी नहीं खिलानी चाहिए, किन्तु उन्हें गन्ने के अगौले और बाजरे की हरी-चरी दी जा सकती है।

दूध देनेवाले पशुओं को न खिलाने-योग्य दाने—

१——उरद की दाल व चूनी और भूसी खिलाने से यद्यपि एक बार गाय का दूध बढ़ जाता है, तथापि दुग्धवाहिनी नाड़ियों पर विशेष दबाव पड़ जाने के कारण भविष्य में उसका दूध कम हो जाता है।

२——चने की निरी-भूसी, जिसमें चूनी या दाल का काफ़ी अंश न हो, नहीं खिलानी चाहिए। अधिक फ़ासफ़ोरस के कारण यह दूध और ख़ून को सुखा देती है।

३——मटर का दाना बहुत बादी तथा वायु बढ़ानेवाला होता है। अन्य-दानों के साथ में मिला-कर देने से यह हानि नहीं करता।

४——बाजरे का दाना——गर्म और दूध को सुखादेनेवाला होता है।

५——मक्के का दाना——पचनेमें भारी और बादी होता है। यह चर्बी को बढ़ाता है। कहीं-कहीं इसे और कुछ दानों के साथ में मिलाकर खिलाया भी जाता है।

६——ज्वार का दाना——विशेष गर्म और दूध को सुखानेवाला होता है, किन्तु यह बैलों के लिए बलवर्धक है।

७——मैदा, महीन-आटा या इससे बने हुए पदार्थ पाचन-शक्ति को बिगाड़ देते हैं।

८——सूखी-रोटी, सड़ी-दाल, गन्दी-जूठन आदि वस्तुएँ भी कभी न खिलाये।

तीसरा अध्याय

चारे के लिए खेती

अन्न या चारा उत्पन्न करने के लिए पाँच बातों पर ध्यान देना ज़रूरी है।

(१) **बीज**––दाना पुष्ट और वज़नदार हो। टूटे-फूटे और सड़ेहुए दाने पहले तो जम ही न पायेंगे; और अगर जम भी गये तो पौधा बड़ा नहीं होगा। बीज को ख़ूब सुखाकर ऊँची जगह पर रखना चाहिए। अच्छा बीज छाँटकर बोया जाय तो कम तादाद में डालना होगा, क्योंकि ज़्यादातर सभी दाने उग आयेंगे। घुने और सीले हुए बीज का बोना ठीक नहीं है। बीज के लिए बढ़िया अनाज ही बरतना चाहिए।

(२) **ज़मीन**––कई क़िस्म की होती है। बलुआ––जिसमें बालू या रेते का अंश विशेष हो; मटियार––जो मटीली हो; दुमट––जिसमें बालू या मिट्टी मिली हुई हो। ज़्यादातर फ़सलों के लिए दुमट ज़मीन ही अच्छी रहती है। खेत में अगर किसी तत्त्व-विशेष की कमी हो गयी हो, तो विधिवत् खाद देकर वह दूर की जा सकती है।

(३) **खाद**––गोबर और कूड़ा मिली खाद सभी फ़सलों में दी जा सकती है। प्रति बीघा ४-५ गाड़ी तैयार खाद दी जायगी, तो फ़सल तिगुनी बड़ी होगी। अतः विधिवत् तैयार की गयी खाद खेत में ख़ूब काफ़ी डाल देनी चाहिए। खाद बनाने व देने के तरीक़ों के लिए प्रतिपालन-विभाग को देखिए।

(४) **जुताई**––हल चलाकर ज़मीन ख़ूब नरम करके जोत लेनी चाहिए। बढ़िया फ़सल लेनी हो, तो ज़मीन से घास व कूड़े की जड़ों को बीन डालना चाहिए। "परहल" की हुई ज़मीन कई बार जोतकर तैयार की जाती है। ऐसा खेत बहुत ज़्यादा ताक़तवर हो जाता है।

(५) **सिंचाई**––ठीक समय पर पानी मिलने से पौधा ख़ूब बढ़ेगा। यदि वर्षा न हो, तो कुएँ या नहर से पानी सींच देना चाहिए। पानी के बिना सारी मेहनत बेकार हो जायगी। खेत के लिए पानी बड़ी आवश्यक चीज़ है।

इन सबका उपयुक्त प्रबन्ध करने से चारा-दाना ख़ूब उपजेगा। आगे लिखी हुई हर-एक उपज का परता बढ़िया-तैयार खेतों में ही सम्भव है। पैदावार की कमी-बेशी उपर्युक्त पाँचों कारणों तथा वर्षा आदि पर निर्भर रहती है। खेती के काम में अक्सर जितनी मेहनत की जाती है, उससे कुछ ही ज़्यादा सावधानी करके विधिवत् खाद डालने का प्रबन्ध करे, तो वही खेत कहीं-ज़्यादा उपजाऊ व फ़ायदेमन्द बन सकता है।

ज्वार की चरी—गायों के लिए बोयेजाने वाले चारों में यह प्रधान है। इसका हरा चारा पशु बड़ी रुचि से खाते हैं। ज्वार बोने के लिए खेत को ज़्यादा तैयार नहीं करना पड़ता। पौधों के ऊँचे और गरुए होने के कारण थोड़ी-सी ज़मीन में ही ज़्यादा चारा उपज जाता है। इसका बीज भी सस्ता पड़ता है।

१—हरी-चरी ठोस व गुणकारी होती है। साइलेज-कूप में संचित करके रखने के लिए भी यह सबसे अच्छी चीज़ है। चरी सुखाकर भी खिलायी जा सकती है, किन्तु यह कम-गुणों वाली रह जाती है। सूखी-चरी बहुत समय तक रक्खी रहती है।

२—इसका दाना—ज्वार—मनुष्य भी खाते हैं; परन्तु यह दूधवाली गायों के लिए अच्छा नहीं होता। ज्वार का दाना बैलों को खिलाया जाता है। यह पचने में भारी होता है।

३—ज्वार के हरे पौधों में खनिज-लवण, ख़ासकर कैलशियम व फ़ासफ़ोरस, बहुत होते हैं। इनमें विटामिन 'ए' 'बी' 'सी' भी ख़ूब होते हैं। अन्य पोषक-तत्त्व भी अच्छी मात्रा में रहते हैं। इनका सबसे ज़्यादा अंश पौधों में नरम, दुधारू-बीजों के भर आनेपर होता है। अतः इसी अवस्था में चारा काटकर खिलाना या साइलेज-कूप में भरकर रख लेना चाहिए।

बोना—यह ख़रीफ़[1] की फ़सल है। इसे पानी बहुत चाहिए। यह आसाढ़ के महीने में बोयी जाती है। चारे के लिए इसका बीज घना—लगभग ʃ४ सेर प्रतिबीघा—बोया जाता है, ताकि पौधे बहुत ज़्यादा कड़े न हो पायें। दाना करने के लिए ज्वार का बीज छितराकर अर्थात् प्रायः ʃ२॥ प्रतिबीघा बोते हैं, जिससे भुट्टा ज़मीन से ज़्यादा ताक़त खींचकर पुष्ट हो सके। चारे की और फ़सलें भी घनी बोयी जाती हैं।

सिंचाई—ज्वार का पौधा पानी बहुत चाहता है, किन्तु ७२ घण्टों से ज़्यादा देर तक पानी जड़ों के नीचे न ठहरा रहे। वर्षा की फ़सल होने के कारण इसमें पानी सींचने की ज़रूरत प्रायः नहीं पड़ती। जब पौधों में दुधारू बीज भर आयें, तब यदि एक बार वर्षा हो जाय, तो पौधा ख़ूब पुष्ट हो जाता है, इसलिए ज़रूरत पड़े, तो इस समय पानी सींच देना लाभकारी है।

निराई—चारे के खेतों में निराई नहीं करनी पड़ती, क्योंकि पौधे घास-सहित काट लिये जाते हैं। दाने के लिए बोये हुए खेतों में से घास आदि को निकाल दे, तो बीज ज़्यादा-बड़ा पड़ेगा। पानी-भरे गीले खेतों में निराई नहीं की जाती।

उपज—बढ़िया खेत में लगभग १००ʃ हरा-चारा अथवा ४ʃ मन दाना प्रति-बीघा हो सकता है। इसका पौधा १२ से १४ फ़ीट तक लम्बा होता है।

यह आकार में गन्ने के सदृश दिखायी देता है। भुट्टा पौधे के सिरे पर लगता है और खुला रहता है, इसलिए चिड़ियों से इसके दाने की विशेष रक्षा करनी पड़ती है।

काटना—बोने के ८-९ सप्ताह बाद यह चरी चारे के लिए काटनेयोग्य हो जाती है।

---

[1] वर्षा के दिनों में बोयी जानेवाली सारी फ़सलें ख़रीफ़ की फ़सलें कहलाती हैं। इन्हें पानी बहुत चाहिए। आमतौर पर इन्हें आषाढ़ से भाद्रपद तक बो लेते हैं। पानी का प्रबन्ध करके कुछ अनाज पहले भी बोये जा सकते हैं।

दूधर-बीजों वाली अवस्था में ही इसमें पोषक तत्त्वों की मात्रा सबसे ज्यादा होती है; किन्तु सूखने पर यह तत्त्व कम रह जाते हैं। अतएव इन्हीं दिनों में इसको काटकर खिलाना और साइलेज-कूप में संचित कर लेना चाहिए।

जाति—ज्वार दो प्रकार की होती है।

१—सफ़ेद दूधिया रंग की, जिसका पौधा कार्तिक तक हरा रहता है।

२—कुछ-लाल रंग की, यह कम समय तक हरी रहती और जल्दी पकती है।

निषेध—चरी का १½ या २ फीट ऊँचा पौधा काफ़ी पानी न पाने पर ज़हरीला हो जाता है। ख़ासकर पिछली फ़सल के डण्ठलों से निकले हुए छोटे पौधों या जेठ मास से पहले की बोयी हुई चरी के ज़हरीले हो जाने की अधिक सम्भावना रहती है। अतः जब तक काफ़ी पानी न बरस ले और चरी बड़ी न हो जाय, तब तक उसे नहीं खिलाना चाहिए।

वैज्ञानिकजन कहते हैं कि इस अवस्था की चरी में हाइड्रोसिनिक-एसिड (Hydrocynic acid) पैदा हो जाती है। यह एसिड बहुत तेज़ जहर है और इसका इलाज प्रायः नहीं-सा है। किन्तु यदि थोड़ी ही कम-ज़हर के अंशवाली ऐसी चरी पशु खा ले, तो उसे तुरन्त काफ़ी मात्रा में कार्बोहाइड्रेट अर्थात् शक्कर, गुड़ अथवा शीरा आदि के देने से इस एसिड का असर कम हो सकता है। काफ़ी शीरा खानेवाले पशुओं पर यह विष जल्दी असर नहीं करेगा।

प्रसार—सारे भारत में ही नहीं, बल्कि सभी देश-देशान्तरों में ज्वार की चरी गाय-बैलों को खिलाने के लिए बोयी जाती है। विशेष-उपयोगी होने के कारण चारे की फ़सलों में यह प्रधान है।

मदरास के आस-पास के स्थानों में प्रायः ख़ूब अच्छी, बड़ी और सफ़ेद ज्वार मिलती है।

मक्के की चरी—यह भी एक अच्छा चारा है। इसके पौधों का रूप-रंग पहले ज्वार के पौधों का-सा दिखायी पड़ता है। मक्के का दाना गाय बैलों को प्रायः नहीं खिलाया जाता, किन्तु कुछ लोग इसे खिलाते भी हैं।

१—इसका बीज काफ़ी सस्ता होता है, और ऊँची फ़सल होने के कारण थोड़ी-सी ज़मीन में भी काफ़ी चारा उपज जाता है।

२—यह सुगमता से होने और जल्दी बढ़ने वाली है। अच्छा खेत हो, तो मक्के की चरी १० से १२ फ़ीट तक ऊँची हो जाती है। साधारणतया भी यह ६-७ फ़ीट ऊँची होती है।

३—इसका हरा-चारा ठोस, गुणकारी और साइलेज-कूप में भी रखने लायक़ होता है।

४—मक्के की हरी और नरम चरी ही खिलानी चाहिए, क्योंकि पकने के निकट आने पर उसमें काष्ठ-तन्तु ही विशेष बढ़ जाते हैं और वह चारे के लिए गुणहीन हो जाती है।

बोने का समय—मक्का ख़रीफ़ की फ़सल है। ज्यादातर इसे आषाढ़ से श्रावण तक बोते हैं, किन्तु पानी का प्रबन्ध करके यह बैसाख में भी बोयी जाती है। मक्के का दाना चारे के लिए घना अर्थात् ﾉ४ प्रतिबीघा और बीज करने के लिए छितरा, लगभग ﾉ२ या ﾉ२॥ प्रतिबीघा, बोते हैं।

ज़मीन—खेत को अच्छी तरह जोतकर उसमें गोबर की खाद ख़ूब डाल दे। यह फ़सल दुमट[1] ज़मीन में अच्छी होती है, किन्तु साधारण ज़मीन से भी काम चल सकता है।

निराई—बीजवाली मक्का में करे। चारे के लिए तो पौधों के बीच में उगनेवाली घास भी काम में आ जाती है।

उपज—दो महीने के भीतर ही यह फ़सल चारे के लायक तैयार हो जाती है। बढ़िया खेती में ७५ऽ प्रतिबीघा तक हरे-चारे अथवा २ऽ या २॥ऽ प्रतिबीघा दाने का होना सम्भव है। इन पौधों का रूप-रंग ज्वार से मिलता-जुलता होता है। भुट्टा इन पौधों के बीच में लगता है और कोमल बालों तथा पत्तों से ढका हुआ रहता है।

काटना—मक्के का पौधा जल्दी कड़ा पड़ने लगता है। अतः दुधारू नरम बीजों के भर आने के निकट ही हरे-पौधों को काटना शुरू कर दे।

प्रसार—देश-विदेश तथा सारे भारत में मक्का बोयी जाती है। ख़ासकर पंजाब की ओर की मक्के का दाना बड़ा, मीठा और विशेष-अच्छा होता है।

बाजरे की चरी—यह कुछ कम पानी पाकर भी हो जानेवाली ख़रीफ़ की फ़सल है। आम तौर पर इसकी चरी बैलों को खिलायी जाती है। इसमें क्रूड (Crude) प्रोटीन बहुत ज़्यादा होता है और कुछ दूसरे हानिकर तत्त्व भी होते हैं। इसलिए दूध देनेवाली गायों को बाजरे की चरी नहीं खिलायी जाती। ग्वार, लोबिया और दूब आदि हरे-चारों के साथ मिलाकर यह थोड़ी तादाद में खिलायी जा सकती है। किन्तु इसका सूखा-पौधा बेकार हो जाता है।

बोना—श्रावण से भाद्रपद तक बाजरा बोया जाता है। चरी के लिए घना, लगभग ४ छटाँक और दाने के लिए छितरा, प्रायः २ छटाँक बीज प्रति-बीघा बोते हैं। इसका दाना छोटा और गोल होता है।

जमीन—यह रेतीली ज़मीन में भी हो जाता है। काफ़ी खाद देकर तैयार की हुई ज़मीन में उपज ज़्यादा अच्छी होगी।

निराई—बीजवाली फ़सल में से घास वग़ैरह को निकाल देने पर पौधे पुष्ट और बड़े हो जाते हैं। चारे के लिए निराने की ज़रूरत नहीं है।

उपज—बढ़िया खेत में हरे-चारे की उपज ५०ऽ से ७५ऽ प्रति-बीघा अथवा बीज १॥ऽ से २ऽ तक हो सकता है। बाजरे का पौधा १० से १२ फ़ीट तक ऊँचा होता है और ज्वार के समान ही दिखायी देता है। इसका लम्बा और पतला भुट्टा पौधे के सिरे पर लगता है।

काटना—बीज भरआने के पहले ही हरा-नरम पौधा चारे के लिए काट लेना चाहिए। यह साइलेज-कूप में भरकर नहीं रक्खा जाता, क्योंकि दूधवाली गायों के लिए उपयोगी नहीं है। बाजरे का दाना भी दूधवाली गायों को ज़्यादातर नहीं खिलाया जाता है।

---

[1] जिस ज़मीन में बालू और मिट्टी बराबर-बराबर मिली हो।

प्रसार—बाजरा सारे भारत और खासकर राजपूताने के रेतीले खेतों में बोया जाता है। यह सस्ता अनाज है।

धान—यह खरीफ़ की प्रधान फ़सल है। इसका सूखा-भूसा, जिसे पयाल या पुराली भी कहते हैं, पशुओं को खिलाया जाता है। लेकिन यह ठीक क़िस्म का चारा नहीं है। धान कूटने पर निकली हुई चावल की भूसी को 'घूटा' कहते हैं।

बोना—धान उन्हीं खेतों में बोया जाता है, जिनमें पानी ठहर सके; क्योंकि यह फ़सल कुछ दिनों तक पानी में डूबी रहती है। धान कई क़िस्म का होता है। चावल के निर्माण के लिए इसका पौधा ज़मीन से फ़ासफ़ोरस ही विशेष खींचता है। इसलिए कुछ वर्षों बाद धान के खेतों में फ़ास-फ़ोरस-तत्त्वों की कमी हो जाती है। ऐसे खेतों में घूटे की खाद देने से ज़मीन फिर से ज़ोरदार हो जायगी, क्योंकि चावल के घूटे में फ़ासफ़ोरस का अंश बहुत होता है। ज़रूरत के माफिक धान की निराई २-३ बार तक करनी पड़ती है। यह फ़सल आश्विन तक पककर काटनेयोग्य हो जाती है।

हाथ से कूटे हुए चावलों में, मशीन के द्वारा कूटे हुए चावलों से, पोषक तत्त्व ज़्यादा होते हैं। अतः हाथ से कूटे हुए चावलों का व्यवहार करना अधिक गुणकारी है।

घूटे में कैलशियम का अंश बहुत-कम प्रायः[1] २२% और फ़ासफ़ोरस का अंश बहुत ज़्यादा ६·२३% के लगभग होता है। यद्यपि फ़ासफ़ोरस-तत्त्व पशुओं के लिए अति-आवश्यक है, तथापि इसकी अधिकता गाय की पाचनशक्ति पर विशेष-प्रभाव डालती है। इस कारण घूटा गाय-बैलों को नहीं खिलाना चाहिए। यह ज़्यादातर घोड़े आदि पशुओं को खिलाया जाता है। गाय-बैलों की किसी ख़ुराक में अगर फ़ासफ़ोरस के अंश की कमी हो, तो घूटा मिलाकर वह दूर की जा सकती है।

पुराली या पयाल एक गुणहीन चारा है। इसमें पोषक-तत्त्व बिल्कुल नहीं होते। इसमें कैल-शियम केवल ०·५५% और फ़ासफ़ोरस ०·१२% है। पशुओं के चारे में इन तत्त्वों की कहीं-अधिक ज़रूरत होती है। पुराली में अपाच्य जाति के क्रूड-प्रोटीन की भी बड़ी कमी है। साथ ही इसमें होनेवाली पोटैशियम की अधिक मात्रा कैलशियम को पचने तथा सोडियम को रक्त में मिलने नहीं देती, और हानि-प्रद होती है। पुराली में कार्बोहाइड्रेट बहुत-काफ़ी और तन्तुयुक्त पदार्थ बहुत-ज़्यादा होते हैं।

यदि गाय-बैलों को केवल मात्र-पुराली ही खिलायी जायगी, तो वे आवश्यक कैलशियम, फ़ास-फ़ोरस व प्रोटीन आदि को न पाकर कमज़ोर हो जायँगे और अधिक पोटैशियम भी हानि पहुँचायेगा।

यदि पुराली का खिलाना ज़रूरी हो, तो हरी-घासों या दाल के पौधों के भूसे के साथ मिलाकर दे। कैलशियम की कमी तैयार किये हुए एक तोला भर हड्डी के चूरे, चूने अथवा खड़िया के देने से कुछ दूर हो जायगी। ख़ुराक में नमक की मात्रा को बढ़ाकर पोटैशियम की अधिकता की हानि को कम किया जा सकता है।

अच्छा तो यह है कि चावल की पुराली पर ही जानवर न पाले जायँ।

---

[1] आगे लिखे सब आँकड़े गो-विज्ञान के आधार पर हैं।

अन्य फ़सलें—दाल आदि की ख़रीफ़ की शेष-फ़सलों का वर्णन रबी की फ़सल के बाद किया गया है।

जौ—इसका हरा-पौधा सर्वमान्य और श्रेष्ठ चारा है। पशुओं को यह भर-पेट खिलाया जा सकता है। जौ का दाना गेहूँ से सस्ता होता है और पशुओं को खिलाये जाने वाले दानों में उत्तम माना गया है। इसका सूखा भूसा भी और-भूसों के मुक़ाबिले अच्छा होता है।

बोना—यह रबी[1] की फ़सल है। इसे आश्विन से कार्तिक भर बोते हैं। बीज प्रायः ऽ५ प्रति-बीघा डालते हैं, किन्तु अच्छे खेतों में ऽ४ प्रति-बीघा भी काफ़ी हो जाता है। इसका दाना लम्बा होता है।

ज़मीन—इसके लिए तैयार[2] ज़मीन अच्छी होती है। परहल[3] किये हुए खेत में फ़सल बढ़िया होगी।

सिंचाई—खेत में नमी न हो, तो पहले खेत को सींच दे। ज़मीन के कुछ ख़ुश्क हो जाने पर ही जौ बोये। पौधे जब १ या १½ फ़ुट ऊँचे हो जायँ, तो इनमें पानी ज़रूर देना चाहिए। यदि वर्षा न हो, तो ख़ासकर पौष के महीने में एक बार फिर से इसमें पानी देना होता है; क्योंकि ज़मीन में तरी बनी रहेगी, तो फ़सल को पाला नहीं सतायेगा।

जौ को निराई की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं पड़ती।

उपज—इसका पौधा केवल ४ या ५ फ़ीट ऊँचा और ज्वार आदि से हलका होता है। बढ़िया खेत में हरा-चारा ४०ऽ या ५०ऽ अथवा दाना २ऽ से ३ऽ प्रति-बीघा हो सकता है। इसका खेत गेहूँ के सदृश होता है। इसकी बाली में पैने 'तीखुर' होते हैं। इन तीखुरों को खाने पर पशु धाँसने लग जाते हैं।

काटना—बोने के दो महीने बाद चारे के लिए हरा पौधा काटना शुरू कर दे। बढ़िया तैयार खेतों में इसका चारा दो बार काटा जा सकता है। पौधों के काफ़ी बढ़ जाने पर उन्हें जड़ के ½ फ़ुट ऊपर से काट ले। पानी पाकर वे फिर दुबारा हरे हो जायँगे और इस प्रकार चारे की दो फ़सलें मिल सकेंगी। जौ की फ़सल फाल्गुन में पककर कटने लायक़ हो जाती है। दाना निकाल लेने पर इसका भूसा भी जानवरों को खिलाया जाता है।

जई—इसे सेंऊँ भी कहते है। इसका दाना और पौधा जौ का-सा ही दीखता है, परन्तु उससे कुछ अधिक बड़ा और लम्बा होता है। इसके बोने, काटने और खिलाने का तरीक़ा जौ की तरह ही है। जई का सूखा भूसा गायों को नहीं खिलाया जाता और न दाना ही खाने के काम में आता है।

---

[1] ये फ़सलें प्रायः आश्विन से कार्तिक तक बोयी जाती हैं। ये जाड़ों में तैयार होती हैं और फाल्गुन से चैत्र तक पककर कटने योग्य हो जाती हैं।

[2] अच्छी तरह जोती और खाद डाली ज़मीन।

[3] परहल किया हुआ खेत बहुत बढ़िया माना जाता है। इस ज़मीन को बरसात लगने पर जोतना शुरू कर देते हैं। फिर जब-जब मौक़ा लगता है वह खेत कई बार जोतकर छोड़ दिया जाता है। इसमें से घास कूड़ा आदि सब बीन लिया जाता है। ऐसे खेत की मिट्टी नरम व उपजाऊ हो जाती है।

यह फ़सल केवल बीज करने के लिए ही पकायी जाती है। जई का हरा पौधा पशुओं के लिए गुणकारी चारा है। इससे गायों का दूध बढ़ जाता है, यह अनुभव-सिद्ध है।

चारे के लिए जई की दो हरी फ़सलें काट ली जाती हैं। गायों के लिए चारे के उद्देश्य से इस फ़सल का प्रचार बढ़ाना चाहिए।

गेहूँ—यह रबी की प्रधान फ़सल है। गेहूँ बहुत उपयोगी, सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ अन्न है।

१—गेहूँ को पीसकर छानने पर बचे हुए चोकर में फ़ासफ़ोरस बहुत होता है। यह अंश ४·५ से ६·५% तक सम्भव है। कैलशियम भी काफ़ी है, जो ·२ से ·२५ % है। चोकर रेचक, गुणकारी, एवं सुलभ वस्तु है। गाय-बैलों को यह खिलाना चाहिए। यह वज़न में हल्का और ज़्यादा जगह घेरनेवाला होता है।

२—गेहूँ के चोकर में प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट भी अच्छी तादाद में होते हैं। किन्तु केवल चोकर का ही प्रोटीन दूधवाली गायों के लिए काफ़ी नहीं है। अतएव उन्हें प्रोटीनवाले अन्य पदार्थों का देना लाभदायी होता है।

३—गेहूँ को दलकर गाय को खिलाया जाय, तो उसका दूध बढ़ जायगा।

४—गेहूँ निकालने के बाद बचा हुआ सूखा भूसा बहुत कम पोषण-तत्त्वोंवाला चारा है। यद्यपि भूसे में पचने-योग्य प्रोटीन व कैलशियम बहुत कम हैं, फिर भी यह धान की पुराली से कहीं अच्छा है, क्योंकि इसमें पुराली के उतनी हानिकर पोटैयिम तथा फ़ासफ़ोरस की अधिक मात्रा नहीं है। भूसे को अगर सोडे के घोल में भिगोकर खिलाया जाय, तो वह अधिक पोषक बन जायगा। सोडे के व्यवहार का तरीक़ा आगे लिखा गया है।

बोना—कार्तिक के महीने में ऽ५ प्रति-बीघा के हिसाब से इसको बोते हैं। इस फ़सल के लिए सबसे बढ़िया और परहल किया हुआ खेत बरता जाता है। इस खेत को, काफ़ी घूरा और जोत देकर, ख़ूब नरम कर लिया जाता है।

सिँचाई—अंकुर जब क़रीब ६ इंच लम्बा हो जाय, तब यदि वर्षा न हो तो पानी सींच दे। उसके बाद भी ज़रूरत के मुताबिक़ एक-दो बार और पानी दे-दे। यह फ़सल काफ़ी मेहनत चाहती है।

निराई—खेत पहले से ही ख़ूब तैयार कर लिया जाता है। इस कारण इसमें निराई की ज़रूरत नहीं पड़ती।

उपज—इसका पौधा ४ से ६ फ़ीट तक ऊँचा होता है, जिसके सिरे पर बाली आती है। उपज लगभग ३ऽ से ५ऽ तक प्रति-बीघा हो जाती है।

काटना—चैत्र से वैशाख तक इसकी फ़सल सूखकर सुनहले रंग की काटने-योग्य हो जाती है।

प्रसार—यह बहुत-से देशों में होता है। मनुष्यों के पोषण के लिए इसका सभी जगह मान है। गेहूँ अमेरिका, रूस तथा आस्ट्रेलिया और भारत में बहुत बड़ी तादाद में होता है।

भूसे पर सोडे का प्रयोग (Alkali-Treatment)—भूसा या पुराली को यदि रात-भर १·२५% कास्टिक-सोडे (Caustic Soda) के घोल में भिगो दिया जाय, तो उसमें पोषक-तत्त्व

प्रखर हो जायँगे। इस प्रकार भिगोये हुए भूसे को खिलाने से पशु पहले की अपेक्षा ज़्यादा स्वस्थ हो जाते हैं, किन्तु इस पद्धति के बरतने में खरच अधिक पड़ता है। यदि ठीक तौर पर हरा-चारा न मिले, तो भूसे या पुराली आदि को, जहाँ तक हो सके, सोडे से भिगोकर ही खिलाये। ऐसे भूसे में :—

१—आमिष (प्रोटीन) की संख्या यद्यपि कम हो जायगी, तथापि वे पाचक होने के कारण उत्तम हो जायँगे।

२—फ़ासफ़ोरस की पाचन-शक्ति बढ़ जायगी, साथ ही कैलशियम को पचाने वाली शक्ति की भी वृद्धि होगी।

३—तन्तुमय पदार्थ नरम पड़कर सुपाच्य बन जायँगे।

४—कार्बोहाइड्रेट के पचाने की शक्ति और सोडियम की मात्रा बढ़ जायगी।

५—हानिकारक पोटैशियम की मात्रा भी कम हो जायगी।

इन्हीं कारणों से भीगे हुए भूसे को खानेवाली गाय ज़्यादा तन्दुरुस्त रहेगी और उसका वज़न भी बढ़ेगा।

विधि—गेहूँ के भूसे या धान की पुराली को यदि रातभर १.२५% कास्टिक सोडे के घोल में भिगो दिया जाय, तो उसकी पोषक-शक्ति बढ़ जायगी।

बारीक कटी हुई पुराली या भूसे के वज़न से आठगुने पानी में पुराली या भूसे के वज़न के दसवें अंश भर कास्टिक सोडे को मिला दे। जैसे—१ऽ भूसे में ८ऽ पानी और ऽ४ सोडा। फिर प्रातः-काल इसको दूसरे साफ़ पानी से धोकर खिलाये। सोडा-मिले हुए पानी को भूसे में से पहले ही निथरा ले, क्योंकि पानी में सोडे का अंश बाक़ी रह जाता है। अतएव दुबारा भिगोने के लिए इसी पानी में पहले से आधा अर्थात् ऽ२ सोडा और मिला दे तथा जितना पानी घट गया हो, उतना ही और मिला-कर उसके वज़न को ८ऽ पूरा कर ले। इसी प्रकार पानी को तीसरे दिन भी फिर से निथराकर और उसमें सोडा व पानी मिलाकर बरत ले। एक-बार काम में लाया हुआ सोडेवाला पानी इस भाँति तीन-बार तक काम में आ सकेगा।

दाल के पौधों के गुण—सभी जानवरों के लिए और विशेषतया केवल मात्र-भूसा खाने-वालों के लिए दाल के पौधों और ख़ासकर उनके पत्तों का भूसा बहुत अच्छा होता है। इनसे प्रोटीन-प्रधान तत्त्व पाकर कमज़ोर जानवर भी हृष्ट-पुष्ट हो जायँगे।

१—चना, मटर, मसूर, उर्द और मूँग आदि दालों को बो कर उनकी हरी फ़सलों के तैयार होने पर जानवरों को उस ज़मीन पर चरने के लिए छोड़ दिया जाय। यदि थोड़ी दूर चराकर रोज़-रोज़ जानवरों को उस ज़मीन पर क्रमशः आगे बढ़ाते जायँ, तो पीछे की हरियाली फिर से उग आयेगी। इन पौधों का हरा-चारा, कुट्टी करके, खिलाये, अथवा साइलेज-कूप में भरकर रक्खे।

२—इन पौधों में क्षार आदि का अंश ज़्यादा होता है, इस कारण इनके हरे-चारे या सूखे-भूसे को अन्य चारों के साथ में मिलाकर ही खिलाना चाहिए।

३—दालों के हरे-पौधे और सूखे-भूसे में अन्य हरे-चारों और भूसों से ज़्यादा प्रोटीन होते हैं।

डंठल से भी पत्तों में ज़्यादा प्रोटीन हैं, और साथ ही इनमें पचनेवाले पोषक-तत्त्व भी ख़ूब होते हैं। दाल के हरे या सूखे पौधों को इकट्ठा करने, लाने और ले जाने में पत्ते झड़कर छूटने न पावें इस बात का बराबर ख़्याल रखना चाहिए।

गेहूँ आदि अनाजों से दालों में प्रोटीन ज़्यादा होते हैं।

दाल के पौधों में कैलशियम बहुत, किन्तु फ़ासफ़ोरस कम होता है। अगर यह चारा काफ़ी तादाद में खिलाया जाय, तो पशु में कैलशियम की कमी नहीं होगी।

ज़मीन के लिए दाल के पौधों की हरियाली एक अच्छी खाद है। दाल को ज़मीन में बोकर उसके हरे-पौधों के उग आने पर सारी फ़सल को यदि उसी खेत में जोत दे, तो खेत भविष्य के लिए बहुत ज़ोरदार हो जायगा; क्योंकि इस प्रकार उसे नाइट्रोजन-प्रधान खाद भली भाँति मिल जायगी।

इन पौधों की जड़ों के ऊपर बैक्टीरिया के कीटाणु पैदा हो जाते हैं, जो वायुमंडल से नाइट्रोजन को खींचकर प्रोटीन के रूप में पौधों में पहुँचाते रहते हैं। इनकी जड़ों के द्वारा बैक्टीरिया के कीटाणु ज़मीन में प्रवेश करके उसे ख़ूब-उपजाऊ बना देते हैं।

यदि ये कीटाणु पहले से खेत में होंगे, तो दालों की फ़सलें इन्हें और भी विकसित कर देंगी। गेहूँ, जौ व धान आदि अनाजों की फ़सलों के बाद उसी ज़मीन पर दाल का बोना लाभदायी होगा। हर साल एक ही खेत में एक-सी ही फ़सल के बोने से, उन पौधों के लिए विशेष तौर पर, आवश्यक तत्त्व बराबर ही खिंचते रहेंगे। इसलिए ज़मीन में उन तत्त्वों की विशेष-कमी हो जायगी, और वहाँ की फ़सलें दिन पर दिन कमज़ोर पैदा होंगी। अतः फ़सलों को बदल-बदलकर बोना चाहिए।

यदि खेत में बैक्टीरिया के कीटाणु बिल्कुल न हों, तो इनाक्युलेटेड (Enoculated)[1] बीजों को बोने, या दूसरे खेत की बैक्टीरिया के कीटाणुओंवाली मिट्टी को डालने, से पैदावार अच्छी हो जाती है।

चना—यह रबी की फ़सल है। चने को दलकर उसका दाना या उसकी चूनी-भूसी भी जानवरों को खिलायी जाती है। चने का दाना पोषक-तत्त्वों-वाला है।

चने की भूसी में क्रूडप्रोटीन ६% होते हैं, परन्तु वे अपाच्य हैं। ख़ाली छिलके की भूसी रक्त को सुखानेवाली होती है, इसलिए इसे दूध देनेवाली गायों को न खिलाये।

बोने का समय—धान व ज्वार आदि के खेतों के ख़ाली हो जाने पर, आश्विन से कार्तिक के बाद तक ५४ प्रतिबीघा के हिसाब से, चना बोया जाता है।

ज़मीन—धानों के काट लेने पर उन्हीं खेतों को जोतकर चना प्रायः बो दिया जाता है, क्योंकि इसकी जड़ों के द्वारा ज़मीन में नाइट्रोजन पहुँचता है। इस फ़सल के लिए साधारण जोती हुई ज़मीन भी काम दे जाती है।

---

[1] प्रयोगों-द्वारा जिन बीजों में विशेष-शक्ति का संचार कर दिया गया हो, उन्हें 'इनाक्युलेटेड' बीज कहते हैं।

सिंचाई—इसके लिए अधिक पानी की ज़रूरत नहीं पड़ती, लेकिन पानी के बिल्कुल न मिलने पर भी इसकी फ़सल सूख जाती है। थोड़े पानी के मिलते रहने से फ़सल ठीक होती है।

निराई—यद्यपि इसकी निराई ज़रूरी नहीं है, तो भी इसके खेत में उगी हुई अकरा, पिंजरा, घुंडी आदि घासों के निकाल देने से फ़सल बढ़िया हो जाती है।

उपज—इसका पौधा २ से २॥ फ़ीट तक ऊँचा होता है। ४) प्रति-बीघा तक इसकी उपज हो सकती है। इसका हरा-चारा क्षारयुक्त होता है, इसलिए पशुओं को इसे दूसरे चारों के साथ मिलाकर ही खिलाये। बीज से लदे हुए, चने के, पौधों के खिलाने से पशु का मांस गठीला हो जाता है, क्योंकि मांसपेशियों के मृतप्राय सेल इससे जागृत हो उठते हैं और उनमें नयी ताक़त पैदा हो जाती है।

काटना—चैत्र में चने की फ़सल पककर काटने-योग्य हो जाती है। पौधों को सुखाने के बाद उन पर बैलों को चलाकर दाना अलग कर लिया जाता है। यदि पश्चिम से चलनेवाली पछुवा हवा के झोंकों से सहलाकर चना निकाला जाय और ठीक से रक्खा जाय, तो वह बिलकुल नहीं घुनेगा, ऐसा माना जाता है।

चना तरह-तरह का होता है, किन्तु इसकी प्रधान दो जातियाँ हैं:—

१—पंजाबी चना—सफ़ेद और बड़ा होता है। (चने की फ़सल भारत के अलावा अमेरिका आदि देशों में भी बोयी जाती है।)

२—देशी चना—छोटा और बादामी व पीले रंगों का होता है।

चारा—चने के हरे पौधों में प्रोटीन, क्षार तथा कैलशियम बहुत होते हैं, किन्तु इसमें फ़ासफ़ोरस कम होता है। यदि इसके पौधों की सानी में हड्डी का तैयार किया हुआ १ तोला चूरा मिला दिया जाय, तो फ़ासफ़ोरस की कमी दूर हो जायगी।

मटर—यह रबी की फ़सल है। इसका हरा चारा सूखे भूसे की बनिस्बत अधिक लाभदायी है। मटर के हरे पौधों में बादी की तासीर—Fermenting Carbohydrate—बहुत होते हैं; अतः इन्हें सूखे भूसे या अन्य हरे चारे—जैसे जौ या सरसों के—साथ मिलाकर खिलाये।

मटर के हरे चारे से गाय का दूध बढ़ जाता है। इसमें १२.५% तक प्रोटीन का अंश हो सकता है।

बोना—मटर को कार्तिक में ऽ४ प्रति बीघा के हिसाब से बो दे। काफ़ी फैलनेवाला पौधा होने के कारण चारे की अच्छी उपज हो जाती है। मटर साधारण ज़मीन में, जहाँ ज़रा नमी होगी, पैदा हो जायगा। नदी के किनारे बोने से सिंचाई नहीं करनी पड़ती। यदि वर्षा न हो, तो मटर के पौधों को सींच देना चाहिए। मटर का दाना बड़ा एवं छोटा दो प्रकार का होता है। बड़े दाने का पौधा अधिक लम्बा और ऊँचा होता है।

काटना—हरी दूधर-फलियों के भर आने पर माघ के महीने से इसका खिलाना शुरू कर दे। चैत्र के महीने में यह फ़सल पककर बीज के लिए तैयार हो जाती है। ५०) से ७०) हरा चारा अथवा ४) मन दाना प्रति-बीघा उत्पन्न हो जायगा।

मसूर—यह भी रबी की फ़सल है। इसकी खेती मटर की तरह ही की जाती है। मसूर का पौधा केवल २ या २॥ फ़ीट ऊँचा होता है। हड्डी को मज़बूत बनानेवाले फ़ासफ़ोरस का अंश इसमें विशेष रहता है। चारे के लिए मसूर को जौ, जई या मटर के साथ मिलाकर बो दे। इसे भी दूसरे चारों में मिलाकर ही खिलाये।

सेंजनी—यह जाड़ों में बोयी जानेवाली एक प्रकार से साधारण जाति की दाल है। इसका बोना-काटना मसूर की तरह ही किया जाता है। इसमें सड़नेवाले कार्बोहाइड्रेट बहुत होते हैं। अतः इसके साथ दूसरे चारों को ज़रूर मिला लेना चाहिए। सेंजनी का हरा-चारा दूध को बढ़ानेवाला होता है।

सोयाबीन—यह बरसात के दिनों में होने वाली ख़रीफ़ की फ़सल है। इसकी जड़ों-द्वारा बैक्टीरिया के कीटाणु ज़मीन में प्रवेश करके उसे उपजाऊ बना देते हैं। सोयाबीन दूसरे चारों के कड़ुएपन एवं हानिकारक अंश को कमकरनेवाला और प्रोटीन-प्रधान अच्छा चारा है। इसके बोने का प्रचार बढ़ाना चाहिए। इसके बोने-काटने की विधि मटर की तरह ही है। यह सरलता से हो जाती है। इसे नमीदार मुलायम मिट्टी में बोने पर सींचने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। खेत में ऽ२॥ प्रति-बीघा बीज डाले, और मुलायम फलीदार पौधों को काटकर खिलाये।

मूंग, उर्द और मोठ—ये तीनों भी ख़रीफ़ की फ़सलें हैं। इनका बीज आषाढ़ में ऽ२ या ऽ२॥ प्रति-बीघा बोया जाता है। दाल की अन्य फ़सलों की तरह ही इनके भी गुण एवं खिलाने की विधि होती है। इनमें चने के उतने क्षार-पदार्थ नहीं होते।

उर्द तथा मोठ की दाल गायों को नहीं खिलानी चाहिए, किन्तु मूँग की चूनी-भूसी खिलायी जा सकती है।

उर्द की दाल में कार्बोहाइड्रेट व माँड़, का अंश ज़्यादा होता है, किन्तु मूंग की दाल में इनका इतना अंश—माँड़—नहीं होता।

मूंग के पौधों में सिरे पर ही फली आती है, किन्तु उर्द और मोठ का सारा पौधा फलियों से भर जाता है।

अरहर—यह बरसात के दिनों में बोयी जाती है और नौ महीने तक खेत में खड़ी रहती है। इसका पौधा ४ से ९ फ़ीट तक ऊँचा हो सकता है। इसकी जड़ें ज़मीन में बहुत नीचे तक पहुँच जाती हैं। इसके सूखे डंठल—जिन्हें झांखर कहते हैं—डलिया व छप्पर आदि के बनाने में काम आते हैं।

ज़मीन—अरहर के लिए ज़मीन विशेष-रूप से तैयार नहीं करनी पड़ती। गहराई तक पहुँचनेवाली जड़ों के कारण इसके पौधे दूसरी फ़सलों के लिए खेत को अच्छा बना देते हैं। इसके पत्तों की खाद भी ज़मीन को उपजाऊ बनाती है। अतः फ़सल को काटने के बाद तुरन्त ही खेत को जोत दे, ताकि वहाँ के गिरे पत्ते सब मिट्टी में मिल जायँ।

बोना—अरहर को ऽ१ प्रति-बीघा के हिसाब से अधिकतर ज्वार, बाजरा या कपास के साथ—अथवा खेत की मेंड़ों पर बाढ़ के रूप में भी—बोया जाता है, ताकि और फ़सलों की रक्षा हो जाय

और साथ ही दाल भी पैदा हो जाय। इन फ़सलों के काट लेने पर भी अरहर खेतमें खड़ी रहेगी। सारे खेत में अकेली अरहर को भी बोते हैं।

आबादी, तालाब या पेड़ों के निकट इसको बोना ज़्यादा अच्छा है, क्योंकि वहाँ पर जाड़ों में पाला-मारने का अन्देशा कम हो जाता है। ज़्यादा पाला-पड़ने पर यह फ़सल जड़ से नष्ट हो जाती है।

निराई व सिंचाई—केवल अरहर ही बोये हुए खेत में से घास को निकालना पड़ता है, पर सिंचाई की ख़ास ज़रूरत नहीं पड़ती।

काटना—चारे के लिए अरहर के हरे-पत्ते पाँच या छः बार ऊपर से काटकर खिलाये जाते हैं, इसलिए चारे की उपज अच्छी हो जाती है। इसके दाने की उपज ३) प्रति-बीघा के लगभग हो जाती है। काले छिलके की अरहर बड़ी और पीले छिलके की कुछ छोटी होती है।

अरहर के दानों तथा पत्तों में भी प्रोटीन का अंश बहुत होता है, अतः इन पत्तों को बिखरकर बेकार नष्ट न हो जाने दे—बल्कि इन्हें सावधानी से इकट्ठा करके रख ले। दाना निकाल लेने पर इसके पत्तों का भूसा और-भूसों के साथ में मिलाकर खिलाये।

अरहर की चूनी-भूसी पशुओं को खिलायी जाती है। इसमें अच्छी जाति के सुपाच्य-प्रोटीन होते हैं।

बार-बार काटी जाने के कारण अरहर का हरा-चारा काफ़ी उपजता और सस्ता पड़ता है। चारे के लिए इस फ़सल का बोना लाभदायी है।

ग्वार—यह भी ख़रीफ़ की फ़सल है। इसका हरा-पौधा पशुओं को खिलाया जाता है। किन्तु सूखा-भूसा बेकार होता है। ग्वार के बोने, काटने एवं खिलाने की विधि मूँग आदि की तरह ही जाने। इसका पौधा ५ फ़ीट तक ऊँचा हो सकता है। ग्वार के दाने में वसा का अंश अधिक होता है, अतः इसका दाना दलकर दूधवाली गायों को दिया जाता है।

लोबिया—यह मटर की तरह फैलनेवाली किन्तु बरसाती फ़सल है। अन्य दालों की तरह इसके पौधों में भी प्रोटीन ख़ूब होता है। इसका हरा-चारा ज्वार, बाजरा या मक्का के पौधों के साथ मिलाकर खिलाये।

खली—तेल-युक्त बीजों को पेरने पर उनका बचा हुआ तन्तुवाला अंश पशुओं को खिलाया जाता है। इसमें वसा का कुछ अंश बाक़ी बच रहता है और प्रोटीन व फ़ासफ़ोरस भी रहते हैं, इस कारण यह उपयोगी है। इसमें कैलशियम कम होता है, किन्तु उपयुक्त पदार्थों के कारण ख़ास कर केवल सूखा-भूसा खानेवाले पशुओं को खली ज़रूर खिलाये।

खली सस्ती और लाभकारी चीज़ है, किन्तु कारख़ानों में पेरी गयी खली में तेल का अंश बहुत कम रह जाता है, इसलिए यह पशुओं के लिए विशेष हितकर नहीं है। देशी घानी में पेरी गयी, वसा के अधिक अंशवाली, खली ज़्यादा पोषक होती है। कारख़ानेवाली खली खाद के लिए उपयुक्त है।

अरण्डी, महुवा, नीम और करञ्ज आदि की खली पशुओं को नहीं खिलायी जाती।

सरसों, लाही, तिल, मूँगफली, बिनौला, अलसी, नारियल तथा कुसुम की खलियाँ उपयोगी हैं। इनका गुण रेचक होता है।

सरसों—यह छोटे-छोटे गोल बीजोंवाली रबी की फ़सल है। इसमें प्रोटीन और वसा ख़ूब होती है। इसका तेल बहुत उपयोगी होता है।

बोना—इसको छितरा बोया जाता है, क्योंकि घने पौधों में सिंगरी ज़ोरदार नहीं आतीं। इसका गोल बीज हलका और छोटा होता है। इसे गेहूँ या चने के साथ मिलाकर ऽ= प्रतिबीघा के हिसाब से बो देते हैं, इसलिए सरसों के वास्ते ज़मीन अलग से तैयार नहीं करनी पड़ती, न सिंचाई की ही ख़ास ज़रूरत पड़ती है।

काटना—चारे के लिए नरम सिंगरीदार हरे पौधे बीच-बीच में से निकाल लिये जाते हैं। पुष्ट पौधों को बीज के लिए छोड़ देते हैं। सरसों के हरे पौधे खिलाने से गाय का दूध बढ़ जाता है। इसको अन्य चारों के साथ मिलाकर खिलाये। इसका भूसा बेकार होता है।

सरसों का पौधा ४ से ७ फ़ीट तक ऊँचा होता है और दूसरी फ़सलों से जल्दी तैयार हो जाता है। पीली, लाल और कुछ काले से रंग की तीन तरह की सरसों होती है।

लाही—यह सरसों के माफ़िक़ जाड़ों में ही होती है। इसकी खेती भी बहुत-कुछ सरसों की तरह ही की जाती है, किन्तु यह उससे कुछ पहले और चने के साथ बोयी जाती है। इसका पौधा ज़्यादा ऊँचा नहीं होता। लाही का तेल और खली दोनों ही काम में आते हैं।

तिल—यह ख़रीफ़ की फ़सल है। तिल की खली के प्रोटीन अच्छी जाति के होते हैं। यह रोचक तथा सबसे अच्छी खली है, जो बछड़े और बछियों को भी दी जा सकती है। अकसर अरहर या ज्वार के साथ मिलाकर ऽ। प्रति-बीघा के हिसाब से इसको बोते हैं। यह कार्तिक में पककर कटने-योग्य हो जाती है। यह अन्य खलियों से महँगी होती है।

मूंगफली—यह आलू की तरह ज़मीन में बैठनेवाली और माघ में बोयी जानेवाली फ़सल है। इसकी खली कुछ महँगी होती है, क्योंकि इसका बीज मनुष्यों के खाने में भी आता है।

नारियल—इसके पेड़ समुद्र के किनारे लगते हैं। पाचक-प्रोटीन के कम होने के कारण इसकी खली विशेष-उपयोगी नहीं है। इसके खिलाने से दूध में कुछ गन्ध-सी भी आ सकती है।

अलसी—यह रबी की फ़सल है। खेत की मेड़ों पर ज़्यादातर ऽ।= प्रति-बीघा के हिसाब से इसको बोते हैं। इसका पौधा दो फ़ीट से ज़्यादा ऊँचा नहीं होता। इसकी पैदावार ।ऽ या ।ऽ२ प्रति-बीघा हो जाती है।

कुसुम—यह चने या गेहूँ के खेत में होनेवाला हलके क़िस्म का बीज है। इसका व्यवहार ज़्यादा रुचि से नहीं किया जाता। इसी कारण इसके बोने पर ध्यान भी कम दिया जाता है। फिर भी इसकी खली व तेल काम में आते हैं।

बिनौला—यह ख़रीफ़ की फ़सल है, किन्तु इसमें पानी अधिक ठहरना नहीं चाहिए। इसके पौधों में फूलों के फूट जाने पर कपास बीन लेते हैं, और उसे ओटकर रुई अलग कर ली जाती है।

बचाहुआ बीज ही बिनौला कहलाता है। इसकी खली या साबुत-बीज भी गायों को खिलाये जाते हैं, जिससे दूध में घृत का अंश बढ़ जाता है।

बिनौले में गासीपोल (Gossypol) नाम के हानिकर पदार्थ होते हैं, अतः यह गाभिन-गायों, बछड़ों, बछियों, बैलों तथा साँड़ों को नहीं खिलाया जाता। किन्तु धीरे-धीरे आदत डाल देने पर दूधदेनेवाली गायों को हानि नहीं पहुँचाता।

गर्मी के दिनों में बिनौला खिलाना ठीक नहीं है। जाड़ों के मौसम में ५॥ से ५१ बिनौला भिगो अथवा उबाल कर और उसमें गुड़ मिलाकर दूध देनेवाली गाय को दे। अँकुराए हुए बिनौलों में विटामिन ई (E) खूब विकसित हो जाता है। इससे गाय का दूध बहुत बढ़ जाता है। अँकुराये हुए बिनौलों के देने से गाय जल्दी गर्म भी हो जाती है।

तेल—उपर्युक्त सभी प्रकार के तेल विविध-रीतियों से व्यवहार में लाये जाते हैं। किन्तु सरसों, लाही और तिल का तेल ही अधिकतर खाने के काम में आता है।

तेल मे प्रोटीन और वसा का अंश बहुत ज्यादा होता है, अतः वह रेचक पदार्थ है। समय-समय पर पशुओं को भी तेल पिलाया जाता है। गाय और उसके छोटे-बच्चों को कभी-कभी थोड़ा-सा तेल पिलादेने से उनका पेट साफ़ रहता है।

नमक—खुराक को पचाने और भूख-प्यास को बढ़ाने के लिए नमक बहुत ज़रूरी है। प्राकृतिक रूप से ही हरे-पौधों में खनिज-लवणों का अंश काफ़ी होता है। सूखे-भूसों या दानों में भी इन पदार्थों का थोड़ा अंश पाया जाता है। इनके बिना खाना बिल्कुल बेस्वाद और सार-रहित हो जाता है। इन लवणों से खून साफ़ होता है। यह कई प्रकार के होते हैं।

केवल चारे-दाने और पानी से पशु को पर्याप्त खनिज-लवण नहीं मिल पाते, इसलिए उसे सानी में अलग से नमक देना पड़ता है। गोशाला में सेंधा-नमक का बड़ा-सा ढेला रख देना अच्छा है, क्योंकि पशु अपनी आवश्यकता के अनुसार उसे चाट लेगा। चारे-दाने की सानी में ½ छटाँक साँभर-नमक को मिला देना भी उचित है।

नमक की कमी होने पर पशु के मुँह में काँटे बढ़ जाते हैं और वे दीवार या मिट्टी चाटने लगते हैं। काला तथा खारी नमक दवाइयों के काम में आता है।

गुड़—गन्ने को पेरकर उसके रस से शक्कर या गुड़ बनाते हैं। इसमें मिठास का अंश बहुत होता है। एक सेर गुड़ में लगभग ७५ तोले मिठास अथवा कार्बोहाइड्रेट, ३·४२ तोला प्रोटीन, ·६४ तोला वसा, ·७२ तोला चूना, और ०·१ तोला लोहा होता है। शेष ०·११ तोला अन्य चीज़ें होती हैं। जाड़ों में गुड़ का खिलाना लाभदायी है।

पशु गुड़ बड़ी रुचि से खाते हैं। यह एक शक्तिदायी वस्तु है।

शीरा—शक्कर बनाने के बाद बचा हुआ रसीला अंश शीरा कहलाता है। यह गुड़ से सस्ता होता है, इसलिए पशुओं को सरलता से खिलाया जा सकता है। शीरा प्रायः बेकार समझा जाता है, किन्तु यह पशुओं के लिए बहुत उपयोगी है। विदेशों तक में शीरा ले जाकर जानवरों को खिलाया जाता है।

शीरे में २०% पानी, ६२% कार्बोहाइड्रेट, ·६% प्रोटीन, ८·४% खनिज-लवण, और ९% के लगभग तन्तु का अंश होता है। पशुओं के चारे में यदि कार्बोहाइड्रेट एवं मिठास की कमी हो, तो उन्हें थोड़ा सा शीरा—जाड़े के दिनों में—ज़रूर खिलाना चाहिए। शीरे में प्रोटीनकी विशेष कमी होती है, इस कारण पशुओं को प्रोटीन-प्रधान दूसरी चीज़ें भी अवश्य ही खिलाये। यदि ज़्यादा शीरा खाने से मुँह में झाग आने लगें, तो पशु को नमक खिलाये। शीरा कुछ रेचक होता है, इसलिए ज़्यादा खालेने पर पशु पतला-गोबर करने लगता है।

गन्ना—इसको माह से शुरू करके फागुन तक बोते हैं। बोते-समय गन्ने के गाँटवाले टुकड़े काट लिये जाते हैं और वे ही सीधी-सीधी पंक्तियों में-गाड़ दिये जाते हैं। गन्ने की पेड़ी के उग आने पर आवश्यकता के अनुसार पानी का सींचना अच्छा होता है। इसके लिए ज़मीन ख़ूब तैयार करनी पड़ती है। यह खेत में ९ महीने तक खड़ा रहता है। इसे कार्तिक के आख़िर से काटना शुरू करते हैं। इसकी उपज ४०) से ६०) तक प्रति-बीघा हो जाती है।

गन्ना काटने पर उसके ऊपर के हिस्से के पत्ते—अगौले—बैलों को खिलाते हैं, लेकिन दूध-वाली गायों को अगौले खिलाना ठीक नहीं है।

चारे के योग्य पेड़—आमतौर पर केवल अकाल के दिनों में ही पशुओं को पेड़ों के पत्ते खिलाये जाते हैं। पत्तों में प्रोटीन व कैरोटीन आदि तत्त्व होते हैं, अतः इन्हें चारे में सम्मिलित करने में कोई हर्ज नहीं है। कई पेड़ों—ख़ासकर पीपल, आम, फ़ालसा, पाकर, गूलर आदि—के पत्ते खिलाये जा सकते हैं।

खिलाने योग्य कन्द—पशुओं को खिलायी जाने वाली कन्दों में गाजर और मैंगोल्ड प्रधान हैं। मैंगोल्ड को विलायती-शलजम भी कहते हैं।

गाजर—मनुष्य तथा पशु दोनों के लिए ही गाजर रुचिकर एवं उपयोगी है। यह सरलता से पचनेवाली है। इसके देने से गाय का दूध बढ़ जाता है।

तैयार-गाजर में ७५% से ८५% तक जल का अंश होता है। शेष ठोस-पदार्थों में कार्बो-हाइड्रेट की मात्रा अधिक और प्रोटीन तथा खनिज-लवणों की मात्रा कम होती है, किन्तु विटामिन का अंश विशेष होता है।

बोना—इसे आश्विन से कार्तिक तक तीन-छटाँक प्रतिबीघा के हिसाब से बोते हैं। इसका बीज हलका होता है। यह ज़मीन के भीतर पैदा होती है, इसलिए खेत को ख़ूब तैयार कर लेना चाहिए।

बीज तैयार करने के लिए गाजर की पत्तियाँ तथा कन्द का निचला हिस्सा काटकर बीच की डंठलदार पेंदी को ज़मीन में फिर से गाड़ देते हैं। इन्हीं में से नये पत्ते व फूल निकलते हैं, जिनमें बीज लगता है। बीज चैत्र तक पक जाता है।

गाजर दो क़िस्म की होती है। १—पतली, नरम और केसरिया रंग की। २—मोटी, भारी, लाल एवं काले रंग की।

उपज—गाजर बोने के दो महीने बाद से चलने लगती है, और ४०) या ५०) प्रतिबीघा तक हो सकती है।

आमतौर पर दूधवाली गायों को गाजर के हरे पत्ते ज़्यादा नहीं खिलाये जाते। ये पत्ते बैलों और बछड़ों को ही अधिकतर खिलाये जाते हैं।

मैंगोल्ड अर्थात् विलायती शलजम—गायों के लिए यह उपयोगी चीज़ है। इसमें शक्कर का अंश बहुत होता है। यह साइलेज-कूप में भी भरकर रक्खी जा सकती है। शलजम अगर गायों को ठीक तौर पर खिलायी जाय तो गाय की ख़ुराक में से दाना कम किया जा सकता है। यह एक अच्छे किस्म का चारा है।

बोना—आश्विन से कार्त्तिक तक इसका बीज ऽ।।। या ऽ।।= प्रतिबीघा के हिसाब से बोते हैं। इस शलजम को ज़्यादा-मीठी बनाने के लिए बीजों को रात भर शक्कर के शरबत में भिगोकर बोना चाहिए। ख़ूब तैयार खेत में क्यारियाँ बनाकर बीज फ़ासले पर बोया जाय, तो फ़सल अच्छी होगी।

शलजम लाल, नीली, सफेद और नारंगी रंगों की होती है।

उपज—इसकी पैदावार ५०ऽ से ७०ऽ मन तक प्रतिबीघा हो जाती है। यह बोने के २।। या ३ महीने बाद खिलाने-लायक़ हो जायगी। इसको खोदतेवक्त एक शलजम छोड़कर निकालने से बच रहनेवाली शलजम और भी अच्छी तरह फैलेगी। इसे खुरपी से खोदकर निकालना चाहिए—पत्ते पकड़कर खींचने से कन्द का कुछ भाग ज़मीन में ही टूटकर रह जायगा, जिससे इसके रसीले अंश का बहुत कुछ हिस्सा बेकार चला जायगा। गाँठ के निचले हिस्से में जब ३ धब्बे पड़ जायँ, तब इसे तैयार समझना चाहिए। इसके पत्ते भी चारे के काम में आते हैं।

बासी शलजम ज़्यादा मीठी हो जाती है, किन्तु धूप और ओस लगने से इसकी मिटास कम पड़ जाती है। इसे छाँहदार जगह में एक-दो दिन रखने के बाद खिलाये। यह शलजम एक दिन में ऽ५ से ऽ७ तक पशुओं को खिलायी जा सकती है।

गो-चर भूमि—अच्छी तरह से तैयार की गयी ज़मीन की दूब आदि घासों को चरने पर पशु स्वस्थ एवं नीरोग रहते हैं। वैज्ञानिक-गोपालकजन ऐसी भूमि की बड़ी प्रशंसा करते हैं। उन्होंने अनुभव करके देखा है कि हरी दूब-आदि घासें भरपेट चरनेवाले जानवरों को शाला में और दाना-खली या चारा देने की ज़रूरत नहीं पड़ती। उत्तम चराई पर पालित पशुओं की तुलना में बढ़िया जाति का दाना व चारा (गेहूँ का चोकर, खली और चारा) भी खिलाकर पाले हुए पशु भी कम-बलवान् एवं कम-स्वस्थ रहे।

गोचर-भूमि को तैयार करने में जो लागत लगायी जायगी, उससे लगभग दस-गुना फ़ायदा हो सकता है। अच्छी हरी-घासदार ज़मीन पर चरने से पशु को पर्याप्त कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज-लवण तथा विटामिन-युक्त सुपाच्य पोषण मिलेगा और साथ ही वह शरीर के संचालन करते रहने से स्वस्थ भी रहेगा।

शाला में चारा लाने और खाँदने का ख़र्च बिलकुल नहीं अथवा कम करना होगा और दाना-खली में भी किफ़ायत हो जायगी।

निरन्तर गोबर व गो-मूत्र के पड़ते रहने से वह भूमि भी उर्वरा बन जायगी—पशुओं को

चराकर और विधिवत् खाद देकर बंजर मानी जानेवाली ज़मीन भी उपजाऊ बनायी जा सकती है।

हरी-घास रोग-निवारक, खून को साफ़ करनेवाली और सुपाच्य होती है। उसमें कार्बोहाइड्रेट तो कम किन्तु शेष सब तत्त्व खूब होते हैं।

घास जितनी दबायी, काटी या चरी जायगी, उतनी ही वह बढ़ेगी, क्योंकि उसके आग्ज़िमोन्स (Auximones) विशेष-प्रखर हो जायँगे। घास आदि में नवजीवन का संचार करके, उन्हें नष्ट होने से बचाने के लिए, प्रकृति ने इस शक्ति की रचना की है। यह आग्ज़िमोन्स गायके लिए भी हितकर हैं।

हरी और कोमल दूब-घास श्रेष्ठ होती है। १¾ सेर सूखे वज़न की, अर्थात् १·७५×४=७ सेर, हरी घास में १ सेर दाने के लगभग पोषक-तत्त्व होते हैं। इसी कारण पर्याप्त-दूब चर लेने पर पशु को दाने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

सबेरे से ही गाय को चराने के लिए ले जाना चाहिए, ताकि वह खुली हवा में घूम सके।

धूप लगने से उसके शरीर में विटामिन 'डी' का संचार होता है। बँधी रहने पर गाय निर्बल हो जाती है।

ज़मीन——आसाढ़ के दिनों में पानी बरसने के बाद ज़मीन तीन-चार बार खूब जोत दी जाय। काँटे वग़ैरह बीनकर वहाँ ४-५ गाड़ी प्रतिबीघा मिश्रित-कम्पोस्ट-खाद (Compost) डाल दे। फिर पटेला देकर दूब के पौड़ों को मिट्टी में पास-पास दबा दें। घास के लगाने और उसके जमने के दिनों में पानी का सींचना ज़रूरी है। एक बार जम जाने पर घास वर्षा का पानी पाकर खूब फैल जायगी।

इस ज़मीन पर ताज़ा गोमूत्र व गोबर पड़ता रहेगा, अतः खाद देने की खास ज़रूरत नहीं पड़ेगी। फिर भी हर साल नाइट्रोजनवाली खाद फैला दी जाय, तो घास खूब बढ़ेगी। हर तीसरे-साल इस ज़मीन को जोत दे। यदि ऊँची ज़मीन हो, तो मेड़ बनाकर वहाँ पर वर्षा का पानी रोक दे, ताकि ज़मीन को तरावट मिल जाय।

नियम——अगर ध्यान रखकर पशुओं को चराया जाय, तो ज़मीन बहुत समय तक हरी बनी रहेगी——इस भूमि के चार-हिस्से करके बाढ़ लगा दे। एक सप्ताह एक हिस्से में पशुओं को ले जाय और अगले सप्ताह दूसरे भाग में। इस प्रकार क्रमशः चारों-भागों में चराने से २० दिनों के भीतर हर-हिस्से में घास खूब उग आया करेगी। हमेशा एक ही जगह पर चराने से वहाँ की ज़मीन सख़्त हो जाती है।

अति नरम व कोमल घास खुर लगने से उखड़ जायगी, इसलिए घास के अच्छी तरह जम आने पर ही पशुओं को वहाँ छोड़े। घास पकने अथवा सूख जाने पर कम पोषणवाली रह जाती है।

हरी नरम घास में लगभग १०% से१५% तक प्रोटीन,६% कैलशियम, और ४% फ़ासफ़ोरस होता है। किन्तु सूखी घास में लगभग ४% से ७% तक प्रोटीन, ४% कैलशियम और २% फ़ासफ़ोरस रह जाते हैं।

एक गाय को साल भर चरने के लिए कम से कम २॥ या ३ बीघा ज़मीन चाहिए। अगर उपजाऊ ज़मीन हो, तो कुछ कम जगह की ही ज़रूरत पड़ेगी।

बरसीम—यह घास पशुओं को रुचिकर और प्रोटीन-प्रधान है। ऐसा माना जाता है कि यह इजिप्ट से आयी थी। इसके पत्ते और फूल मेथी के फूल एवं पत्तों के आकार के, किन्तु उनसे कुछ बड़े, होते हैं। यह घास सभी जगह बोयी जा सकती है। इसे हरी-हरी काटकर खिलाये, व चराये। यह साइलेज के काम में नहीं आती और इसका सूखा भूसा भी बेकार होता है। कई बार काटी जाने योग्य होने के कारण चारे की उपज काफ़ी हो जाती है।

बोना—आश्विन से कार्तिक तक ʃ५ प्रतिबीघा इसका बीज बोते हैं। इसके छोटे-छोटे बीजों को चींटियाँ उठा ले जाती हैं, इसलिए इसे पानी-भरी ज़मीन में डालते हैं और सूखने पर तुरन्त ही फिर पानी भर देना पड़ता है।

ज़मीन—इस घास के लिए ज़मीन अच्छी तैयार होनी चाहिए। श्रावण के महीने से ही जोत शुरू कर दे और ५ या ७ गाड़ी प्रतिबीघा घूरा देकर बोने के समय तक मिट्टी को ख़ूब नरम कर दे।

जिस खेत में बैक्टीरिया के कीटाणु कम होंगे, वहाँ यह कठिनाई से जमेगी। अतः बरसीम बोये हुए खेत की ५-७ गाड़ी मिट्टी लाकर नये खेत में फैला दे। इससे यहाँ भी बैक्टीरिया के कीटाणुओं का संचार भली-भाँति हो जायगा। सरकारी कृषिविभाग में बरसीम के इनाक्युलेटेड (Inoculated) बीज मिलते हैं, जो अच्छी तरह जम जाते हैं।

जाति—यह पीली, लाल और ख़ाकी ३ रंगों की होती है, इनमें जमने की शक्ति क्रमशः ९०% ५०% और २५% होती है। बरसीम का पीले रंग का बीज ही सर्वश्रेष्ट है।

उपज—चौबीस घंटे बाद इसके अंकुर दिखायी देने लगते हैं। नौ या दस सप्ताह के बाद यह तीन या चार फ़ुट ऊँची हो जाती है। कई बार काटी जाने के कारण इसकी उपज १००ʃ तक प्रतिबीघा हो सकती है।

काटना—नौ या दस सप्ताह के बाद इसका काटना शुरू कर देना चाहिए। इस समय इसमें बहुत पोषक-तत्त्व रहते हैं, जो फ़सल के ज़्यादा बढ़ जाने पर कम हो जाते हैं। पौधे जब १½ फ़ुट ऊँचे हो जायँ, तो उन्हें बीस या पचीस दिन के अंतर से बार-बार काटते रहना चाहिए। इसकी हरी कुट्टी करके, केवल इसे ही या और चारे के साथ मिलाकर, खिलाया जा सकता है। इसकी फ़सल बैसाख तक ७ या ८ बार काट ली जाती है। बरसीम का बीज ख़रीदकर बोना ज़्यादा अच्छा होता है, अतः घास को बीज के लिए अधिकतर पकाना नहीं चाहिए।

सिंचाई—यह फ़सल पानी बहुत चाहती है। इसलिए बीज बोने के समय सींचे और जमने के बाद भी एक महीने तक ८ या १० दिन के अन्तर से पानी देता रहे। घास काटने के बाद तुरन्त ही इस खेत को पानी से भर देना चाहिए, ताकि घास फिर से जल्दी हरी हो जाय।

ध्यान रहे कि यह फ़सल बराबर तर बनी रहे और सूखने न पाये।

बीज की तैयारी—बीज के लिए रक्खी जानेवाली घास को फाल्गुन के बाद नहीं काटना

चाहिए। यह वैशाख तक पककर काटने योग्य हो जायगी। चैत्र के दिनों में एक बार पानी लगाकर छोड़ देने के बाद फिर सींचना नहीं चाहिए। इसके बीज छोटे और हल्के होते हैं, अतएव इन्हें सँभालकर गाहना चाहिए ताकि यह मिट्टी और हवा से नष्ट न हो जायँ।

लूसर्न—गाय के चारों में लूसर्न भी उत्तम, दूध को बढ़ानेवाली और गरम-तासीर की घास है। यह घोड़ों के भी काम आती है। इसमें दाल के पौधों के सदृश प्रोटीन-प्रधान तत्त्व होते हैं। इस घास की फ़सल•सालभर में ६-७बार काटकर हरी-हरी खिलायी जाती है। गोचर-भूमि के लिए भी यह अच्छी घास है। कई बार काटी जाने के कारण फ़सल सस्ती पड़ती है। ठीक समय पर काटीहुई लूसर्न खिलाने के बाद गाय को दाना देने की ज़रूरत नहीं पड़ती। यह साइलेज के काम में नहीं आती। इसका भूसा भी बेकार होता है। इसमें विटामिन 'ए' खूब रहता है। इसमें कुल पोषक-तत्त्व ३७·७% हैं।

बोना—इसे क्वाँर से कातिक तक प्रतिबीघा ʃ५ या ʃ६ बीज डालकर बोते है।

ज़मीन—चार या पाँच गाड़ी प्रतिबीघा घूरा डालकर अच्छी तरह तीन-चार बार की जोती हुई ज़मीन हो, तो उपज अच्छी होगी। साधारण रूप से तैयार करने से भी काम चल सकता है। दुमट ज़मीन इसके लिए अच्छी होती है। जिस खेत में बैक्टीरिया के कीटाणु कम होंगे, वहाँ लूसर्न भी अच्छी तरह नहीं जमेगी। यह फ़सल पहले जिस खेत में हो चुकी हो, उसी खेत की मिट्टी लाकर नये खेत में डालने से बैक्टीरिया के कीटाणुओं का संचार हो जायगा। इनाक्युलेटेड बीज भी विशेष उपयोगी हैं।

जाति—यह दो प्रकार की होती है, जिनमें एक क़िस्म तो साल भर ही रहती है और हर साल उसे फिर से जोतना-बोना पड़ता है।

दूसरे क़िस्म की लूसर्न की फ़सल ३ वर्ष तक काम देती रहती है।

इसके बीज बन्दगोभी के बीजों के सदृश होते हैं।

सिंचाई—यह फ़सल बहुत पानी चाहती है, किन्तु इसमें पानी का भरा रहना अच्छा नहीं होता। इसकी जड़ एक बार जमने पर खूब गहरी ज़मीन के नीचे तक फैल जाती है और वहाँ से पानी खींचती रहती है। अतएव जम जाने के बाद यह पानी की ज़्यादा परवाह नहीं करती और कम पानी मिलने पर भी हरी बनी रहती है। फिर भी इसे जमने के समय तक तो काफ़ी पानी मिल ही जाना चाहिए।

उपज—यह ३ या ४ फ़ुट ऊँची और घनी होती है। बार-बार काटने के कारण १००ʃ प्रति-बीघा के लगभग इसकी पैदावार हो सकती है।

काटना—यह बोने के २½ या ३ मास बाद जम कर काटने लायक़ तैयार हो जाती है। इसे ५ या ६ सप्ताह बाद कुछ फूल-जाने पर निरन्तर काटते रहना चाहिए। इस प्रकार यह साल भर में आठ या नौ बार काटी जायगी।

घास—घास कई क़िस्म की होती है। इन सब का अलग-अलग लिखा जाना संभव नहीं है, अतएव कुछ ख़ास-ख़ास घासों का ही उल्लेख किया जाता है।

दूब घास सबसे उत्तम है। अंजन, गिन्नी, नेपियर, हलीम, सूदान, स्पियर या भाला, चिम्बार, लैम्प, मरका, पालान, सामक, पनेल, भदा, भट्ट, भरुआ, मकरा, बाँसी, खरुआ, खटुई, कुकरैंदा, घुंडी, काँस, डाभ, जोड़मतोड़ा, गाँड़र आदि तरह-तरह की घासें होती हैं।

जाति, देश, ज़मीन और मौसम के हिसाब से घासों में अलग-अलग गुण होते हैं।

दूब--भारत में सब जगह होती है। पशु के लिए बहुत गुणकारी होने के कारण इसका बड़ा मान है। हरी-हरी दूब चराई जाय, तो दाना-खली देने की ज़रूरत कम हो जायगी। यह बारहों महीने हरी रहती है। गर्मियों में पानी सींचा जाय, तो दूब पानी पाकर ख़ूब बढ़ेगी और हरी बनी रहेगी।

दूब को सुखाकर भी खिलाते हैं, किन्तु सूखने पर इसमें गुण कम रह जाते हैं। खुली और हवादार ज़मीन पर दूब ख़ूब फैलती है और पेड़ की छाँह में कम होती है। बार-बार काटने या दबाने से यह घास ज़्यादा फैलती है। पशुओं को केवल दूब ही खिलाना अच्छा है; किन्तु यह चारा महँगा पड़ता है। अतः चरने के लिए दूब और शाला में खिलाने के लिए चारे-दाने का प्रबन्ध प्रायः करना पड़ता है।

अंजन--यह घास भी सब जगह होती है, और कम पानी चाहती है। यह अधिक गीले स्थानों में नहीं होती। इसके लिए भी ज़मीन अच्छी तैयार करनी चाहिए। इसमें प्रोटीन और खनिज-लवण ख़ूब होते हैं। पशु इसे भी प्रसन्नता से खाते हैं।

गाँड़र--यह घास बारहों-महीने हरी बनी रहती है, और बरसात में ख़ूब बढ़ जाती है। इस घास में सींकें पैदा होती हैं, जिन्हें सुखाकर घरों को छाने के काम में लाया जाता है। इसकी जड़ों से सुगन्धित ख़स की टट्टी बनायी जाती है। यह घास चारा काटने तथा चराई दोनों के लिए अच्छी चीज़ है।

गिन्नी--यह घास अफ़्रीका से भारत में आयी है। गायों के चरने के लिए यह अच्छी होती है।

काँस--इसे साइलेज में भी भरते हैं। यह नदियों के किनारे पैदा होनेवाली हरी, मीठी, लम्बी और जंगली किन्तु दूध ख़ूब बढ़ानेवाली घास है। घासें और भी कई तरह की होती हैं, जो खिलाने के काम में अक्सर लायी जाती है।

रोचकता--चारा-दाना गाय की पसन्द और ऋतु के अनुकूल होना चाहिए। नयी तरह की वे चीज़ें--जिन्हें उसने पहले कभी नहीं खाया है--थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खिलाकर उसे अभ्यस्त कर ले। आदत न होने पर वह पहले कुछ दिन बढ़िया भी चारा--ख़ासकर साइलेज-खत्ते की घास आदि--न खा पायेगी। सानी में गुड़ अथवा शीरा और थोड़ा सा नमक मिलाने से वह रोचक बन जाती है। तरह-तरह के चारे-दाने खिलाने से गाय को पोषण के लिए आवश्यक नाना प्रकार के तत्त्व मिलते रहेंगे। एक-सी सानी खाते-खाते गाय ऊब जायगी। गरमी, सरदी और बरसात के मौसमों में विभिन्न चारे-दाने की सानी होनी चाहिए।

उदाहरण—गर्मियों में:--(चैत्र से जेष्ठ तक--३ मास)

चारा—साइलेज की हरियाली, हरी-दूब या हरी-मक्का—भूसा-ताज़ा गेहूँ, जौ, चना, मटर और अरहर का।

खली व नमक—ठीक मात्रा में।

बिनौला—बहुत कम मात्रा में या बिल्कुल नहीं।

दाना—जौ-ग्वार-अरहर और मसूर की चूनी चोकर।

अधिक गर्मी पड़ने पर गायों को कच्ची खाँड़ मिलाकर बेलगिरी देना लाभदायी पाया गया है।

बरसात में:—(आषाढ़ से आश्विन तक—४ मास)

चारा—दूब आदि कई तरह की हरी घासों की भरपेट चराई तथा सोयाबीन, लोभिया, ग्वार, उर्द, मूँग के हरे पौधे दे।

दाना—मक्का, अरहर, मसूर, मूँग या जौ का। इन दिनों दाना कम तादाद में दिया जा सकता है। पर्याप्त हरी चराई पाने के बाद दाने की जरूरत न पड़ेगी।

खली—लाही, अलसी, नारियल की।

बिनौला—थोड़ी मात्रा में दिया जा सकता है।

विशेष-पोषण पहुँचाना हो, तो गुड़ के साथ जौ का दलिया आवश्यकता के अनुसार दे।

नमक—हरियाली में खनिज-लवणों का अंश खूब होता है। अतः नमक कुछ कम मात्रा में दे।

जाड़ों में:—(कार्तिक से फाल्गुन तक—५ मास)

चारा—ज्वार की चरी, बरसीम, लूसर्न, दूब, हलीम, सरसों व मटर आदि का हरा-चारा और सूखी-चरी। उतरते जाड़ों में जौ, सेऊँ और गाजर तथा मैंगोल्ड दी जाय।

दाना—चना तथा मसूर आदि दालों की चूनी, चोकर या गेहूँ का चोकर अथवा दलिया। बैलों को ज्वार का भी दाना दे सकते हैं।

खली—सरसों, बिनौला, मूँगफली आदि की। ठंड के दिनों में काफ़ी अंश में खली देकर पशु को प्रोटीन से गर्मी पहुँचाये।

नमक—ठीक मात्रा में ≈ के लगभग।

बिनौला—दूध के हिसाब से उचित मात्रा में गुड़, शीरा, गाजर, या दलिये के साथ बिनौले खिलाये।

सानी—नाँद में चारे की कुट्टी, खली, दाना, नमक एवं पानी इन सबको मिलाकर दिये जाने-वाले मिश्रण को सानी कहते हैं। यह सभी चीज़ें खूब अच्छी तरह मिला दी जानी चाहिए। दाना और नमक ५-६ घण्टे पहले ही भिगो दे। खली को भी इसी के साथ या अलग दूसरे बरतन में भिगो दे। भिगोने का बरतन बड़ा होना चाहिए, क्योंकि दाना फूलकर ज़्यादा जगह घेरता है। भीगे हुए दाने के कण फूल जानेसे वह सरलता से पचनेवाला बन जाता है। दूधवाली गायों के लिए भी बिनौलों को अलग बरतन में भिगो दे। उन्हें उबले हुए बिनौलों में गुड़ मिलाकर अलग से खिलाना भी अच्छा होता है। सूखा भूसा अधिक पानी सोख लेता है, अतः ऐसी सानी में पानी ज़्यादा मिलाना

होगा। हरे-चारे में मिलाने के लिए दाने-खली में कम पानी डालना चाहिए। कुछ गोपालक पशुओं को चारा अलग से खिलाते हैं और दूध दुहने के समय दाना-खली अलग से देते हैं।

सानी का समय--दिन में दो बार--सुबह और शाम को--सानी खिलानी चाहिए। गाय को दुहने के १ घण्टे-पूर्व सानी देनी चाहिए। भरपेट सानी खाकर गाय प्रसन्नतापूर्वक दूध दुहायेगी।

बैलों को गाड़ी या हल में जोतने के काफ़ी पहले सानी खिला देनी चाहिए, जिससे उन्हें आराम से जुगाली करने का समय मिल सके। काम लेने के बिल्कुल-पहले या ठीक-बाद में सानी खिलाने से खुराक ठीक-तौर पर पच नहीं पाती।

प्रत्येक गाय के शरीर और चारे-दाने का वज़न तथा दूध का लेखा लिख लेना जरूरी है, क्योंकि उससे उसकी संतुलित-खुराक ठीक की जा सकेगी।

चौथा अध्याय

संचित-चारा

साइलेज——हरी फ़सल को ठीक समय पर काटकर उसे हरियालीदार संचित कर रखने का यह अच्छा तरीक़ा है। दुधारू बीजों के भर आने पर, पूरी तौर से पकने के पहले ही, पौधों को काटकर कूप में भर लेते हैं। इस तरह से रक्खा हुआ चारा सड़ता नहीं है और सदा हरा बना रहता है; किन्तु एसिड के पैदा हो जाने से उसका स्वाद बदल जाता है। उसमें एक प्रकार की खटाइँध भी आ जाती है, लेकिन धीरे-धीरे आदत डाल देने पर तो पशु इसे रुचिपूर्वक खाने लगते हैं।

इस तरह से संचित-चारे में हरियाली के ज़्यादातर गुण विद्यमान रहते हैं। यह चारा सहज ही में पचनेवाला, रसीला एवं पाचनशक्ति को बढ़ानेवाला होता है। साइलेज के चारे से गायों का दूध बढ़ जाता है। इस कूप से दूसरा लाभ यह है कि इसके कारण खेत जल्दी-जल्दी ख़ाली किया जा सकता है और इसलिए ज़मीन में कई फ़सलें हो सकती हैं। इस कूप की उपयोगिता को देखते हुए इसके बनाने में ख़र्च करना भारी नहीं पड़ेगा, बल्कि वह फ़ायदेमन्द ही होगा।

मीठी-तासीर की घासों की या अनाज की फ़सलों की साइलेज उत्तम बनती है। ख़ासकर ज्वार, जौ, दूब आदि की फसलें कुट्टी करके भर ली जाती हैं। चारों की मिठास गर्मी पाकर एसिड में बदल जाती है। चारा कम मीठा हो, तो उसे मीठा बनाने के लिए, उस पर १०% शीरा फैला देते हैं। कूप दो तरह से भरते हैं। कुट्टी करके या बिना कटा हुआ ही चारा भर दिया जाता है; किन्तु चारा कुट्टी करने के बाद ही भरना ज़्यादा ठीक है।

कच्चा खत्ता——साइलेज का साधारण खत्ता ज़मीन के अन्दर छै फ़ीट चौड़ा, छै फ़ीट गहरा और छै फ़ीट लम्बा खोदकर बनाया जाता है। इस गड्ढे में सौ मन तक हरा-चारा आ जायगा। १५×९×६ फ़ीटवाले गड्ढे में ७५०) हरा-चारा भर सकेगा। कच्चे खत्ते में खर्च तो कम लगता है, किन्तु चारे के कुछ रसीले अंश, ज़मीन में मिलजाने से, कम रह जाते हैं और दीवार के आस-पास का चारा मिट्टी मिल जाने के कारण सड़कर बर्बाद भी हो जाता है।

पक्का कूप——साइलेज का पक्का-खत्ता बनाने में ख़र्च ज़्यादा पड़ता है। आजकल सन् १९४९ई० के समय में एक कूप बनाने में कमसेकम लगभग ४०००) का ख़र्च पड़ेगा। इसे विधिवत् सावधानी से बनाना पड़ता है। इसकी दीवार ईंटों से चुनकर बनाते हैं। इसके भी दो तरीक़े हैं :——

१——दीवार ज़मीन से ६ फ़ीट नीची और १२ फ़ीट ऊंची गोल आकार की और आवश्यकता के अनुसार व्यास की बनायी जाती है।

२——ज़मीन के नीचे ही बड़ा और गहरा गड्ढा खोदकर और उसे ईंटों से चुनकर भी बनाते हैं;

किन्तु पहला तरीक़ा ज़्यादा-अच्छा है। इन कूपों के अन्दर का फ़र्श भी ईंटों से बनाते हैं। इस फ़र्श एवं दीवार पर सीमेन्ट का प्लास्टर कर दिया जाता है। इस कूप के अन्दर उतरने के लिए लोहे की सीढ़ियाँ भी लगा ली जाती हैं। साइलेज का पक्का कूप चतुर इंजीनियर से ही बनवाना चाहिए।

ध्यानदेने-योग्य बात——यह है कि गड्ढे में चारा भरते-वक्त उसमें हवा बिलकुल न रहजाय, इसलिए चारे को खूब ठूँस-ठूँसकर भरना चाहिए। दूसरी बात यह है कि चारा बिलकुल नम होना चाहिए। बदलीवाले दिनों में इस साइलेजकूप को चारे से भरना बहुत अच्छा रहता है। तुरन्त का कटाहुआ ताजा चारा ही संचित करना चाहिए और हर तह लगाने के बाद पानी का छिड़काव करके उस पर शीरा फैला देना चाहिए।

गड्ढा जमीन की तह से दो-तीन फुट तक ऊँचा भरना चाहिए। खूब कसकर गड्ढे को भरने के बाद, उस पर पयाल डाल कर, गीली मिट्टी से उसे लेस देना चाहिए। दो या तीन दिन के बाद लेसी हुई मिट्टी के ऊपर कई दरारें पड़ जायँगी——और उनमें से एक खास तरह की बदबू निकलने लगेगी। इन दरारों को फिर से लेस दे। कुछ दिनों में यह ऊपर उठा हुआ हिस्सा जमीन की तह तक पिचक जायगा। डेढ़ या दो महीने में यह साइलेज तैयार हो जायगा।

खिलाने के लिए जब इसे खोलना हो, तब इसका एक ही कोना सावधानी से खोला जाय और उसे भी चारा निकाल लेने पर पुनः ढक दिया करे।

कुट्टी करना——चारे को काटने के चार तरीक़े हैं। कुट्टी करने से पहले चारे को साफ़ कर लेना चाहिए। चारा महीन काटकर बरतना चाहिए, क्योंकि इस तरह वह शीघ्र पचनेवाला बन जाता है। कुट्टी के लिए परिश्रम और ख़र्च करना लाभदायी ही होगा। बिना कटा चारा २०% ज़्यादा खिलाना पड़ता है।

१——साफ़ ज़मीन पर लकड़ी का टुकड़ा गाड़कर गँड़ासी से चारा काटना। इस तरह समय और मेहनत ज़्यादा लगती है।

२——चारा काटने की——चाफ़-कटर (Chaff Cutter) नाम की——मशीन होती है। दो बड़ी और पैनी धारवाली छुरियाँ लगे हुए एक बड़े-से पहिये को दो आदमी घुमाते रहते हैं। मशीन के पीछे से तीसरा आदमी बेलनों के बीच में चारा भरता रहता है, जो जल्दी जल्दी कटता हुआ आगे की ओर सरकता जाता है। इस प्रकार सहज ही में चारे की कुट्टी हो जाती है।

३——यही मशीन बैल या बिजली से भी चलायी जाने वाली होती है।

४——सागौन की लकड़ी की एक ९ फ़ीट लम्बी और ७″×७″ मोटी लाट लेकर उसमें ६ फ़ीट की दूरी पर एक छेद करे, जिसमें एक लकड़ी का डण्डा पिरो दे। ज़मीन में ९ इंच की दूरी पर २॥-२॥ फ़ीट के दो खूँटे, १॥ फ़ुट के अन्तर पर, गाड़ दिये जाते हैं। इन खूँटों में छेद करके लाट को डण्डे के सहारे लटका दिया जाता है। लाट के लम्बे हिस्से के छोर पर एक १४ इंच लम्बी और ३ इंच चौड़ी फ़ौलाद की छुरी लगा दी जाती है। यह छुरी ज़मीन पर जिस जगह गिरती है, वहाँ पर एक बड़ा लकड़ी का ठूँठ इस प्रकार गाड़ दिया जाता है कि छुरी उस पर सीधी और समानान्तर से

गिरे। काम करनेवाला लाट के दूसरे हिस्से को अपने शरीर के बोझ से पाँव के सहारे दबाता है और इससे छुरीवाला हिस्सा ऊपर उठ जाता है। दूसरा साथी छुरी और ठूँठ के बीच में करबी का पूला रखता है। काम करनेवाला अपना बोझ लाट पर से हटा लेता है और छुरी पूले पर ज़ोर से गिर कर उसे दो टुकड़ों में काट देती है। लाट के भार से करवी का गोल भाग पिचक जाता है। टुकड़ों की लम्बाई को पूले रखनेवाला कम ज़्यादा कर सकता है। काम करनेवाले के सुभीते के लिए उसकी उँचाई के हिसाब से एक आड़ी बल्ली बाँधने से वह अपने शरीर का भार सँभाल सकेगा और उसको थकान कम लगेगी। लकड़ी का घर्षण कम करने के लिए घूमनेवाले जोड़ों पर साबुन का पानी या तेल लगा दे। इससे घर्षण कम हो जायगा और काम करने में आसानी होगी।
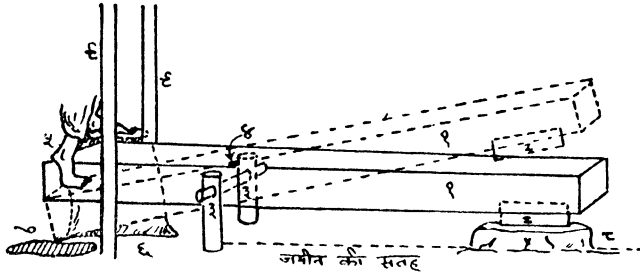
१. सागौन की लाट २. फौलाद की छुरी ३. खूंटे ४. तेल के लिए छेद ५. खाँदने वाले का पैर ६. पाँव का सहारा ७. शरीर के लिए सहारा ८. लकड़ी का ठूँठ ९. लकड़ी के खंभे।

यह देखा गया है कि साधारण तौर पर यह यंत्र देहातों में दस या बारह रुपयों में बन जाता है। काम करने के लिए दो व्यक्तियों की ज़रूरत होगी और ख़ास-श्रम न पड़ने के कारण वे अदल-बदल कर दिनभर में ८ या १० घण्टे काम कर सकेंगे। कटाई का प्रमाण टुकड़ों की लम्बाई पर निर्भर रहेगा। साधारणतया एक घण्टे में पैंतीस या चालीस मन चारा काटा जा सकेगा।

पाँचवाँ अध्याय

खुराक का संतुलन

गायों को चारे-दाने और खली-खिलाने की ठीक मात्रा—सभी पशुओं के लिए एक ही निश्चित नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। विभिन्न-जाति के पशुओं की रुचि और पाचन-शक्ति भिन्न-भिन्न होती है, इसीलिए अनुभव करके उनकी स्वतः की रुचि मालूम कर लेनी चाहिए। खुराक का निश्चय करते समय पशु का वज़न और दूधदेने या कामकरने की शक्ति का ख्याल रखना ज़रूरी है। साथ ही स्थानीय जलवायु, फ़सल और ऋतु का भी ध्यान रखना चाहिए।

संतुलित-खुराक (Balanced diet)—वह है, जो पशु का वज़न, कामकरने व दूधदेने की शक्ति और आदत का ख्याल करके, तथा चारे-दाने के गुणों का विश्लेषण करने के बाद, ऋतु के अनुकूल बनायी गयी हो। उचित खुराक देने से पशु और पालक दोनों ही लाभ में रहते हैं; क्योंकि :—

१—पशु नीरोग रहेंगे; बच्चों की बाढ़ अच्छी होगी; और आगामी नस्ल सुधरती जायगी तथा दीर्घजीवी बनेगी।

२—गाय अपनी शक्तिभर पूरा दूध अधिक दिनों तक देगी और दूध में मक्खन का अंश भी विशेष रहेगा।

३—पशु अपनी पूरी शक्तिभर काम करेगा और अधिक दिनों तक जीवित रहेगा।

४—ज़्यादा या बेकार होजानेवाली खुराक का पालक को व्यर्थ खर्च नहीं करना पड़ेगा। उचित मात्रा देने से खर्च का औसत ज़्यादा नहीं होगा।

निम्नलिखित मात्राएँ वैज्ञानिकों के अनुभवों के आधार पर लिखी जाती हैं।

चारा—पशु को, जितना वह खा सके उतना, भरपेट चारा देना चाहिए। कम चारा देने से पालक को भी हानि होगी। चारा सदैव साफ़-सुथरा और अच्छे क़िस्म का होना चाहिए। गन्दा और सड़ा हुआ चारा कभी न खिलाये। पशु को उसकी स्वतः की शक्ति को क़ायम रखने के लिए दी जानेवाली पोषक-खुराक के अतिरिक्त, उसकी काम करने या दूध देने की शक्ति के लिए, उत्पादक-खुराक भी साथ ही में दी जानी चाहिए।

हर क़िस्म के हरे-चारे की महीन १ इंच लम्बी कुट्टी कर लेनी चाहिए। कटा हुआ चारा जल्दी पचता है और इधर उधर बिखरकर बेकार नहीं जाता। बिना कटा हुआ चारा २०% ज़्यादा खिलाना पड़ता है। कुट्टी करने के पहले चारे को झाड़कर उसका मिट्टी-कूड़ा साफ़ कर लेना लाज़िमी है।

प्रत्येक समय की ख़ुराक में, हरे-चारे का भाग कम से कम २५% तो होना ही चाहिए।

सूखा-चारा कमवज़न में और हरा-चारा ज़्यादावज़न में खिलाना चाहिए। हरे-चारे में पनीला अंश अधिक होता है, इससे उसका ठोस-वज़न कम हो जाता है। इस तालिका से हरे-चारे और सूखे-भूसे के ठोसवज़न का हिसाब लगाकर दियेजानेवाले चारों की मात्रा ठीक कर ले।

तालिका नं० १

चारा	ठोस अंश%	जल का अंश%	श्रेणी
गेहूँ का भूसा, धान की पुराली (पयाल)	९०	१०	
दाल के सूखे पौधों का भूसा, शेष और भूसे	९०	१०	
साइलेज-कूप का हरा-चारा	३०	७०	प्रथम श्रेणी, (तीन गुनी)
हरी-दूब, लूसर्न, बरसीम, हलीम आदि घासें	२५	७५	दूसरी श्रेणी, (चार गुनी)
मक्के की हरी चरी	२५	७५	,, ,, (,, ,,)
ज्वार की हरी चरी	३०	७०	प्रथम श्रेणी, (तीन गुनी)
ज्वार की हरी पकी चरी	४०	६०	,, ,, , (२½ गुनी)
दाल के हरे-पौधे—पकने के पहले	२५	७५	दूसरी श्रेणी, (चार गुनी)
दाल के हरे-पौधे—ज़रा कच्चे	२०	८०	तीसरी श्रेणी, (पाँच गुनी)

सूखे-भूसे और हरे-चारे में ठोस-पदार्थों का निपात प्रायः १:३ या ४ का होता है, अर्थात् ऽ१ सूखा-चारा देने के बदले ऽ३ या ऽ४ हरा-चारा दे।

ख़ुराक नियत करने के पहले पशु को तौल लेना चाहिए। यदि तौलने का साधन न हो, तो नीचे लिखा तरीक़ा बरते।

बिना तौले पशु का अन्दाज़न वज़न जानने का तरीका—पशु की पूँछ के पास की उभरी हुई हड्डी—पिनबोन—से अगले पैरों के ऊपर की उभरी हुई हड्डी तक की लम्बाई नाप ले। छाती के चारों ओर फीता घेरकर मोटाई भी नाप ली जाय। सभी नाप इंचों में ली जाय। अब लम्बाई के इंचों को चौड़ाई अर्थात् मोटाई के इंचों से गुणा करके इस गुणनफल को, जानवर यदि बहुत बड़ा हो तो ८ अंक से, यदि बीच के मेल का हो तो ८½ से, और यदि छोटा हो तो ९ से, भाग दे ले। जो भागफल आये, उसे ४० से भाग कर ले। इस प्रकार जो उत्तर आयेगा, वह पशु के वज़न को मनों में बतायेगा।

मान लीजिए--

इंचों में चौड़ाई × इंचों में लम्बाई

$$\frac{५ \; ४० \times ८०}{\text{बीच के मेल का जानवर } ८.५} = \text{सेर } ४००$$

४०० से ÷ ४० = १०/ जानवर का कुल वज़न

नियम--

$$\frac{\text{चौड़ाई} \times \text{लम्बाई}}{\text{९ या ८½ या ८}} = \text{फल} \div ४० = \text{मनों में जानवर का वज़न}$$
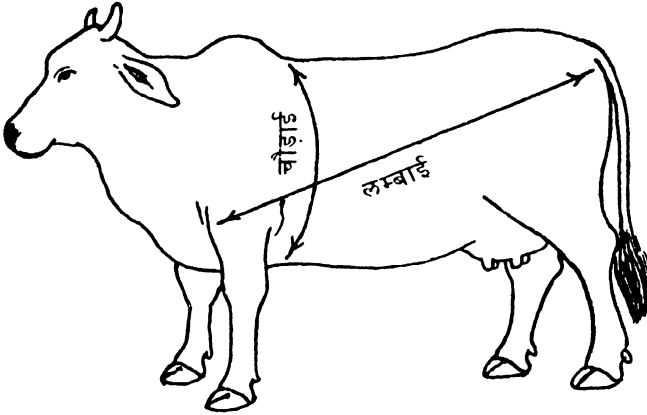
विभिन्न-जातियों की गायों का आमतौर पर वज़न--

बँगला, आसामी, बाचुर, पहाड़ी, श्री आदि छोटे कदकी गायों का--लगभग ६/ से ७/ तक; सिन्धी, थारपरकर, कंगायम, शाहवादी, धन्नी, डाँगी, हल्लीकर, गावलाव, देवनी, खैरीगढ़ आदि का लगभग ७॥/ से ९/ तक; हरियाना, सायवाल, अमृतमहल, नागौरी, मालवी आदि का लगभग १०/ से १२/ तक; गीर, काँकरेज, हिसार, अंगोल, आदि का लगभग १०/ से १२/ तक माना जाता है।

बैलों का वज़न गाय के वज़न से प्रायः १/ या १।/ ज़्यादा होता है।

साँड़ों का वज़न गाय के वज़न से अक्सर १।/ या २/ ज़्यादा होता है।

सूखे-भूसे का विश्लेषण--गाय-बैलों को उनके वज़न का १¾ % सूखा-भूसा और ¾ % दाना-खली अर्थात् कुल २ % या २.५ % के लगभग ख़ुराक खिलानी चाहिए। दस-मन वज़नवाली एक गाय को /७ या /७॥ भूसा, या इतने ही ठोस पदार्थों के वज़न का हरा-चारा, जो जाति के अनु-

सार १८ से २८ सेर तक हो सकता है, खिलाये ।.हरे-चारे का अनुपात तालिका में देखकर लगा लिया जाय । चरतेसमय गाय जितनी घास खा लेगी, उतने ही कम वज़न का चारा शाला में वह खायगी ।

गाय का पेट बड़ा होता है, इसलिए उसे दाने से कहीं ज़्यादा चारे की ज़रूरत पड़ती है । चारा मोटा होने के कारण सरलता से लौटाया और जुगाली किया जा सकता है । ज़्यादा-दाने और कम-चारे के खाने पर उसका पेट खाली-सा रहेगा और वह कुल-दाने को लौटाकर जुगाली न कर पायेगी । इस प्रकार पाचनक्रिया के बिगड़ जाने पर वह सुस्त व बीमार रहेगी, किन्तु चारे से पेट भरजाने पर वह प्रसन्न रहेगी ।

फ़सल के पक जाने तक पौधों की सारी शक्ति बीज के बनाने एवं उसके पोषण करने में ख़र्च हो चुकती है । भविष्य में नवजीवन संचार करने के लिए बीज, अपनी जाति के हिसाब से, पौधों से सभी आवश्यक पोषकतत्त्व खींच लेता है, और पककर तैयार हो जाता है । अतएव बीज-रहित पौधा बहुत-कुछ निस्सार और कम-गुणोंवाला रह जाता है । सूखे पौधे में जल के अंश, प्रोटीन, वसा तथा विटामिन की कमी हो जाती है, केवल तन्तु अर्थात् लकड़ी का अंशही बहुत रह जाता है । इसलिए किसी भी अन्न का दाना निकाला हुआ सूखा-भूसा या पयाल बेकार हो जाता है ।

सूखा-चारा विशेष आवश्यकता पड़ने पर ही खिलाना चाहिए । सिर्फ़ पुराली या भूसा ही यदि देना हो तो दाना, खली और नमक की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए, जिससे गाय को आवश्यक प्रोटीन, वसा तथा खनिज-लवण मिलते जायँ । भूसे की सानी में पानी भी अधिक डालना चाहिए । कैलशियम की पूर्ति के लिए चूना या नुसखा विधि १, या २, का देना लाभदायी होगा । (देखो पृष्ठ संख्या–२०९ ।)

जहाँ तक हो सके, भूसे के साथ हरियाली अवश्य मिलानी चाहिए । सूखे-चारे की ख़ुराक में दालों के पौधों का सूखा-भूसा, समस्त चारे के वज़न का कम से कम $\frac{1}{6}$ भाग, तो ज़रूर ही मिला देना चाहिए । जैसे—ऽ७। वज़न का सूखा-चारा खिलाना हो, तो लगभग ऽ१। दाल के पौधों का सूखा-भूसा और ऽ६ गेहूँ या जौ का भूसा मिलाये । दालों के हरे-पौधे अधिक गुणकारी होते हैं । भूसे के साथ कुछ ज़्यादा नमक देना होगा, ताकि खनिज-लवणों की विशेष-कमी न होने पाये ।

हर ख़ुराक में भूसे का ज़्यादा से ज़्यादा $\frac{1}{4}$ अंश और हरे-चारे का [illegible] अंश अच्छा रहता है । भूसे के साथ उसका $\frac{1}{4}$ भाग दाल का भूसा मिला दे । जैसे :–

ऽ७।। वज़न का कुल चारा देना हो, तो उसमें :—

ऽ६ गेहूँ या जौ का भूसा और

ऽ१।। दाल के पौधों का भूसा, या ऽ१।।×ऽ४=ऽ६ दाल के हरे-पौधों को मिलाकर देना चाहिए ।

हरे-चारे का विश्लेषण—चारे में हरियाली का जितना अधिक अंश हो, उतना ही अच्छा है । हरे-पौधों की फ़सल की अवस्था, जाति और तासीर का ख्याल रखकर सावधानी से संतुलन करने पर ही केवल मात्र-हरा-चारा खिलाना लाभदायक हो सकता है ।

पोषक और सर्वोत्तम हरा-चारा वह है, जो पौधों में नरम बीजों के अच्छी तरह से भर आनेपर,

किन्तु तन्तुयुक्त अंश के कड़े पड़ने एवं सूखकर पकने के पूर्व ही, काट लिया गया हो। इस तरह ठीक समय पर काटे गये चारे में जल, प्रोटीन, वसा, तन्तु तथा विटामिन आदि अच्छी मात्रा में होते हैं और साथ ही कार्बोहाइड्रेट्स भी काफ़ी रहते हैं। अतएव ऐसे कोमल और तैयार सुपाच्य हरे-चारे को खिलाने के बाद गाय के लिए और दाना-खली देने की ज़रूरत न रहेगी। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पौधों के गुण भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

हरे-चारे में पनीला अंश अधिक होता है, जो सहज ही में पच जाता है। हरा-चारा सूखे-भूसे से तादाद और वज़न में ज़्यादा खिलाना पड़ता है, क्योंकि पानी के सूखने पर उसका ३/४ या २/३ वज़न घट जाता है और ठोस पदार्थों के कम पड़ने के साथ ही, उसमें पोषक तत्त्व भी कम रह जाते हैं। इसीलिए हरा-चारा ज़्यादा वज़न में देना पड़ता है।

जो पशु चरने के लिए खुली हवा या धूप में नहीं जा पाते, तथा बन्द शाला में ही बँधे रहते हैं, उन्हें विटामिन "डी" नहीं मिलता। हरे-चारे में विटामिन "डी" नहीं होता, किन्तु सूखे-चारे में यह विटामिन काफ़ी होता है। धूप में घूमने से भी पशु के शरीर में विटामिन "डी" का संचार हो जाता है। खुराक में यह भी एक आवश्यक तत्त्व है, अतएव जो पशु शाला में बँधे रहते हैं, उन्हें कम से कम २५% सूखा-चारा ज़रूर खिलाना चाहिए। जो पशु धूप में चरने जाते हैं, उन्हें केवल हरा-चारा खिलाना भी लाभप्रद है, क्योंकि उन्हें हरियाली से प्रधान-विटामिन "ए" मिल जाता है, और धूप में घूमने से उनमें विटामिन "डी" की कमी नहीं होने पाती।

कन्द और साइलेज-खत्ते की चरी, घास आदि सब चीज़ें हरे-चारे के अन्तर्गत मानी जाती हैं। अतः इनके खिलाने की मात्रा हरे-चारे के निर्ख से लगा लेनी चाहिए। यह निर्ख सूखे-भूसे से प्रायः तीनगुना अधिक होता है।

गोचर-भूमि वही उत्तम होती है, जिसपर दूब, बरसीम, लूसर्न या दाल के पौधे ठीक तौर पर पैदा किये गये हों। इस भूमि पर भरपूर चरने के बाद पशु को शाला में अन्य दाने-चारे की ज़रूरत न रहेगी। यदि उसे और चारा-दाना खिलाना हो, तो पूर्व-लिखित नियम के निर्ख से आधे-वज़न का चारा-दाना दे, क्योंकि पशु बाक़ी आधे चारे-दाने के अंश का पोषण चरने पर प्रायः पा चुका है।

ऐसी विधिवत् तैयार की गयी गोचर-भूमि में चरने के बाद पशु को कम चारा देना होगा, और साथ ही वह अधिक स्वस्थ रहेगा। अतएव गोचर-भूमि से आर्थिक लाभ भी होता है।

कच्चे हरे-पौधे में पानी का अंश ७५% से ८५% तक सम्भव है, इस कारण अकेला इतना कच्चा हरा-चारा पशु को नहीं खिलाना चाहिए, क्योंकि उसे पर्याप्त पोषण प्राप्त करने के लिए बहुत ज़्यादा तादाद में ऐसा चारा खाना पड़ेगा और इतना ज़्यादा चारा खाना उसकी प्रकृति के विरुद्ध होगा।

निम्नलिखित हिसाब के कच्चे-चारे में केवल १५ % ठोस पदार्थ होने के कारण इसे ६ से गुणा किया गया है। यह ऽ७॥ सूखे-वज़न के बराबर चारा है।

५०% कच्ची हरी-नीरन और ५० % सूखा-भूसा

ऽ३। भूसा, गेहूँ या जौ का;

ऽ।।। भूसा, दाल के पौधों का;

ऽ३।।।×६=।।ऽ२।। कच्ची हरी-नीरन;

ऽ१ दाना या ऽ१।। चूनी-चोकर;

ऽ१ खली, देशी-घानी की; ऽ१। या ऽ१।। कारखाने की;

ऽ- नमक

यह ख़ुराक अर्थात् ।।ऽ६।। चारा और ऽ२ या ऽ२।। दाना-खली पशु खा भी सकता है, किन्तु इससे पेचिश होने का डर बना रहता है।

यदि खुराक में इतनी कच्ची-नीरन समस्त चारे के ७५ % के हिसाब से दी जाय, तो सारी ख़ुराक का वज़न लगभग ।।।ऽ६ हो जायगा। इतनी ज़्यादा ख़ुराक गाय कभी न खा पायेगी।

अतः पशु को वही हरा-चारा देना अच्छा है, जिसमें कम से कम २५ % ठोस वज़न हो।

हरा-चारा ख़ासकर दूधवाली गायों को तो ज़रूर ही देना चाहिए, क्योंकि दूध में विटामिन 'ए' और कैलशियम आदि तत्त्व बहुत रहते हैं, जिनकी पूर्ति इन हरे-चारों से हो जायगी, अर्थात् जो सूखे-भूसे के वज़न से चौगुनी ज्यादा दी जाय।

हरे-चारों में ज्वार की चरी, मक्के की करबी, साइलेज, गाजर या मैंगोल्ड के कन्द और लूसर्न या बरसीम आदि की पोषक सामग्री हो, तो दाने एवं खनिज-लवण की मात्रा कम कर देनी चाहिए। किन्तु पर्याप्त प्रोटीन पहुँचाने के लिए थोड़ी-सी खली देनी होगी।

यदि दाल के हरे-पौधे भी मिला लिये जायँ, तो पशु की पोषक ख़ुराक में दाने-खली की बिलकुल ज़रूरत न पड़ेगी। उत्पादक-ख़ुराक के लिए अधिक दाना-खली अवश्य देना होगा, किन्तु यदि उपर्युक्त श्रेष्ठजाति के हरे-चारों की मात्रा बढ़ा दी जाय, तो उत्पादक-ख़ुराक वाला दाना-खली भी आधा कर दिया जा सकता है।

खली का विश्लेषण—अच्छे क़िस्म के भरपेट हरे-चारे देने के बाद पशु को खली से प्रोटीन पहुँचाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, किन्तु साधारणतया केवल चारों से ही पर्याप्त प्रोटीन नहीं मिल पाता, अतः खली का देना ठीक है।

खली चारे के वज़न के $\frac{1}{12}$वें अंश में पशु को खिलानी चाहिए, अर्थात् ऽ७।। ठोस-वज़न वाले चारे के साथ ऽ।।≈ या ऽ।।। खली दे।

देशी-घानी की पेरी गयी खली में तेल का अंश ज़्यादा रहता है। इस कारण यह खली कार-ख़ाने की पेरी गयी खली से जानवरों को खिलाने के लिए ज़्यादा पोषक होती है। जब इस पुस्तक में खली का वर्णन आये, तो उसे देशी-घानी में पेरी गयी खली समझना चाहिए। कारख़ानों में पेरी गयी खली इस मात्रा से डेढ़-गुनी देनी चाहिए।

चार या पाँच महीने की गाभिन गाय को खली देना बन्द कर दे, परन्तु गाय यदि विशेष-दुबली हो और प्रोटीन की ज़रूरत हो, तो मौसम और खली की जाति का ख्याल करके उसे इसके द्वारा पोषण पहुँचाना चाहिए।

जाड़ों में सरसों, लाही व मूंगफली और बिनौलों की खली दे । गर्मियों में अलसी, तिल या नारियल की ठण्डी खलियों का देना लाभदायक होता है ।

नमक——ख़ून को साफ़ करता और पाचन-शक्ति को बढ़ाता है, अतः गाय के सामने नमक की चट्टान रख दे; इससे ख़ुराक में सम्भव खनिज-लवणों की कमी दूर हो जायगी । सानी में ऽ०॥ या ऽ– साँभर-नमक का मिला देना ठीक है ।

दाने का विश्लेषण——दिन भर हरी दूब, दाल के पौधों, बरसीम और लूसर्न आदि घासों को भरपेट चरकर यदि गाय सन्तुष्ट हो गयी हो, तो उसे शाला में फिर दाने व चारे की आवश्यकता न पड़ेगी । ख़ासकर बरसीम, लूसर्न, उर्द, मूंग और मसूर के फ़सलवाले खेतों में चरने के बाद उसे दाना नहीं देना पड़ेगा, क्योंकि इन पौधों में दाने का अंश काफ़ी रहता है, किन्तु इस योग्य गोचर-भूमि बहुत कम तैयार की जाती है, अतः कुछ दाना भी पशु को अवश्य देना चाहिए ।

दाने की जाति बढ़िया हो, तो कम-दाने की ज़रूरत पड़ेगी । अच्छी जाति के सम्पूर्ण-शक्तिवाले अन्न——यथा गेहूँ या जौ का दलिया और चने आदि——का दाना कम तादाद में देना होगा, किन्तु वह चूनी-चोकर, जिसमें से कुछ दाल निकाल ली गयी हो, अथवा हल्के क़िस्म के अनाज का दाना, ज़्यादा मात्रा में देना पड़ेगा; क्योंकि उसमें पोषक-तत्त्व कम रह जाते हैं । आम तौर पर दाना चारे के वज़न के १/६ अंश में दिया जाता है; जैसे——ऽ७॥ चारे के साथ ऽ१। दाना दे । यह मात्रा चारे तथा दाने की जाति के अनुसार कम-ज़्यादा की जा सकती है । कुछ लोग जानवर को उसके वज़न का १/४% दाना देते हैं अर्थात् इतने ही——ऽ७॥——चारे के साथ ऽ१ दाना भी देते हैं ।

गेहूँ के चोकर में खनिज एवं पोषक तत्त्व काफ़ी रहते हैं, अतएव यदि गेहूँ का चोकर दिया जाय, तो उसे उपयुक्त तौल में देना चाहिए; बहुत अधिक मात्रा में नहीं, क्योंकि यह रेचक होता है ।

सड़े-गले चारे या ख़राब-जाति के दाने को एक सुपोषित गाय कभी न खायगी, परन्तु भूख से व्यथित गाय जो कुछ भी पा जायगी वही खा लेगी । सड़ा और गाँठें पड़ा हुआ आटा, चावल और दाना कभी नहीं खिलाना चाहिए । मिट्टी-कूड़ा साफ़ करके दाने को छाँट-फटक कर धूप में ख़ूब सुखा लेना चाहिए ।

तैयार किये हुए दाने को, प्रति-सप्ताह धूप में सुखाने के बाद, सानी के काम में लाना चाहिए । सुखाये हुए दाने में उसके सभी गुण प्रखर रहते हैं, किन्तु सील जाने पर वे कम हो जाते हैं ।

पाचकता——दाने को दलकर देना चाहिए, परन्तु उसे बहुत महीन नहीं करना चाहिए । महीन आटा वग़ैरह, पेट में जम जाने के कारण, नुक़सान करता है । हाथ की चक्की से दला हुआ दाना बहुत अच्छा होता है । मशीनों-द्वारा दले जाने पर अनाज के कुछ पोषक-तत्त्व अधिक गर्मी पाकर नष्ट हो जाते हैं ।

कुछ लोग सूखे-दाने का खिलाना अच्छा मानते हैं, किन्तु चार-पाँच घण्टे पहले से दाना, नमक और खली को भिगोकर देना ही ठीक होता है, क्योंकि भिगोया हुआ दाना फूलकर सुपाच्य एवं स्वादिष्ठ बन जाता है ।

साबुत गेहूँ, चना, मूग, सोयाबीन अथवा बिनौला भिगोकर अंकुर आ जाने पर खिलाये, क्योंकि

इनमें इस प्रकार विटामिन 'ई' विशेषरूप से विकसित हो जाता है, जिससे प्रजनन-शक्ति विकसित होती है।

उबाला हुआ दाना सहज ही में पचनेवाला बन जाता है, किन्तु स्वस्थ पशुओं को कच्चा-दाना देना ही ठीक है। पशु को दाना पच रहा है या नहीं, यह गोबर की परीक्षा करके जाना जा सकता है। यदि पतले गोबर के साथ साबुत दाने निकलें, तो दाना नहीं पचा है ऐसा समझना चाहिए। ऐसी दशामें कुछ दिनों के लिए दाना न देना ही ठीक है।

सुपोषित गाय ब्याने पर प्राकृतिकरूप से ही बच्चे को पालने के लिए अपनी शक्ति-भर दूध देने लगेगी। भरपेट चारा, दाना, खली और नमक खाते रहने से उसकी शक्ति अधिक दिनों तक क़ायम रहेगी, वरना वह शनैः शनैः दूध देना कम कर देगी; क्योंकि बच्चा धीरे-धीरे घास खाने लगेगा और अपनी माँ के दूध पर ही अवलम्बित न रह जायगा।

ख़ुराक सारी की सारी नहीं पचती। विभिन्न प्रकार के चारों में रासायनिक तत्त्व एक ही से हों, तो भी उनकी पाचकता विभिन्न हो सकती है। इसलिए चारे-दाने के रासायनिक पदार्थों के गुण तथा पाचकता का विश्लेषण करके वैज्ञानिकों ने आगे लिखी तालिका बनायी है। इससे ठीक-ख़ुराक का हिसाब सहज ही में लगाया जा सकता है। भारतीय चारे-दाने व खली के पोषक-तत्त्वोंकी तालिका नीचे दी जाती है—

तालिका नं० २

नं०	नाम ख़ुराक	Nutritive ratio पोषक अनुपात	Digestible nutrients per 100 lb. raw material १०० पौंड चारे, दाने तथा खली के पाचक तत्व		
			Digestible Crude protein पाच्य क्रूड प्रोटीन	Starch equivalent शक्तिदायी तत्त्व	Total Digestible Nutrients कुल पाचक व पोषक गुण
१	ज्वारकीअधपकीहरीचरी	१४·७	१·०३	१२·०	१६·२
२	,, पकी ,,	४५·०	०·४६	१३·३	२१·४
३	जौ का हरा पौधा	५·४	२·६३	१३·१	१६·७
४	मक्का की हरी करबी	१३·५	१·१७	१४·५	१६·९
५	बाजरा ,, ,,	१२·९	१·०८	११·६	१४·८
६	बरसीम ,, ,,	३·८	२·५१	१०·०	११·९
७	लूसर्न ,, ,,	२·७	३·२४	९·७	१२·०
८	ग्वार ,, ,,	६·४	१·३३	७·६	९·८

	साइलेज के चारे				
१	ज्वार अधपकी }	२०·८	०·७१	६·६	१५·३
२	,, पकी }				
३	मक्का की चरी	१७·०	१·०२	१५·५	१८·४
४	जौ का पौधा	१४·३	१·२२	११·६	१८·७
५	गेहूँ ,, ,,	५५·५	०·२६	८·७	१४·५
६	स्पियर घास	२७·८	०·५६	१२·०	१५·१
	पेड़ों के पत्तों के चारे				
१	पीपल	४·५	२·१०	७.६	११·५
२	पाकर	७·७	२·१५	१३.०	१८·८
	सूखे चारे				
१	दूब-घास सूखी	५·७	७·२८	३४·८	४६·१
२	ज्वार की चरी अधपकी	२७·७	१·६०	२५·६	४६·१
३	,, ,, पकी	७६·८	०·५८	२४·३	४६·४
४	जौ का भूसा	२५·७	२·१६	४२·२	५७·७
५	स्पियर घास	५०·०	०·८०	२०·५	४०·७
६	मटर का भूसा	३·६	६·३०	२६·६	४५·४
७	चने का भूसा	१४·४	२·१७	१०·१	३३·४
८	पयाल (धान का भूसा)	—	—	२७·१	४४·६
९	गेहूँ का भूसा	—	—	२२·१	४३·४
	दाने				
१	अरहर	४·२	१२·६२	६४·४	७५·६
२	चना	४·७	१२·६०	६६·२	७३·८
३	ग्वार	१·४	२६·०१	६७·५	७०·६
४	सोयाबीन	१·३	३३·७१	७८·१	७६·१
५	मोठ	२·६	१८·६७	६६·५	७२·२
६	मक्का	१०·५	७·४०	८३·५	८४·६
७	ज्वार	१०·२	६·५७	६६·३	७३·६
८	जौ	६·०	७·०७	६४·०	७०·६
९	जई	१०·६	६·६५	७५·५	७७·४
१०	बिनौला	६·१	११·२४	६८·४	८०·०
११	गेहूँ	१३·६	५·६७	७८·५	८३·०
	खलियाँ				
१	सरसों	१·७	२७·६१	७०·४	७४·२
२	अलसी	१·८	२३·२७	६०·६	६४·६
३	तिल	१·०	३८·३४	७५·६	७८·२
४	मूँगफली	०·७	४१·७५	६७·४	७१·०
५	गोला	३·३	१८·६६	७६·३	८१·१
	भूसी				
१	चने की भूसी	—	—	२६·८	५५·२
२	धान का घूटा	८·५	६·०८	५२·०	५८·०
३	गेहूँ का चोकर	५·४	१०·६२	६२·३	६७·४

(The I. C. A. R. mis. bulletin No. 25.)

उपर्युक्त तालिका में ठोस पदार्थों के अंश निम्नलिखित भाँति माने गये हैं :-

क—सूखी चीज़ें—दाना, खली व भूसा आदि ९०%
ख—ज्वार की पकी चरी ४०%
ग—ज्वार की अधपकी चरी ३०%
घ—रसीली साइलेज दाब-घास ३०%
ङ—हरी घास व करबी आदि २५%
च—हरे दालके पौधे—बरसीम, लूसर्न आदि २०%

शक्ति-दायी तत्त्व तथा पाचक प्रोटीन—पचने की क्रिया में, छीज जाने के बाद, खुराक से जो शक्ति पशु को मिलती है, उसे (Starch Equivalent) शक्तिदायी-तत्त्व कहते हैं; अर्थात् यदि १०० पौंड या १।ऽ चारा, पचने के बाद २२ पौंड या ।ऽ१ माँड़ (Starch) के बराबर की गरमी या शक्ति पैदा करता है, तो उस १०० पौंड चारे में २२ पौंड शक्तिदायी तत्त्व हैं, ऐसा कहा जायगा ।

प्रोटीन-नामक तत्त्व शरीर के अवयवों की रक्षा और निर्माण करने के लिए अति-आवश्यक हैं । खनिज-लवणों में कैलशियम तथा फ़ासफ़ोरस प्रधान हैं । विटामिन भी ज़रूरी हैं, किन्तु आमतौर पर पाचक प्रोटीनों तथा शक्तिदायी तत्त्वों की मात्रा को देखकर खुराक नियत कर ली जाती है । उमर तथा काम करने के हिसाब से पशु के लिए विभिन्न अनुपात में प्रोटीन और शक्तिदायी तत्त्व लगते हैं ।

बच्चों को संकीर्ण-अनुपात (Narrow ratio) प्रोटीन १ : ४ शक्तिदायी तत्त्व
प्रौढ़ को मध्यम-अनुपात (Medium ratio) ,, १ : ५ ,, ,,
बड़ों को विस्तृत-अनुपात (Wide ratio) ,, १ : ८ ,, ,,

वज़न के हिसाब से पशु के पोषण के लिए प्रतिदिन के पाचक प्रोटीनों तथा शक्ति-दायी-तत्त्वों के अनुपात जानने की तालिका नीचे दी जाती है—

तालिका नं० ३

वज़न पशु का	पाचक प्रोटीन, पौंड में	शक्तिदायी तत्त्व अर्थात् पाचक कार्बोहाइड्रेट, पौंड में
५०० पौंड अर्थात् ६।ऽ	०·३३८	३·०५
६०० ,, ,, ७।ऽ	०·३९९	३·५८
७०० ,, ,, ८।।ऽ	०·४५८	४·०९
८०० ,, ,, १०ऽ	०·५१६	४·५९
९०० ,, ,, ११।ऽ	०·५७०	५·०८
१००० ,, ,, १२।।ऽ	०·६२५	५·५७

पोषक तथा उत्पादक खुराक—गाय-बैलों को अपनी शक्ति क़ायम रखकर और पूर्ण रूप से बलवान होकर जीवित रहने के लिए जिस पोषण की ज़रूरत होती है, उसे पोषक-खुराक कहते हैं। यह उन्हें निरन्तर ही मिलनी चाहिए।

दूध देने की शक्ति के लिए गाय को, और काम करने के लिए बैल को, पोषक खुराक के साथ ही, उत्पादक-खुराक भी दी जानी चाहिए। यह दूध अथवा काम के घटने-बढ़ने के साथ ही घटायी-बढ़ायी जाती है। ५ महीने के बाद से गाभिन गाय को गर्भपोषण के लिए गर्भपोषक-खुराक भी दी जानी चाहिए।

दाने-खली की कम से कम और अधिक से अधिक मात्रा:— नियत खुराक में यदि फेर-फार करना हो, तो दाने और खली की निम्नलिखित मात्रा से ज़्यादा अन्तर नहीं करना चाहिए।

कम से कम		ज़्यादा से ज़्यादा
खली	३० %	६० %
दाना चने का	३० %	६० %
चोकर गेहूँ, जौ, अथवा मक्के का	२५ %	५० %
,, चूनी दालों की	२५ %	४० %
दलिया गेहूँ या जौ की (चाहे न भी दे)		२५ % (बढ़ा भी सकते हैं)

खनिज़-लवणों की संभव कमी को दूर करने के लिए नुस्खे :—

निम्नलिखित नुस्ख़ों में से किसी एक को देने से कैलशियम आदि खनिज-लवणों की पूर्ति भली-भाँति हो जायगी। साधारणतया यह नुस्ख़ा १ छटाँक की मात्रा में एक पशु को दे। दूधदेनेवाली गाय को उसको दिये जानेवाले दाने के वज़न का ३% भाग, अर्थात् ५ दाने के साथ २ छटाँक २ तोला यह लवण दे।

नुस्खा विधि पहली (नं. १)		नुस्खा विधि दूसरी (. २)	
५० %	सादा नमक (साँभर)	५० %	हड्डी का तैयार किया हुआ चूरा
२५ %	खड़िया मिट्टी या चाक	२३ %	खड़िया-मिट्टी (चाक)
२५ %	हड्डी का तैयार चूरा	२० %	नमक सादा
१०० %		५ %	गंधक
		२ %	लोहा (Oxide of Iron)
		१०० %	
		४ %	आयोडाइड (Iodide) भी इसमें मिलाया जा सकता है

पोषक खुराक के कुछ उदाहरण—पशु के लिए संतुलित खुराक को नियत करते समय पालक के पास जो चारे-दाने हों, उनका पोषक गुण तालिका (नं०२) में देख लेना चाहिए। पशु के वज़न के हिसाब से उसके लिए उपयुक्त पोषक-तत्वों की आवश्यक मात्रा को भी तालिका (नं०३) में देख ले। फिर इसी अनुपात से पशु की पोषक-खुराक को नियत करले। पोषक-खुराक में उत्पादक-खुराक के लिए आवश्यक अतिरिक्त दाना भी मिला दिया जाया करे, जिसको समयानुसार घटाता-बढ़ाता रहे। प्रायः ३-४ महीने में नये चारे तैयार हो जाते हैं, अतः हर तीसरे महीने भी हिसाब लगा लेना टीक रहता है।

सरलता और सुविधा के ख्याल से पशु की खुराक के कुछ नुस्खे नीचे लिखे जाते हैं। आगे लिखे उदाहरण:—

एक १०ऽ वज़नवाली गाय को प्रतिदिन दोनों समय में दी जानेवाली **पोषक खुराक,** उसके वज़न के २% या २·५% के हिसाब से, इस भाँति समझे।

पशु के वज़न का १ ३/४% या १ ७/८% अर्थात् ऽ७ या ऽ७॥ ठोस वज़न का चारा
,, ,, ,, १/४% अथवा चारे का १/७ अर्थात् ऽ१ या ऽ१। दाना
,, ,, ,, १/८% ,, ,, १/१४ अर्थात् ऽ॥= खली
नमक या खनिज-लवणों वाला नुस्ख़ा नं० १ या २

यह कुल खुराक ऽ८॥≡ या ऽ९।≡ होती है। किसी पशु को कुछ कम और किसी को कुछ ज़्यादा खाने की आदत होती है, अतः उसकी रुचि को देख उपयुक्त पोषक खुराक नियत कर ले।

पशु को साफ पानी हमेशा ही खूब पीने देना चाहिए, लेकिन हरा-चारा खाने के बाद उसे अधिक जल की जरूरत न पड़ेगी।

विधि नं० १

१००% हरा चारा

यदि चारा श्रेष्ठ जाति का और हरा हो, तो उसे ही भरपेट खिलाये। ऐसा चारा देने के बाद पोषक खुराक के लिए दाना और खली देने की कुछ ख़ास ज़रूरत न रहेगी। सामने रखी हुई नमक की चटान चाटकर पशु अपनी रुचि के अनुसार खनिज-लवण ग्रहण कर लेगा। ऐसे १००% हरे-चारे का देना स्वास्थ्यवर्धक एवं सबसे अच्छी खुराक है।

अच्छी तैयार गोचरभूमि हो, तो शाला में ज़्यादा चारा न देना पड़ेगा। १०ऽ वज़नवाले पशु को पोषण के लिए—

ऽ८ × ३= ।ऽ४ हरा चारा दे, जिसमें:—
।ऽ८ ज्वार की हरी दूधर चरी, साइलेज या घास आदि हों;
ऽ२ कंद, गाजर, शलजम आदि;
ऽ४ दाल के हरे पौधे हों।

विधि नं० २

.७५% हरियाली २५% सूखा भूसा
ऽ१।।। भूसा, गेहूँ या जौ का
ऽ५।।।×३= ।ऽ७। प्रथम श्रेणी के अथवा ऽ५।।।×४=।।ऽ३ दूसरी श्रेणी के हरे-चारे
ऽ१।। भूसा, दाल के पौधों का या ऽ।। चूनी-चोकर या ऽ।= दाना चना
ऽ।।। खली (देशी घानी की)
ऽ०।। नमक, हरियाली में खनिज-लवणों का अंश काफी रहता है, अतः सानी में नमक कुछ कम दे।

इस खुराक में हरियाली-द्वारा पशु को काफ़ी पोषण मिल जायगा, अतः दाने-खली की मात्रा कम रक्खी गयी है।

विधि नं० ३

५०% हरियाली ५०% भूसा
ऽ३।।। भूसा, गेहूँ या जौ का
ऽ३।।।×३=।ऽ१। प्रथम श्रेणी के अथवा ऽ३।।।×४= ।ऽ५ दूसरी श्रेणी के हरे चारे
ऽ।।। चूनी चोकर या ऽ।= दाना
ऽ।।। खली (देशी घानी की)
ऽ– नमक

अथवा

ऽ३ भूसा
ऽ३।।।×३= ।ऽ१। प्रथम श्रेणी या ।ऽ५ दूसरी श्रेणी के हरे-चारे
ऽ।।। भूसा, दाल के पौधों का
ऽ।= चूनी चोकर या ऽ। दाना
ऽ।।। खली
ऽ– नमक

विधि नं० ४

हर-एक खुराक में कम से कम २५% तो हरा-चारा होना ही चाहिए। हरियाली अपने विटामिन "ए" आदि गुणों के कारण बहुत ज़रूरी है। हरे-चारे की कमी का पशु पर बुरा असर पड़ता है।

२५% हरियाली ७५% भूसा
ऽ५।।। भूसा गेहूँ
ऽ१।।।×३=ऽ५। प्रथम श्रेणी या ऽ१।।।×४=ऽ७ दूसरी श्रेणी का हरा-चारा
ऽ१। भूसा दाल के पौधों का या ऽ१।×३=ऽ३।।। दाल के हरे पौधे

ऽ।।। खली
ऽ–।। नमक या खनिज-लवणों का तय्यार किया हुआ नुस्खा।

अथवा—

ऽ५ भूसा, गेहूँ या जौ का
ऽ।।। ,, दाल के पौधों का
ऽ१।।।×३=ऽ५। प्रथम श्रेणी या ऽ१।।।×४=ऽ७ दूसरी श्रेणी का हरा-चारा
ऽ१ चूनी-चोकर या ऽ।।। दाना
ऽ१ खली
ऽ–।। नमक या खनिज-लवणों का तैयार किया हुआ नुस्ख़ा।

अथवा—

ऽ४।।। भूसा, गेहूँ या जौ का
ऽ।।। भूसा, दाल के पौधों का
ऽ२×३=ऽ६ प्रथम श्रेणी या ऽ२×४=ऽ८ दूसरी श्रेणी का हरा-चारा
ऽ१ दाना या ऽ१।। चूनी-चोकर
ऽ१ खली
ऽ–।। नमक या खनिज-लवणों का ऽ= नुस्ख़ा।

विधि नं० ५

यदि १००% सूखा भूसा ही देना हो, तो गेहूँ की फसल के प्रकरण में बतायी हुई विधि से भूसे को सोडे से भिगो लेना ठीक होगा।

ऽ६। भूसे में
ऽ१। दाल के पौधों का भूसा
ऽ१। दाना या ऽ१।।। चूनी-चोकर
ऽ१। खली
ऽ= नमक या खनिज-लवणों वाला नुस्ख़ा दे।

दूध देने वाली गाय की उत्पादक-खुराक

गाय अपनी साधारण शक्ति को क़ायम रखने के लिए, खाए हुए चारे-दाने के अलावा, जो अधिक दाना पाती है उसका आधा भाग वह दूध के रूप में परिणत कर देती है। गाय अपनी पूरी शक्ति-भर दूध देने के बाद, और अधिक-दाना खाने पर भी, विशेष दूध न दे पायेगी। ऐसी हालत में ज़्यादा दाना खिलाना लाभदायी न होगा, बल्कि नुक़सान ही करेगा। वह यदि अधिक दाना पचा भी ले, तो भी उसका दूध न बढ़ेगा; केवल उसका मांस और मोटापा ही बढ़ेगा। वह ज़्यादा मोटी हो जाने पर ठीक से पूरा-दूध भी न दे पायेगी, बल्कि कम ही देगी।

एक सेर दूध देने के लिए गाय को उत्पादक-पोषण की इस प्रकार ज़रूरत पड़ेगी:—
पाच्य क्रूड प्रोटीन (Digestible crude Protein) ०·००५ सेर=४ तोला
शक्तिदायी-तत्त्व (Starch Equivalent S. E.) ०·३ सेर=लगभग २४ तोला
कैलशियम १ ग्राम (Gram) = १ माशा के लगभग
फ़ासफ़ोरस ०·८ ग्राम (Gram) = ⅘ माशा के लगभग
इसी के अनुसार १० सेर दूध के लिए अतिरिक्त पोषण की इस भाँति ज़रूरत होगी:—

१० सेर दूध के लिए आवश्यक पोषण	५ सेर चने के दाने में पोषक तत्त्व
पाच्य क्रूड प्रोटीन (D. C. P.) ५ सेर = ८ छटांक	पाच्य क्रूड प्रोटीन ·७ सेर = ६ छटांक
शक्ति दायी तत्त्व (S.E.) ३ सेर = ३ सेर	शक्तिदायी तत्त्व ३·६ सेर = ऽ३॥ =
कैलशियम (Co) १० ग्राम = १० माशे के लगभग	कैलशियम ७·२ ग्राम = ७·२ माशे
फ़ासफ़ोरस (Ph.) ८ ग्राम = ८ माशे के लगभग	फ़ासफ़ोरस ४२ ग्राम = ४२ माशे

अत:, यह स्पष्ट है कि ५ सेर चने के दाने में, १० सेर दूध देने की शक्ति के लिए, काफ़ी पोषण सामग्री है। यद्यपि कैलशियम कम है और फ़ासफ़ोरस ज़्यादा है, तथापि कैलशियम की पूर्ति ½ तोला चूने अथवा १ तोला हड्डी के तैयार किये हुए चूरे को देकर की जा सकती है। फ़ासफ़ोरस की अधिकता से होने वाली हानि नमक देने से कम हो जायगी।

उपर्युक्त कारण-वश दूध की तौल से आधे वज़न का चने का दाना देने का आम रिवाज है। भिन्न-भिन्न दानों की जाति से उनके गुणों का पता लगाकर विभिन्न दानों की ख़ूराक का वज़न लगा लेना चाहिए।

उदाहरण—जितने प्रतिशत हरा-चारा खिलाना हो, उसकी पोषक-खुराक की विधि देखकर उसमें दूध देने की शक्ति के लिए उत्पादक-खुराक को भी जोड़ दे। मान लीजिए—एक १०ऽ वज़न वाली गाय ।ऽ दूध प्रतिदिन देती है। इसके लिए उसे निम्नलिखित पोषण की ज़रूरत पड़ेगी:—

७५% हरियाली और २५% भूसा

ऽ१॥। भूसा, गेहूँ या जौ का
ऽ५॥।×३=।ऽ७। प्रथम श्रेणी का हरा-चारा
ऽ१॥ भूसा, दाल के पौधों का
ऽ५ दाना चना या ऽ४। जौ का या ऽ३॥ चोकर और दलिया गेहूँ का (उत्पादन के लिए अतिरिक्त-पोषण)
ऽ॥। खली
ऽ०॥ नमक+ऽ‒ नमक, अथवा खनिज-लवणों का नुसख़ा ऽ= उत्पादन के लिए, अतिरिक्त पोषण।

यह संतुलित खुराक की एक साधारण विधि है। प्रत्येक गाय के लिए ठीक खुराक, तालिका को देखकर समय-समय पर लगा लेनी चाहिए।

।ऽ दूध देनेवाली गाय को ऽ१।। बिनौले उबाल या भिगो कर प्रतिदिन ठंड के मौसम में इस खुराक के अतिरिक्त दे। ग्वार के दाने से भी दूध में घी का अंश बढ़ जाता है। इन दिनों गाय को ऽ। गुड़ या ऽ।। शीरा भी दिया जाय, तो दूध में मिठास का अंश बढ़ जायगा।

सुपोषित गाय अपनी शक्ति-भर पूरी मात्रा में दूध अधिक दिनों तक देगी और स्वतः भी हृष्ट-पुष्ट बनी रहेगी। ऐसी गाय का दूध अधिक-मक्खनदार, गाढ़ा, मीठा और स्वास्थ्यकारी होगा।

गाभिन गाय की खुराक

गाभिन होने के समय से ब्याने तक गाय को अच्छा पोषण मिलना चाहिए। गाभिन होकर दूध सूख जाने के बाद एक स्वस्थ गाय को अच्छा चारा दिया जाय, तो दाना और खली देने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी; किन्तु कमज़ोर गाय को थोड़ी-सी खली और दाना ज़रूर खिलाना चाहिए। एक स्वस्थ गाय को ब्याने के समय तक अच्छे तथा प्रथम श्रेणी के चारे के अतिरिक्त और किसी चीज़ की ज़रूरत न पड़ेगी। किन्तु ऐसा बढ़िया-चारा आमतौर से नहीं मिल पाता, अत :—

गाभिन होने के पाँच महीने बाद गाय को गर्भ-पोषण के लिए भी थोड़ा-सा दाना अधिक देना लाभदायी होगा। साधारण-जाति के चारे पर रक्खी जानेवाली गाभिन गाय को गर्भ-पोषण के लिए पोषक-खुराक के अतिरिक्त भी दाने का देना ज़रूरी है; क्योंकि वह पोषण पाकर अपने अगले ब्याँत में और ज्यादा बढ़िया दूध देगी, साथ ही वह और उसका बच्चा तन्दुरुस्त बन जायँगे। हर-एक गाय को एक अलग नाँद में, उसके दूध के हिसाब से, दाना खिलाना चाहिए।

ब्याने के १५-२० दिन पहले से गाय को विशेष-अच्छा पोषण मिलना चाहिए, ताकि उसकी शक्ति आगे जाकर प्रसूति-श्रम के कारण क्षीण न होने पाये। उन दिनों उसे गेहूँ के पकाये हुए दलिये में गुड़ मिलाकर, अथवा गेहूँ के चोकर को पानी से सानकर, खिलाना फ़ायदेमन्द होगा चने का दाना भी दिया जा सकता है।

ब्याने के बाद गाय को कम से कम ४८ घण्टे तक तो दाना देना ही नहीं चाहिए। तीन दिन बाद उसे थोड़ा-थोड़ा दाना देना शुरू कर दे। ब्याने के बाद १० दिन से २१ दिन तक गाय अपनी शक्ति भर ज़्यादा से ज़्यादा दूध देने लगेगी। इस कारण इन दिनों भली-भाँति खिलाकर उसकी शक्ति-भर ज़्यादा से ज़्यादा दूध लेकर दाने की खुराक की तौल लगा लेनी चाहिए। जैसे-जैसे उसका दूध बढ़ता जाय, वैसे-वैसे दूध के लिए दिये जानेवाले अतिरिक्त दाने की मात्रा भी बढ़ाते रहना चाहिए। फिर उतना दाना बराबर देते रहने से वह दूध बहुत काफ़ी समय तक देती रहेगी और दूध देना जल्दी कम न करेगी। इसके उपरान्त करीब तीन महीने के बाद दुबारा गाभिन होने पर जब वह दूध देना कम कर दे, तो धीरे-धीरे उत्पादक-खुराक का दाना-खली भी

कम कर देना चाहिए। गर्भ जब ५ महीने का हो जाय, तो उसे पोषक खुराक के साथ ही गर्भ-पोषक खुराक भी देना शुरू कर दे।

बैल के लिए उपयुक्त ख़ुराक—अपनी शक्ति धारण करने के लिए गाय को दी जानेवाली पोषक खुराक के हिसाब के अनुसार ही बैल को भी उसके वज़न का हिसाब करके चारा-दाना एवं खली की अच्छी ख़ुराक भरपेट देनी चाहिए।

साथ ही बैल के परिश्रम का ख्याल रखकर उसे कुछ और भी दाना-खली देना चाहिए। दाने-खली की उत्पादक-ख़ुराक की मात्रा बैल से ज़्यादा काम लेने के दिनों में ज़्यादा, और कम काम लेने के दिनों में कम, कर देनी चाहिए। साधारण-शक्ति धारण करने के लिए दी जानेवाली चारे-दाने एवं खली की ख़ुराक तो उसे बराबर देते रहना चाहिए, किन्तु उत्पादक-ख़ुराक में कमी-बेशी करते रहना ठीक होगा।

गाय को खिलानेयोग्य हर किस्म के चारे-दानें बैल को खिलाये जाते हैं; साथ ही, गाय को न दिये जानेवाले भी कुछ चारे-दाने बैल के लिए हानिकर नहीं होते। बाजरे की हरी करबी, गन्ने के अगौले, उर्द या ज्वार का दाना भी बैल को खिलाया जा सकता है। बैल को बिनौला नहीं खिलाया जाता; क्योंकि उसमें गासीपोल (Gossypol) नामक पदार्थ होते हैं, जो उसे हानि पहुँचाते हैं।

स्मरण रहे—कि पशु को भरपेट खिलाने से पालक को आर्थिक हानि कदापि न होगी। शक्कर तथा चिकनाईवाली ख़ुराक बैल को ज़्यादा देनी चाहिए, क्योंकि उसे प्रोटीन की अपेक्षा कार्बोहाइड्रेट तत्त्वों की ही कहीं-ज़्यादा ज़रूरत पड़ती है।

एक बैल को ६ से ८ घण्टे तक काम करने के लिए उसकी साधारण पोषक-ख़ुराक के अतिरिक्त उतनी ही या ड्योढ़ी मात्रा में अधिक दाना व खली की और ज़रूरत इस भाँति पड़ेगी :—

उदाहरण—एक १२॥ऽ वज़नवाले बैल के लिए पोषक-ख़ुराक :—

,, का $1\frac{3}{4}\%$ =ऽ९।।। ठोस-वज़न वाला चारा (चारों का हेर-फेर पूर्वोक्त विधि से लगा लिया जाय)।

,, का $\frac{1}{4}\%$ =ऽ१। दाना चना

,, का $\frac{1}{4}\%$ =ऽ।।।- खली—देशी घानी की

ऽ=।। नमक

इस पोषक ख़ुराक में ३, ६ या ९ घंटे काम करने के लिए, क्रमशः १, २ या ३ सेर दाना उत्पादक-ख़ुराक के रूप में बढ़ा दिया जाय।

साँड़ की ख़ुराक—साँड़ वह पशु है, जिसकी खिलाई-पिलाई शाला के अन्य सब पशुओं से बढ़ी-चढ़ी होनी चाहिए। गाय-बैलों को दी जानेवाली ख़ुराक उसे अच्छी तरह दी जा सकती है। उसे हरा-चारा और पौष्टिक-जाति का दाना-खली देना चाहिए, किन्तु चिकनाई का अंश ज़्यादा न दे।

साँड़ के वज़न के हिसाब से उसकी ख़ुराक नियत कर लेनी चाहिए, जिससे उसको भूखा न

रहना पड़े। उसे दाना-खली ठीक मात्रा में दे, क्योंकि इसके ज़्यादा खिलाने से वह सुस्त और आलसी हो जायगा। साँड़ को चरने के लिए अवश्य छोड़ना चाहिए। चरने से उसका व्यायाम हो जायगा और वह भली भाँति स्वस्थ रह सकेगा, अन्यथा बँधे-बँधे खाने से वह शिथिल तथा निकम्मा बन जायगा।

साँड़ को गर्मियों में कभी-कभी १०-१२ काली मिर्चें पीसकर ɔ। घी के साथ पिलाना हितकर है।

गाय को पाल-खिलाने[१] के बाद साँड़ को गेहूँ का ɔ।। दलिया और ɔ।। गुड़ मिलाकर खिलाना चाहिए।

साँड़ को दूध के साथ दो अण्डे फेटकर महीने दो महीने में एक बार पिला दिये जायँ, तो वह बलवान् बना रहेगा। उसे प्रोटीन, क्षार तथा विटामिनवाली सुपाच्य-खुराक ही ज़्यादा देनी चाहिए।

जाड़ों में साँड़ को प्रतिदिन अँखुआ-फूटे हुए ɔ।। चनों में नमक मिलाकर खिलाना अच्छा है, क्योंकि विटामिन 'ई' को विशेष-रूप से पाने के कारण उसकी प्रजनन-शक्ति पुष्ट रहेगी।

साँड़ को दिये जाने वाले दाने में मसूर की चूनी का अंश मिलाना अच्छा रहता है। उर्द और अरहर की चूनी-चोकर भी अच्छी चीज़ें हैं।

जाड़ों में ɔ।। उर्द की चूनी-चोकर सहित दाल प्रति-दिन उबालकर १०-१५ दिनों तक उसे खिलाये। इससे उसके बल की वृद्धि होगी।

बाज़ार में से होकर निकलतेवक्त अक्सर लोग साँड़ को जलेबी या गुड़ आदि मिठाइयाँ खिला देते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। इससे उसकी तन्दुरुस्ती और आदत बिगड़ जाती है।

भावी साँड़ की जन्म से ही विशेष-सेवा—

साँड़ बननेवाले बछड़े को तो गाय के ब्याँत भर का दूध भरपेट पिलाये। ऐसा करने से यद्यपि पालक को गाय के इस ब्याँत का दूध कम पाने से हानि होगी, तथापि वह उत्तम, ज्ञात-वंशज एवं बत्तीसो-लक्षणों से युक्त बछड़ा, जब सुपोषित होकर साँड़ बन जायगा, तब उसकी भावी नस्ल ज़्यादा पुष्ट होगी और इससे उत्पन्न उत्कृष्ट बछड़े-बछियों के अधिक मूल्यवान् होने के कारण पालक को यथेष्ट लाभ मिल जायगा।

कोई भी कृत्रिम-ख़ुराक गाय के दूध की बराबरी नहीं कर सकती, अतः बच्चे के लिए प्रवाहित होनेवाला माँ (गाय) का दूध तो साँड़ होनेवाले बछड़े को अवश्य ही पिलाना चाहिए। भर-पेट दूध पीकर वह पूर्णरूपेण विकसित हो सकेगा, निरोग रहेगा, और स्वाभाविक तौर पर अच्छी तरह बाढ़ पायेगा।

इस साँड़ बननेवाले बछड़े को चरने अवश्य भेजे और शाला में उसे दूब आदि का हरा-चारा भी भर-पेट देना चाहिए। पर्याप्त-दूध पीने के बाद उसे दाने-खली की ज़रूरत न पड़ेगी, किन्तु

[१] बरधाना या गाभिन कराना।

६-७ महीने बाद, ज्यों-ज्यों गाय का दूध कम पड़ता जाय, उसे ༄। दाना देना शुरू कर दे और धीरे-धीरे इस मात्रा को बढ़ाता जाय। साल-भर बाद यदि प्रोटीन की ज़रूरत दिखायी दे, तो थोड़ी-सी ,खली भी दे।

जाड़ों में ८-१० दिन के अन्तर से इसे ༄। गुड़ में ༄०।। अजवाइन डालकर औटी पिलाते रहना भी अच्छा है। कभी-कभी ༄।। अलसी या सरसों का तेल पिला देने से उसका पेट साफ़ रहेगा।

गर्मियों में मट्ठे में थोड़ा-सा जौ का मोटा आटा तथा गुड़ मिला कर—यह लस्सी—बड़े बछड़े को पिलाना अच्छा है।

ज्यों-ज्यों भावी साँड़ बड़ा होता जाय, उसकी दाने-खली की मात्रा भी बढ़ाता जाय। २-२।। वर्ष की उम्र के होने पर उसकी खुराक एक पूरे-बैल की खुराक के लगभग हो जायगी। अब इसे भिगोये तथा अँकुराये हुए ༄।। चनों में थोड़ासा नमक मिलाकर खिलाना आरम्भ किया जा सकता है। भावी साँड़ को बारहो-महीने हरे-चारे का देना अच्छा है।

बछड़े और बछियों का वज़न—बछड़े-बछियों का वज़न, यदि पहले महीने में ༄।≈ या ༄।। प्रतिदिन बढ़ता जाय, तो उन्हें सुपोषित समझना चाहिए। बड़ी-नस्ल का बच्चा ༄।।≈ प्रतिदिन भी बढ़ता है। ६ महीने बाद से ही बछड़े ज़्यादा बड़े क़द के और भारी दीखने लगते हैं। उनका वज़न भी बछिया से ज़्यादा हो जाता है।

बच्चे के वज़न को जानने के तीन तरीके :—

१—बछड़े और बछिया को तौलकर देख लिया जाय।

२—प्राय: बच्चे का वज़न गाय के वज़न का ५% होता है। १०༄ वज़नवाली गाय का बच्चा लगभग ।।༄ वज़न का होता है।

३—गाय के वज़न को दुगुना करके उसमें साँड़ के वज़न को जोड़ देने पर जो फल आये उसे ३ से भाग दे दे। इसके पश्चात् उसका ५% लगा ले। यही बछड़े का वजन होगा।

उदाहरण—गाय का वज़न १०༄ × २ = २०༄

साँड़ का वज़न १५༄ = १५༄

३५༄

= ३५༄ ÷ ३ = ११।།༄।– का ५% = ।།༄३

∴ बच्चे का वज़न प्राय: ।།༄३ होगा।

बछड़े-बछियों की ख़ुराक—बचपन से ही बच्चे अच्छी ख़ुराक पाकर ख़ूब बढ़ते हैं और भविष्य में स्वस्थ भी रहते हैं। पैदा होते ही यदि उन्हें गाय का दूध न पीने दिया जाय, तो वे कमज़ोर रह जायँगे। वे जब बड़े होकर घास आदि खाने लगें, तब उन्हें गाय का दूध कम पिलाया जाय, तो कुछ हानि नहीं है; परन्तु उन्हें गाय के दूध से वंचित कर देने पर उनको अलग से दी जाने वाली

ऊपरी ख़ुराक ज़्यादा बढ़ा देनी चाहिए। बछड़े-बछियों को प्रोटीन, क्षार तथा विटामिनवाली चीज़ें ही ज़्यादा देनी चाहिए। शक्कर व चिकनाईवाली कार्बोहाइड्रेट की चीज़ें कम दे।

२-२॥ बरस तक के बच्चों को साइलेज का चारा न दे।

एक बच्चा साधारणतया निम्नलिखित मात्रा में पोषण पाकर अच्छी तरह जीवित रह सकता है। यह ख़ुराक एक १०ऽ वज़नवाली गाय के ।।ऽ वज़न वाले बच्चे के लिए प्रतिदिन की है। ख़ुराक की इस मात्रा में बच्चे की नस्ल और वज़न के हिसाब से हेर-फेर कर लिया जाय।

१-७ दिन—बच्चे को प्रथम सप्ताह में भरपेट दूध दिन में चार-बार पीने दे। इन दिनों का दूध मनुष्यों के लिए उपयोगी नहीं होता, परन्तु बच्चे के लिए अलब्यूमिन की विशेषता के कारण विशेष गुणकारी होता है। बच्चे के दूध पी लेने पर गाय को थोड़ा-थोड़ा दोनों वक्त ज़रूर दुहे। इन सात-दिनों का अच्छा पोषण बच्चे को जीवन भर के लिए स्वस्थ बना देता है।

१-४ सप्ताह-तक की उम्र के बच्चे को माँ का भरपेट दूध दोनों वक्त पहले पी लेने दे, फिर बाद में गाय को दुहे। अब इसे बड़ी उम्र के बछड़े-बछियों के साथ घास चरने भेजे और शाला में हरी-दूब भी इसके सामने रक्खे; क्योंकि अब यह अन्य बच्चों की देखा-देखी दूब जल्दी टूँगने लगेगा।

१-१½ महीने-तक के बच्चे के आगे हरी दूब आदि का चारा ज़रूर रक्खे। वह अब तक घास खाना सीख चुकेगा। अब उसे गाय से २ थन भर अथवा क़रीब ऽ२॥ के दूध भी पी लेने दे।

गाय के दूध को तौलकर उसके एक थन से उतरनेवाले दूध का अन्दाज़ा अच्छी तरह लगाया जा सकता है।

१½-२ महीने-तक के बच्चे को हरी-दूब के अतिरिक्त जौ या ज्वार आदि की नरम चरी की ऽ२ या ऽ३ कुट्टी देना शुरू कर दे। इस कुट्टी में गेहूँ या जौ का ऽ। दाना भिगोकर सानी कर दे, परन्तु खली और नमक अभी न दे। ऽ।।मट्ठे में गेहूँ के ऽ= चोकर, या जौ के ऽ= मोटे आटे, की लस्सी भी कम दूध पीने देने पर बच्चे को दे। दो महीने की उम्र तक बच्चे को गाय का एक थन अथवा ऽ१। दूध दिनभर में पी लेने दे।

२-३ महीने-तक के बच्चे को हरे-चारे के साथ दाल के पौधों की हरियाली या भूसा ¼ अंश का मिलाकर दे। गेहूँ या जौ का ऽ।। महीन दलिया भी सानी में मिला दे। साथ ही ज़रा-सा नमक भी मिला दे। मट्ठे या जौ के आटे की लस्सी का पिलाना लाभदायी होता है। अगर बच्चा कमज़ोर हो, तो थोड़ी-सी खली या तेल दे।

अब उसे गाय का दूध ऽ१ तक पी लेने दे।

३-९ महीने-तक के बच्चे को माँ का थोड़ा-सा दूध और भरपेट-सानी दोनों वक्त में दे। अलसी की खली ऽ। से ऽ।। तक उम्र के साथ-साथ बढ़ाता जाय। यदि अच्छीजाति के प्रथम-श्रेणी वाले चारे दिये जायँगे, तो उसके लिए दाना-खली बढ़ाने की ज़रूरत न पड़ेगी। छोटी उम्र में दूध के बदले महीन-दाना ज़्यादा देकर उसे पोषण पहुँचा दिया जाय, तो बाद में वह यथेष्ट चारा पाकर पुष्ट रहेगा। यदि प्रथम-श्रेणी का चारा न हो, तो ऽ।। दाना देना अच्छा है। जौ के दाने के साथ चने,

मसूर, अरहर आदि का चूनी-चोकर भी मिला कर अब दिया जा सकता है। सानी में थोड़ा-सा साँभर नमक मिला देना ठीक है। चाटने के लिए भी नमक का ढेला सामने रक्खे।

९ महीनों के बाद बच्चे को दूध बिल्कुल न पीने दे, क्योंकि उसकी माँ अब दुबारा ५-६ महीने की गाभिन होगी। अब से लेकर ३ साल तक की उम्र तक उसे चरने के लिए उत्तम गोचरभूमि मिले, तो शाला में सानी की कोई ज़रूरत न रहेगी।

प्रथम श्रेणी का चारा देने के बाद उसे दाना-खली नहीं देना चाहिए। परन्तु चाटने के लिए नमक ज़रूर देना चाहिए। कभी-कभी ʃ। सरसों के तेल में चुटकी-भर हल्दी, नमक और अजवाइन डालकर पिला देना लाभदायी होगा।

अगर चारा साधारण-कोटि का हो, तो बड़े बछड़े-बछियों को कम से कम ʃ। खली और ʃ।। चूनी-चोकर देकर पोषण पहुँचाते रहना चाहिए।

वह पुष्ट एवं बलवान् बैल अथवा दुधारू गाय बनकर अपने पालक को यथेष्ट लाभ पहुँचायेगा।

कृत्रिम पोषण--विदेशी-पद्धति के गोपालक बच्चे को पैदा होते ही गाय के पास से हटा देते हैं। गाय का दूध बच्चे को थन-द्वारा पीने ही नहीं दिया जाता, बल्कि उसे बोतल से दूध और लस्सी आदि पिलाते हैं। यह एक अवाञ्छनीय एवं अप्राकृतिक तरीक़ा है, अतः इसका यहाँ विशेष-विवरण नहीं दिया गया है।

बच्चे को इस प्रकार ऊपर से दूधपिलाने में विशेष-सावधानी रखनी पड़ती है। आदत पड़ जाने पर गाय अपने बच्चे को विना देखे ही दूध देने लगती है। विदेशियों की यह पद्धति हमारे लिए अनुकरण करने योग्य नहीं प्रतीत होती।

विभाग—चार

चिकित्सा-शास्त्र

अध्याय-सूची

विभाग—४

पहला अध्याय

गो-चिकित्सा

गोपालन के लिए सामयिक-चिकित्सा का साधारण ज्ञान हर-एक गोपालक को जरूर होना चाहिए। ज़्यादातर काम में आनेवाली दवाएँ भी गोशाला में सदैव प्रस्तुत रहें, तो सुविधा होगी।

गाय व बैल यदि अच्छी तरह रक्खे जायँ और उन्हें सन्तुलित ख़ुराक दी जाय, तो उनके बीमार होने का भय नहीं रहता। सुपालित पशु सदैव नीरोग रहेंगे, फिर भी कभी-कभी किसी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष कारणवश वे बीमार हो सकते हैं। मनुष्य अपनी तकलीफ़ कह सकता है, परन्तु पशुओं के लक्षणों को देखकर ही उनकी दवा करनी होती है। इस कारण गो-चिकित्सा में अनुभव की आवश्यकता है।

स्मरण रहे कि रोग की परिचर्या करने से यह कहीं अच्छा है कि पहले से ही सावधानी रक्खी जाय और रोग का बचाव करके उसे होने ही न दिया जाय, किन्तु उपचार के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।

रोग के निम्नलिखित कारणों से पशुओं का बचाव सदैव करना चाहिए :—

(१) **चारे-दाने की कमी**—से कमज़ोर हो जाने के कारण पशुओं की स्वाभाविक रोग-निवारक-शक्ति कम हो जाती है।

(२) **सन्तुलित-ख़ुराक का अभाव**—भरपेट खाने पर भी किसी आवश्यक तत्त्व की विशेष कमी-वेशी से पशु क्षीण या मोटे हो जायँगे।

(३) **सड़ा हुआ चारा-दाना**—ऐसी ख़ुराक में पोषण-शक्ति नही रहती, बल्कि उसमें नाना प्रकार के कृमियों के उत्पन्न हो जाने के कारण वह रोगजनक हो जाती है।

(४) **गन्दा पानी**—गड्ढों में बहुत दिनों तक ठहरे हुए जल में आसपास की कई ख़राबियाँ समा-कर इकट्ठी हो जाती है। इस पानी को पीने से पशु को उदर-विकार व अन्य रोग हो जाते हैं।

(५) **सीलन या कूड़ा-भरी शाला**—ऐसी जगह में कई तरह के कीटाणु पैदा हो जाते हैं। वे सूर्य की रोशनी और सफ़ाई न पाकर प्रखर हो जाते हैं।

(६) **बीमार पशुओं का सङ्ग**—ख़ासकर स्पर्शजन्य-रोगवाले पशुओं का साथ होने से रोग के कीटाणु स्वस्थ-पशु पर भी धावा करेंगे।

(७) **डर जाना**—दिल में दहशत बैठ जाने से पशु क्षीण हो जायगा।

(८) **चोट लगना**—आपस में लड़ने, फिसलने, गिरने से शरीर के भीतर या बाहर तकलीफ़ होने लगेगी।

(९) **जल जाना**—इससे चमड़ी पर ज़ख्म हो जायगा और पीड़ा होगी।

(१०) **ज़हरीले पौधों को खा लेना**—कुछ पौधे, जो ज़हरीले होते ही हैं या कुछ समय तक रहते हैं, उन्हें खा लेने से पशुओं के मरने तक की भी सम्भावना हो जाती है।

(११) **विशेष धूप या ठण्ड लगना**—लू, सीलन और ठण्ड लगने से पशु बीमार हो जाते हैं।

(१२) **संक्रमण**—रोगी-पशु की जूठी सानी खाने, जूठा पानी पीने या उसके साथ में रहने से संक्रामक रोग हो जाते हैं।

(१३) **रोग की लापरवाही करना या ग़लत दवा देना**—इससे पशु का रोग बढ़ता जाता है।

(१४) **थक जाना**—राह चलते वक्त बहुत ज्यादा फ़ासला पार करने और चारे-दाने की अव्यवस्था से पशु दुर्बल हो जाते हैं। उन्हें एक दिन में ५–७ कोस से ज्यादा नहीं चलाना चाहिए।

(१५) **बाहरी पशुओं का साथ**—सम्भव है कि बाहर के किसी पशु को कोई स्पर्शजन्य रोग हो, अतः उसे अपनी शाला में एकाएक आने देने से उस रोग के फैलने की सम्भावना हो जाती है।

रोगी पशु की देख-भाल

१—गाय या बैलके बीमार होने पर उसे अन्य पशुओं से हटाकर दूर रखना चाहिए, जिससे रोग के कीटाणु फैलने न पायें। एक पशु को उदास देखकर, सहानुभूति के कारण, दूसरे पशु भी सुस्त पड़ सकते हैं।

२—रोगी पशु का दाना-पानी दूसरे पशुओं के दाना-पानी से न मिलने पाये, अन्यथा रोग फैलने का भय रहेगा।

३—उसके रहने का स्थान अलग हटा हुआ, साफ़-हवादार और ठण्ड एवं वर्षा से रक्षा करने-वाला तथा मच्छर-मक्खी से रहित होना चाहिए। 'धूप' का धुआँ देने, फ़िनायल से शाला धोने, दीवार पर चूना करने, ज़मीन पर पानी न ठहरने देने और नाली में मिट्टी का तेल या फ़िनायल डालने से मच्छर-मक्खी पैदा न हो पायेंगे।

४—रोग की ठीक परीक्षा करने के लिए किसी चतुर ग्वाले अथवा डाक्टर को तुरन्त दिखा लेना चाहिए। शीघ्र उपचार होने से रोग जल्दी ठीक हो जायगा।

५—तेज़ या ज़हरीली दवा को ठीक स्थान पर ही लगाना और नियमित स्थान पर ही उठा कर रखना चाहिए, जिससे कि वह बिखर या गिरकर और-कही न लग जाय।

६—पालक को स्वतः देख-भाल करनी चाहिए, अन्यथा सेवकों की लापरवाही से पशु का रोग बढ़ जायगा।

७—रोगी पशु यदि एक ही करवट बैठा रहे, तो उसे हटाकर दूसरी तरफ़ बिठा दे। एक ही तरफ़ बैठे रहने से दबे अङ्ग कमज़ोर रह जायँगे और खून का बहाव ठीक न हो पाने के कारण घाव (Bedsore) होने का डर रहेगा।
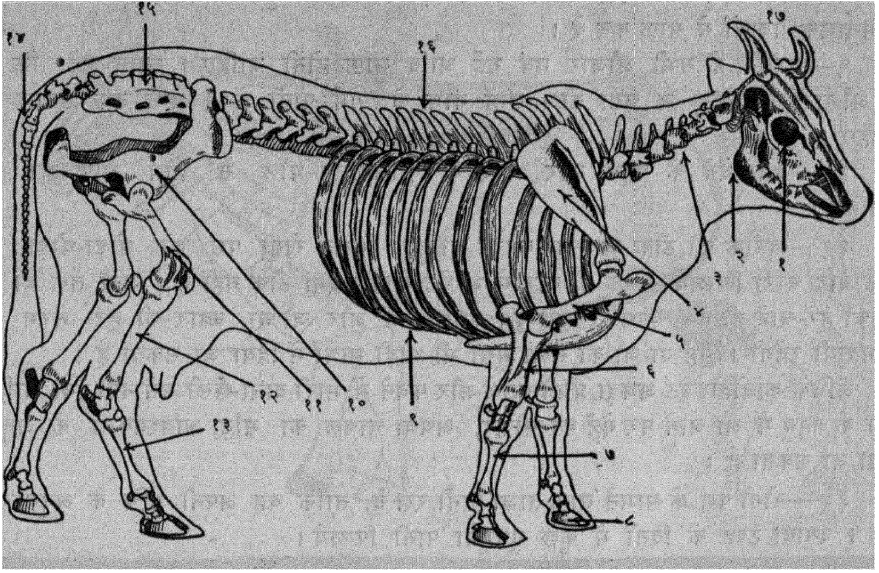
गो का अस्थि-पञ्जर

१. नेत्र-कोटर
२. हन्वस्थि
३. ग्रीवा की कशेरुकाएँ (गर्दन की हड्डियां)
४. स्कन्धास्थि
५. अग्र पाद की ऊर्ध्वास्थि (अगले पैरों की ऊपरी हड्डी)
६. " " " मध्यास्थि (" " बिचली ")
७. " " " अधोस्थि (" " निचली ")
८. खुर
९. पर्शुकाएँ (पसलियां)
१०. नितम्बास्थि (ऐन की हड्डी)
११. ऊर्ध्व जंघास्थि (जांघ की ऊपरी हड्डी)
१२. मध्य " (" " बिचली ")
१३. अधः पादास्थि (पैर की निचली ")
१४. पुच्छ कशेरुकाएँ (पूंछ की हड्डियां)
१५. कटि की अस्थि (कमर " ")
१६. कशेरुकाएँ
१७. सींग

८—रोगी पशु को गर्म रखने के लिए उसके नीचे पुआल बिछा दे और शाला को कृमिनाशक पदार्थों से साफ़ कर दे।

९—बरतने के सभी औज़ार एवं रुई आदि साफ़ होनी चाहिए। ध्यान रहे कि लोहे के औज़ारों पर ज़ङ्ग न चढ़ा हो। उन्हें नीम के गर्म पानी में ½ घण्टे तक उबाल लेना चाहिए।

१०—दवा देने के पहले और बाद में कृमिनाशक-घोल से हाथ साफ़ कर लेना चाहिए।

११—खुराक की ठीक व्यवस्था करनी चाहिए, अर्थात् रोगी पशु को थोड़ा-थोड़ा २-३ घण्टे बाद चारा खिलाये—एक ही बार में भरपेट खुराक देना ठीक नहीं है। जहाँ तक हो सके, उसको हरे-चारे ही दे—खासकर हरी दूब आदि घासें और जौ या ज्वार की हरी नरम चरी लाभदायी रहेगी। गेहूँ या जौ का सूखा भूसा भी थोड़ी मात्रा में दिया जा सकता है।

अधिक कार्बोहाइड्रेट अथवा प्रोटीनवाले और पचने में भारी दाना-खली उसे नहीं देना चाहिए। रोग के क़ाबू में आ जाने पर गेहूँ का चोकर, अथवा चावल का माँड़, आवश्यकता के अनुसार दिया जा सकता है।

१२—रोगी पशु के सामने साफ़ ताज़ा-पानी रख दे, ताकि वह अपनी रुचि के अनुसार पी सके। ज़्यादा ठण्ड के दिनों में कुछ गुनगुना पानी पिलाये।

१३—जानवर को दवा के सिवाय कोई चीज़ ज़बरदस्ती न खिलाये और दवा देते या मरहम वग़ैरह लगाते वक्त उसे ज़्यादा तकलीफ़ न पहुँचाये।

१४—ठीक समय पर दवा देता रहे। रोग के अच्छी तरह दूर न हो जाने तक पशु की विशेष देख-भाल करे।

चिकित्सा के शब्दों की परिभाषा—

साधक—रोग को अच्छा करने के उपाय।

शक्ति-वर्द्धक—पौष्टिक औषध।

उत्तेजक—शरीर की चेतनाशक्ति को बढ़ानेवाली।

कृमि-नाशक—शरीर के भीतरी व बाहरी हानिकर कीड़ों को मारने तथा उनकी पैदावार को रोकनेवाली।

पीड़ा-नाशक—शरीर की तकलीफ़ कम करनेवाली।

संक्रामक—किसी माध्यम के द्वारा नीरोग जानवर को भी लगजाने वाली।

स्पर्शजन्य—परस्पर छूने से स्वस्थ जानवर को भी हो जाने वाली।

विषयुक्त क्रिया—बीमारी पैदा करनेवाले कीटाणु को नष्ट करना।

प्रतिबन्धक—संक्रामक रोगों के रोकने का उपाय।

बन्धक सङ्कोचक—यह दवा दस्त और खून तथा रसम को रोकती है।
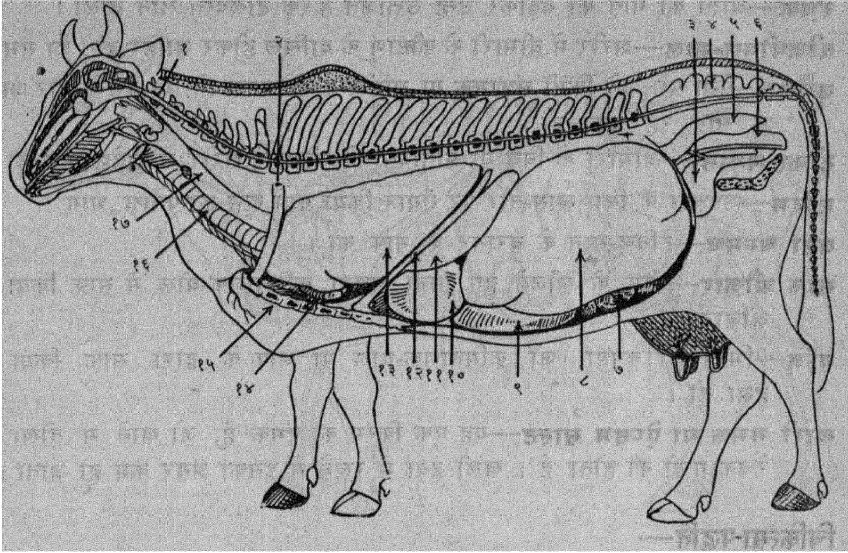
गौ-शरीर के अवयवों का मध्यस्थ काट

१. ग्रीवा की प्रथम कशेरुका
२. प्रथम पर्शुका
३. वस्ति
४. कटि की अस्थि
५. आँत का खण्डांश
६. पेशी खण्ड
७. बड़ी आँत का भाग
८. आमाशय का ऊर्ध्व भाग
९. " " दूसरा "
१०. " " तीसरा "
११. यकृत् का खण्ड
१२. वक्षोदर की मध्यस्था पेशी
१३. फुफ्फुस
१४. हृदय
१५. वक्ष की अस्थि
१६. श्वास-प्रणाली
१७. अन्न-प्रणाली

रेचक—आँतों की गति को बढ़ाकर उन्हें उत्तेजित करके ढीलेदस्त लाने वाली।

बीजपोषण-काल—शरीर में बीमारी के कीटाणु के दाख़िल होकर ज़ाहिर होने का समय।

छुतैला—ऐसा पशु, जो किसी संक्रामक या स्पर्शजन्य रोगवाला हो, या ऐसे बीमार जानवर के साथ रह चुका हो।

टीका लगाना—बीमारी के विष या प्रतिविष को खींचकर शरीर में प्रवेश कराना।

सीरम—उपचार के लिए ख़ास-तौर पर तैयार किया गया ख़ून का पतला भाग।

बड़ा चम्मच—टेबिल-स्पून के बराबर के नाप का।

साफ़ औज़ार—नीम के खौलते हुए पानी अथवा कृमिनाशक-घोल से साफ़ किया हुआ औज़ार।

गॉज़—झिरझिरा कपड़ा, जो कृमिनाशक-घोल या भाप के द्वारा साफ किया गया हुआ हो।

खारी नमक या ऐप्सम साल्ट—यह एक क़िस्म का नमक है, जो खाने में तीखा और रेचक गुणों का होता है। खुली हवा मे रखने से इसका असर कम हो जाता है।

चिकित्सा-पद्धति—

गाय-बैलों का इलाज देशी ढङ्ग से करना चाहिए, क्योंकि देशी दवाएँ सब के लिए सुलभ, सस्ती और गुणकारी होती हैं। साथ ही आधुनिक-खोजों का लाभ भी अवश्य उठाना चाहिए।

भारत में ऐसी कई दवाएँ, जड़ी-बूटी आदि सब जगह उगती हैं जिनका ज्ञान हो, तो पशु का इलाज सहज में ही अच्छी तरह हो जाता है। इस तरह कई बार बड़ी-बड़ी भयंकर बीमारियाँ साधारण मालूम पड़नेवाली दवाइयों से अच्छी हो जाती हैं, जब कि इन्हीं रोगों का विलायती इलाज बड़ा महँगा और कष्टसाध्य हो जाता है। क़ीमती दवाएँ कुछ थोड़े से लोग ही ख़रीद पाते हैं।

कुछ ग्वालों को ऐसे नुसख़े और जड़ी-बूटियाँ मालूम रहती है जिनसे भयंकर, संक्रामक और घातक रोग तक सहज ही में ठीक हो जाते हैं; परन्तु उनके ज्ञान का अभी आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धान नहीं किया गया है।

अज्ञानवश ग़लत-दवा देने, रोग के लक्षण न परखने और तुरन्त इलाज करने में लापरवाही से भयंकर हानि होती है। रोग को भली भाँति पहचान कर ही उसका इलाज फ़ौरन करना चाहिए। इलाज करने में देर करने से रोग बढ़ जायगा और ज्यादा समय लगेगा।

कुछ स्थानों में सरकारी पशु-चिकित्सालय (वेटरनरी-अस्पताल) हैं। वहाँ ले जाने पर पशु का इलाज बिना-पैसा दिये हो सकता है। वे लोग पशु का अच्छी तरह उपचार कर देते है। बीमारी के बढ़ जाने पर पशु को दिखाने से रोग जल्दी ठीक नहीं हो पाता।

आजकल विज्ञान के सहारे शरीर के अंगों की चीर-फाड़, सीरम तथा वैक्सीन आदि तरीक़ों का प्रयोग चला है। जब ज़रूरत हो, इन उपचारों को डाक्टर से करवाना चाहिए।
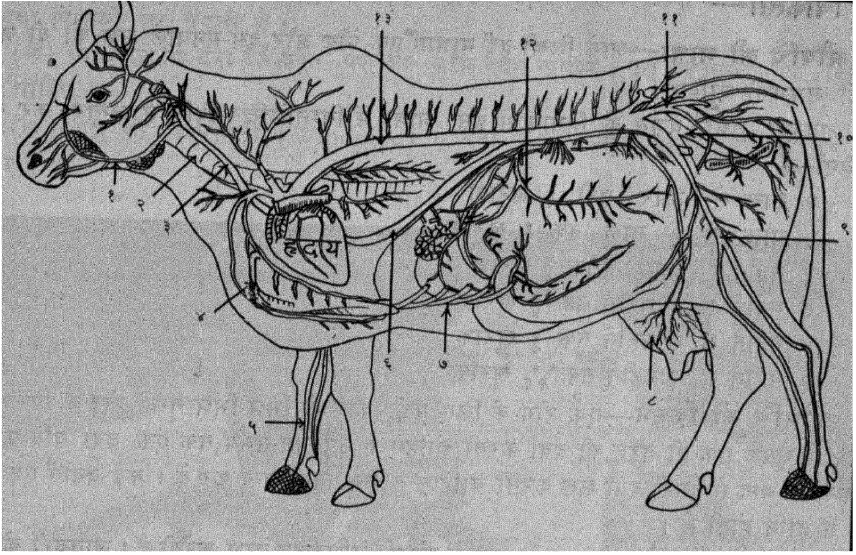
गो-शरीर की रक्त-वाहिनी नाड़ियाँ

१. जबड़े की शिरा
२. श्वास-प्रणाली
३. ग्रीवा की धमनी
४. वक्ष की धमनी
५. अग्र-पाद की धमनी
६. ऊर्ध्वंगा महा-शिरा
७. पर्शुका-खण्ड
८. ऐन की धमनियाँ
९. नितम्ब की बड़ी धमनी
१०. कटि की शिराएँ
११. कटि की धमनी
१२. आमाशय की धमनी
१३. पृष्ठानुगा महा-धमनी

चिकित्सा—

औषधि की मात्रा—आगे लिखी हुई मात्राएं एक प्रौढ़ और दस-मनवाले पशु को दी जाने-वाली समझनी चाहिए।

अवस्था तथा वज़न के हिसाब से इस मात्रा में निम्नलिखित-विधि से अन्तर कर लेना चाहिए:—

२ साल से ऊपर पूरी १ ख़ुराक
२ साल से १ साल तक १/२ ख़ुराक
१२ महीने से ६ महीने तक १/३ ख़ुराक
६ महीने से ४ महीने तक १/४ ख़ुराक
४ महीने से २ महीने तक १/८ ख़ुराक
२ महीने से १ महीने तक १/१६ ख़ुराक

औषधि की क़िस्म—एक रोग के लिए कई प्रकार के भिन्न-भिन्न नुस्खे होते हैं, किन्तु एक समय में केवल एक ही तरह की दवा करनी चाहिए। उपयुक्त-समय तक एक दवा यदि फ़ायदा न करे, तो बाद में दूसरी दवा शुरू करनी चाहिए, लेकिन पहली बन्द कर दे। कई दवाएँ एक साथ देने से हानि होती है।

मनुष्यों को दी जानेवाली दवाएँ जानवरों को भी अधिकतर लाभ करती हैं। जानवरों के लिए दवा की ख़ुराक की मात्रा मनुष्यों की मात्रा से १६ से २० गुना ज़्यादा होती है।

औषधि देने का तरीक़ा—

१—चूर्ण को शीरा या गुड़ के साथ मिलाकर पशु के चाटने के लिए सामने रक्खे, अथवा इस चटनी को उसका मुँह खोलकर उसे चटा दे।

२—रोटी के टुकड़े पर दवा की लुगदी रखकर खिला दे।

३—शीशे की बोतल में दवा भरकर गाय के मुँह में उसे डालकर पिलाना ठीक नहीं है, क्योंकि शीशे के टूट जाने पर पशु को लगने का भय रहता है।

४—एक तरफ गाँठवाले बाँस के टुकड़े को लेकर उसके दूसरी ओर क़लम-सी बना ले, जिसका सिरा गोल हो, क्योंकि नुकीला-सिरा पशु के चुभ जायगा। एक ग्वाला इस साफ़ एवं चिकनी नाल में दवा भरकर हाथ में थामे रहे। दूसरा व्यक्ति पशु के सींगों को दोनों हाथों से पकड़ ले। अब पहला व्यक्ति एक हाथ से पशु के जबड़ों को खोल ले और दूसरे हाथ से नाल को गले तक डाल दे, फिर पशु का सिर पीठ तक उठाकर धीरे-धीरे दवा मुँह में गिराये। एक बार की दवा के निगल जाने के बाद नाल को ज़रा नीची करके फिर दुबारा उठा दे। दवा की पूरी ख़ुराक धीरे-धीरे पिलाये—एकदम नहीं।

पूरे पशु के लिए मोटे और छोटे बच्चों के लिए पतले बाँस की नाल बनानी चाहिए। पशु

को दवा देने की कुप्पी (Drenching bottle) हो, तो बड़ी सुविधा रहेगी। जबड़ा पकड़कर भी दवा पिलायी जा सकती है।

(क), ध्यान रहे कि दवा देते वक़्त पशु की जीभ दबने न पाये। उसे स्वतन्त्रतापूर्वक हिलने देना चाहिए।

(ख) पशु की श्वास-नली (Windpipe) में दवा न पहुँच जाय, वरना इससे वह मर भी सकता है।

दवा देने का सही तरीक़ा

(ग) दवा देते समय पशु को विशेष कष्ट न हो। एक बार दवा-निगलने के बाद उसे कुछ विश्राम करने देना चाहिए।

(घ) खाँसीवाले जानवर को दवा देते समय थोड़ी सी ख़ुराक पिलाने के बाद खाँसी आने पर छोड़ दे। खाँसी के बीच में भी ज़बरदस्ती लगातार दवा पिलाते रहने से जानवर के घबराने, दवा के बिखरने और श्वास की नली में उसके जाने का भय रहता है।

५—तापमान लेने के लिए पशु की पूँछ के नीचे पाखाने की राह में अथवा गुदा में थरमामीटर लगाये। इसे २ मिनट तक लगा रहने देना चाहिए।

पशुओं के लिए ख़ास तौर का बड़ा थरमामीटर होता है, किन्तु मनुष्यों के लिए बरता जाने-

वाला भी काम में लाया जा सकता है। गाय-बैल का साधारण तापमान १०१° डिगरी तक का भी होता है। पर मौसम आदि के कारण इसका कुछ अंश घट-बढ़ भी सकता है। १०२° डिगरी से ऊपर जाने पर निश्चय ही ज्वर मानना चाहिए :—

६—नाड़ी की परीक्षा ४ जगह से ली जाती है :—

(क) जबड़े के नीचे से।

(ख) पूंछ के नीचे से।

(ग-घ) कानों से या आँख की बगल से।

उपर्युक्त स्थानों को अँगूठे तथा अंगुली से दबाने पर नाड़ी की गति का पता चलेगा। नाड़ी की गति १ मिनट में ४५ से ६० तक होती है। इससे विपरीत होने से गाय-बैल को बीमार समझना चाहिए।

७—गाय-बैल १ मिनट में १२ से २५ बार साँस लेते हैं। मुँह के पास हाथ रखकर उसकी साँस की गति को पहचाने।

८—सूखी दवा की अपेक्षा तरल दवा शीघ्रता से फ़ायदा करने और सहूलियत से दी जाने-वाली होती है, क्योंकि गाय-बैल जुगाली करने वाले पशु होने के कारण खायी हुई सूखी दवा को फिर जुगाली करने के लिए अपने मुँह में लायेंगे। यदि दवा कड़ुई हो, तो वे उसे मुँह से बाहर उगल देंगे।

(९) पुल्टिस—अलसी को पीसकर गर्म पानी में मिला लेने के बाद उसे आँचपर रखकर गाढ़ा पका ले। एक मोटे कपड़े पर इस लेप को गर्म-गर्म फैलाकर उस पर दूसरा कपड़ा ढक दे। फिर पतले कपड़े की ओर से पशु के बीमार अङ्ग पर धीरे-धीरे रख दे। यह पुलटिस सर्दी की बीमारी में लगायी जाती है।

गेहूँ के चोकर को गर्म पानी में फेंटकर खूब गाढ़ी सी गर्म लस्सी बनाकर एक पट्टी पर फैला ले। तकलीफ़वाले अङ्ग पर थोड़ा-सा सरसों का तेल मलने के बाद वहाँ इस पुलटिस को गर्म-गर्म रक्खे और बाँध दे।

घाव को कृमि-नाशक द्रव से धोकर उस पर टिंचर-आइडीन के लगाने के बाद चोकर की गर्म पट्टी रक्खे। यह पुलटिस सूजन को कम करती और गर्मी को खींचती है।

(१०) भाप से इलाज करना—उबलते तथा भाप निकलते हुए पानी की बाल्टी में यूकलिप्टस या तारपीन के तेल की २०-३० बूँदें डालकर पशु की नाक के सामने रक्खे। इससे भाप-मिश्रित दवा साँस के साथ शरीर में पहुँचेगी। यह सर्दी, खाँसी और साँस की बीमारियों में फ़ायदेमन्द होती है। भाप बन्द-मकान में दी जाती है।

बर्तन में पानी तथा दवा को डालकर उसको हल्की आँच पर रख दे। उसके मुँह को ढककर एक छेद द्वारा लम्बी नली बाँध दे। इस तरह भाप रबर, लकड़ी या हुक्के की नली के द्वारा बीमार अङ्ग पर डाली जाती है।

(११) शाला में धुआँ करने के लिए नीम की पत्तियों और लकड़ी को खाली कमरे को बन्द करके जला दे। अथवा, टीन पर रक्खी हुई आग में इनकी धूनी डालकर उसका धुआँ कमरे में खूब भर दे। धुएँ के अच्छी तरह से हो जाने पर किवाड़ों को खोल दे। स्मरण रहे—धुआँ करते समय कमरे में कोई पशु न हो, अन्यथा दम-घुटने का भय रहेगा। इस क्रिया से वहाँ की हवा शुद्ध होगी।
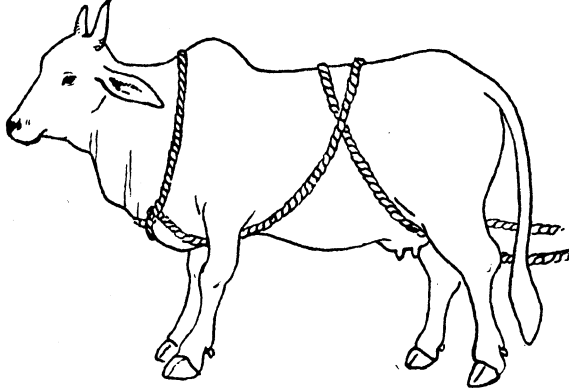
उपचार करते समय गाय को रस्सी से बाँधने का सही तरीका

(१२) **सेंकना**—नमक या नीम की पत्तियों को डालकर गर्म किये गये पानी में कपड़े को भिगोकर निचोड़ ले, फिर गर्म-गर्म भाप निकलती हुई उस पट्टी को बीमार अङ्ग पर रक्खे। इसके ठण्डी होने पर तुरन्त दूसरी गर्म पट्टी रक्खे। इसी प्रकार बदल-बदलकर निचोड़ी हुई गर्म पट्टियों को क्रम से रखता जाय।

यह ध्यान रखना चाहिए कि सेंकते समय सर्दी न लग जाय। सेंकने के बाद ৴। सरसों का तेल ৴= तारपीन का तेल तथा १ तोले कपूर को मिलाकर बीमार अङ्ग पर लगा दे।

(१३) **सूखा सेंक**—कपड़े या रूई के पहल को आँच पर गर्म करके या गर्म रेत को एक थैली में भरकर सेंक दे। रेत बहुत देर तक गर्म बनी रहती है। रबर की बोतल में गर्म-पानी भरकर भी सेंक दिया जाता है।

(१४) **वस्ती या डूश**—गुदा या योनि के द्वारा दवा का पहुँचाना (डूश या एनीमा देना)—चुटकी भर पोटाश परमैंगनेट डालकर या नीम के पत्तों को उबालकर पानी तैयार कर ले। रबर की एक आध इंच मोटी और ७-८ फ़ीट लम्बी नली रक्खे। नली में पानी को पहुँचाने के लिए टीन की कुप्पी रखनी चाहिए। एक बर्तन में तैयार किया हुआ दवा का पानी जानवर से अधिक ऊँचाई पर रक्खे। अब नली के एक सिरे को बर्तन से लगा दे। दूसरे सिरे को नीम या तिल के

तेल से चुपड़कर पशु की गुदा या योनि के भीतर पहुँचा दे और उसे हाथ से दबाये रक्खे। फिर बर्तन का पानी नली में धीरे-धीरे डालता रहे।

(१५) पिचकारी या इंजेक्शन—यह पिचकारी ख़ास तौर पर बनी होती है। इसमें लगी हुई सुई की नोक को पशु के चर्म में घुसेड़ कर उसके द्वारा दवा शरीर की रगों में पहुँचा देते हैं। इस भाँति यह दवा ख़ून की गति से मिलकर बहुत जल्दी असर करती है।

(१६) टीका—पशु की जाँघ पर सुई से गोदकर दवा खाल के नीचे पहुँचायी जाती है।

(१७) फ़स्द खोलना—किसी ख़ास नाड़ी को काटकर उसके द्वारा दूषित रक्त को बाहर निकाल देते हैं।

ध्यान रहे कि टीका या इंजेक्शन किसी अनुभवी व्यक्ति से ही लगवाना चाहिए।

रोगी पशु के साधारण लक्षण—वह जुगाली नहीं करेगा और उदास रहेगा।

१—वह चारा-दाना खाना कम कर देगा या छोड़ देगा।

२—उसका गोबर सख़्त या ज़्यादा पतला और बदबूदार हो सकता है। गोबर का रङ्ग बदल जायगा और मूत्र भी अधिक-गहरे रङ्ग का हो सकता है।

३—उसका मुँह सूखा और सुस्त हो जायगा और वह शान्त एवं स्थिर न रह पायेगा, बल्कि बार-बार उठने-बैठने और चंचल होने लगेगा।

४—उसकी आँखें लाल व घुसीहुई-सी दीखने लगेंगी और उसकी आँख, नाक अथवा कान से कुछ पानी-से तरल पदार्थ का बहना शुरू हो सकता है।

५—वह जल्दी-जल्दी साँस लेने लगेगा।

६—उसका तापमान साधारण तापमान से ज़्यादा हो जायगा।

७—नाड़ी की गति भी साधारण गति से कम या ज़्यादा हो जायगी।

८—गाय दूध देना कम कर देगी।

९—कोई अङ्ग विशेष सूज जायगा और छूने पर वह अङ्ग को सिकोड़ने तथा बचाने लगेगा।

१०—कान गिरे, बाल और थूथन खड़े-से हो जायेंगे।

११—उसके कान ठण्डे पड़ जायँगे।

१२—कान की जड़ के पास का अङ्ग गर्म और सिर ठण्डा भी पड़ सकता है।

ऊपर लिखे लक्षणों में से किसी भी एक लक्षण के दिखायी देने पर पशु की चिकित्सा का शीघ्र ही प्रबन्ध करना चाहिए। ऊपर लिखे लक्षण साधारणतया कई रोगों में दिखायी पड़ सकते हैं। उसको कौनसा ख़ास रोग हो रहा है, इसकी पहचान अलग-अलग रोगों के लक्षणों के अनुसार कर लेनी चाहिए। अनुभव हो जाने पर रोग की पहचान करना मुश्किल नहीं है।

बछड़े, बछिया, गाय, बैल तथा साँड़ सभी के बीमार होने पर इन्हीं लक्षणों को देखकर उन्हें बीमार जाना जा सकता है।

कुछ रोग तो केवल गायों को ही हो सकते हैं, इसी भाँति कुछ रोग केवल बैलों को ही; किन्तु अधिकतर सभी रोग सभी पशुओं को हो सकते हैं।

दूसरा अध्याय

बच्चों के रोग

(१) पेट में कीड़ा पड़ना—खनिज-लवणों की कमी से वे मिट्टी चाटने लगते हैं। यह मिट्टी उनके पेट में जमकर सड़ जाती है और इसी कारण कीड़े पड़ जाते हैं। यही रोग बढ़ जानेपर मृत्यु तक का कारण बन जाता है।

उपचार—(क) बच्चों के मुँह पर सूत की जाली का मुसिक्का बाँध देना चाहिए, जिससे वे गन्दी चीज़ें चाटने न पायें।

(ख) यदि उनके पेट में कीड़े पड़ गये हों, तो ½ या १ तोला पीसा हुआ कबीला, ऽ। दही या ऽ।। मट्ठे में मिलाकर दें।

(२) पेट में संक्रामक जाति के कीड़े पड़ना—यह रोग बड़े पशुओं को भी कभी-कभी हो जाता है, परन्तु अधिकतर छोटे बच्चों को ही होता है।

कारण—अधिक दूध या रोगी गाय का दूध अथवा सड़ा गन्दा पानी पीने, या दाना खाने, या मिट्टी के साथ मक्खी के अंडे चाटने या संक्रमण से यह रोग हो सकता है।

लक्षण—गोबर में इन कीड़ों का पाया जाना, खाँसी के साथ इन कीड़ों का निकलना, पेचिश, बराबर दाँत चबाना, पेट में दरद, नाक और थूथन को दीवार से रगड़ना, मिट्टी चाटना या क्षीण होते जाना।

रोग के कीड़े—यह ख़ासकर ३ प्रकार के होते हैं।

(क) चमूने या तागे-से कीड़े जो ¼ या ½ इंच लम्बे, सफ़ेद और सूत की तरह हों। यह एक जगह जमा हो जाते हैं।

(ख) केंचुए या लम्बे और गोल कीड़े—यह कुछ सफ़ेद, ६ से १२ इंच तक लम्बे, और कम से कम ५-७ एक-साथ रहते हैं।

(ग) फीते की सूरत का कीड़ा—यह ३ इंच से लेकर कई फ़ुट तक लम्बा होता है, प्रायः अकेला ही रहता है।

उपचार—निम्नलिखित चीज़ों को ख़ूब मिलाकर हर तीसरे-चौथे दिन तबतक देता रहे, जबतक कि कीड़े मरकर गोबर के साथ निकलते रहें। कीड़ों के साफ़ हो जाने पर दवा देना बन्द करके खारी नमक गरम पानी में मिलाकर पिलाये। यदि इससे पेट साफ़ न हो, तो ४ छटाँक अलसी का तेल पिलाये और ३-४ दिन बाद फिर से एक बार यही जुलाब दे।

(क) अनन्नास व अमलतास के पत्तों का ½ छटाँक रस दिन में २ बार देने से कीड़े मरकर निकल

आयेंगे। इसको तीन चार दिन बाद एक बार फिर से देकर दूसरे दिन जुलाब से पेट साफ़ कर दे।

(ख) पलाश पापड़ा ६ माशे, तूतिया सब्ज़ १ माशा, पाव भर मट्ठे के साथ मिलाकर २-३ दिन तक पिलाये।

(ग) २ छटाँक चने की भूसी (छिलके) लेकर ऽ।। पानी में शाम को भिगो दे और दूसरे दिन सुबह को यह पानी और मट्ठा मिलाकर पिलाये।

(३) पेट में दूध जमना—पाचनशक्ति की कमी से दूध पच नहीं पाता, बल्कि पेट में जम जाता है।

कारण—दूषित दूध का पीना।

लक्षण—दुर्गन्धवाला और पतला हरा या पीला गोबर करना तथा दूध न पीना।

उपचार—(क) मट्ठा १ सेर, सरसों का तेल २ छटाँक, काला नमक १ तोला, हल्दी ½ तोला, इन सबको मिलाकर पिलाये।

(ख) अमचूर १ छटाँक पानी में भिगोकर सरसों के ½ पाव तेल के साथ मिलाकर दे। अथवा मट्ठे में थोड़ा सा नमक और हल्दी मिलाकर पिलाये।

(ग) आगे लिखे जुलाब के नुस्ख़ों में से कोई भी एक जुलाब दे, या १ तोला डीकामली पीसकर ऽ। मट्ठे के साथ २-३ दिन तक दिन में दो बार पिलाये।

(घ) नीम की छाल का काढ़ा २ या ४ छटाँक की मात्रा में दिन में ३ बार पिलाये।

(४) पेचिश (दस्त का आना)—मल के साथ सफ़ेद या लाल रङ्ग की लसदार आँव का आना।

कारण—सड़ा, दुर्गन्धयुक्त दाना-पानी या संक्रमण।

लक्षण—गोबर ढीला और बार-बार होता है। कभी-कभी उसमें ख़ून भी आने लगता है।

उपचार—(क) लसोड़े के १ पाव पत्ते पीसकर रस निकाल ले और उसे पानी में मिलाकर पिलाये। यह दवा अनुभूत है।

(ख) ½ छटाँक, ईसबगोल को १ छटाँक आँवले के पानी के साथ घोलकर दे।

(ग) दम्मुलख-अखवैन ३ तो० थोड़े से बेल के गूदे के साथ दिन में २-३ बार दिया जाय। यह ख़ून व ऐंठन को तुरन्त रोकता है।

(घ) मोचरस अर्थात् सेमल का गोंद ऽ–, बेल का गूदा ऽ=, चावल का माँड ऽ=, इन सबको मिलाकर दिन में ३ बार ३ ख़ुराक में दे। यह ख़ून को रोकता है।

(ङ) अण्डी का ऽ। तेल पेचिश होते ही दे देने से बहुधा लाभ होगा। इससे आँतों में मरोड़ कम हो जायगी और क़ब्ज़ न रहेगी।

(च) कुछ सौंफ को कच्ची और कुछ भूनकर एक में मिला ले। फिर इसे पीसकर शक्कर मिला दे। यह ऽ= बनाकर थोड़ी-थोड़ी तीन-चार बार खिलाये।

(५) सफ़ेद पेचिश—यह संक्रामक और ३-४ सप्ताह की आयु से ऊपरवाले बच्चों को अक्सर होनेवाला रोग है।

कारण—नाभि के जखम द्वारा बैक्टीरिया के कीटाणुओं का प्रवेश, गन्दी शाला, अधिक या ख़राब दूध का ऊपर से पिलाना।

लक्षण—सफ़ेद या मटमैले रङ्ग का पतला और बदबूदार गोबर होने लगता है। शरीर का दुबला और कमज़ोर होना, कमर झुक जाना, निरन्तर गीले रहने से पूँछ के आसपास फुंसियों का होना। एक बार तापमान ज़्यादा बढ़कर फिर उतर जाना और तबियत का सुस्त पड़ जाना।

उपचार—ब्याने के समय शाला और गाय दोनों को साफ़ रक्खे और बच्चे की नाभि पर कोई कृमिनाशक लेप लगा दे।

(क) लक्षण देखते ही ३-४ बड़े चम्मचों भर अंडी का तेल पिला दे, अथवा नीम के पत्ते डाल कर उबाला हुआ ʃ। पानी पिलाये।

(ख) एक बड़े चम्मच भर अदरक का रस दूध में मिलाकर पिलाये।

(ग) अंडी का तेल ʃ— और ग्लिसरीन (अंग्रेज़ी दवा) एक बड़े चम्मच में मिलाकर रख ले एक छोटे चम्मच की मात्रा में यही ६-६ घंटे बाद दे।

(घ) जौ और कच्चे बेल को उबालकर उसका बना हुआ पानी पिलाये।

(ङ) पोटाश-परमैंगनेट का पानी (एक सेर जल में २ रत्ती) पिलाये या कारबोलिक-एसिड (Carbolic acid) की ४-५ बूँदें एक ग्लास पानी में डालकर पिलाये।

(६) खाँसी—खारमय गन्दा जल पीना, तेज़ या खट्टी चीज़ें खाना, सर्दी-गर्मी लगना या भीगना आदि इसके कारण हैं।

लक्षण—रुक-रुक कर साँस लेना, खाँसना और धाँसने लगना।

उपचार— अधिकतर चाटने की ही दवा दे—पीने की नहीं (क) केले के सूखे पत्ते की राख ¼ या ½ तोला भर, घी ʃ०।।, कच्चा दूध ʃ। के साथ मिलाकर दे।

(ख) बबूल का गोंद २ तोले, दालचीनी ६ माशे, मिलाकर दे।

(ग) मौरेठी २ छटाँक, मदार की जड़ ½ छटाँक, कपूर १ तोला सबको मिलाकर १२ भाग बना ले। एक एक पुड़िया सुबह शाम शहद के साथ दे।

(घ) १ तोला अनार के सूखे छिलकों का चूर्ण दो छटाँक शीरा या शहद के साथ मिलाकर दे।

(ङ) गले पर १ छटाँक तारपीन और ३ छटाँक सरसों का तेल मिलाकर मालिश करके ज़रा-सा सेंक दे।

(च) मौरेठी ६ माशे, काकड़ासिंघी ३ माशे, कपूर ३ माशे, अलसी भुनी हुई २ तोले, कलमीशोरा ३ माशे, इन सबको पीसकर ½ तोला की मात्रा में यह चूरन सुबह और शाम को शहद के साथ चटाये।

(७) क्षीण होते जाना—स्वभाव से ही बच्चे भरपेट ख़ुराक खाकर पनपते जायँगे। अगर वे अच्छी तरह न बढ़ें तो २ कारण हो सकते हैं।

कारण—(१) पेट में अपच और ख़राबी ।
(२) दूध या अन्य पोषक-द्रव्यों का कम मिलना।

उपचार—(क) अपच में पेट साफ़ होने तक ʃ- या ʃ= अण्डी का तेल ३-४ दिन के अन्तर से ४-५ दफा पिलादे और दूध कम पिलाये ।

(ख) कोई हल्का जुलाब दे। पेट साफ़ होने के बाद १ बड़े चम्मच भर चने का निथरा हुआ पानी सुबह-शाम पिलाये।

(ग) पोषण की कमी हो, तो उसकी पूर्ति करे। सबसे उत्तम यह है कि बच्चे को भरपेट दूध पीने दे, फिर किसी भी बाहरी चीज़ की ज़रूरत न रहेगी ।

यदि भरपूर दूध न मिले, तो बच्चे को हरी दूब और हरा नरम चारा भरपेट खिलाये । जौ या गेहूँ के मोटे आटे की लस्सी, पानी या मट्ठे में मिलाकर, उमर के हिसाब से उचित मात्रा में दे, नमक चटाये और उसे ʃ। तेल भी कभी-कभी देकर चिकनाई पहुँचाये। अरहर की दाल ʃ= उबालकर और नमक मिलाकर ६ महीने से बड़े बच्चों को कुछ दिनों तक खिलाना अच्छा है ।

(८) मूत्र के साथ खून आना—

कारण—गन्दे स्थान में बैठने, किसी विषैले कीड़े के काटने, भीतरी शोथ, ज़्यादा भागने, चोट लगने और अपच होते रहने से यह रोग हो जाता है ।

उपचार—(क) कलमीशोरा १/४ से १/२ छटाँक तक, और कच्चा दूध पानी मिलाकर पिलाये, अथवा पानी में जौ उबालकर ठंडा करके पिलाये ।

(ख) गुर्दे पर ठंडे पानी की पट्टी रक्खे ।

(ग) २ छटाँक शीशम के हरे पत्ते पीसकर ʃ।। पानी में घंटा भर तक भिगो दे। उमर के हिसाब से १ से ८ छटाँक तक ऐसा पानी पिलाये । यह पानी ज़्यादा न दे, क्योंकि इससे भूख कम हो जाती है।

(९) पेट में दरद होना—कभी कभी पेट में अचानक दरद होने लगता है।

कारण—भोजन का न पचना, वायुविकार या भारी चीज़ों का अधिक मात्रा में खाना ।

लक्षण—बेचैनी, बार-बार उठना-बैठना, सुस्त हो जाना, मल व मूत्र करने की बार-बार चेष्टा करना, परन्तु उसका ठीक से विसर्जन न होना ।

उपचार—(क) २ तोले तम्बाकू ʃ। पानी में घोल ले। छना हुआ पानी दिन में दो बार पिलाये।

(ख) अजवाइन १ तोला, काला नमक १ तोला, सोंठ १ तोला, इन सब को कूट-पीसकर सुबह-शाम गुनगुने पानी में घोलकर पिलाये ।

(१०) मसूड़े फूलना—बादी पैदा करनेवाले, सड़े-गले एवं निकम्मे चारे के खाने से, भोजन के ठीक न पचने से, किसी दाँत में चोट या कीड़े लगने से मसूड़े फूल जाते हैं ।

लक्षण—गला फूलना, लटकना, राल टपकना, दूध न पीना, गोबर न करना, मसूड़ा सूजना और वहाँ घाव का होना।

उपचार—(क) फिटकरी के पानी से (१ सेर पानी में ३ माशे फिटकरी मिलाकर) ३-४

बार मुंह धोये। (ख) जुलाब का कोई नुस्खा दे। (ग) घी ʃ।, खारी नमक ʃ- मिलाकर पिलाये। (घ) रोगी बच्चे को गाय के पास न जाने दे।

(११) खुजली—

कारण—यह रोग प्रायः गन्दगी, संक्रमण या पोषण की कमी से हो जाता है।

लक्षण—शरीर में दानों का होना, बार-बार शरीर को रगड़ना और रोओं का उठ आना, हाथ फेरने पर शरीर का खुरखुरा मालूम पड़ना।

उपचार—(क) ʃ- लहसुन को ʃ= चने या जौ के आटे में मिलाकर ५ दिन तक खिलाये, अथवा, १ माशा गन्धक और १ तोला खाने का सोडा मिलाकर ५-६ दिन तक सुबह-शाम दे।

(ख) सूखे नीम के पत्तों का १ तोला चूरा १ तोला नमक डालकर चने या जौ के ʃ। आटे में मिलाकर दे।

(ग) मसूर की ʃ- दाल तथा ʃ- सुपारी दोनों ही को जलाकर राख बना ले और ʃ। नीम के तेल में मिलाकर लेप करे।

(घ) २ छटाँक पीली सरसों को पीसकर साबुन के साथ मिलाकर लेप करे, तथा ४-६ घंटे बाद धो डाले।

(ङ) सरसों का तेल ʃ।, और गन्धक ʃ- मिलाकर शरीर पर लेप करे।

(च) ʃ- फिनायल में ʃ॥= सरसों का तेल मिलाकर मालिश करे।

(छ) पीपल के हरे पत्तों को पीसकर सरसों के तेल में मिलाकर लगाये।

पनीली और जलनेवाली खुजली हो, तो थोड़े-से पीपल के पत्ते जला ले। उस राख में तेल मिलाकर लगा दे। चार घंटे बाद नीम के उबले हुए पानी से नहला दे। किसी भी तरह की खुजली को ८ दिन के अन्दर साफ़ करने की यह उम्दा दवा है।

(ज) ʃ- तम्बाकू भिगो व पीसकर खुजली पर उसका लेप करे।

(झ) नीम का तेल भी बहुत लाभकारी होता है।

(ञ) तम्बाकू के पत्तों का चूरा १ छटाँक, गंधक १ छटाँक, कंडे की राख १ छटाँक—इन तीनों को मिलाकर लगाये।

(१२) रुज या जूँ सदृश कृमियों का हो जाना—

कारण—संक्रमण, गन्दगी, न नहलाना, लापरवाही आदि।

लक्षण—शरीर के रोमों पर जूँ के सदृश छोटे-छोटे जीवों का हो जाना।

स्थान को साफ़ करके संक्रमण से बचने के उपाय बरते।

उपचार—(क) भट्ट (भाठ) के पत्ते पानी में उबालकर उस पानी से नहलाये। यह विषैली चीज़ है। अतः इसका पानी आँख और मुँह में न जाने पाये।

(ख) धतूरे के ʃ= रस में २ तोले नमक मिलाकर मलने से बाहरी हर प्रकार के कृमि नष्ट हो जाते हैं। रीठों को उबालकर उसके पानी से नहला देना भी लाभकारी है।

(ग) शरीफ़े की पत्तियाँ डालकर उबाले हुए पानी से दिन में ३ बार धो दे। इससे ३ दिन में ही शरीर साफ़ हो जाता है।

(घ) तम्बाकू के पत्ते उबालकर उस पानी से नहलाये।

(१३) ओदी या अलुप्त नामक कीटाणुओं का पड़ जाना—

कारण—संक्रमण, गन्दगी, न नहलाना, लापरवाही।

लक्षण—रोम गिरने लगते हैं, शरीर लाल हो जाता है, कहीं-कहीं जखम हो जाते हैं तथा पपड़ी-सी बन जाती है।

उपचार—(क) भट्ट के पत्तों के उबाले हुए पानी से नहलाये। (ख) भट्ट के पत्तों को पीसकर शरीर पर लेप कर दे और कुछ देर बाद पानी से नहला दे। (ग) अन्य उपर्युक्त कृमिनाशक उपचार करे।

(१४) आक्षेपक या तूल रोग के कीटाणुओं का शरीर के ऊपरी भाग पर पड़ जाना—

कारण—संक्रमण, गन्दगी आदि।

लक्षण—मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरना, चारों पैर फैला देना और खड़ा करने पर भी खड़ा न हो सकना। यह भयानक रोग है, इसमें बछड़े-बछिया मर भी जाते हैं।

उपचार—(क) ऽ॰ अंडी का तेल माँड़ में मिलाकर दे, या ऽ। सरसों का तेल पिलाकर पहले रोगी का पेट साफ़ करे। इसके बाद ऽ॰ काला नमक और २ तोले बच को चूर्ण बना ऽ॰ गरम पानी में सुबह शाम ४ मात्रा में दे और कृमिनाशक उपर्युक्त कोई दवा भी साथ ही में करे।

(१५) खौरा—मुँह के ऊपरी जबड़े के अगले बीच के भाग में मछली के सिन्ने के अँखिए-जैसे काँटे का हो जाना।

कारण—संक्रमण, गन्दगी, कमपोषण तथा खनिज-लवणों की कमी।

लक्षण—शरीर के रोएँ उड़ जाते हैं, कीटाणु पड़ जाते हैं और शरीर पर पपड़ी सी जम जाती है। खुजली भी पड़ने लगती है।

उपचार—(क) साफ़ चाकू से काँटा छील दे और रोगी को खुली धूप एवं हवा में रक्खे।

(ख) नीम या भट्ट के पानी से नहलाकर तालाब की चिकनी मिट्टी अथवा अलाव की मिट्टी पोत दे, फिर नहला दे। जुलाब के द्वारा पेट साफ़ करके पर्याप्त पोषण दे।

(१६) ठंड लग जाना—सरदी से ठंड लग जाय तो पशु को गरम रक्खे तथा सरसों के तेल में लहसुन की ४ फाँकें और अजवाइन के थोड़े से दाने डालकर गरम करके यह तेल मालिश करे और ४ फाँकें लहसुन की पानी में उबालकर गुनगुना पिलाये, अथवा १ छटाँक देशी शराब २ छटाँक गुनगुने दूध में मिला कर पिलाये।

तीसरा अध्याय

शरीर की ऊपरी साधारण-व्याधियाँ

(१) सूजन और दर्द—

कारण—चोट, सर्दी, गर्मी, या रक्त-विकार।

लक्षण—पशु का वह अंग फूल जायगा और सुर्ख़ पड़ जायगा। वहाँ दर्द होगा और छूने पर वह जगह गर्म-सी मालूम पड़ेगी। रोगी को ज़्यादा बेचैनी और हल्की-सी हरारत भी हो सकती है।

उपचार—चोट की सूजन को, नीम के पत्ते डालकर उबाले हुए, गर्म पानी से धोये तथा सेंके और नीचे लिखी दवाओं में से कोई भी एक दवा लगाये।

(क)—ऽ०॥ हल्दी और ऽ- घी तवे पर भूनकर पुलटिस चढ़ा दे।

(ख)—फुलाया हुआ १ तोला सुहागा तथा ऽ= तिल का तेल अथवा घी मिलाकर लेप कर दे।

(ग)—चोट लगते ही ठण्डे पानी से धो दिया जाय, तो वहाँ ख़ून का संचालन अच्छी तरह से हो जायगा और सूजन ज़्यादा न होने पायगी। साधारण चोट में यह उपचार करना फ़ायदेमन्द है।

(घ)—गेहूँ के चोकर की पुलटिस बाँधे।

(ङ)—आँबा-हल्दी पीसकर जरा से पानी में घोट ले। चूना मिलाकर इसका गर्म-गर्म लेप कर देना बहुत ही फ़ायदेमन्द पाया गया है। इससे जमा हुआ ख़ून फट जाता है, और दर्द तथा सूजन कम हो जाती है।

(च)—तम्बाकू के पत्ते जलाकर राख कर ले। इस २ तोले राख में ऽ- सोया के बीज पीसकर और पानी मिलाकर गर्म-गर्म लेप लगा दे।

उपचार—रक्त-विकार या फोड़ा-फुन्सी के कारण हुई सूजन पर:—

(क) नीम के पत्ते, मकोय तथा आकाशबेल को समभाग में मिलाकर चौगुने पानी में उबाल ले। इस से सेंकने के बाद कोई एक लेप लगा दे।

(ख) २ तोले हल्दी, २ तोले साबुन को कुछ पानी में मिलाकर गर्म करके लेप करे।

(ग) १ तोला गेरू, २ तोले मकोय का रस, मिलाकर गर्म लेप करे।

(घ) १ तोला हल्दी, १ तोला चूने को थोड़े से पानी में पका ले। इसमें ऽ- मकोय और आकाशबेल का रस मिलाकर गर्म-गर्म लेप करे।

अगर सूजन पर लेप तथा सेंक करने से मवाद पड़ने और पकने लग जाय, तो उस फोड़ा-फुंसी में निम्नलिखित इलाज करे :—

कम सूजन पर ठण्डे-पानी की पट्टी रक्खे, अथवा निम्नलिखित दवा मलकर हलका सा खुश्क सेंक करे।

(क) ៛१ आक के पत्तों का रस और ៛। तिल का तेल मिलाकर पकाये। रस के जल जाने पर तेल को छानकर लगाये, फिर सूखा सेंक करे।

सूजन के भीतर मवाद पड़ गया हो, तो आक, पत्थरचट्टा, धतूरा, पोई, गुलाबाँस, राम-तोरई अथवा पीपल के पत्ते (इनमें से किसी एक जाति के पत्ते) घी से चुपड़कर गर्म-गर्म बाँधे। इससे मवाद निकल जायगा।

(ख) ៛। लहसुन पीसकर ៛।। तिल के तेल में खूब पकाये, फिर इसे छानकर मालिश करे। इसपर खुश्क सेंक भी करे।

सूजन अधिक हो, तो अलसी की पुलटिस करे और चार घण्टे रक्खे। जरूरत के अनुसार इसे दिन में २-३ बार बदले। इससे सूजन पक जायगी या बैठ जायगी।

(क) सूजन के होते ही ៛= राई को पीसकर गर्म करके लगाये।

(ख) १ छटाँक लहसुन, २ छटाँक आटा मिलाकर पीसे और पानी मिलाकर गर्म करके पुलटिस चढ़ा दे। इससे सूजन दूर हो जाती है। इसे देर तक रखने से छाला पड़ जायगा। पुलटिस या पलस्तर के अधिक रखने से शरीर लाल पड़ जाय, तो उसे हटाकर तेल लगा दे। खाल उधड़ जाय, तो ៛- घी या मक्खन में ३ माशे महीन पिसा हुआ साँभर नमक मिलाकर लगाये। सूजन से बुखार चढ़ जाय, तो बुखार का भी इलाज करे।

खान-पान—दाल या भारी चारा-दाना न दे।

परिचर्या—मच्छर-मक्खी तथा हवा के झोंके व परिश्रम से बचाये।

(२) रसौली या गूमरी—

कारण—सर्दी-गर्मी हो जाने से होती है।

लक्षण—कोख, पेट अथवा शरीर के किसी भाग पर गेंद की-सी छोटी-बड़ी गोल सूजन हो जाती है। अधिकतर यह दर्द और रुकावट नहीं करती, किन्तु विशेष बढ़ने पर तकलीफ़ देती और पशु को कुरूप बना देती है।

उपचार—(क) नाइट्रिक-एसिड की ४-५ बूँदें २ तोले पानी में मिलाकर लगाये। यह बड़ी तेज़ दवा है, इसलिए इसको सावधानी से बरतना चाहिए।

(ख) ३ भाग पानी और १ भाग पपीते का दूध, मिलाकर काँच की शीशी में रख ले। इस दवा में रूई का फ़ाया भिगोकर गूमरी पर ३-४ दिन तक बाँधे।

(ग) सिरका डालकर ៛- सोंठ पीस ले। इसे गर्म करके लेप कर दे और वहाँ २-३ बार सेंक कर दिया जाय। गूमरी बड़ी हो जाय, तो डाक्टर से चीरा लगवा दे।

(३) मस्सा—

पहचान—चमड़े पर छोटी-छोटी काले रङ्ग की गोलियों का उभर आना। ये कोई ख़ास नुक़सान नहीं पहुँचातीं।

उपचार—काँच या पत्थर के वर्तन में ऽ०॥ चूना और ऽ०॥ सज्जी घोल ले। यह दवा तिनके से मिलाकर ठीक मस्से पर ही लगा दे। ध्यान रहे कि यह शरीर पर और कहीं न लगने पाये। घोड़े के बाल से बाँध देने से भी यह कट जाता है।

(४) फोड़ा-फुन्सी—

कारण—रक्त-विकार, चोट लगना या ज़हरीले कीड़े का काटना।

लक्षण—वह जगह लाल, उठी हुई और दर्द देनेवाली हो जायगी। कभी-कभी मवाद भी भर आ सकता है। मवाद भर जाय, तो चीरा लगवा दे।

उपचार—पशु को जुलाब दे। नीम के गर्म पानी से सेंक करे और इनमें से कोई एक पुलटिस बाँध दे।

(क) प्याज़, गुलाबाँस या कुकरौंदा, अथवा सेंबर (सपर्ण) एवं कचनार की छाल को पीसकर पुलटिस बाँध दे।

(ख) आटा १ तोला, तिल का तेल १ तोला, हल्दी १ माशा, सुहागा १ माशा, सिन्दूर १ माशा, और नीला तूतिया २ रत्ती सब को पीस और मिलाकर गर्म पुलटिस बाँध दे।

(ग) जामुन की छाल, गेरू, नीम और मकोय के पत्ते बराबर ले ले। फिर इनको पीसकर गर्म गर्म लेप कर दे।

(घ) पत्थरचट्टे के पत्ते पीसकर अथवा साबुत पत्तों पर ही घी चुपड़कर गर्म करके लगा दे। स्पिरिट की फुरहरी लगाकर पीसी हुई मुर्दासंखका बुरकना फ़ायदेमन्द है।

(५) घाव—

कारण—चोट लगना, फोड़े का पकना, पैनी चीज़ का चुभना।

उपचार—घाव को कृमिनाशक घोलं जैसे नीम, भट्ट या बबूल की छाल डाल कर पकाये हुए गर्म पानी या पोटाश परमैंगनेट या फ़िनायल के पानी से धो दे। कोई भी विषनाशक दवा इस काम में आ सकती है। यदि औजार बरतना हो, तो चाक़ू, क़ैंची, रुई आदि सभी चीज़ें "साफ़" होनी चाहिए। घाव के ऊपर के बालों को साफ़ कर दे। मरा चमड़ा काट कर मवाद आदि निकालकर लाल चमकती हुई जगह साफ़ कर दे।

(क) घाव को साफ़ करके वहाँ १ छटाँक सरसों का तेल, १ छटाँक तारपीन का तेल, ½ छटाँक कपूर, ⅛ छटाँक फ़िनायल में मिलाकर तीन-चार बार चुपड़ देना चाहिए।

(ख) सुहागा आग पर फुलाकर और उसकी खील पीस कर भरने से भी घाव भर जायगा।

(ग) रेशम को जलाकर उसकी राख घाव में तुरन्त ही भर दे।

(घ)पत्थर का कोयला, खड़िया मिट्टी, फिटकरी और नीला थोथा इन चारों को बराबर लेकर उनका चूर्ण लगाये, या त्रिफला (१ तोला हड़, २ तोला बहेड़ा और ४ तोला आँवला) का चूर्ण घाव में भर दे।

(ङ)घाव बड़ा हो, तो ʃ- नीम का तेल तथा १ तोला मोम मिलाकर लगाये। घाव में कीड़े न पड़ने पायें; यदि पड़ जायँ तो, तिल के तेल में बराबर का तारपीन का तेल अथवा फ़िनायल मिला ले। फिर इस तेल में भिगाये हुए रुई या गॉज के फाहे को—घाव को धोने के बाद—तिनके से अन्दर भर दे। आस-पास भी यही तेल चुपड़ दे। आवश्यकता हो, तो पट्टी बाँध दे।

(च)बनकटी (बनकचरी) अंगूर की बेल के माफ़िक़ होती है। इसकी ५ या ७ पत्तियाँ किसी कपड़े में बाँधकर पशु के सींग या गर्दन में बाँध दे। तीसरे दिन घाव के कीड़े मरकर निकल जायँगे। यह एक प्रचलित उपचार है।

(छ)कीड़े मर जायँ तब, या पड़े ही न हों तभी नीचे लिखी कोई एक दवा बाँध दे।

१——१ तोला कपूर, १ तोला सुहागा, १६ तोले मक्खन या तिल के तेल में मिलाकर लगाये।

२——१ तोला तूतिया, १० तोले राल, २० तोले नीम की पिसी हुई ताज़ी पत्ती, इन सभी को दूध में पकाकर लगाये।

३——सुहागे की खील में चार-गुना तेल मिलाकर लगाये।

४——१ तोला तूतिया, ½ तोला खड़िया मिट्टी, १ तोला लकड़ी का कोयला इन सबको पीसकर कपड़छन कर ले। यह बुकनी घाव पर तेल लगाकर बुरक दे।

(ज)आड़ू या मरुए की पत्ती पीसकर उसकी टिकिया घाव में रखकर ऊपर से मुल्तानी-मिट्टी से लेस देना चाहिए; ताकि घाव ढक जाय। इससे कीड़े मर जायँगे और घाव पर बाहरी कीटाणु भी न बैठ पायेंगे।

(६) हड्डी टूटना, उतरना या मोच का आना—

कारण——फिसलना, दबना या लड़ना, टक्कर लगना।

लक्षण——हड्डी टूटा हुआ अङ्ग हिलडुल न सकेगा। वह टेढ़ा और सख़्त हो जायगा। वह हिस्सा बहुत तेज दर्द करने लगता है।

उपचार——मोच पर ठण्डे पानी की पट्टी रक्खे, अथवा पीपल की हरी छाल उबालकर सेंके। हड्डी उतर जाय, तो किसी जानकार से उसे तुरन्त चढ़वा दे और ठीक होने तक उस अङ्ग को हिलने-डुलने से बचाये। ज़रूरत के माफ़िक़ ख़ुश्क सेंक करे।

हड्डी टूट जाय, तो पशु-चिकित्सक से हड्डी बिठलवाकर बाँस की खपच्चियों में रुई लगाकर सुतली से बाँध दे। हाड़जोड़ी नाम की एक बनस्पति बाँध देने से हड्डी जुड़ जायगी, ऐसा वैद्य लोगों का कहना है। ऐसे पशु को ʃ१ गर्म दूध में २ तोले हल्दी, १ तोला फिटकरी अथवा ʃ- संधा नमक और ʃ= कुकनी मिलाकर ३-४ दिन तक दिन में एक बार खिलाये।

(७) खुरों में फोड़ा-फुन्सी व घाव—

कारण—कंकड़ी या पैनी चीज़ का चुभना और गर्म-रेत या पक्की-सड़क पर चलना।

लक्षण—चलते समय दर्द होना और लँगड़ाना।

उपचार—कूड़े व कील काँटों को निकालकर वहाँ रोग नम्बर ४ तथा ५ में लिखा हुआ इलाज करे। थोड़ा सा कपूर और तारपीन के तेल की कुछ बूँदें तिल के तेल में मिलाले फिर उसमें रुई का फ़ाया भिगोकर घाव में भर दे। पत्थरचट्टा की पत्ती गर्म करके बाँधने से मवाद जल्दी खिच आता है। खुर घिस जायँ तो नाल बँधवा दे। फफोले हो गये हों, तो सेंधा नमक व मक्खन मिलाकर लगाये।

(८) सींग में कीड़े लगना या चोट लगने से टूट जाना—

कारण—गन्दगी, फोड़ा-फुन्सी अथवा चोट लगने या लड़ने से जखम होना।

लक्षण—कीड़ा लगे हुए सींगों को पशु रगड़ता है। ऐसे सींग झुक जाते और हिलने लगते हैं।

उपचार—चोट लगते ही कृमिनाशक घोल से धो दे। साफ़ पानी में फिटकरी घोलकर उसमें कपड़ा भिगोकर पट्टी सींग की जड़ पर रख दे, अथवा ｣- तूतिया महीन पीसकर भर दे। जड़ से सींग टूट गया हो, तो छोटी बेरी के पत्ते पीसकर घाव में भर दे। अथवा सीमेण्ट या चूना-हल्दी मिलाकर भरे और वहाँ नीम के तेल में कपड़ा भिगोकर रक्खे। सींग के ऊपर का खोल उतर गया हो, तो उर्द की पिट्ठी में मनुष्य के सिर के बाल मिलाकर थोप दे और नीम के तेल में भीगा हुआ कपड़ा रक्खे।

मुल्तानी मिट्टी का लेप करके ऊपर से बाल बाँध दे, अथवा ｣= सोंठ, ｣= जटामासी, ｣= बला, ｣= सेंधा नमक, इन सब को ｣२ सेर पानी में औटा कर काढ़ा बनाये। इस काढ़े में ｣॥ सरसों का तेल पानी के जल जाने तक पका कर छान ले। इसे सींगों पर शहद में मिलाकर लगाये।

(९) कान में मवाद पड़ना—

कारण—फोड़ा-फुन्सी का होना या चोट लगना।

लक्षण—कान के आसपास सूजन का होना, पीप निकलना या पशु का कानों को रगड़ने की कोशिश करना।

उपचार—नीम, मकोय और आकसण्ड के पत्ते मिलाकर उबाले हुए पानी से कान सेंक दे। सींक पर रुई लपेटकर उसे इस गर्म पानी में भिगोकर निचोड़ ले और इससे कान का अन्दरी भाग साफ़ कर दे। इसके उपरान्त १ तोला कपूर, १ तोले भुना हुआ सुहागा, और ｣= सरसों का तेल कुछ गर्म करके कान में डाले।

(क) चार फाँक लहसुन ज़रा सी अजवाइन और ｣= सरसों का तेल गर्म करके कान में डाले। यह दवा आज़मायी हुई है।

(ख) आक का तेल कुछ गर्म कर के कान में डाले।

(ग) ʃ= सरसों के तेल में ½ तोला मंजीठ, १ माशा हींग एवं १ माशा सेंधा नमक पका ले और छान कर डाले।

(१०) आँख का खुजलाना या पानी और कीचड़ भर आना—

कारण—गन्दगी होना, कूड़ा पड़ना, विषैली जड़ी-बूटी या मक्खी का लगना।

लक्षण—आँख से पानी या कीचड़ बहता रहेगा और वह सूज भी सकती है।

उपचार—२ माशे बोरिक एसिड या १ माशा फिटकरी अथवा ३ माशे सैंजन के बीज पीसकर ʃ। पानी में घोल और छान ले। इनमें की किसी एक दवा से आँख को धो दे।

सँभाल—यदि आँखें सूज गयी हों, तो पानी में १ तोला कलमीशोरा डालकर पिला दे। धूप, गर्द और मच्छर-मक्खियों से आँखों को बचाना चाहिए।

(११) दाँत में कीड़े लगना, टूटना एवं दर्द होना—

कारण—दाँत के अन्दर खुराक के सड़ने से कीड़े पैदा होकर मसूड़ों को खोखला बना देते हैं। यही सूजकर दर्द करने लगते हैं। चोट लगने से भी दाँत हिल जाते हैं।

उपचार—केले की जड़, धव, पाटला, चिड़चिड़ा और कौरैया को पीसकर यह चूर्ण दाँत में लगाये, अथवा सेंधा नमक और सरसों का तेल मिलाकर मसूड़ों पर मले।

(१२) जीभ पर काँटे या छाले का पड़ना—

कारण—पेट की ख़राबी या खनिज-लवणों की कमी होने से काँटे या छाले पड़ जायँगे। यह कोई संक्रामक रोग तो नहीं है, इसका निश्चय करने के बाद इलाज करे।

उपचार—पशु के सामने सेंधा नमक की सिल चाटने के लिए रक्खे और ख़ुराक में नमक की मात्रा बढ़ा दे। साफ़ औज़ार से काँटों को छिलवा कर हल्दी नमक और तेल मिलाकर उनपर लगा दे।

(क)—जीभ को नीम या फिटकरी के पानी से धोकर घाव पर ʃ– पिपरिया-कत्था व १ तोला इलायची पीसकर बुरका देना फ़ायदेमन्द है।

(१३) गर्दन की नस का चढ़ जाना—

कारण—लड़ते या भागते समय झटका लगने पर पशु अच्छी तरह गर्दन घुमा और मुँह खोल नहीं पायेगा।

उपचार—ʃ– छटाँक गेरू, ʃ– साबुन और १ तोला कपूर, ʃ।= सरसों के तेल में पकाकर ४-५ दिन तक मालिश करे।

(१४) बावनो या पूँछ पर का घाव—

कारण—खुजली के कीटाणुओं के लगने से चौंरी के बाल उड़ने लगते हैं और वहाँ घाव होने के कारण पूँछ गलकर गिरने लगती है।

उपचार—‌ऽ= सरसों के तेल में ऽ०।। हल्दी मिला कर गर्म करे और उससे घाव को दाग दे।

सलफ़्यूरिक एसिड (Sulphuric Acid)—एक तेज़ क़िस्म की तेज़ाब—की चार-पाँच बूंदें चौड़े मुंह वाले शीशे के बर्तन में डाल दे और इसमें २ तोले पानी मिला दे। चार मिनट तक पूंछ को इस घोल में डुबाने के बाद कपड़े से बाँध दे। यदि इस दवा से फ़ायदा न हो, तो ज़ख़्म के ऊपर से पूंछ काटकर गर्म लोहे से दाग दे। ज़ख़्म के भर जाने तक हर-रोज़ पट्टी बदलकर मरहम लगाये।

(१५) घामड़ा—

कारण—अधिक समय तक धूप में रहना या लू का लग जाना।

लक्षण—तापमान का बढ़ जाना, सुस्त होके कम खाना, और जल्दी-जल्दी साँस लेना।

उपचार—आम की ४ कैरी भूनकर अथवा ऽ= सेवार की पत्ती पीसकर ऽ। कच्ची खाँड़ में घोलकर पिलाये।

(क) ऽ= ज़ीरा पीसकर ऽ।। तेल में मिलाकर भी पिलाया जा सकता है।

(ख) ऽ।। मसूर की दाल में १ तोला नमक मिला और राँधकर खिलाये।

(ग) ऽ। सफ़ेद तिल, अथवा १ तोला मेंहदी, और १० तोला सफ़ेद ज़ीरा, रात भर मिट्टी के कोरे बर्तन में भिगो दे और सबेरे इसे उसी पानी में पीसकर पिला दे।

शीशम व लसोड़ा की ऽ।= पत्ती रात में भिगोकर सबेरे पानी छान ले। इसमें ऽ= सूखे आँवले पीसकर ऽ। कच्ची खाँड़ के साथ पिला दे।

पशु को साँस चलती हो, तो थोड़ी सी कपास कड़ुए तेल में भिगोकर खिलाये।

(१६) आग से जल जाना—

कारण—गर्म उपलों पर पैर पड़ जाने या छप्पर में आग लगने से चमड़ा झुलस जायगा और फफोले पड़ जायँगे।

उपचार—आलू को बिना पानी डाले पीसकर यदि छाले न पड़े हों, तो तुरन्त थोप दे।

(क) आटा लगाकर जली हुई जगह को ढक दे या वहाँ पर साबुन कुचलकर लगा दे।

(ख) चूने के निथरे हुए पानी में अलसी, नारियल या तिल का तेल सम-भाग में मिलाकर फेंटे और लगाये।

(ग) लसोड़े या मेंहदी के पत्ते जलाकर उनकी राख जले हुए स्थान पर छिड़क दे।

(१७) थाटी पर का घाव—

कारण—पशु की थाटी पर बैठ कर कीड़े खाते-खाते कौवे वहाँ का माँस तक भी नोच लेते हैं। यह बढ़ने पर बहुत तकलीफ़ देने लगता है—कभी कभी ख़ून तक आने लगता है।

उपचार—इमली के पत्ते पीस कर घाव में भर दे। इससे यहाँ की चमड़ी नरम पड़ जायगी।

दूसरे दिन नीम के पानी से धोकर घाव खूब साफ़ कर दे। ‌ ∫– तमाखू और ∫– मुर्दाशंख पीस कर नारियल के तेल में मिला कर मलहम बना कर साफ़ किये हुए स्थान पर भर दे। इस प्रकार इमली के पत्ते तथा दवा घाव ठीक होने तक लगाता रहे।

दवा लगानेके बाद बाँस की खपच्चियों की जाली बना कर बाँध देना चाहिये, ताकि कौवे वहाँ फिर से खुरचने न पायें।

चौथा अध्याय

शरीर के भीतरी साधारण रोग

(१) अफरा या पेट-फूलना—

कारण—पचने में भारी ख़ुराक के खाने से बदहज़मी का होना; अथवा सड़नेवाली, कार्बो-हाइड्रेट की चीज़ों का ज़्यादा ख़ाना और वायु का अधिक बढ़ जाना।

लक्षण—रोगी का पेट ढोल-सा फूल जायगा और वह जुगाली, गोबर तथा मूत्र करना बन्द कर देगा। कभी कभी मुँह से झाग भी आने लगते हैं।

उपचार—(क) कोई जुलाब दे, अथवा १ छटाँक राई को पीसकर और गरम पानी में घोल-कर पिलाये। अथवा १ सेर गाजर की काँजी पिलाना भी लाभकारी है।

(ख) ऽ॥ देशी शराब दे, अथवा ऽ= मेथी पीसकर ऽ॥ सरसों या तिल के तेल में घोटकर पिलाये।

(ग) ऽ॥ घी और ऽ= नौसादर मिलाकर दे।

(घ) आम के अचार का मसाले सहित ऽ॥। तेल पिलाये।

(ङ) २ तोले सोंठ पीसकर ऽ॥= सरसों या तिल के तेल में दे।

(च) १ तोला हींग पीसकर ४ तोले तारपीन के तेल और ऽ॥= अलसी के तेल में मिलाकर पिलाये।

(छ) सोंठ, अजवाइन, काला नमक, ज़ीरा, राई और सेंजना की छाल इन सब को ३-३ तोले लेकर पीस ले। इसे १ छटाँक की मात्रा में ऽ॥ पानी में घोलकर गुनगुना करके पिलाये। इसकी कांजी उठी हो, तो वह जल्दी असर करेगी।

(ज) १ तोला सोंठ, १ तोला राई, १ तोला काला नमक, २ तोले अजवाइन इन सब को पीसकर ऽ॥। गुनगुने पानी में मिलाकर पिलाये।

दवा से आराम होता न दिखायी दे, तो साबुन का एनिमा दे और पेट पर गरम पानी का सेंक करे। रोग बढ़ने पर चिकित्सक लोग बायीं तरफ़ की कोख की नस में छेद बना देते हैं, जिससे हवा निकल जाती है और पशु को शीघ्र आराम मिल जाता है।

(२) अपच एवं क़ब्ज़—

लक्षण—रोगी पशु का गोबर बिगड़े हुए रंग का और सख्त या पतला होगा। वह जुगाली करना भी बन्द कर सकता है।

उपचार—दाने-खलीवाली ख़ुराक का देना तुरन्त बन्द कर दे, केवल हरी दूब ही खिलाये और जुलाब की ऊपर लिखी कोई एक दवा दे।

(क)—ऽ। खारी नमक और २ तोले पिसी हुई सोंठ को ऽ।। गरम पानी में मिलाकर दे।

(३) पेट में दरद—

कारण—क़ब्ज़ होने से पाचनक्रिया का बिगड़ जाना और कम पानी पीना।

लक्षण—जुगाली न करना, बेचैन होकर उठना-बैठना और गोबर का ठीक न होना।

उपचार—जुलाब की कोई एक दवा दे।

(क) २ तोले सोंठ और ६ माशे हींग को पीसकर ऽ। गरम पानी के साथ दे।

(ख) २ तोले तम्बाकू और २ छटाँक पुराना गुड़ ऽ। पानी में उबालकर दे।

(४) पेट चलना अर्थात् दस्त लगना—

कारण—बादीवाला कच्चा हरा चारा, रद्दी दाना अथवा अपच।

लक्षण—पशु जुगाली कम कर देगा और उसका गोबर पतला होगा। वह पीठ सिकोड़कर खड़ा होगा।

उपचार—दाना-खली बन्द कर दे, केवल हरी घास खिलाये। अण्डीका ऽ।। तेल दे कर आँतों को साफ़ किया जाय। यदि अधिक पतले दस्त होते हों तो १ छटाँक सौंफ़ भी पीस कर तेल में मिला ले। दोनों वक्त नीचे की कोई एक दवा दे।

(क) २ तोले अजवाइन, ½ तोला कत्था और १ छटाँक ईसबगोल पीस ले और उसे ऽ।। चावल के मांड़ में पिलाये।

(ख) ५ तोले बेलगिरी, १¼ तोले खरिया मिट्टी, ऽ।। पानी में घोल कर दें।

(ग) १ तोला कत्था, १ छटाँक ईसबगोल, १ छटाँक खड़िया मिट्टी, २ माशे अफ़ीम, १ छटाँक बेलगिरी, २ माशे रसौत इन सब की बुकनी करके दिन में दो बार दे।

(घ) १ तोला सौंफ़, १ तोला अजवाइन, १ तोला बड़ी इलायची, ३ तोले चिरायता इन सब की बुकनी, ऽ।। जौ के आटे में मिलाकर, चार दिन तक खिलाये।

(५) आँव पड़ना—

कारण—सड़ी हुई भारी ख़ुराक अथवा ठहरे हुए पोखरों का गन्दा पानी।

लक्षण—गोबर के साथ सफ़ेद चिकनी चीज़ का निकलना।

उपचार—हलका जुलाब या ऽ।। खारी नमक गरम पानी में मिलाकर दे।

(क)—½ सेर तेल पिलाये और १ छटाँक सौंफ़ पीसकर देने के बाद १ छटाँक बेलगिरी,

१ छटाँक ईसबगोल, ऽ१ मांड़ (चावल का) में मिलाकर पिलाये अथवा २ तोले सूखे आँवले, २ तोले शक्कर, ½ तोला सोंठ, ऽ।। पानी में घोलकर दोनों वक्त पिलाये।

(६) ख़ून के दस्त—

कारण—आँव से मिलते-हुए। लक्षण—गोबर के साथ ख़ून का आना।

उपचार—ऽ।। तेल और १ छटाँक सौंफ़ पिलाने के बाद, भंग, कपूर, मेंहदी, सफ़ेद ज़ीरा तथा बेलगिरी बराबर लेकर पीस ले और ऽ= की मात्रा में पानी के साथ पिलाये, अथवा सौंफ़, मेंहदी, सफ़ेद ज़ीरा, बेलगिरी इन सभी चीजोंको एक-एक छटाँक लेकर पीसले फिर यह ऽ= बुकनी ऽ।। मांड़ के साथ दे।

(७) पेट में कीड़े पड़ना—

कारण—आँव के समान। लक्षण—वैसा-ही गोबर बदबूदार हो जायगा, कीड़े भी निकलते हैं।

उपचार—१ तोले नीम की पत्तियाँ और ½ तोला काला नमक पीसकर ½ तोले की मात्रा में दोनों वक्त दे।

(क) १ तोला कबीला, २ तोले गुड़ या ऽ। दही के साथ दे, अथवा १ तोला राई दही के साथ दे।

(ख) ऽ= नमक, ऽ- ज़ीरा, १ तोला बायबिडंग पीसकर ऽ= की मात्रा में दे। इन सभी दवाओं को देने के चार-पाँच दिन बाद ऽ।। तेल पिलाकर पेट साफ़ करना ज़रूरी है।

(ग) २।। तोले पलाश के बीज, ऽ= गुड़ के साथ देने के बाद ऽ।। अंडी का तेल पिलायें। २, ४ बार इस क्रम से दवा देने पर कीड़े निकल जायँगे।

(८) पेशाब का न होना—

कारण—पुट्ठे, मसाने, या गुर्दे की कमज़ोरी, पथरी का होना, गुर्दे या मूत्रनली का सूजजाना, सूखा चारा, कम पानी।

लक्षण—बेचैन होकर बार बार पेशाब की चेष्टा करने पर भी पेशाब का ठीक से न होना तथा उसका रंग लाल, पीला और गाढ़ा होना, बार बार उठना, बैठना, छटपटाना, व मूत्रमार्ग को बार-बार रगड़ना, पेट का फूलना।

उपचार—(क) १ तोला कलमीशोरा, २ तोले धनियाँ, ३ माशे कपूर इन सब का चूर्ण ३ घंटे के अन्तर से दिन में ३ बार पानी के साथ पिलाये।

(ख) नीम या बेरी की पत्तियों को पीसकर जरा-सा नमक डाल यह लुगदी मूत्र-द्वार के चारों तरफ़ लगाये।

(ग) सर्दी के दिनों में गरम-पानी का सेंक करे।

(घ) गर्मी के दिनों में मूत्रनली पर बर्फ़ भी रक्खा जाता है।

(ङ) कलमीशोरे में रुई की बत्ती डुबोकर मूत्रनली में प्रविष्ट करे।

(च) गुर्दे के ऊपर के शरीर को गरम पानी से सेंके या उसपर पलस्तर लगाये।

(९) पेशाब में खून का आना—

कारण—गुर्दे और मसाने की कमज़ोरी या इनमें किसी प्रकार का व्रण, अधिक गर्मी, चोट लगना, ज़हरीली चीज़ का खाना।

लक्षण—मूत्र में आगे या पीछे खून की बूंदें आना, लाल या नीले रंग के मूत्र का आना।

उपचार—पशु को गरम, बादी, क़ब्ज़ की तासीर वाली कोई चीज़ न खिलाये। उसे हरी दूब या शीशम की पत्ती का चारा दे। पानी में कलमीशोरा मिलाकर पिलाये।

(क) ϩ= जौ को पानी में भिगो दे और उस पानी को छानकर पिलाये।

(ख) ϩ। बबूल के पत्ते, व २ तोले हल्दी पीसकर पानी के साथ पिलाये।

(ग) १ तोला फिटकरी पीसकर ϩ।। दूध में पिलाये।

(घ) ϩ। सफ़ेद तिलों को मिट्टी के बर्तन में रातभर भिगोकर प्रातःकाल उन्हें घोट-पीसकर पिलाये या ϩ।। मट्ठा रोज सुबह पिलाये।

(१०) पेशाब टपकते रहना—

कारण—मसाने के मुख पर की गाँठ की सूजन, गुर्दे की कमज़ोरी, पथरी का होना।

लक्षण—रुक-रुककर थोड़ी-थोड़ी पेशाब का टपकते रहना।

उपचार—ठण्डी चीजें खिलाये। पथरी पड़ जाय, तो आपरेशन कराकर निकलवा दे।

(क) मक्के के भुट्टे के ϩ= बाल, ख़रबूज़े के ϩ। छिलके, और १ तोला काली मिर्च पीस और जल में घोलकर सुबह शाम पिलाये।

(ख) खाँड़का शर्बत पिलाये।

(ग) पनीली घास (भरुआ, लिडसी, पनिघसा) खाने को दे।

(घ) ३ माशे यवक्षार ϩ।। पानी में मिलाकर पिलाये।

(ङ) पिचकारी लगाने या शलाका (पेशाब उतारने की सलाई) का प्रयोग किया जा सकता है।

(११) गले में किसी चीज़ का अटकना—

कारण—कड़ी या गोल चीज़ अथवा चारा-दाना जल्दी खाने की वजह से गोला सा बँधकर गले में अटककर मृत्यु का भी कारण हो सकता है।

लक्षण—गले में दर्द होता है, कभी कभी दम भी घुट सकता है।

उपचार—(क) गले के निम्न-भाग में अर्थात् कंधों तक धीरे धीरे मालिश करे और अटकी हुई चीज़ को बाहर निकाल दे।

(ख) नरम बेंत पर कपड़ा लपेटकर गोले को अन्दर ढकेलने की कोशिश करे। फिर ϩ= तिल के तेल में ३ माशे सुहागा मिलाकर पिलाये।

(१२) मुँह में काँटों या छालों का पड़ जाना—

कारण—बदहज़मी, तेज़ या गरम चीज़ का खाना ।

लक्षण—जीभ पर सूजन, मुँह में काँटे और छाले, झाग निकलना, ख़ुराक न खाना ।

उपचार—पहले देख ले कि यह बीमारी कोई छूतवाली बीमारी तो नहीं है और उसके अनुसार ही इलाज करे ।

(क) सबसे पहले कोई जुलाब दे ।

(ख) ३-४ प्याज़ की आँड़ियाँ सुबह के समय खिलाये ।

(ग) नमक और फिटकरी के गरम पानी से मुँह धोकर नमक, हल्दी और तेल मिलाकर मल दे ।

(घ) नीम के पत्तों के उबाले हुए या अन्य किसी कृमिनाशक पानी से चाकू और हाथ साफ़ करके मुँह के काँटे काट दे । फिर समभाग में नमक, हल्दी और तेल लेकर मल दे ।

(ङ) बबूल के पत्ते, नमक, या फिटकरी के पानी से मुँह धोये । सुहागा, कत्था और हल्दी समभाग में लेकर शहद, शीरा या घी में मिलाकर लगाये ।

(च) ८। दूध, ४ तो० मक्खन, २ तो० सूखे केले की राख इनको मिलाकर पिलाये । इस राख में मक्खन मिलाकर मुँह में चुपड़ दे ।

(१३) जुकाम—

कारण—सर्दी-गर्मी लगना, मेहनत के बाद तुरन्त पानी पीना, ज़्यादा गर्द या धूल का लगना, नाक बहना, छींक का रोकना, स्थान अथवा ऋतु का बदलना ।

लक्षण—नाक बहना, छींक आना, नाक की झिल्ली का लाल हो जाना ।

उपचार—(क) उबलते हुए पानी में यूकलिप्टस की पत्तियाँ या तारपीन का तेल डालकर भाप दे; अथवा सरसों के तेल में थोड़ा सा कपूर घोलकर, गले के नीचे और छाती के ऊपर, मालिश करे । ध्यान रहे कि भाप या मालिश करने के बाद रोगी को हवा न लगने पाये ।

(ख) १ तोला सोंठ, २ तोले अजवाइन, ४ छटाँक गुड़ इनकी औटी पका कर दे ।

(ग) १ तोला अजवाइन, १ तोला सोंठ, १ तोला मेथी, १ तोला कपूर, ८। गुड़ इनकी औटी बनाकर दे ।

(घ) ८– घूटा, ८। चने का बेसन, ८= नमक और ८।। मट्ठा दे ।

(ङ) अँगूठी के २-३ फूल गुड़ के साथ दे ।

(च) ८।। देशी शराब, ८।। गुनगुने पानी में मिलाकर पिलाये ।

(१४) खाँसी—

कारण—सर्दी, गर्मी, बदहज़मी, श्वासनली की रुकावट ।

लक्षण—ज़ोर से साँस लेना, खाँसना, सख़्त गोबर करना, आँख और नाक से पानी बहना । हल्का सा बुख़ार भी हो सकता है ।

उपचार—यूकलिप्टस (Eucalyptus) या नीम की पत्ती अथवा तारपीन के तेल का बफारा दे।

(क) १ छटाँक अनार के सूखे छिलके पीसकर १ छटाँक मक्खन के साथ आटे में गूँदकर दे।

(ख) केले के सूखे पत्तों की २ तो० राख, ४ तो० मक्खन या ऽ= दूध में मिलाकर दे।

(ग) १ तो० तारपीन के तेल को ऽ।। अलसी के तेल में मिलाकर पिलाये।

(घ) नौसादर, सोंठ और अजवाइन प्रत्येक १ तो० ले। इन्हें पीसकर ऽ।। गर्म पानी के साथ दिन में २ बार पिलाये।

(ङ) ६ माशे हींग पीसकर अदरक की एक गाँठ में भर दे। फिर इसे उपलों में पकाने के बाद पीसकर शीरे के साथ दिन में २ बार दे। यह बहुत लाभदायक है।

(च) बाँस की थोड़ी सी पत्तियाँ खिलाये और १ छटाँक अदरक के रस में शीरा मिलाकर दे।

(छ) १ छटाँक काली नमक की डली को आक के पत्तों में लपेटकर भून ले। फिर इसे पीसकर २ तोले की मात्रा में ऽ। गर्म पानी के साथ ३ दिन तक पिलाये।

(ज) ६ माशे कपूर, १ तो० कलमीशोरा, २ तो० अजवाइन, २ तो० सोंठ, १ तो० नौसादर, १ छटाँक अलसी इन सब चीजों को पीसकर गुड़ के साथ मिलाकर दिन में ३ बार खिलाये या इनकी औटी करके पिलाये।

(झ) ऽ०।। यूकलिप्टस का तेल और ऽ। गुड़ मिलाकर दे।

(ञ) ½ छटाँक अजवाइन कुछ दरोटकर ऽ। गुड़ के साथ खिलाये।

(१५) बुखार (ज्वर)—

कारण—मच्छर का काटना, सर्दी का लगना, क़ब्ज़ का होना, बेवक़्त का खाना।

लक्षण—ताप बढ़ने से शरीर का गर्म होना, सुस्त होना, काँपना, पेशाब के रंग का गहरा पड़ जाना, जुगाली बन्द कर देना, कम गोबर करना।

उपचार—ठंडी हवा के झोंके से बचाये, हल्के बुखार में जुलाब दे, ठंडा पानी न दे।

(क) १ छटाँक गूमा घास का फूल, १ तो० काली मिर्च इन दोनों को ऽ।। पानी में औटी करके पिलाये।

(ख) ½ तोला शीरा, २½ तोले नमक, २½ तोले चिरायता, इन सबको ऽ।। गुड़ में पका कर दे।

(ग) ६ माशे कपूर को ऽ। शराब में घोल और १ तोला शीरा मिलाकर दे।

(घ) ४ माशे खारी नमक, ऽ।। गरम पानी में घोलकर ४ माशे कपूर, और ८ माशे क़लमी-शोरे के साथ पिलाये।

(१६) रक्त-मूत्र या लाल-पेशाब—

कारण—गुर्दे, मसाने, या मूत्रनली की सूजन, कीटाणुवाले पौधों के खाने अथवा सड़ी गली खुराक पाने से पशु का रक्त पतला हो जाता है, जिससे उसके रक्ताणु बीमार होकर कम होने लगते हैं। इसी कारण से पेशाब लाल रंग का हो जाता है। बीमार पशु को काटने वाले मच्छर निरोग पशु को काट लें, तो भी यह रोग फैल जाता है।

यह रोग ख़ासकर बारिश के मौसम में होता है और बड़े जानवरों की अपेक्षा छोटों में कम पाया जाता है। छोटे बच्चों में यह रोग नहीं होता।

लक्षण—तेज़ बुख़ार, लाल रंग का गाढ़ा पेशाब होना, पेशाव में अलब्यूमिन का आना, पशु का सुस्त रहना, मुँह से झाग आना, रोएँ खड़े होना, शरीर छूने में अधिक गर्म मालूम होना, मूत्र करके शिथिलता का अनुभव करना, आँखों का सुर्ख़ अथवा धुँधली होना। बढ़ी हुई हालत में रोगी पशु अपने पीछे के धड़ को झुकाकर खड़ा होगा, पसीना ज़्यादा आयेगा।

उपचार—पूर्ण विश्राम दे।

(क) ऽ१ पुनर्नवा की जड़, ऽ४ पानी में उबाल ले। ऽ१ जल के बच रहने पर छानकर पिलाये। इससे मूत्र साफ़ आयेगा।

(ख) सोंठ व पुनर्नवा की पत्ती डालकर उबाले हुये पानी से रोगी पशु के पुट्ठे सेंके।

(ग) ऊपरलिखित ऽ॥ सेर काढ़े में ६० बूँद चन्दन के तेल को मिलाकर पिलाये। इसके पिलाने से शरीर के अन्दर के भाग में यदि ज़ख्म होंगे तो भर जायँगे और रक्त का आना बन्द हो जायगा।

(घ) ६ माशे हीराबोल का चूर्ण ऊपर के काढ़े में मिलाकर देने से रक्त रुक जाता है।

(ङ) कभी कभी इस रोग में मूत्र कम व गाढ़ा हो जाता है। ऐसी दशा में केवल पुनर्नवा का काढ़ा पिलाने से मूत्र साफ़ आने लगता है और शरीर का ज़हर निकल जाता है। ज्वर भी जाता रहेगा। यदि इन उपचारों से लाभ न हो, तो अच्छे चिकित्सक की सलाह शीघ्र ही लेनी चाहिए।

सावधानी—पेट साफ़ करने के लिए साधारण रेचक-दवा देकर पेट साफ़ रक्खा जाय, तो रोग बढ़ नहीं पाता। पशु के पीछे के हिस्से में दर्द रहता है, अतः गर्म पानी से सेंकना और गर्म कम्बल का पीठ पर डालना लाभप्रद है।

(१७) पित्ती उछलना—

कारण—पुराना क़ब्ज़, पित्त का अधिक बनना, सर्दी-गर्मी का लग जाना।

लक्षण—चर्म पर चकत्ते पड़ना, रोओं का उठा रहना। ठण्डी हवा में खुजली ज़्यादा लगेगी, जिससे जानवर अपने शरीर को इधर उधर रगड़ने लगेगा। रोगी उदास दिखायी पड़ता है, और खुजली के कारण बेचैनी से इधर उधर उछलता कूदता है। कभी-कभी इलाज किये बिना ही यह बीमारी ठीक हो जाती है। पित्त पुराना हो जाय, तो पूरे शरीर पर गूमड़-जैसे निकल आते हैं।

उपचार—(क) भट्ट के पत्तों को उबालकर गरम-गरम जल से शरीर को धीरे-धीरे १० मिनट तक धोये।

(ख) साधारण रेचक दवा दे। अंडी के तेल का रेचन उत्तम होता है। इसके बाद—

ऽ= नीम की छाल, पित्तपापड़ा ऽ= इन दोनों को मिलाकर ऽ४ पानी में उबाल ले। ऽ१ पानी शेष रहने पर इसे पशु को पिलाये।

(ग) कम्बल से शरीर को ढक दे। यदि कम्बल शरीर पर न रुके, तो बाँध दे।

(१८) अतिसार—

कारण—पेचिश के बढ़ जाने पर यही रोग अतिसार का रूप पकड़ लेता है । रोगी पशु के आमाशय तथा आँतों के भीतर की झिल्ली पर शरीर के भीतर ही सूजन आ जाती है, और रोग भयंकर भी हो सकता है ।

लक्षण—पशु विशेष सुस्त व कमज़ोर पड़ जायगा । उसका गोबर बहुत पतला, दुर्गन्धित और बारबार होने लगेगा । रोग के बढ़ जाने पर आँव के साथ खून का आना भी संभव है ।

उपचार—दाना-खली एवं सख़्त-चारा बिलकुल बंद कर दे । केवल हरी दूब एवं साफ़ पानी दे । पहले हलका रेचक देकर पेट साफ़ कर दे, बाद में बंधक दवा दे ।

रेचक—(क) अंडी या अलसी का तेल ऽ।– और तिल का तेल ऽ।– मिला कर १ बूंद जमालघोटे का तेल मिला के पिलाये ।

(ख) खारी नमक ऽ।।, सोंठ १¼ तोला, गंधक ऽ– और शीरा ऽ। पीस कर ऽ१। गरम पानी में मिला दे और गुनगुना पिलाये । सोंठ व गंधक पीस ले ।

बंधक—(क) खरिया मट्टी ½ छटाँक, कत्था पीसा हुआ १¼ तोला, अजवाइन पिसी हुई १¼ तोला सब को मिला कर चावल के मांड के साथ पिलाये ।

(ख) नीला थूथिया पिसा हुआ ६ आने भर और ऽ।।= पानी मिला कर पिलाये ।

यदि रोग पुराना पड़ गया हो तो हीरा कसीस १¼ तोला, चिरायता पिसा हुआ ½ छटाँक, कुचले के बीज ६ आने भर मिला कर १ खुराक में प्रतिदिन सुबह को पिलाये । जब तक आराम न हो पेट साफ़ करने के बाद यह दवा दिया करे ।

(ग) ईसबगोल की भूसी ऽ– और पानी ऽ।।= मिला कर पिलाये ।

पाँचवाँ अध्याय

साधारण किन्तु संक्रामक रोग

यह रोग छुतैले होते हैं, इस कारण रोगी पशु को हटाकर रखने से दूसरे पशु बचे रहेंगे। गन्दगी और लापरवाही के कारण प्रायः पशु इनसे आक्रान्त रहते हैं। पशु की स्वच्छता के साथ ही स्थान की भी सफ़ाई करना लाज़मी है। सुपालित पशु को ये रोग नहीं होने पाते।

प्रतिबन्धक उपाय—शाला को फिनाइल से धोकर साफ़ करे और दीवाल के सांध आदि स्थानों को भली-भाँति भरवा दे। दीवालों पर चूना करा देना ज़रूरी है। कच्ची मिट्टी का फ़र्श हो, तो वहाँ की थोड़ी सी मिट्टी उठाकर खादकूप में डालकर ढक दे। फिर इस स्थान पर नीम की पत्तियों को जलाकर वही राख फैला दे। लकड़ी की गरम राख अथवा चूना बुरकाने से भी कीटाणु मर जाते हैं।

नाली में मिट्टी का तेल या चूना डालना चाहिए और शाला में थोड़ा-सा नीम, लोबान, गन्धक आदि चीज़ों का धुआँ कर देना चाहिए।

स्नान—रोगी पशु को नहलाने के लिए नीम अथवा भट्ट के पत्ते डालकर उबाले हुए पानी को बरतना चाहिए। पोटाश-परमैंगनेट, फिनाइल या "डी० डी० टी०" (D. D. T.) पड़ा हुआ पानी भी कीटाणुओं का नाश करता है।

रीठा सस्ती और सफाई करनेवाली अच्छी चीज़ है। रीठा भिगो या उबाल और पीसकर लगाये। इसे शरीर पर रगड़ने से झाग उठने लगेंगे और चमड़ी साफ़ हो जायगी। फिर सादे या दवा पड़े हुए पानी से नहला दे।

बीनना—किलनी और बग्घी वग़ैरह बड़े कीड़े हाथ से पकड़कर भी निकाले जाते हैं। इन्हें बीनकर गोबर के चाँटे में दबाता जाय; वरना ये फैलकर दूसरे पशुओं को भी लग जायँगे। इस गोबर को अन्त में जला देना चाहिए।

रुज व जूँ आदि छोटे-छोटे कीड़ों को लेप लगाकर मार देना चाहिए। ये झड़कर गिर जायँगे। लेप लगाने के ४-५ घंटे बाद पशु को ख़ूब साफ़ करके नहला देना चाहिए। ज़हरीली दवाएँ लगाकर गाय को नहलाने और थनों को विशेष सावधानी से धोने के बाद ही दुहना चाहिए। इन उपचारों को करने के बाद हाथ भी, साबुन, राख, आटे या बेसन से धोकर साफ़ कर लेना चाहिए।

कीटाणुओं के नाम—

१—बग्घी नामक मक्खी बड़ी और काले रंग की होती है। यह सारे शरीर पर फुदक-फुदक

कर बैठती है। नदी या तालाब में नहलाया जाय, तो छोटी-छोटी मछलियाँ पशु के शरीर से इन्हें बीनकर खा लेंगी। बग्घी पशु को विशेष कष्ट देती है।

२—रुज तथा जूँ—ये नन्हें नन्हें कृमि रोओं में छिपे रहते और काटते हैं। ये ख़ासकर पेट के नीचे, जाँघों की सन्धियों में तथा पूँछ के नीचे रहते है।

३—किलनी—काले रंग का यह कीड़ा ज़रा मुश्किल से छूटता है। यह पशु को बहुत कष्ट देता है। इनके कारण गायों का दूध कम हो जाता है।

४—साई—घाव पर या पूँछ के नीचे एक प्रकार की मक्खी बैठकर सफ़ेद डोरी के-से बहुत-से अंडे देती है। यही अंडे बढ़कर कीड़े बन जाते हैं।

निम्नलिखित दवाओं में से कोई एक बरते :—

(क) डी० डी० टी० नाम की अंगरेज़ी दवा बहुत फ़ायदेमन्द है।

(ख) पीपल के हरे पत्ते जलाकर अथवा पीसकर सरसों के तेल में मिलाकर लगाये।

(ग) १ छटाँक नीला थोथा, और २ छटाँक गन्धक पीसकर ऽ। सरसों के तेल के साथ लगाये।

(घ) ऽ। कुचले की जड़ को ऽ१ सरसों के तेल में पकाकर तेल छानकर शीशी में भर ले। यह जड़ें विषैली होती हैं, अतएव इन्हें ज़मीन में दबा दे। ऐसा तेल कीड़ों को दूर करता है।

(ङ) ऽ। कनेर के पत्ते, ऽ। प्याज़, २ तोले तूतिया, ४ तोले भिलावाँ इन सब को पीसकर ऽ१ सरसों और ऽ। नीम के तेल में जल जाने तक पकाये। यह तेल विषैला होता है। यह दवा बड़ी फ़ायदेमन्द मानी जाती है।

(च) महामरिच्यादि तेल लगाये, अथवा चिरायते का चूर्ण घी में मिलाकर लगाये।

(छ) ऽ– गन्धक, ऽ– नीम का तेल और ऽ।। सरसों का तेल मिलाकर लगाये।

(ज) ऽ- मूली के बीज, ऽ- कलमीशोरा पीसकर लगाये।

(झ) ऽ= नमक, ऽ= मिट्टी का तेल और ऽ। सरसों का तेल मिलाकर लगायें।

(ञ) ऽ= नमक, ऽ- हल्दी पानी में फेंटकर लगाये अथवा फिनायल को पानी के साथ लगाये।

(त) बकैना के पत्ते पीस या उबालकर लगाये।

इन लेपों को लगाने के २-३ घंटे बाद तक पशु को धूप में रखे और फिर सावधानी से नहला दे।

(१) दाद एवं खुजली—

यह रोग स्पर्शजन्य हैं। खनिज-लवणों की कमी का भी असर पड़ता है। विटामिन तथा खनिज-लवणवाली ख़ुराक रोगी पशु को ज़्यादा देनी चाहिए।

कारण—छूत तथा पोषणतत्त्वों-रहित ख़ुराक अथवा गन्दगी।

लक्षण—दाद गोल-गोल चकत्ते-सा दीखता है। इसमें दाने पड़ जाते हैं। खुजली कई क़िस्म की होती है। ख़ासकर ख़ुश्क या चेंपवाली।

उपचार--उपर्युक्त दवा लगायें और पोषणवाली अच्छी ख़ुराक दे। जुलाब देकर पेट को साफ़ कर देना भी ज़रूरी है।

८ साबुन, ८= सेंदुर को सिरके के साथ पीसकर चेंपवाली खुजली में लगाना फ़ायदेमन्द है।

(२) गज-चर्म—

इसमें रोगी पशु की चमड़ी हाथी की खाल-जैसी हो जाती है। यह कठिन रोगों में भी गिना जा सकता है। इसे उकौता या छाजन भी कहते हैं।

लक्षण--एक प्रकार की खुजली जो पहले मुँह, पूँछ या अगले पैरों के पास से शुरू होती है। फिर सारे शरीर में फैल जाती है। खुजलाते खुजलाते शरीर पर घाव हो जाते हैं। चमड़ी मोटी और सलवटदार हो जाती है। वहाँ पपड़ी सी जम जाती है। शरीर पर पसीना नहीं आता।

उपचार--जहाँ खाज हो, वहाँ के बाल काटकर उसे किसी कीटाणुनाशक दवा वाले गरम पानी से धोकर साफ़ कर दे। ज़रूरत हो, तो रीठे के झागों से सफ़ाई करे। स्वस्थ पशु का गोबर व सरसों का तेल मिलाकर १०-१५ मिनट तक रोगी को धूप में खड़ा करके मालिश करे और क़रीब १ घंटे बाद नीम के पानी से नहला दे।

१--लगाने के लिए क-ख-ग-घ-ङ-च-चिह्न-वाली दवाओं में से कोई एक दवा बरते।

२--अमचूर को पीसकर ताँबे के बर्तन में रखकर ज़रा सावधानी से १ घंटे तक मले। फिर इस लेप को रोग वाली जगह पर लगा दे।

३--गुठली सहित सूखे आँवले पीसकर प्रतिदिन लेप करे और १ घंटे बाद नहला दे।

खिलाने की दवा--

(क) रेचक दवा दे और हरी घास ज़्यादा खिलाये। दाना-भूसा बन्द कर दे।

(ख) ८ नमक, ½ तो० महीन पिसी हुई गन्धक, ½ सेर पानी में घोलकर या रोटी में रखकर खिलाये। अथवा ८। घी पिलाये।

(३) सूरा-रोग या जहरबाद—

कारण--एक प्रकार की मक्खियों से यह बीमारी हो जाती है। विशेषतया यह रोग घोड़ों और ऊँटों को ही होता है। बरसात के दिनों में सीलन भरे स्थानों में ये मक्खियाँ अंडे देती हैं।

लक्षण--पशु के शरीर पर मक्खियाँ जहाँ तहाँ फैली रहती हैं और खून चूसती रहती हैं, इस कारण बुख़ार हो आता है। आँखों से पानी भी बहने लगता है और बाल खड़े हो जाते हैं। पशु क्षीण और दुर्बल हो जाता है।

यह बीमारी पशु के ख़ून की परीक्षा करने पर अच्छी तरह पहचान ली जाती है।

उपचार--(क) टारटर-एमेटिक (Tartar-Emetic) के ३% घोल का इन्जेकशन रोगी पशु को लगवा दे। यह इलाज पशु-चिकित्सक से करवाये।

(ख) सफ़ेद संखिया (Arsenious Acid) १ से २ माशे तक एक बार में दे। ध्यान

रहे कि यह एक तेज क़िस्म का जहर है अतः कहीं ज़्यादा न दे दिया जाय अथवा बिखर कर गिरा-पड़ा न रहे। धीरे धीरे प्रतिदिन यह दवा बीमारी ठीक हो जाने तक दे।

(४) खुजली आदि बीमारियों की अन्य दवायें :—

(क) दाद पर रुई में भिगा कर सिरके का तेज़ाब बीमार जगह पर लगाना अच्छा रहता है।

(ख) दाद वाले पशु को ऽ= मुस्सबर पीस कर ऽ।। पानी में घोल कर पिलाये। इस से उसका पेट साफ़ रहेगा।

(ग) इस श्रेणी के रोगी को ऽ– सत-अजवाइन पिलाये और दूसरे दिन दस्तावर दवा दे।

(घ) सफ़ेद संखिया पानी में घोल कर रुई से बीमार स्थान पर लगाये।

(ङ) चालमोगरा का तेल रुई के फाये से बीमार स्थान पर लगाये।

(च) अनार के छिलकों का काढ़ा पिलाये।

(छ) पपीते के फल का ऽ= रस पिलाये।

छठा अध्याय

विष-जन्य रोग

(१) विषैली चीज़ का खाना—

कारण—चारे या सानी के साथ धोखे से किसी ज़हरीली चीज़ का खाजाना।

लक्षण—एकाएक बीमार होना, पतले तथा खूनी गोबर का आना, तड़पना, जीभ का ऐंठना, आँखों का लाल हो जाना व निकल आना, पुतली का फैल जाना, शरीर का शीतल होना, पेट में दर्द होना, मुँह में झाग आना, पेट में स्वयं ही लात मारना, अधिक प्यास लगना, साँस जल्दी लेना, मुँह से पानी गिरना।

उपचार—कोई हल्का जुलाब दे। पानी से नहलाये।

(क) १½ सेर घी में १ सेर खारी नमक मिलाकर २ बार में पिलाये।

(ख) पेट के ऊपर तालाब की मिट्टी लगा दे।

(ग) १ छटाँक अंडे की सफ़ेदी, ४ छटाँक मैदा, ८ छटाँक पानी में घोलकर पिला दे।

(घ) १ सेर गरम दूध में ½ सेर घी और ½ छटाँक तारपीन का तेल मिलाकर पिलाने के थोड़ी देर बाद पावभर केले की जड़ का रस या गुलाबजल में ⅛ तोला कपूर मिलाकर पिलाये।

(ङ) असगन्ध का २ छटाँक चूर्ण ऽ।।। पानी में मिलाकर पिलाये।

(च) एक सेर खट्टा-दही पिला दे।

(२) चरी का विष—

कारण—वैशाख के महीने में जब चरी उगती है या खेतों में उस के पुराने डंठलों में से छोटे छोटे पौधे निकलने लगते हैं, तब उनको वर्षा के न होने से ठीक तरह से पानी नहीं मिलता। इस कारण सारे पौधों में एक प्रकार के विष का संचार हो जाता है। परन्तु काफ़ी वर्षा के होने के बाद पत्तियों की साँसक्रिया द्वारा विष का भाग उड़ जाता है और पौधा बढ़ जाता है। यह एक तीक्ष्ण विष है। काफ़ी मात्रा में इसे खा लेने पर जानवर नहीं बच पाता, वह तुरन्त मर जाता है, किन्तु थोड़ी-सी ऐसी चरी के खाने पर पशु के बचने की भी संभावना है।

लक्षण—शरीर में कम्पन दाँत, और जीभ का काला पड़ जाना। शेष लक्षण विष खाने-जैसे होते हैं।

उपचार—(क) यदि इलाज करने लायक़ हालत हो, तो पशु को तुरन्त ऽ१ शीरा पिला दे।

(ख) पानी से भरे तालाब या नदी में उसे खड़ा कर दे अथवा उसके पेड़ू या सारे शरीर पर गीली मिट्टी लेप दे।

(ग) ऽ१ सज्जी को ऽ२ पानी में घोलकर पिलाना बहुत लाभदायक है।

(घ) जली हुई लकड़ी की राख छानकर ऽ२ पानी में घोलकर पिला दे।

(ङ) ऽ।। तारपीन का तेल देने के बाद काली-मिर्च, हींग, सोंठ, अजवाइन प्रत्येक १ तोला भर और काला नमक २ तोले इन सबको पीसकर गुनगुने पानी के साथ पिला दे।

(३) सफेद झाग वाला कीड़ा—

कारण—वर्षा के मौसम में पानी ठहरने या कम वर्षा होने पर घास तथा फ़सल में एक विषैली वस्तु पैदा हो जाती है। इसके चारों ओर सफ़ेद झाग होते हैं।

लक्षण—बेहोश होकर गिर पड़ना, गर्दन डाल देना, आँखें फेर देना तथा चरी के विष के सदृश अन्य लक्षण।

उपचार—पशु को वहीं लेटा रहने दे तथा गर्मी से बचाव करे। जहाँ जानवरों का चरागाह हो, उस खेत में ऐसे कीड़े वाले पौधों को देखकर जला दे।

(क) एक सेर प्याज़ खिलाकर पशु का मुँह बाँध दे।

(ख) दो छटाँक सज्जी पानी में घोलकर पिला दे

(ग) आक की लकड़ी मुँह में रखकर दोनों सिरों पर रस्सी बाँधकर सींगों से अटका दे। इस लकड़ी के चबाने से लाभ होगा।

(४) साँप की केंचुल खा लेना—

कारण—घनी घास चरते समय, अथवा भूसे में रहने, या हवा द्वारा आकर सानी में गिरने से केंचुल को खा लेना।

लक्षण—देह में चकत्ते होना, रोंओं का गिरना, शरीर फूलना।

उपचार—(क) ¼ छटाँक, बैंगन की डंडी २½ तो० काली मिर्च के साथ पीसकर ऽ। दही में मिलाकर खिलाये।

(ख) ऽ। घी ऽ- काली मिर्च पीसकर पिलाये।

(ग) ऽ।।। चूके का रस २ तोले नमक मिलाकर दे।

(घ) नथनों में घी डाले।

(ङ) ऽ। काकजङ्घा का क्वाथ बनाये और ऽ१ शेष रहने पर ठंडा करके दे।

(५) सर्प का काटना—

कारण—पशु की चमड़ी के मोटी होने और प्रकृति-द्वारा प्रदत्त आत्मरक्षा के नियमों के कारण साँप के काटने पर पशु को सहज ही में ज़हर नहीं चढ़ता, परन्तु यदि पशु की जीभ में साँप

काट लें, तो ज़हर सहज ही में फैल जाता है। सानी खाते या घास चरते समय दबने से साँप जीभ पर काट सकता है।

लक्षण––पशु के रोएँ खड़े हो जाते हैं। वह सुस्त हो जाता है, आँखें बन्द हो जाती हैं, नींद आती है, हिलना डुलना बन्द कर देता है, काँपता है, फेन गिरता है, रंभाने का स्वर बदल जाता है।

उपचार––(क) जिस स्थान पर काटा हो, उस स्थान पर चीरा लगाकर कुछ खून निकाल दे, वहाँ पर जमालँगोटे की मींगी पीसकर लगा देनी चाहिए। इससे ज़हर उतर जायगा। ज़हर के उतरते समय वह स्थान, जहाँ लेप लगाया गया हो, फड़कता हुआ दिखायी पड़ता है। यह दवा एक प्रकार का ज़हर है, अतः लगाने के बाद हाथ धो डालना चाहिए।

(ख) ꠸॥ घी ꠸≈ नीम की पत्तियों के साथ पीसकर पिलाये।

(ग) ꠸१ मकोय को जड़ समेत उखाड़कर ꠸१ घी, ꠸। काली मिर्च के साथ पीसकर पिलाये। यह सबसे अच्छी और सुलभ दवा है।

कभी कभी साँप काटे का भ्रम भी हो जाता है, किन्तु (ग) भाग में लिखी हुई दवा इस हालत में भी नुक़सान नहीं करती और सच होने पर लाभ देती है। यह दवा मनुष्यों के लिए भी लाभ-दायी पायी जाती है।

(६) कुत्ते का काटना––

कारण––पागल कुत्ते के काटने पर पशु भयंकर रूप से पीड़ित होता है। अचानक ऐसे कुत्ते से मिलने, दबने या भागने पर वह काट लेता है।

लक्षण––आँखों का लाल होना, रोओं का खड़े होना, पानी न पीना, आग से डरना।

उपचार (क) काटे हुए स्थान पर प्याज़ को पीसकर लगाना।

(ख) कुचले की मींगी को पीसकर लगाये।

(ग) लाल मिर्च के बीज पीसकर लगाये।

(घ) कुचले की शुद्ध मींगी १ तोला, शुद्ध गुग्गुल ꠸। मिलाकर ६० गोली बना ले और १० गोलियों की मात्रा में खिलाये।

पागल कुत्ते के काटे हुए स्थान पर फ़ौरन लाल लोहे या अंगारे से दाग़ देना चाहिए, या बग़ैर बुझा हुआ चूना लगा देना चाहिए। क़रीब के पशु-चिकित्सक को तुरन्त ही इत्तला देना ज़रूरी है।

(७) चूहा, छछूंदर, या नेवले का काटना––

कारण––दबना, समीप आना।

लक्षण––अन्य ज़हरीले रोगों के-से लक्षण होने लगते हैं। काटेहुए स्थान पर साधारण सूजन हो जाती है।

उपचार (क) कृमिनाशक घोल से साफ़ करके, रोगी को थोड़ा घी पिला दे।

(ख) दही में शक्कर मिलाकर पिलाये और पानी से नहला दे।

(८) बन्दर या भेड़िये का काटना—

कारण—अक्सर गाय इनकी तरफ़ जब मारने को दौड़ती है तब ये उसे काट लेते हैं।
लक्षण—व्रण बन जाता है, पककर सूज जाता है, और पीप पड़ जाता है।
उपचार (क) कृमिनाशक घोल से साफ़ कर के नीम की छाल पीसकर लगाये।
(ख) खरेंटी की पत्तियों को पीसकर और नमक डालकर लगाये।

(९) सुई खा लेना—

कारण—धोखे से सानी में खाजाना, या पशु के मालिक से दुश्मनी होने पर आटे में मिलाकर किसी दूसरे आदमी का पशु को सुई, आल-पीन आदि खिलाना।

लक्षण—पेट में दर्द, सुस्ती, भूख-प्यास कम होना, क्षीण होना।

उपचार—सबसे पहले ʃ= चुम्बक-पत्थर (Load Stone) को पीस कर ʃ। गुड़ में मिलाकर खिलाये। चुम्बक-पत्थर के कण सुई के टुकड़ों के चारों तरफ लिपट जायँगे और उन्हें मोटी शलाका के रूप में बना देंगे। यह शलाका नीचे लिखे नुस्ख़े को देने से सरलता से निकल जायगी। इसे चुम्बक का चूर्ण खिलाने के ४ घंटे बाद दे।

ʃ- मुनक्का, ʃ= सनाय, ʃ१ पानी, ʃ२ दूध, ʃ। गुड़ इनको सबको एक में पका ले। फिर अण्डी के ʃ। तेल में मिलाकर पिलाये।

सातवाँ अध्याय

गायों के रोग

(१) **उचित समय पर गाभिन न होना तथा बाँझपन**——गाय ब्याने के तीन से पाँच महीने के भीतर दुबारा गरम होकर गाभिन हो जाती है। कोई-कोई गाय देर में भी गाभिन होती है, किन्तु समय पर गाभिन न होना ठीक नहीं है।

कारण——(क) संतुलित ख़ुराक का अभाव।

(ख) विशेष दुर्बलता या मेद का बढ़ जाना।

(ग) साँड़ के न होने से सोये का मारा जाना।

(घ) अनुपयुक्त साँड़।

(ङ) बच्चेदानी के मुँह का बन्द या टेढ़ा होना और गर्भाशय में सूजन का होना।

(च) बचपन से दूध और पोषण का ठीक से न मिलना।

(छ) सकुटुम्बी-संयोगवाली नस्ल की प्रजनन-शक्ति प्रायः क्षीण हो जाती है।

(ज) नर और मादा दो बच्चे एक साथ पैदा हुए हों, तो बछिया बाँझ रहेगी। परन्तु दोनों ही यमज बच्चे यदि मादा होंगे तो वे बाँझ न रहेंगी, ऐसा कुछ लोग मानते हैं।

उपचार——(क) पर्याप्त प्रोटीन, विटामिन एवं कार्बोहाइड्रेटवाला शीघ्रपाची दाना और हरा चारा दीजिए। ख़ुराक में जिस तत्त्व की कमी हो, उसी में प्रधान चारा-दाना विशेष दे। ख़ासकर फ़ास्फ़ेट और प्रोटीन उचित मात्रा में दे।

(ख) कमज़ोर गाय को थोड़ा-सा दाना खली देना शुरू करे। धीरे धीरे पोषक दाना-खली बढ़ाता जाय। चारा भी उत्तम जाति का दे। इस प्रकार गाय को सुपोषित कर ले।

मोटी गाय की ख़ुराक में से कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन वाले दाने कम कर दे, किन्तु हरा चारा भरपेट दे। मीठी चीज़ें न दे, क्योंकि अधिक शक्कर प्रजनन-शक्ति को कम कर देती है।

(ग) दुबारा गरम करने के लिए गाय को निम्नलिखित दवाओं में से कोई एक दे:——

१——सन के हरे पत्ते ऽ२ प्रतिदिन खिलाये, यह क्रम सात दिन तक रक्खे। सन गर्म होता है।

२——अँकुराये हुए बिनौले, जौ या गेहूँ ऽ।। की मात्रा में खिलाये। विटामिन 'ई' प्रधान अन्य दाने भी इसी तरह से खिलाये जा सकते हैं। अंकुर ख़ूब अच्छी तरह ½ इंच बढ़ आने चाहिए।

३——ऽ।। महुए का ठर्रा दो तीन दिन तक प्रातःकाल पिलाये।

४——½ तो० सुहागा फुलाकर सात या आठ दिन तक प्रतिदिन दे।

५——एर्गट आफ़ राई (Ergot of Rye) लगभग ४ दिन तक दे।

६—)।।। मसूर की दाल उबालकर और उसमें कबूतर की)- बीट मिलाकर ७ दिन तक खिलाये।

७—)।।= मेथी पीसकर पानी में घोलकर पिलाये। मेथी बादी को दूर करनेवाली और गरम तासीर की होती है।

८—)१। मसूर की चोकर सहित दाल, और)१। बैंगन राँधकर सात दिन तक दोनों वक्त खिलाये।

९—छोहारे की सात गुठलियों और जौ की एक बासी रोटी का सात दिन तक सुबह के समय खिलाना, कई लोग अच्छा मानते हैं।

१०—सन के बीजों का)१ आटा)।। गुड़ में मिलाकर सुबह के समय १५ दिन तक खिलाये।

११—२ तोले कबूतर की बीट)= गुड़ में मिलाकर ३-४ दिन तक सुबह के समय खिलाये। यह बहुत काफ़ी गरमी पैदा करनेवाली उत्तेजक-वस्तु है।

१२—बार बार गरमाने पर भी साँड़ का संयोग न पाने पर गाय की प्रजनन-शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः उसे फिर से विकसित करने के लिए जल्दी ब्यानेवाली गाय के मूत्र का इंजेक्शन (Injection) लगवा दे। इससे हारमोन फिर से पदा हो सकेंगे।

१३—कैंथरडीस (Cantherdis) नामक अंग्रेजी दवा को ६ से ८ ग्रेन तक दाने में मिलाकर सुबह-शाम दोनों वक्त गाय को दे। इसे ४-५ दिन तक खाने से वह गरम हो जायगी।

(घ) हीन-श्रेणी का साँड़ गाय को गाभिन न कर पायेगा, अतः सर्वगुण-सम्पन्न साँड़ का प्रबन्ध करे; अथवा कृत्रिम-गर्भाधानवाला इंजेक्शन लगवा दे। गाय से बड़े व ऊँचे क़द के बलवान साँड़ से गाय को बरधाये। परन्तु गाय बहुत छोटी जाति की और साँड़ ज़्यादा बड़ी जाति का होगा, तो गाय को ब्याते समय तकलीफ़ होगी।

(ङ) गर्भाशय की विकृति का अनुभवी पशु-चिकित्सक से इलाज कराये। गर्भाशय का मुँह बन्द हो गया हो, तो चीरा देकर खुलाये। यदि किसी प्रकार का तरल चेंप आता हो, तो इलाज करे।

संक्रामक तूना हो जाने पर गर्भाशय का मुँह सूज जाता है और कुछ हानिप्रद कीटाणुओं के पैदा हो जाने से प्रजनन-बीजाणु नष्ट हो जाते हैं। ऐसी दशा में १ औंस पोटैशियम-बाई-कार्बोनेट (Potassium-bi-carbonate) १ पाइन्ट गरम पानी में घोलकर इसका इंजेकशन गाय को, साँड़ के संयोग के १ घंटा पहले, लगाये।

(च) बचपन से कमज़ोर रही हुई बछिया को धीरे धीरे पौष्टिक दाने देकर ४-५ महीने पाले। एकदम से पोषण देना हानिकर होगा। हरा चारा भरपेट खिलाये। फिर तैयार हो जाने पर बछिया को पूरी मात्रा में ख़ुराक खिलाये। समय पाकर वह गरम हो जायगी।

(छ) कोई कोई बछिया प्रकृति ही के कारण नहीं ब्या पाती, इसे केवल चराई पर रखे और उसके गोबर का उपयोग करे।

(२) बार-बार गरम होना अर्थात् पाल खाने पर भी गाभिन न होना और गाभिन होने पर गरम होना—

कारण—(क) गरम तासीर की ख़ुराक ।

(ख) गाय की गर्भधारण-शक्ति का कम होना ।

(ग) साँड़ की दुर्बलता ।

(घ) गाभिन होने पर भी उत्तेजना पाकर गरम होना ।

उपचार—(क) गरम अर्थात् विशेष शक्कर, कार्बोहाइड्रेट वाली ख़ुराक कम या बन्द कर दे । हरा चारा दे । पाल खाने के बाद नहलादे ।

(ख) गाय को विटामिन 'ई'-प्रधान ख़ुराक दे । पाल खाने के बाद गाय को स्थिर रक्खे और ऽ।। घी ऽ= काली मिर्च पीस व मिलाकर पिलाये ।

गाभिन होने के बाद ऐसी गाय को बिनौला बिल्कुल न दे । सब तरह की गरम ख़ुराक या चोट व झटके से बचाये ।

(ग) साँड़ बदल दे । मुमकिन है कि साँड़ की प्रजनन-शक्ति क्षीण हो गयी हो । गाय से ऊँचे क़दवाला साँड़ बरते ।

(घ) कभी कभी ४-५ महीने की गाभिन गाय भी गरम होने के सदृश लक्षण प्रगट करके ज़ोर ज़ोर से रँभाती तथा उछलती कूदती है । इस समय गाय को साँड़ के संयोग से बचाकर उसे नीचे लिखे तौर पर ठण्डा कर देना चाहिए :—

१—ठण्डे पानी से नहला दे ।

२—ऽ। सौंफ़ पीसकर पानी में मिलाकर पिलाये ।

३—ऽ।। गन्ने का रस दो तीन बार पिलाये ।

४—कच्ची शक्कर और बेलगिरी या बेल का शर्बत पिलाये ।

५—लसोड़े या शीशम के पत्ते खिलाये । उपर्युक्त उपचार हानि नहीं पहुँचाते ।

(३) गर्भ न ठहरना अर्थात् तूना अथवा गर्भ-स्राव एवं गर्भपात—

कारण—(क) गाभिन गाय के गर्भाशय के आसपास धक्के से या सींगों से चोट का लगना और गाय को डर के मारे दहशत का बैठ जाना ।

(ख) यात्रा में अधिक परिश्रम पड़ना, हिलना-डुलना तथा ज़ोर के धड़ाके सुनना ।

(ग) तेज़ जुलाब, विषैली दवा, विशेष ठंडी या गरम तासीर की चीज़ें खाना या भूखे रहना, गाभिन अवस्था में तेज़ रोग के होने से भी गर्भ गिर जाता है ।

(घ) मरे हुए पशु के पास जाना, गन्दी हवा, सड़े पानी, तथा खराब चारे-दाने का सेवन करना । दूसरी गाय को ब्याते हुए देखना या किसी बीमारी का लग जाना ।

उपचार—(क और ख) गाभिन गाय जब हैरान और थकी-सी दिखायी देने लगे या ब्याने के

पूरे दिनों के पहले ही कुछ लाल स्राव जारी कर दे, तो तुरन्त ही अलग ले जाकर उसकी विशेष सेवा करे। समयानुसार उचित सेवा पाकर उसका गर्भ बच सकता है।

(१) ऐसी गाय को पुचकारकर ढाढस बँधाये। ग्वाला उसके पास बराबर बैठा रहे व उसे धीरे धीरे सहलाता रहे। गाय को सूखे साफ़ और नरम स्थान पर बिठाये। उसे ๅ= घी में १ तोला काली मिर्च पीसकर पिला दे। ठण्डी खुराक दे, हरी दूब सबसे अच्छा चारा है। दाना न दे। लसोड़े के ๅ। पत्ते खिलाना भी ठीक है। गाय स्थिर हो जाय और स्राव बन्द हो जाय, तब गेहूँ के चोकर को टण्डे पानी में घोलकर उसे पोषण पहुँचाये।

(२) चावल के ½ सेर गुनगुने माँड़ में ४ माशे अफ़ीम या १ माशा धतूरे के बीज पीस और घोल छानकर पिलाये। यह खुराक ५-६ घंटे बाद फिर से दे। इस तरह दिन में तीन बार पिलाने से गर्भ गिरने से बच सकता है। साथ ही गाय को आराम देने का उचित ध्यान रक्खे।

(ग और घ) चोट आदि सभी बातों से उसकी रक्षा करे। विषैली घास आदि खा ले तो उचित इलाज करे। यदि गर्भ का बच्चा गिर ही पड़ा हो तो उसे तुरन्त ही हटाकर कहीं दूर पर गाड़ दे। गाय के अपत्यपथ (गर्भमार्ग) को कृमिनाशक घोल से पोंछकर साफ़ कर दे। गाय इस समय ज़ेर भी डालेगी, इसका ध्यान रक्खे। यदि ज़ेर न डाले, तो उसके लिए दवा दे।

वह जगह जहाँ गर्भपात हुआ हो फिनायल से धोकर साफ़ कर दे।

१—ๅ२ धान या ๅ२ तिल खिलाने से गाय तुरन्त ज़ेर डाल देगी।

२—ๅ= पीपलामूल ๅ= पीपल ๅ= सोंठ ๅ– अजवाइन और ๅ१ गुड़ को ๅ२ पानी में औटाकर खूब गाढ़ी व गुनगुनी औटी गाय को पिलाये।

३—धान के हरे पौधे या बाँस की हरी पत्तियाँ भी ज़ेर गिराने के लिए खिलायी जाती हैं।

(४) बच्चा होना—

गर्भ के विकास एवं स्वाभाविक सहज-प्रसूति की विधि गो-प्रसूति में लिखी जा चुकी है। गाय शरीर को तानकर व पिछले पैरों को फैलाकर और कुछ झुकाकर या करवट लेकर भी ब्याती है। ब्याने के समय बच्चे का मुँह सामने की ओर अगली टाँगों पर टिका होता है। पहले टाँगें दिखायी देती हैं। फिर मुँह और सिर के आते ही सारा धड़ निकल आता है। साधारण प्राकृतिक तौर से ब्याने में गाय को कोई विशेष कष्ट न होगा। ब्याते समय कभी देर भी हो जाती है, और कभी कभी गाय कुछ जल्दी भी ब्या जाती है। यदि ज़्यादा देर लगे, तो रिंगणी अथवा कपासी किसी एक की जड़ का ๅ। काढ़ा पिलायें। २ छटाँक जड़ को १½ सेर पानी में मिलाकर उबाले, और जब आध सेर पानी रह जाय, तब यह गुनगुना काढ़ा पिलाये।

(५) बच्चे का ठीक न होना—

बच्चे का शरीर विशेष बड़ा और गर्भद्वार छोटा हो, तो पशु-चिकित्सक से चीरा लगवा दे ताकि प्रसव ठीक से हो सके।

कभी कभी चोट लगने, बीमारी या गर्भाशय की विकृति से बच्चा ठीक से नहीं हो पाता, वह टेढ़ा हो जाता है। इस दशा में चतुर चिकित्सक को दिखाये, ज़रा भी देर न करें। गाय की योनि में हाथ डालने के पहले हाथ को सदैव ख़ूब साफ़ कर लेना चाहिए व नाख़ून भी काट कर साफ कर ले। कृमिनाशक घोल से धोने के बाद हाथों पर कुछ गुनगुना सरसों या तिल का साफ़ तेल, जिसमें कपूर मिला हो, मल ले। इस तरह सँभालकर ही हाथ गाय के शरीर के भीतर डाले।

कठिन परिस्थिति होने पर गाय को विधिवत् रस्सी से बाँधकर या अगले दोनों पैरोंको ज़रा नीचे की ओर झुकाकर तथा गाय को ख़ूब अच्छी तरह पकड़कर इलाज किया जाता है। मवेशी अस्पताल में गाय को खड़े रखने के कठघरे एवं इस्तमाल करने के सभी औज़ार तैयार रहते हैं। मम्भव हो, तो गाय को वहीं ले जाय।

गो-पालक को चिकित्सक के आने तक, बरती जानेवाली चीज़ें जैसे—तेज़ चाकू, क़ैंची, थोड़ी सी साफ़ चिकनी डोरी, सुई, आदि—कृमिनाशक घोल में उबाल कर तैयार कर लेना चाहिए। साथ ही गरम पानी, लाइसोल, तेल, रस्सी तथा आग भी तैयार रक्खे, ताकि इलाज में सहूलियत रहे।

विकृतप्रसूति एक बड़ा गम्भीर विषय है। ज़रा भी देर न लगाये, बल्कि तुरन्त ही जानकार मवेशी-डाक्टर या अनुभवी ग्वाले को बुला ले। यदि अनुभव नहीं है तो स्वयं गाय को न छेड़े, वरना नुक़सान होने की अधिक सम्भावना रहेगी।

पालक की स्वतः की जानकारी के लिए केवल यहाँ थोड़ा-सा विवरण लिखा जाता है। इलाज करने के पहले गाय को खड़े रखकर उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिए। गाय के पहले ब्यांत का ब्योरा, पानी की थैली का हाल और पीड़ा कितनी देर से हो रही है इत्यादि सभी बातें मालम कर लेनी चाहिए। प्रसव की ख़ासकर ५ परिस्थितियाँ होती हैं—

(१) बच्चे के सिर का अगले पैरों के नीचे आजाना।

(२) बच्चे के अगले एक या दोनों पैरों का पीछे की ओर मुड़ जाना।

(३) बच्चे का मुड़ जाना और केवल अगले पैरों का ही दिखायी पड़ना।

(४) बच्चे के सिर का पीछे और पुट्ठोंका आगे की ओर हो जाना।

(५) बच्चे का अपने ठीक स्थान से हट जाना।

उपचार—जहाँ तक मम्भव हो, बच्चे को गर्भाशय में ठीक स्थिति में रखकर गाय को आप ही ब्याने में सहायता पहुँचाये। ऐसी गाय को ၂।। घी और ၂१ गरम दूध मिलाकर पिलाने से ब्याने में सहूलियत हो जायगी।

२।। तोले निर्विषी की जड़ को ၂।। पानी में घोटकर और ज़रा गरम करके पिलाये। इससे बच्चा फ़ौरन बाहर निकल आता है।

गाय के योनिद्वार और अपत्य-मार्ग पर नीचे लिखा लेप लगा देने से वह छिलने न पायेगा। ၂१ सरसों को पीसकर ।၂ पानी में १५ मिनट तक उबाले, फिर छान ले। ठंडा करने पर यह गाढ़ा-सा चिकना पदार्थ लगाने लायक़ हो जायगा।

हर स्थिति में गर्भमुख पर आये हुए बच्चे को भीतर की ओर वापस ढकेलकर ज़्यादा जगह पाने पर मुड़े हुए हाथ, पैर व सिर ठीक करके रख दे। कुछ देर में गाय ख़ुद ही ब्या जायगी। अगर देर होती दिखायी दे, तो दोनों हाथों से अगले पैरों और सिर को थामकर सावधानी से 'बच्चे को बाहर निकाल ले। ध्यान रहे कि गाय को अनावश्यक कष्ट न पहुँचे।

स्थिति (क)—बच्चे को अन्दर की ओर ढकेलकर काफ़ी जगह पाने पर उसके अगले दोनों पैर नीचे और बराबर करके झुके हुए सिर को सीधा करे और उसे पैरों पर टेककर स्वाभाविक स्थिति-सा बना दे। कुछ देर बाद गाय बच्चे को बाहर कर देगी।
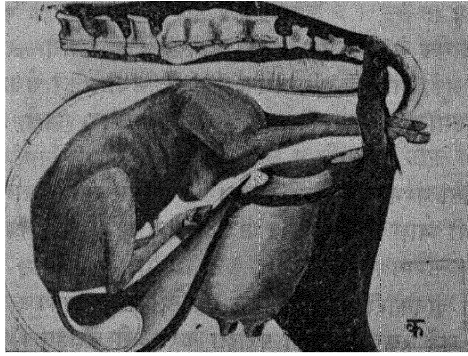
स्थिति (ख)—बच्चे को पीछे ढकेलकर उसके पैरों को अपने हाथ से ठीक व सीधा कर दे। इस कार्य के लिए सुतली भी काम में लायी जाती है। पहले पैरों को सुतली से बाँध दे, फिर बच्चे को अन्दर करने के बाद सुतली को खींचकर ठीक परिस्थिति बना दे।
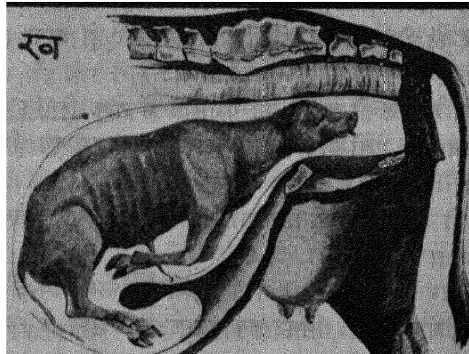
स्थिति (ग)——बच्चे को गर्भाशय में करके उसका सिर उठाकर ठीक से रख दे। यदि बच्चा उलट गया हो, तो उसे सीधा कर दे। इस परिस्थिति में विशेष सावधानी करनी पड़ती है।
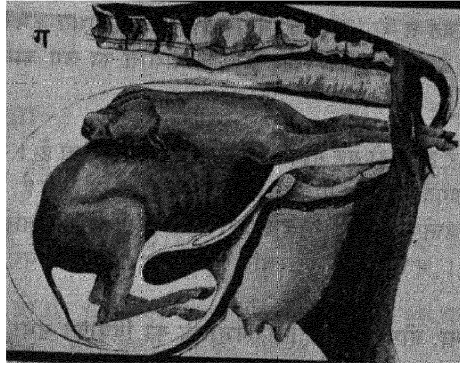
स्थिति (घ)——यह और भी गम्भीर स्थिति है। सारे बच्चे को घुमाकर उसका सिर और अगले पैर ठीक करने की कोशिश करे। यदि ऐसा सम्भव न हो, तो सहारे से बच्चे को दोनों हाथों से पकड़कर खींच ले।
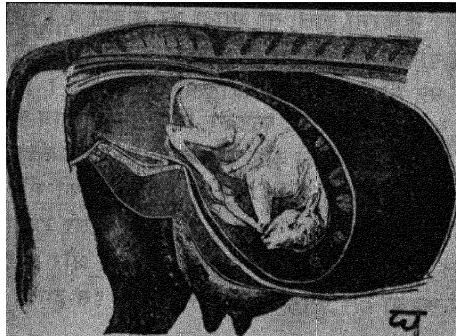
ब्या जाने के बाद गाय को अकेली न छोड़े। उसे सूखी, साफ़, गरम जगह पर बैठाकर बराबर सहलायें और उसका कष्ट कम करने की कोशिश करे। ऽ।। घी और ऽ- काली मिर्च पीसकर खिलाने से या थोड़ी सी देशी शराब दूध में मिलाकर देने से उसे बल मिलेगा। हर तरह के विकृत प्रसूत में गाय की खूब सँभाल रखनी चाहिए। गाय बांधने के स्थान के पास ज़रा-सा लोबान या अजवाइन का धुआँ कर देना भी अच्छा है।

गाय को प्रसूत रोगों के बाद कुछ दिनों तक चना, मटर, ग्वार, बिनौला, और खली आदि प्रोटीन वाले पदार्थों की सानी और पानी से गीला चारा न दे। साफ़ हरी घास या मुलायम भूसा सामने रख दे, जिससे उसका मन बहले।

गाय को एक ही करवट न बैठा रहने दे, नहीं तो उसका गर्भाशय कमज़ोर पड़ जायगा। ठण्ड हो तो उसपर झूल डाल दे, क्योंकि उस समय हवा और शीत का लग जाना हानिकारक है।

(६) मरा बच्चा—

यदि पेट में बच्चा मर जाय तो यह गाय के लिए भी घातक होता है। मरा हुआ बच्चा पेट में पड़ा रहे, तो वह सड़ने लगता है और गाय के शरीर में ज़हर फैला देता है, जिससे गाय का पेट फूल जाता है। उसके पास जानेपर दुर्गन्ध मालूम देती है। जहर के बढ़ जाने पर गाय के मरने की सम्भावना हो जाती है। अतः ऐसी परिस्थिति होने पर गाय का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए।

कारण—चोट लगना, बीमारी का होना, गर्भाशय का विषाक्त तथा संकीर्ण होना, ख़ाली या ऊँची जगह में भागना।

लक्षण—बुख़ार हो आना, बीमार होना, आँखें डगडगाना, ओंठ नीले पड़ जाना, बेहद बेचैन-सी होकर बार बार उठना-बैठना, नीली नसें चमकना, शरीर का सुस्त तथा भारी पड़ना।

उपचार—पहले बच्चे को ठीक स्थिति में रख दे और ऐसा इलाज करे कि गाय ठीक से ब्या जाय। अक्सर प्रकृति स्वयं ही ख़राब वस्तु को बाहर निकालने की कोशिश करती है।

अगर गाय बच्चा बाहर न करती दीखे, तो ज़्यादा देर न होने दे। चिकित्सक तुरन्त ही अपने हाथ तैयार करके गाय की योनि में से धीरे धीरे, गाय के आराम का ख्याल रखते हुए, बच्चे को निकाल ले। इस काम में वह डोरी आदि की सहायता ले सकता है। फिर भी बच्चा न निकल पाये, तो तैयार औज़ार से मरे बच्चे को काट काटकर निकालने से गाय की जान बच सकती है।

इसके बाद फ़ौरन ही गाय की योनि को नीम की पत्तियों या बबूल की छाल डाल कर उबाले हुए या लाइसोल पड़े हुए गरम पानी से भली भाँति धोये और गर्भाशय को भी डूश-द्वारा साफ़ कर दे। फिर गाय की योनि को कपड़े से पोंछकर सुखा दे। उसका गीला रहना हानिकारक है। साफ़, सूखी नरम व नयी पुआल बिछी हुई जगह पर गाय को बिठा दे और ढाँढस बँधाये।

गाय के योनिद्वार पर कड़ुआ तेल चुपड़ दे। ध्यान रहे कि इस हालत में भी ज़ेर ज़रूर बाहर निकल जानी चाहिए।

(७) ब्याने के बाद दरद—

कारण—गर्भाशय के विशेष सिकुड़ने, मल के ठीक तौर पर न निकलने अथवा प्रसव के समय किसी प्रकार के आघात से ब्याने के बाद ज़्यादा दरद होने लगता है।

लक्षण—परेशान व बेचैन होकर बार बार उठना-बैठना, उदास रहना।

उपचार—(क) बेल या खम्भार की थोड़ी-सी पत्तियाँ खिलाये।

(ख) १ तोला यवक्षार, और १ छटाँक गुड़ ϛ।। गरम जल में घोलकर पिलाये। इसे १ घंटे के अन्तर से ४ बार पिलाना चाहिए।

(ग) दशमूल का काढ़ा ϛ=, गुड़ ϛ=, यवक्षार १ तो० मिलाकर गुनगुना पिलाये।

(घ) चोकरदार चने का आटा ϛ।, अजवाइन ϛ− व थोड़ा सा नमक मिलाकर रोटी सेंककर खिलाये।

(८) ज़ेर न गिरना—

यदि २४ घंटे बाद भी गाय की ज़ेर न गिरे, तो इसका परिणाम भयंकर एवं घातक हो जाता है।

कारण—ब्याते वक्त ठण्ड लग जाना, शारीरिक कमज़ोरी, ज़ेर का उलझा और चिपका रह जाना।

उपचार १—(क) दो सेर सूखे धान खिलाने से ज़ेर जल्दी निकल पड़ती है।

(ख) बसूर (बाँस) की हरी पत्ती तोड़कर खिलाये।

(ग) धान के हरे पौधे खिलाये।

(घ) ϛ।। गुड़, ϛ।। बेलगिरी, १ तोला सोंठ, २ तोले अजवाइन, ४ माशे गाजर के बीज इनकी ϛ२ पानी में औटी बनाकर गरम गरम खिलाये।

(ङ) ϛ। बाँस के पत्ते ϛ= खारी नमक पानी में उबालकर पिलाये।

(च) डूश करके गर्भाशय को धोना बहुत फ़ायदेमन्द है।

२—यदि ज़ेर गर्भाशय में कहीं चिपकी रह जाय, तो जन्तुघ्न घोल से हाथ साफ़ करके व तेल लगाकर गाय की बच्चेदानी में धीरे धीरे डाले और चारों तरफ़ से ज़ेर को छुटा ले। बाद में योनि पर सरसों का तेल या देशी शराब मल दे।

(९) ज़ेर खा लेना—

कारण—ग्वाले की असावधानीवश, बच्चे को चाटते समय, गाय अपनी गिरी हुई ज़ेर को खुद ही खा सकती है। यह उसके लिए संघातक होता है। ज़ेर पेट में जाकर सड़ने लगती और दुर्गन्ध पैदा कर देती है। इसलिए ज़ेर के गिरते ही तुरन्त उसे हटाकर गोशाला से दूर जमीन में गाड़ देना चाहिए।

लक्षण—गाय दूध देना कम कर देगी, और सुस्त व बेचैन रहेगी। उसका मूत्र व गोबर दुर्गन्धपूर्ण तथा दूषित हो जायँगे। बीमारी बढ़ जाने पर वह पागल होकर मारने दौड़ेगी।

उपचार—दस्त लाने के लिए कोई एक तेज़ जुलाब की दवा—जैसे, शुद्ध जमालगोटा ३ माशे देने से गाय का पेट साफ़ हो जायगा। इसके बाद उसे संकोचन एवं गरम दवा—गुड़, अजवाइन, सोंठ, गाजर के बीज इन सबको एक-एक छटाँक लेकर २ सेर पानी में उबाल कर औटी सुबह-शाम दोनों समय दे। इससे ज़ेर बाहर निकल पड़ेगी।

(१०) प्रसूत ज्वर—

ब्याने के बाद हो सकनेवाला यह एक भयंकर रोग है।

कारण—ब्याने में विशेष कष्ट होना, बच्चे की उतरी हुई झिल्ली का गर्भ के अन्दर सड़ जाना, ब्याते वक्त टंड लग जाना, विशेष कमजोरी, मूढ़-गर्भ के बाद या उसको निकालते समय हाथों की अशुद्धता या नाख़ूनों के विषैले प्रभाव से प्रसूत ज्वर हो जाता है।

लक्षण—गाय के शरीर का तापमान बढ़ जायगा, किन्तु कान ठण्डे हो जायँगे। गाय सुस्त और कमज़ोर हो जायगी। उसकी भूख कम हो जायगी। वह दूध कम देगी।

उपचार—गाय को घी मिली रेचक दवा दे, दाना बन्द कर दे, और-पशुओं से अलग हटाकर रक्खे।

(क) सोंठ १ तोला, अलसी १ तो०, काली मिर्च १ तोला, नौसादर ½ तोला, इन सब को कूट पीस कर ͻ।। गुड़ में मिलाकर खिलाये।

(ख) १ तोला क़लमीशोरा, ͻ१ गुनगुने पानी में मिलाकर पिलाये।

(ग) ͻ= ग्लिसरीन और १० बूँद कार्बोलिक-एसिड को थोड़े-से पानी में डालकर पिलाये। प्रसूत में पहले बतायी गयी सभी हिदायतों का ख्याल रक्खे।

(घ) सलफोनामाइड (Sulphonamide) का १ आउंस पाउडर शीरे में मिलाकर सुबह शाम देने से बुख़ार ठीक हो जायगा।

(ङ) ६९३ एम० बी० (693 M. B.) अथवा प्रोसेप्टीसीन (Proseptisin) की गोलियां डाक्टर से पूछकर दे, अथवा डाक्टर से सोलूसेप्टीसीन (Soluseptisin) के इंजेक्शन लगवाये।

(११) गर्भाशय का अस्थिर होना—

कारण—गर्भाशय का भली भाँति न सिकुड़ना, प्रसूति में दुःख पाना।

लक्षण—वायु के प्रकोप के कारण पीड़ा होना, पेट के किसी भाग से अचानक दर्द का उठना, व्यथा से छटपटाना। वायु की अधिकता के कारण इस दरद को "वायुगोला" भी कहा जाता है। इस दर्द का पहचानना मुश्किल है। गाय की उदासी और चारे की अरुचि व उसके चिल्लाने से ही यह जाना जाता है।

उपचार—विजयसार की लकड़ी का छोटा-सा टुकड़ा पानी में १ घंटा भर तक भीगा रहने दे। यह ͻ१ पानी पिलाये। इसका रंग कुछ लाल-नीलिमा लिये हुए होगा।

(१२) योनि में कीड़े पड़जाना—

कारण—प्रसव के बाद अपत्य-मार्ग व योनि को ठीक से न साफ करना, वहां चोट या रगड़ का लगना, अथवा मैल लगा रहना।

लक्षण—सफ़ेद कीड़े दिखायी देंगे, ख़ून का निकलना, मांस चमकना, बदबूदार पानी-सा निकलना। खुजली पड़ने के कारण गाय बराबर पूँछ चलाती रहेगी।

उपचार---(क) नीम की पत्तियों या बबूल की छाल को उबाल कर या पोटाश-परमैंगनेट, अथवा लाइसोल को पानी में मिलाकर डूश करे। फिर ऽ= तिल का तेल, ऽ= तारपीन का तेल इन दोनों को मिलाकर रुई का फाया भिगोकर भर दे। दिन में २ या ३ बार यह इलाज करे।

(ख) बरगद की छाल का काढ़ा बनाकर दिन में ३-४ बार धोये।

(ग) बनकचरी की पत्ती कुचलकर (पीसकर नहीं) पोटली बना सींग पर बाँध देने से कीड़े अपने आप मरते देखे गये हैं।

(घ) फिनायल पड़े गरम पानी से धोने के बाद फिनायल का फाया भिगोकर योनि पर रख दे। डी० डी० टी० दवा को भी इसी भाँति इस्तेमाल किया जा सकता है।

(ङ) कैथा की हरी पत्ती हींग डालकर पीसकर घाव में भर दे।

(च) योनि सूज गयी हो, तो ब्राण्डी में भीगा हुआ कपड़ा वहाँ रख दे।

(१३) बच्चे-दानी का बाहर निकलना या बाँस निकलना—

कारण---विकृत ब्याँत, कमज़ोरी, जल्दी-जल्दी ब्याना, बार बार गर्भपात, बुढ़ापा।

लक्षण---ढीली पड़ जाने के कारण बच्चेदानी गर्भद्वार के मुँह पर आ जाती है। ठीक इलाज न किया जाय, तो वह बार बार निकलने-सी लगती है। गाय इससे कमज़ोर हो जाती है और दुबारा गाभिन नहीं होती। उसे चलने-फिरने में भी तकलीफ़ होती है।

उपचार---जब बाँस निकल जाय, तो गाय के पिछले पैरों को ऊँची ज़मीन पर खड़ा करे। सामने के पैर नीचे की ओर रहें। अब गाय का योनिद्वार तथा बाहर निकलता हुआ गर्भाशय फिटकरी मिले हुए पानी से ख़ूब धो दे और भीतर की ओर दबा दे। सुतली की बनी हुई जाली में रुई रखकर इस स्थान पर बाँध दे। गर्भमार्ग को सिकोड़ने के लिए थोड़ी-थोड़ी देर से फिटकरी के पानी का छींटा देता रहे। फिटकरी के बदले बबूल की छाल या माजूफल का क्वाथ भी धोने के काम में लाया जा सकता है। शराब का फाया रखने से भी योनि-संकोचन होता है।

गाय को पीने के लिए ऽ। फिटकरी ऽ१। पानी में घोलकर या ऽ। शराब सुबह शाम दोनों वक्त ४-५ दिन तक दे।

ऽ- गोंद का फूला और ऽ। सूखा कनेर खिलाने के बाद ऽ२ पानी में ऽ०॥ रसौत घोलकर सुबह-शाम दोनों वक्त ४-५ दिन तक पिलाये।

१ तोला सोंठ, १ तो० काली मिर्च, ऽ। गरम घी में मिलाकर पिलाये।

(१४) दूध न उतरना—

कारण---गाभिन होने पर गाय का दुहना एकाएक बन्द कर देने से दूध थनों में सूखकर पपड़ी-सा बन जाता है। ओसर गाय को यदि पहले से न सिखाया जाय, तो वह कभी कभी दूध पूरी तौर से दुहने नहीं देती। दूध-देती गाय के भी थनों में दूध बचा रह जाय, तो यह वहीं जम जायगा और नया दूध न उतर पायेगा। विषैले जन्तु के काटने और ठण्ड लग जाने से भी दूध का बहाव कम हो जाता है।

लक्षण——दूध दुहते वक्त गाय को कष्ट होना और हवाना न छूने देना।

उपचार——(क) गाय के ऐन और थनों को नीम की पत्तियाँ या पोटाश-परमैगनेट पड़े हुए गरम पानी से धोकर पोंछ दे। फिर उनपर घी और सेंधा नमक मिलाकर या खालिस ब्रांडी की मालिश दिन में ३-४ बार करने के बाद धीरे धीरे गाय को दुहे।

(ख) सन के बीजों का ऽ१ आटा, ऽ१ शीरा मिला कर इसकी दो खुराकें कर ले। फिर प्रतिदिन इसे दोनों समय लगभग ४-५ दिन तक देने से दूध ज़रूर उतरने लगेगा।

(ग) ऽ– इन्द्रायण की जड़ को पीसकर थनों के मुँह पर लेप करे। इससे छिद्र ज़रूर खुल जायँगे।

(१५) साँड़ू (थनों की बीमारी)—

कारण——समय-कुसमय दुहना, थनों में दूध का बच रहना। बच्चे द्वारा थनों का काटा जाना या उनपर बेजा दबाव पड़ना। नाखून चुभना, चोट, कंकड़ व काँटे का लग जाना; सीलनदार ठण्ड लगना अथवा गोबर करते समय गाय का डरना और चौंकना। विषैले कीड़े के काटने या सड़ी-गली सानी से भी यह रोग हो जाता है।

लक्षण——ऐन का सूजना, थनों का लाल पड़ जाना, दुहने पर थनों में से पीप, चेंप या रक्त का निकलना और कष्ट होना तथा पिछले पैरों का भारी उठना।

उपचार——किसी भी कृमिनाशक घोल से या पोस्त के एक दो डोंढ़े डालकर उबाले हुए पानी से ऐन को सेंक दे। नीचे लिखी कोई एक दवा मलने के बाद सहला-सहलाकर ४ घंटे के अन्तर से गाय को थोड़ा-थोड़ा दुहे। इस चेंप या विकृत दूध को फेंक दे।

गाय को ३ दिन तक हर रोज़ नीचे लिखी दवाओं में से कोई एक दवा पिलाये:——

(क) ऽ।। घी, ऽ– काली मिर्च, ऽ– नीबू का रस सब को मिलाकर दे।

(ख) ऽ१ घी, ऽ१ पुराना गुड़, ऽ। काला ज़ीरा, ऽ। काली मिर्च सब को घोट छानकर दो खुराक में पिलाये।

(ग) ऽ।। दही, ऽ। मीठा तेल मिलाकर एक खुराक में दे।

मालिश के लिए——

(क) ब्रांडी अथवा एरण्ड या सरसों के ऽ।। तेल में १ तोला नमक और १ तोला अजवाइन पीसकर मिला ले।

(ख) शेर की चर्बी का धुआँ ऐन पर दे या खुश्क सेंक करे।

(१६) अँगियारी या मुँहसड़ी—

साँड़ से मिलती-जुलती यह एक क़िस्म की थनों की बीमारी होती है। प्रायः इसके कारण और उपचार ऊपर लिखे साँड़ रोग के-से ही हैं।

लक्षण——थनों के छिद्रों में पपड़ी के पड़ जाने पर उसको नोच कर फेंक देने से वह बढ़कर फुंसी हो जायगी, जिससे थनों के भीतर सूजन पैदा होगी।

उपचार—साँड़ रोग की तरह ही धोयें, सेंके और मालिश करे।

/१ पानी में /- कत्था घोलकर दिन में दो बार पिलाये। शेर की चरबी का धुआँ दे, या मालिश करे।

(१७) चन्द्री—

कारण—यह थनों की भयंकर बीमारी है। इसके कारण—साँड़ जैसे रोग या ठंड लगना, दबाव पड़ना, व कट जाना आदि हैं।

लक्षण—थनों पर पहले तो छोटी-सी गिल्टी हो जाती है, जो बढ़ने पर सूज जाती है और थनों में पीप पड़ जाता है।

उपचार—लक्षण देखते ही तुरन्त उपचार करे, क्योंकि पीप पड़ जाने पर मुमकिन है कि चीरा भी लगवाना पड़ जाय।

पहले नीम, पोटैशियम परमैंगनेट या किसी भी कृमिनाशक द्रववाले पानी से थनों को धो दे। फिर तवे पर रखकर गरम की गयी रेह मिट्टी की पोटली से थन और ऐन के आसपास सेंके। इसके बाद सुअर की चर्बी और तारपीन का तेल मिलाकर मालिश कर दे। दिन में २-४ बार थोड़ा २ दुहकर थनों से दूध की बत्ती सी निकाल कर फेंके।

थनों पर छाले पड़ जायँ, तो मक्खन, कालीज़ीरी और सेंधा नमक पीस तथा फंटकर लगा दे।

नीम का घी भी बहुत फ़ायदेमन्द है। नीम की कोपलों को पीसकर घी में डालकर पका करके घी छान ले। इन दोनों में से कोई भी एक लेप छालों पर दो घंटे के अन्तर से लगाना रहे।

पेट साफ़ करने के लिए कोई रेचक दवा दे, या /॥ पानी में १ छटाँक कलमीशोरा घोलकर पिलाये।

घाव के फूट निकलने पर आक का दूध २ तोले, साँप की केंचुल २ तोले, लहसुन २ तोले इन सब को पीस और फंटकर लगा दे। इससे घाव साफ़ हो जायगा।

(१८) थनों का मारा जाना—

कारण—थनों के किसी भी रोग की सेवा ठीक तौर पर न होने से वह हमेशा के लिए सिकुड़-कर बेकार हो जाता है।

लक्षण—सिकुड़ कर छोटा होना, या गिर पड़ना।

उपचार—ऐसी गाय के गाभिन होने पर उसे हर उजियाले पाख की दूइज के दिन /। सरसों का तेल पिलाना और ब्याने के १ घंटा पहले ½ छटाँक हींग, चने की १ रोटी में रखकर, खिलाना कुछ लोग लाभकारी मानते हैं।

ब्याने के बाद इस थन पर घी और नमक मिलाकर मालिश करे। बच्चे का मुँह इस थन से लगाकर हटा ले, ताकि बच्चा इस थन का जमा हुआ और हानिकर दूध न पी पाये। इसी तरह से ४-५ रोज़ तक दुहने के बाद खीस को पेड़ के नीचे सिरा दे और पीने के काम में न लाये। इस थन

से जब साफ़ और अच्छा दूध निकलने लग जाय, तब उसे बच्चे को ही ज़्यादा पिलाये; क्योंकि बच्चे के मुंह का दबाव पड़ने से वहाँ की नसें खुल जायँगी ।

(क) कुछ दिनों पहले ही थन मारा गया हो, तो ऽ= काली मिर्च, ऽ=कालीज़ीरी और ऽ।। गरम घी सब को मिलाकर ३-४ दिन तक लगातार पिलाये और इसी से थन की मालिश भी करे ।

(ख) कागज़ी नीबू का रस २ तोला और घी ऽ। फेंटकर दोनों वक्त दुहने के बाद पिलाने से मारा हुआ थन खुल सकता है, ऐसा कहा जाता है ।

(१९) थन-प्रदाह—

कारण—दूध के विशेष बहाव या हाथ से अनुचित दबाव पड़ने, बच्चे के मुँह मार देने अथवा विषैले जन्तु के काट लेने से थन सूज जायँगे ।

लक्षण—थन गरम और लाल हो कर सूज जायँगे और छूने से दर्द करेंगे । दुहे जानेवाले दूध का रंग बिगड़ जायगा ।

उपचार—नीम या किसी कृमिनाशक द्रव मिले हुए पानी से सेंके । गेरू और अजवाइन को थोड़े से पानी के साथ पकाकर उसका लेप थनों पर कर दे । घी, नमक और हल्दी को बराबर मिलाकर लेप करना भी बहुत अच्छा है ।

ऽ- हीरा कसीस, ऽ०।। मेहँदी, ज़रा-सा कपूर व ऽ= मक्खन मिलाकर थनों पर लगाने से थनों का घाव शीघ्र भर जाता है ।

थनों के नीचे गरम तवा रखकर उसपर दूध की धार छोड़ने से भाप द्वारा सेंक पहुँचाना भी अच्छा है ।

रेचक दवा या ऽ- कलमीशोरा तथा ऽ।। गरम पानी मिलाकर ३ दिन तक पिलाये ।

(२०) दूध का ज्वर—

कारण—दूध बनते समय दुग्ध-ग्रंथियों में एक प्रकार का रस बनता है । इस रस के कम या ज़्यादा बनने अथवा दूध भर जाने और पूरी तौर से न दुहे जाने से गाय को बुख़ार हो आयेगा ।

लक्षण—गाय का शरीर गर्म हो जायगा, आँखें चढ़ जायँगी और थन सूज जायँगे । वह ठीक से खड़ी न रह पायेगी तथा गर्दन एक ओरको मोड़ लेगी और पैरों को पेट के नीचे सिकोड़ लेगी ।

उपचार—थनों को कृमिनाशक घोल से धोये । सरसों के तेल में कपूर को मिलाकर उनपर मालिश करे ।

(क) रसकपूर की उर्द के बराबर ५ गोलियाँ बनाले । हरे कच्चे केले को चीरकर उसके बीच में इस गोली को रख कर गाय को खिला दे ।

(ख) रेचक दवा दे और साधारण बुखार के उपचार करे ।

आठवाँ अध्याय

बैलों के रोग

प्रसूत-आदि रोगों को छोड़कर गाय बैलों के प्राय: सभी रोग एक समान ही होते हैं। किन्तु कुछ रोग ऐसे भी हैं, जो सिर्फ़ बैलों को ही हो सकते हैं। हर रोग पर प्रारम्भिक चिकित्सा और सफ़ाई आदि के नियमों का ध्यान रखना ज़रूरी है।

(१) गोखरू जाना—

अगले पैरों की नसों का इधर उधर हट जाना।

कारण—अधिक बोझ ढोना, ऊँची-नीची ज़मीन पर झटके के साथ चलना, गिरना, लड़ना, अचानक चोट लगना आदि।

लक्षण—पशु गर्दन न झुका सकेगा, आँखें लाल हो जायँगी, चलने में तकलीफ़ होगी व अगले पैर कुछ सूज जायँगे।

उपचार—(क) ऽ।। आँबा हल्दी, ऽ= नमक ऽ। भर गेरूमें मिलाकर पीस ले और ऽ। तेल में भून ले। फिर इसमें ऽ- सोंठ मिला कर इस मरहम की मालिश करे।

(ख) सुअर की चर्बी मले।

(ग) पशु को लिटाकर उसके अगले पैर खींचकर नसों को ठीक से जानकार द्वारा बैठा दे। इसके बाद अलसी का तेल मलकर पट्टी बाँध दे।

(घ) यह रोग मन्त्र से झाड़ने पर भी ठीक हो जाता है, ऐसा कुछ लोगों का कथन है।

(२) कन्धे आ जाना—

कन्धों में सूजन व दर्द होना।

कारण—जुआ की खरोंच लगने से घाव का हो जाना, झटके और दबाव से नस का टरक जाना, चोट लगना।

लक्षण—सूजन व दर्द तथा बुख़ार भी हो आता है।

उपचार—(क) आँबा-हल्दी पीसकर इस बुकनी की मालिश करे।

(ख) बासी ठण्डे पानी की पट्टी कन्धों पर रखकर उसे पानी से तर करता रहे।

(ग) यदि घाव हो जाय, तो ऽ। मोम को पकाकर उसमें चमड़े की ऽ- राख डालकर लगाये।

(घ) ऽ- मुसब्बर को पानी के छींटे डालकर पीस ले और इसका लेप कर दे।

(ङ) अलसी का तेल मले और सेंके।

(च) २ तोले हल्दी, ३ माशे अफ़ीम, ऽ- सरसों का तेल मिलाकर लेप करे।

(छ) ऽ- सोये के बीज, तम्बाकू के पत्तों की २ तोले राख, १ तोला गरगरैया की बीट इन सबों को पीसकर ज़रा सा पानी मिलाकर गरम करके लेप करे।

(३) फोतों का सूजना—

कारण—बादी बढ़ जाने, विषैले कीड़े के काटने, चोट लगने, दूषित जल पीने, अधिक कमज़ोरी और परिश्रम से यह होता है।

लक्षण—बैल पिछले पैरों को फैलाकर विशेष तकलीफ़ से चलता है, बुख़ार हो आता है, फोते सूज जाते हैं। यह रोग साँड़ों में अधिकतर पाया जाता है।

उपचार—(क) ठण्डे पानी में भिगोकर कपड़ा रक्खे, पशु को लिटा दे, आराम दे।

(ख) ऽ= हल्दी, ऽ- चूना, १ तोला फिटकरी व ऽ- सरसों का तेल कुछ गरम करके लेप करे।

(ग) इमली के ऽ। पीसे हुए पत्ते और ऽ- नमक मिलाकर लेप करे।

(घ) तम्बाकू के पत्ते और घी गरम करके लगाये।

(ङ) १ माशा कपूर, १ तोला कलमीशोरा, ऽ- शराब, सबको घोलकर ऽ।। पानी के साथ पिलाये।

(च) रेचक दवा देकर पेट साफ़ कर दे।

(४) फाल लगना—

कारण—हल चलाते समय हरवाहे की असावधानी, किसी पेड़ या गन्ने की जड़ अथवा मेंड़ में अटककर फाल के उछलने, बैलों के चौंकने व अचानक भागने, अत्यन्त ढीले व पानी भरे खेतों को जोतने से उसके चोट लग जाती है।

लक्षण—पिछले २ पैरों में या किसी एक पैर में घाव होना और ख़ून निकलना।

उपचार—(क) बैल के जिस पैर में फाल लगा हो, उसके विपरीत सींग को खुरचकर और उसे एरंड के पत्ते में रखकर खिलाना खेतिहर लोग फ़ायदेमन्द मानते हैं।

(ख) ऽ। खरेंटी के पत्ते व ऽ०।। नमक डाल पीसकर पैर में पुल्टिश बाँध दे।

(ग) शीशम के पत्ते या बबूल की छाल डालकर उबाले हुए पानी को घाव पर डाले।

(घ) पकने पर कोई घाव वाला मरहम लगाये।

(५) टाल लगना—

कारण—गाड़ी या रहलू में भागते हुए एकदम रुकने, या गाड़ी में जानवर के जुतने की जगह कम होने से पहिया लग सकता है।

लक्षण—पिछले पैरों के खुरों के पास या घुटने के पास चोट लगना, सूजन, घाव या गुमड़ी, दर्द, नसों का तनाव, लँगड़ाना, उठना-बैठना।

उपचार—(क) यदि खुरों के पास घाव लगा हो, तो टिंचर आइडीन अथवा स्प्रिट लगाये। घाव पक जाय, तो कोई मरहम लगाये।

(ख) गुमड़ी हो, तो आँबा हल्दी और चूने का लेप कर दे।

(ग) आटे की पुल्टिश बाँधे।

(ध) हारसिंगार के पत्ते अथवा तीन साल का पुराना फूस नमक डाल कर पीसले और उसकी पुल्टिश बाँधे।

नवाँ अध्याय

भयङ्कर रोग

इस श्रेणी के रोगों की चिकित्सा विशेष सावधानी और समझ-बूझके साथ करनी चाहिए। ज़रा-सी भी लापरवाही और ग़लत इलाज से पशु के मर जाने का डर रहता है।

रोगी पशु को आराम से साफ़, सूखी और गरम जगह में रक्खे। उसके खाने पीने का प्रवन्ध अलग ही करना चाहिए। उसे शाला के अन्य पशुओं से हटाकर रक्खा जाय, तो ठीक है। ठंड और वर्षा से रोगी पशु को बचाना चाहिए। उस पर झूल डाल दे। शाला में थोड़े-से गन्धक तथा नीम का धुआँ शाम के वक्त कर दे, तो मक्खी-मच्छर न काटेंगे।

रोग के बिगड़ जाने पर पशु-चिकित्सक को दिखाने से ज़्यादा फ़ायदा नहीं हो पाता, क्योंकि बीमारी बे-क़ाबू हो जाती है, इसलिए रोग के होते ही पशु-चिकित्सक को तुरंत दिखा दें।

ऐसे पशु को खाने के लिए चने-मटर वग़ैरह के दाने और खली न दे। दूब आदि हरी ही घासें अच्छी होती हैं। गेहूँ का साफ़ भूसा भी दिया जा सकता है, मगर भारी और देर से पचनेवाला चारा-दाना न दे। कुछ रोगों में गेहूँ का चोकर खिलाया जा सकता है।

पशुओं का तापमानजाननेवाला बड़ा थरमामीटर लगाकर रोगी की गरमी मालूम कर लेनी चाहिए। पशुओं के थरमामीटर अगले बखुए या गुदा में लगाया जाता है।

(१) निमोनिया—

ठंड के दिनों में नाज़ुक तबियतवाले जानवरों जैसे—बछड़े, बछिया और ओसर गायों—को अक्सर यह रोग हो जाता है।

कारण—ठंडी से गरम और गरम से ठंडी जगह में एकाएक आना-जाना, बीमारी के बाद फेफड़ों का कमज़ोर रह जाना, पानी से भीगकर ठंड लगना, आदि।

लक्षण—थोड़ा बुख़ार शुरू होकर ख़ूब बढ़ जायगा, फेफड़ों में सूजन हो जाने से साँस भारी और तेज़ चलने लगेगी, दाँत पीसने लगेगा, खाँसी आयेगी, नाक से पानी गिरेगा, परेशान दिखायी देगा, आँखें अन्दर धँस जायँगी, प्राणवायु (आक्सीजन) के काफ़ी खींचने के लिए पशु हाँपने लगेगा। उसका रंग नीला पड़ने और पेट फूलने लगे, तो दशा भयानक समझनी चाहिए।

उपचार—मालिश करे, दवा दे, तापमान ले, गुनगुना पानी पिलाये।

(क) ऽ। यूकलिप्टस या तारपीन और ऽ।। सरसों के तेल को मिलाकर मालिश करे।

(ख) ऽ। नमक और ऽ- अजवाइन पीसकर मालिश करे।

(ग) सूखा सेंक करे, यूकलिप्टस का बफ़ारा दे और छाती पर राई की पुल्टिश बाँधे ।

(घ) यदि बुख़ार और बेचैनी बढ़ जाय, आँखें लाल हो जायँ, तो ठंडे पानी से देह को पोंछ दे ।

(ङ) ⟆= सोंठ, ⟆= अजवाइन, ⟆०॥ चाय की पत्ती, ⟆= मेथी, ⟆॥ गुड़ या शीरे को ⟆१ पानी में औटाकर यह गुनगुनी दवा सुबह शाम दोनों वक्त दे ।

(च) ४ माशे कपूर ⟆। लहसुन के साथ पीसकर खिलाये ।

(छ) ⟆॥ प्याज़ का रस निकालकर या ⟆। समूचा प्याज़ और ⟆– नमक खिलाये ।

(ज) ⟆॥ अलसी और ⟆१ चावल को पानी में औटाकर काँजी पिलाये ।

(झ) ४ माशे कपूर, १ माशे बीज धतूरा, १ तोला सोंठ, अड़ूसा के पत्तों का १ तोला रस, बेदाना अनार का १ तोला छिलका, इन सब को कूट पीस कर दो खुराकों में इस चूर्ण को गुड़ के साथ खिलाये ।

(ञ) ⟆१ देशी शराब, ⟆१ गरम दूध और २ अंडे फेंटकर गुनगुना ही पिलाये ।

(ट) ६९३ एम-बी० की गोलियाँ दे । ½ या १ छटाँक सोडा-बाइ-कार्ब-(Soda-bicarb) गुनगुने पानी में पिलाये ।

(ठ) सलफ़ापाइरीडीन (Sulphapyridine) की ७५ गोलियाँ पीसकर और शीरे में मिलाकर पहली ख़ुराक सुबह को पिला दे । फिर दूसरी ख़ुराक शाम को या ८ घंटे के बाद ५० गोलियों को पीसकर, शीरे में पिलाये । जब तक हालत ठीक न हो, सुबह शाम ५० गोलियाँ इसी तरह शीरे में मिलाकर बराबर दे ।

(२) दमा—

कारण—फेफड़ों की कमज़ोरी, संक्रमण ।

लक्षण—बार बार धाँसना, फेफड़ों के कमज़ोर होने से पशु पूरी तौर से साँस न ले सकेगा । श्वासनली में दमा के कीटाणु रहने लगते हैं, जिन्हें बाहर निकालने के लिए खाँसी आती है ।

उपचार—(क) आँवला ⟆= उबाले और सुखाकर पीस ले, ⟆१ शक्कर मिला सब छान ले, इसे ⟆॥ घी में भून ले । आटा, मट्ठा या पानी के साथ पशु को दे ।

(ख) धतूरे के १ माशा बीज, १ माशा कपूर, बाँस के पत्तों का १ तोला रस, इन सब को ⟆– देशी शराब में घोल ले । १ तोला अनार के छिलके, ⟆१ पानी में ख़ूब पकाये । जब पानी ⟆॥ रह जाय, तो दवा पड़ा हुआ यह घोल और ⟆= शीरा मिलाकर गरम-गरम दोनों वक्त में दे ।

(३) गठिया—

कारण—पूर्वजों से इसका आना, सर्दी लग जाना, अपच रहना, ख़ून साफ़ न रहना, पानी और सीलन में भीगते रहना, पानी बरसने पर जोड़ों के बल बैठे रहना, प्रसूति के बाद ठण्ड लगना—आदि ।

लक्षण—सबसे पहले पैरों के जोड़ों में सूजन व दर्द होगा । पूँछ की हड्डियों में भी सूजन आ जायगी । एक जोड़ के ज़रा ठीक होने तक दूसरा सूजकर दरद करने लगता है । गले व मुँह की

हड्डियाँ आँख और ओंठ भी सूज जाते हैं। गलघोंटू से इस बीमारी में थोड़ा-सा ही भेद है। अतएव विशेष सावधानी से रोगी पशु की परीक्षा करनी चाहिए।

उपचार—मालिश व सेंक करे, रेचक दवा दे।

(क) ऽ। लहसुन कुचलकर ऽ॥ तिल के तेल में पका ले। इस तेल की मालिश करे।

(ख) जोड़ों पर शेर की चर्बी बाँध दे या हल्की मालिश करे। इस चर्बी का धुआँ जोड़ों पर दे।

(ग) १ तोला कपूर, ऽ- तारपीन तथा ऽ। तिल का तेल मिलाकर मालिश करे।

(घ) पलाश के फूल या दूब को उबालकर जोड़ों पर बफारा दे।

(ङ) आक के पत्तों का ऽ१ रस ऽ॥ तिल के तेल में पका ले। रस के जल जाने पर शेष तेल की मालिश करे।

खिलाने की दवा—

(क) ऽ१ मेथी, ऽ॥ गुड़, ऽ= अजवाइन इन की चार ख़ुराक बनाकर रोटी में रखकर दिन भर में चार बार खिला दे। यह दवा १०-१५ दिन तक निरन्तर खिलायी जाय।

(ख) २ घुँघुची (गुंजाफल) पीसकर ऽ। गुड़ मिलाकर २ ख़ुराक में सुबह शाम खिलाये।

(ग) जुलाब देने के बाद ऽ। गुड़, ऽ= मेथी, ५ तो० अजवाइन, १ तोला सोंठ, १ तोला भाँग, इन सब चीज़ों को पीसकर ऽ। दूध में घोलकर पका ले और जानवर को गुनगुना ही खिलाये। दो दिन बाद ख़ाली पेट में नीचे लिखी दवा देने के थोड़ी देर बाद सुबह शाम उपर्युक्त दवा दे।

ढाक के बीज या पलाश पापड़ा	१ तोला	सब को आध सेर पानी में औटाकर पाव भर शेष रहने पर पिलाये।
अनार की छाल	१ तोला	
सौंफ़	१ तोला	
अमलतास	१ तोला	

(घ) सोडा-सेलिसिलास (Soda Salicylas.) या मायोसीन का इंजेक्शन दे।

(ङ) रास्ना (चिकनुआ) घास खिलाये। यह प्रायः रबी की फ़सल में उगती है।

(४) लकवा—

कारण—नाड़ियों की कमज़ोरी, या वायुविकार।

लक्षण—कुछ अंग या आधा शरीर निश्चेष्ट और देखने में पतला तथा छोटा हो जाता ह।

उपचार—(क) शरीर को गरम रक्खे। कपूर और तिल के तेल की मालिश करे।

(ख) शतावरी के तेल की मालिश करे।

(ग) सरसों की पुलटिश रखे।

(घ) रामबाँस के बीजों को उस स्थान पर पीसकर लेप करे।

खिलाने की दवा—

(क) ऽ॥ देशी शराब में ऽ- सोंठ और ½ तोला कपूर मिलाकर पिलाये।

(ख) अदरक २ तोले, शराब ५ तोले तथा भुनी हींग ६ माशे, दो-दो घंटे बाद खिलाये।

(ग) कुचला ४ माशे, सोंठ ६ माशे, हीराकशीश ६ माशे, नमक ½ छटाँक इन सबको कूट-पीस कर ऽ। पानी में घोलकर दिन में एक बार पिलाये ।

(घ) सम्भव हो तो, बिजली का इलाज कराये ।

यह भयंकर रोग है । शायद ही किसी पशु को आराम हो पाता है ।

(५) पीलिया—

कारण—खून की कमी, जिगर का ठीक-ठीक काम न करना, ठीक आहार न मिलना । पेट में कीड़े पड़ जाना, चोट लगने पर बहुत खून निकल जाना, किसी विशेष रोग के बाद कमज़ोरी का होना ।

लक्षण—शरीर, आँखें, गोबर, मूत्र, व दाँतों का पीला पड़ जाना, कमज़ोरी होना, दम फूलना, पसीना अधिक आना ।

उपचार—कुछ लोगों का कथन है कि मन्त्र के झाड़ने से भी यह रोग ठीक हो जाता है । अभि-मंत्रित पानी पीला पड़ जाता है और पशु का रोग कम हो जाता है । पीलिया के रोगी को प्रोटीन और चिकनईवाली खुराक न दे ।

(क) २ माशे कशीश और ऽ– गुड़ दोनों को मिलाकर दिन में तीन बार इस मात्रा को खिलाये ।

(ख) २ माशे शुद्ध पुनर्नवा मण्डूर और ६ माशे त्रिफला मिलाकर मट्ठे के साथ पिलाये ।

(ग) ३ माशे मण्डूर भस्म और २ तोले त्रिफला मिलाकर गुड़ के साथ दे ।

(घ) ४ माशे मुसब्बर, ८ माशे सोंठ, ३ छटाँक नमक ऽ१ पानी में मिलाकर पिलायें ।

(ङ) नोसादर अर्थात् अमोनियम् क्लोराइड (Ammonium Chloride) पशुचिकित्सक के बताये अनुसार पिलाये ।

(६) उदर-शूल—

यह ज़्यादातर गाय-बैलों को नहीं होता ।

कारण—ठण्ड लगना, गन्दा पानी या चारा-दाना, क़ब्ज़ हो जाना ।

लक्षण—पेट में गुड़गुड़ाहट, ज़ोर का दर्द, दाँत मींचना, बराबर उठना-बैठना, पेट को सींग या पैर से पीटना ।

उपचार—१½ तोले हींग, ऽ।।– तिल या अलसी का तेल मिलाकर दे । फिर १ घंटे बाद जुलाव के लिए ऽ।= खारी नमक में थोड़ा सा अदरक का रस और ऽ१। गुनगुना पानी मिलाकर पिलाये । यह दवा ऽ= की मात्रा में प्रतिदिन १ बार २ दिन तक दे । आवश्यकतानुसार २-३ बार भी इसे दे सकते हैं ।

(७) मिरगी (मृगी)—

यह बीमारी प्रायः बछड़े-बछियों को होती है, किन्तु कभी-कभी बड़े पशुओं को भी हो जाती है ।

कारण—सिर की ओर रक्त का अत्यधिक बहाव, अधिक तंग व अँधेरी कोठरी में रहना, किसी बड़े रोग के बाद शरीर की नाड़ियों का कमज़ोर हो जाना।

लक्षण—आँखों का लाल होना, बार बार मूत्र व गोबर करना, मुँह से झाग डालना, मुँह का जकड़ जाना, सब शरीर का अकड़ जाना, आँखें फट-सी जाना, लार गिरना, दाँती बन्द हो जाना।

उपचार—ठण्डे पानी से दिन में ४ बार नहलाये। शुरू में ठंडे पानी के छींटे दे। दौरा आने पर पशु की जीभ को सँभालकर रक्खे, ताकि वह उलटकर साँस की नली को न बन्द कर दे, या बाहर आकर दाँतों से कट न जाये।

(क) बबूल और बेर की ୬= नरम पत्तियों को पीसकर ୬॥ ठंडे पानी में पिलाये।

(ख) १ तोला ढाक के बीज, अनार के १ तोला छिलके, १ तोला सौंफ़, १ तोला अमलतास इन्हें ୬१ पानी में पकाये और ୬। पानी शेष रहने पर छानकर पिलाये। इसको देने के बाद ୬॥ अलसी का तेल पिलाये।

(ग) दौरा आने पर यदि जानवर बेहोश हो जाय, तो रीठे का छिलका या कंडे की राख में आक का दूध मिला कर सुँघाये।

(घ) ऊँट की हड्डी को पानी में घिसकर पिलाना कुछ लोग अच्छा मानते हैं।

(८) हार्निया (आंत्र-वृद्धि)—

कारण—कमज़ोरी के कारण पेट की आँतें अपनी जगह से हट जाती हैं।

लक्षण—क़ब्ज़, दर्द, आँत का बाहर निकलना, सूजन।

चिकित्सा—चतुर चिकित्सक से इलाज या आपरेशन करवाये।

(९) कृमि रोग (हायडेटिस—Hydatis)—

कारण—यदि गोचर भूमि में कुत्ते की टट्टी पड़ी रहे तो वहाँ एक प्रकार के कीटाणु पैदा हो जाते हैं, जो वर्षा के पानी के सूख जाने पर फैल जाते हैं। घास चरते वक्त यही कीटाणु गाय के फेफड़े, यकृत् और मस्तिष्क तक में घुस कर रोग पैदा करते हैं।

लक्षण—इसकी पहचान मुश्किल है। इस बीमारी से पशु के चमड़ी पर के बाल उड़ जाते हैं। उसे भूख नहीं लगती और साँस भारी चलती है। कभी-कभी शरीर सूखता चला जाता है।

उपचार—रेचक दवा दे और पशु को अच्छी तरह नहला कर खुली हुई हवा में रक्खे।

(क) ୬। सेंधा नमक, २ तोले गन्धक, ୬१ गरम पानी में घोलकर कई दिन तक पिलाये।

(ख) डायमल (Dimal) नामक अंग्रेज़ी दवा दे।

(१०) पेट की सूजन—

यह गो-जाति में बहुत कम पायी जाती है। घोड़ों में ही अधिकतर होती है।

कारण—ठंड लग जाना, सड़ी व ज़हरीली ख़ुराक का खाना।

लक्षण——आँतों में सूजन हो जाने से पेट में दरद का होना, पैरों का ठंडे पड़ जाना, गदन का बार बार झटकना, गोबर का विकृत हो जाना ।

उपचार——5।। तिल का तेल गरम करके पिलाये, या अन्य कोई हल्की-रेचक दवा दें । गरम पानी की पट्टी से पेट पर सेंक कर दे । एनीमा देना भी लाभदायी है । पशु को ठंडा पानी पीने से बचाये और चोकर उबालकर उसका पानी पिलाये ।

(११) सिर की सूजन—

कारण——सींग का टूटना, माथे पर चोट का लगना, मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारी या कृमि का होना ।

लक्षण——पशु पूँछ उठा और सिर झुकाकर उछल-कूद मचायेगा । माथे को दीवार से रगड़ेगा, खुरों से मिट्टी खोदेगा और मारने को दौड़ेगा । बीमारी के बढ़ जाने पर बेहोश होकर गिर पड़ेगा ।

उपचार——यह कष्टसाध्य रोग है । सिर पर ठण्डी पट्टी के रखने से कुछ लाभ सम्भव है । बीमारी के अन्य साधारण उपचार करे और पशु-चिकित्सक को शीघ्र ही बुलाये ।

दसवाँ अध्याय

भयङ्कर एवं संक्रामक रोग

निम्नलिखित बीमारियाँ भयंकर होने के साथ साथ संक्रामक भी हैं। सन्देह होते ही, आक्रान्त पशु को तुरन्त शाला से दूर हटा दे। ये रोग शीघ्रता से फैलनेवाले और कष्टसाध्य होते हैं। इनका उपचार विशेष सावधानी से करना चाहिए, अन्यथा शाला के सभी जानवरों को हो जाने का डर रहेगा।

जहाँ तक सम्भव हो, पशुचिकित्सक की सहायता से उपचार करना बहुत अच्छा है, क्योंकि ज़रा-सी भी असावधानी से जानवर के मरने और बीमारी के फैलने का डर रहता है।

शाला में जिस जगह बीमार पशु बँधा रहा हो, उस जगह को फिनायल, पोटाश परमैंगनेट या नीम के पानी से धोकर साफ़ कर दे और हल्का सा चूना बुरका दे। अन्यथा उस स्थान पर गिरे हुए कीटाणु दूसरे स्वस्थ पशु को भी बीमार बना देंगे।

रोगी गाय को भी नियमित समय पर अवश्य दुहे। इन दिनों का दूध बड़ा हानिकर होता है, अतः इसे फेंक देना चाहिए। एकाएक दूध दुहना बन्द कर देने से ऐन के और दूसरे रोगों के हो जाने की सम्भावना रहती है। बच्चे को भी दूध न पीने दे। अगर गाय के पास बच्चे को ले जाना ही पड़े, तो उसके मुँह को थन से लगाकर तुरन्त ही हटा ले।

रोगी पशु की चिकित्सा करने से पहले और बाद में भी सेवक को अपने हाथ कृमिनाशक घोल से अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

रोगी पशु को साफ़-सुथरी, हवादार और गरम जगह में मौसम का ख्याल रखकर बिठाये। उसके खाने-पीने का प्रबन्ध बिल्कुल अलग रक्खे। समय पर उचित इलाज पाकर पशु इस श्रेणी की बीमारियों से बच भी सकता है। संक्रामक रोग से मर जाने पर रोगी पशु को खूब गहरा गड्ढा खोदकर गड़वा दे और ऊपर से चूना डाल दे। गोशाला से शव हटाने के बाद वहाँ कृमिनाशक घोल से धोकर गन्धक एवं नीम के पत्तों की धूनी कर दे।

(१) मुंह पका—खुर पका—

यह प्रायः गर्मियों में होता है।

कारण—सीलनभरी गन्दी जगह में यह कीटाणु सहज ही विकसित हो जाते हैं। ज़्यादातर संक्रमण से यह रोग फैलता है। बीमार पशु के चरे हुए स्थान पर चरनेवाले अन्य पशुओं को यह हो जाता है।

१

मुंह पका—खुर पका

२	३
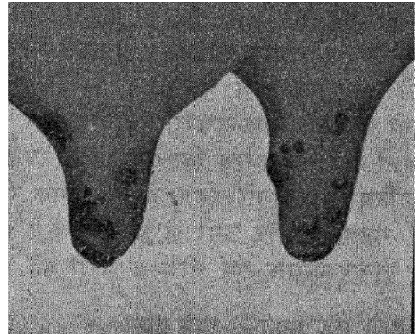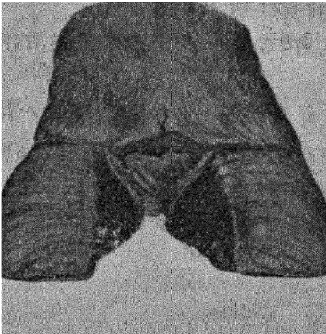
१. मुंह में से झाग आना ।

२. खुर के बीच के मांस का सूज जाना।

३. थनों पर दाने पड़ जाना ।

लक्षण--पशु के मुँह से लार और झाग निकलने लगेगी। वह जुगाली करना बन्द कर देगा। उसके जीभ के निचले भाग में सफ़ेद छाले पड़ जायँगे। खुरों के नीचे घाव होने से चलने फिरने में तकलीफ होने लगेगी। वह खाना-पीना बन्द कर देगा और उसके कान ठंडे पड़ जायँगे।

उपचार--संक्रमण को फैलनेसे बचाने के उपायों का ख्याल रखे और पशु की चिकित्सा करे। रोगी के मुंह को फ़िटकरी, पोटाश-परमैंगनेट, बेर अथवा आँवले के पत्तेवाले गरम पानी से धोये। बबूल की छाल के उबले हुए पानी से या गरम रेत से खुरों को सेंके। खुरों को सेंकने के बाद उन पर नीम का तेल, फिनायल या कोलतार लगा देना चाहिए।

(क) ३ माशे कपूर, ऽ- तारपीन का तेल, ६ माशे नीलाथोथा और ऽ- पत्थर का कोयला पीस व घोटकर घाव पर लेप कर दे।

(ख) २ छटाँक खड़िया मिट्टी, ½ छटाँक कोयला, ½ छटाँक फिटकरी, ¼ छटाँक नीला थोथा पीसकर घाव पर बुरके।

खिलाने के लिए--

पशु को साधारण सानी देना बन्द करके केवल हरी-दूब आदि घासों को ही दे।

(क) ऽ१ पुराना गुड़, ऽ। सौंफ़, ऽ- अजवाइन, ऽ- मेथी इन सबको पानी में उबालकर थोड़ा थोड़ा कई बार में पिलाना फ़ायदेमन्द पाया गया है।

(ख) आध-सेर खारी नमक गरम पानी में डालकर पिलाये।

(ग) ऽ= अमचूर, ऽ- कटेली छोटी (भटकटैया) और ऽ। शीरे की औटी बना कर पिलाये।

यदि कई जानवरों को एक साथ यह बीमारी हो जाय, तो किसी भी कृमिनाशक द्रववाले पानी को एक गड्ढे में भरकर जानवरों को कुछ देर उसमें खड़ा रक्खे। इसके बाद उन्हें नदी के किनारे की गरम रेत पर चलाये। उनके खुरों पर कोलतार रंग देना बहुत लाभदायक पाया गया है। कृमि-नाशक घोल से धोकर सारी शाला को साफ़ कर दे। पशुचिकित्सक को तुरन्त इत्तला कर दे, ताकि वह आकर संक्रमण से बचाव के सब उपाय बता सके।

(२) लोहू के दस्त--

कारण--संक्रमण, पेचिश, ख़राब ख़ुराक या पानी। इस बीमारीको देखते ही इस की ख़बर पशुचिकित्सक को तुरन्त ही करवा देना लाजिमी है, ताकि वह उपचार करके बीमारी को फैलने से बचा ले।

लक्षण--गोबर का सख़्त या बकरी की मेंगनी का सा लसीदार हो जाना, मुख में छाले पड़ जाना, बुख़ार आना, आँतों में घाव हो जाने के कारण पतले गोबर के साथ ख़ून आना, गोबर का बहुत दुर्गन्धपूर्ण हो जाना, बीमारी के अन्य साधारण लक्षणों का दिखायी पड़ना।

उपचार--संक्रमण से बचाव के सभी उपाय करे। रोग के आरम्भ होते ही हल्की रेचक दवा जैसे अंडी या तिल का ऽ॥ तेल दे।

(क) ऽ। आँवला रात भर भिगोकर सुबह को उसमें ऽ। दही, ऽ- ईसबगोल, ऽ= शक्कर डालकर दिन में दो बार दे। आँवले के बदले सौंफ़ या धनिया भी बरता जा सकता है।

(ख) फ़ौरन टीका लगवा दे। इससे यह बीमारी फैल न पायेगी।

(ख) ऽ१ बाँसी के बीज पीसकर प्रतिदिन ऽ= की मात्रा में मट्ठे में घोलकर दोनों वक्त पिलाये।

(ग) १ तो० कपूर, ऽ- कलमीशोरा, ऽ। देशी शराब मिलाकर पिलाये।

रोग के बढ़ जाने पर रेचक दवा नहीं देनी चाहिए। इससे आँतों का जखम बढ़ सकता है। अतएव निम्नलिखित संशमन दवा दे, जिससे गोबर सख़्त और गाढ़ा पड़ जाय।

(क) १ तोला अफ़ीम, १ तोला हींग, १½ तोला सोंठ, ऽ। देशी शराब सबको पीस और मिलाकर माँड़ के साथ पिलाये।

(ख) ½ छटाँक कत्था, ½ छटाँक सोंठ, ६ माशे अफ़ीम, ऽ- खड़िया मिट्टी, ऽ- देशी शराब इन सबको मिलाकर ऽ।। अलसी के माँड़ के साथ पिलाये।

(३) गल-घोंटू या घट-सर्प—

यह बरसात के दिनों में नीची ज़मीन में रहनेवाले पशुओं और ख़ासकर बछड़े-बछियों को जल्दी हो जाता है। यह रोग मृत्यु की ही सूचना है।

कारण—भादों और क्वार के महीनों में गड्ढों में ठहरा हुआ पानी कीटाणुयुक्त एवं विषैला हो जाता है। इस पानी को पीने या नहाने से और इसके आसपास की घास को खाने के कारण वे क़ीटाणु पशु के शरीर में प्रवेश करके उस के ख़ून को ख़राब कर देते हैं।

लक्षण—पहले बुख़ार के-से सब लक्षण हो जायँगे। कान के नीचे की गाँठों, जीभ एवं गले में सूजन हो जायगी, और दम घुटने लगेगा। पशु के गले से घर्राटे की-सी आवाज़ आयेगी और वह गोबर एवं मूत्र करना बन्द कर देगा।

उपचार—संक्रमण के बचाव के सभी उपाय करे। संक्रमण से बचाने के लिए स्वस्थ पशु के भी टीका लगवा दे। रोगी पशु को जौ, गेहूँ या चावल का माँड़ पिलाये।

रोगी का गला, आँख, नाक और मुँह गरम पानी में सेंधा नमक मिलाकर धो दे और एक माशा कार्बोग्लिसरीन ऽ। माँड़ के साथ पिलाये। यह उपचार हर ३ घंटे के बाद करे।

(क) १५ बूँद जमालगोटे का तेल, ऽ। तिल का तेल, ऽ। अलसी का तेल, इन सबको मिलाकर पिलाये और फिटकरी के पानी से मुँह धो दे।

(ख) ऽ१ घी, ऽ।। खारी नमक, ऽ। काली मिर्च, ऽ। ज़ीरा मिलाकर पिलाये।

(ग) २ तोले शुद्ध गन्धक, १ तोला सोंठ का चूर्ण, ऽ।। भात के साथ खिलाये।

(घ) सूजे हुए स्थान को गरम लोहे से दाग़ दे। बाद में ऽ= देशी शराब में ½ छटाँक सोंठ ½ छटाँक काली मिर्च मिलाकर पिलाये।

(ङ) पशु-चिकित्सक से आस-पास के सभी अच्छे जानवरों को टीका लगवा देना चाहिए,

जिससे यह बीमारी फैल न पाये। जहाँ ज़्यादातर यह बीमारी देखी जाती है, वहाँ के निवासियों को बरसात लगने के पहले ही पशुचिकित्सक को बुला कर रोग के कारण को समूल नष्ट करा देना चाहिए।

(४) गढ़ी सूत (ज़हरी बुखार या छड़ रोग)—

कारण—ठहरे हुए पानी में एन्थ्रेक्स (Anthrax) नामक कीटाणु पैदा हो जाते हैं, जो पानी या आसपास की घास द्वारा जानवर के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। मरे हुए पशुओं की हड्डी और चमड़े आदि से भी यह संक्रमण फैल जाता है।

लक्षण—इस रोग के कीटाणु बाहर से स्वस्थ दिखायी पड़नेवाले पशु के भी शरीर में प्रवेश करने पर एकाएक बढ़ जाते हैं और वह मर जाता है। रोगी पशु की नाक से लाल रंग का पानी बहने लगता है और कभी-कभी ख़ून भी निकलने लगता है। गोबर काले ख़ून से सना हुआ होता है। गोमूत्र भी मटमैले रंग का हो जाता है। बीमारी के विशेष बढ़ जाने पर ही बुख़ार तथा अन्य सब लक्षण दिखायी पड़ते हैं। यह भयंकर रोग है।

उपचार—इसका इलाज बहुत कठिन है, क्योंकि बीमारी के बेक़ाबू हो जाने पर ही यह बाहर से दिखायी पड़ता है। एक भी पशु को यह रोग हो जाय, तो विशेष सावधानी से संक्रमण बचाने के उपायों को शीघ्र करना चाहिए।

(क) २½ तोले तारपीन का तेल, २ तोले फिनायल, २ तोले अलसी का तेल, ১॥ गरम पानी में मिलाकर पिलाये।

(ख) ১१ पानी में १ तोला कार्बोलिक-एसिड घोलकर पिलाये।

(५) संक्रामक निमोनिया—

कारण—संक्रमण और ठंड लगना आदि।

लक्षण—साधारण-निमोनिया के-से होंगे। इसमें ख़ासकर साँस भारी हो जायगी और पशु पैर पीटने लगेगा। वह कमज़ोरी के कारण खड़ा न रह सकेगा। इस बीमारी में फेफड़े कमज़ोर पड़ जाते हैं और खाँसी आती है।

उपचार—साधारण-निमोनिया में बताये गये सभी उपचारों के साथ ही संक्रमण को बचाने के भी उपाय करे।

(क) नीम या सफ़ेद मरुआ के पत्ते अथवा तारपीन का तेल पानी में उबाल कर बफारा दे।

(ख) ১- तारपीन का तेल ১॥= तिल के तेल में मिलाकर छाती पर मालिश करे।

(ग) ১॥ नमक और ১- अजवाइन को पीस कर छाती के पास मालिश करे।

(घ) बारहसिंघे का सींग घिसकर गरम करके छाती के पास लेप करे।

(ङ) बारहसिंघे का सींग जलाकर शहद में मिला कर लेप करे और कंडे की धीमी आँच से सेंक करे।

(६) माता, महामारी या चेचक
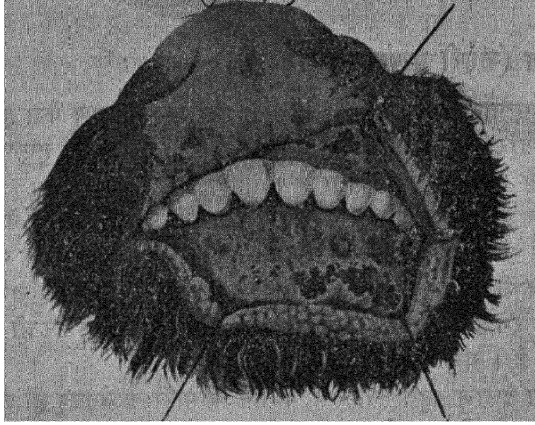
१
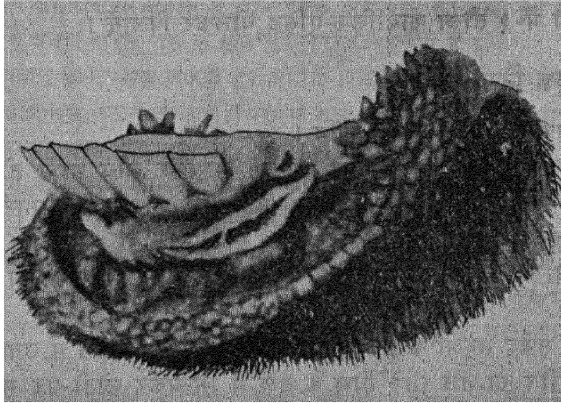
२

१. जबड़ों के भीतर के भाग का सूज जाना।
२. दाँत व जबड़े के बीच में फटान।

महामारी के रोग से सैकड़ों पशु मर जाते हैं। पहाड़ों पर यह बीमारी प्रायः पायी जाती है।

कारण—संक्रमण, गन्दगी और सीलन आदि।

लक्षण—पहले ३-४ दिन तक बुख़ार १०४ और १०५ डिग्री तक होता है, जो कई दिन लगातार रहता है। बाद में शरीर के सभी भीतरी एवं बाहरी अंगों पर लाल रंग की छोटी छोटी फुंसियाँ हो जाती हैं, जो कभी-कभी बढ़कर फफोलों की तरह भी हो जाती हैं।

उपचार—अधिकतर इस रोग में दवा नहीं दी जाती। यदि चेचक निकलने में देर हो रही हो, तो पहले गरम दवा के सहारे जैसे, कस्तूरी, जावित्री देकर सारे शरीर के ज़हर को फुंसियों के रूप में बाहर निकाल दिया जाता है। रोगी को ताज़ा साफ़ पानी पिलाये, और उसके आसपास नीम की पत्तियाँ रक्खे और उनसे सहलाये। रोगी गाय का दूध दुहकर गड्ढे में डाल दे और उसे मिट्टी से ढक दे। लाल रंग के कपड़े से छनकर रोगी गाय के शरीर पर धूप पड़ती रहे, तो अच्छा है।

(क) माता पकने से पहले सेमर की रुई के बीज खिलाना लाभदायी है। पहले दिन ५० बीज (२५+१८+७) इस प्रकार ३ बार में दे। दूसरे दिन २५ बीज (१५+१०) दो बार में खिलाये। तीसरे दिन १० बीज खिलाये। कमज़ोर या छोटे बच्चों को ये बीज कम संख्या में खिलाने चाहिए।

(ख) ऽ– नीम की कोमल पत्तियों को पीसकर ऽ। पानी में पिलाये। यह दवा बुख़ार कम होने पर देने से दाने शीघ्र सूख जाते हैं।

(ग) भट्ट के पत्तों को पानी में उबालकर पीब पड़े हुए दानों को धोये।

(घ) रोग के प्रथम लक्षण देखते ही पशु को ४ दाने पोटैशियम परमैगनेट और १ छटाँक देशी शराब को ऽ। गुनगुने पानी में घोलकर ४ घंटे के अन्तर से बराबर पिलाता रहे।

(ङ) रोग के बढ़ जाने पर जब पतले गोबर के साथ ख़ून आने लगे, तो नीचे लिखी दवा दे।

माता या चेचक से बचाने के लिए गाय की पूँछ या कान पर चाक़ू से खरोंचकर टीके का लिम्फ (Limph) लगाया जाता है। आदमियों के बच्चों के भी इसी क़िस्म का टीका लगाया जाता है। इस टीके से रोग नहीं होता और अगर होता भी है तो ज़्यादा नहीं बढ़ता।

२ माशे कत्था, २ माशे खड़िया, २ छटाँक देशी शराब, २ माशे कुचले के बीज ऽ।। चावल के माँड़ या सादे पानी के साथ ४-५ घंटे बाद निरन्तर पिलाये।

(च) ½ तोला इन्द्रजौ, ½ तोला ईसबगोल ऽ२।। पानी में भिगोकर और उसमें थोड़ी-सी शक्कर मिलाकर दिन में २-३ बार पिलाये।

(७) क्षय (तपेदिक)—

साधारणतया यह बीमारी कमज़ोर दिखायी पड़नेवाले पशुओं को अधिक होती है। इसका शुरू में पहचानना कठिन होता है। ट्यूबरकुलीन नामक दवा का इंजेक्शन लगाने से यह ठीक तौर से पहचाना जा सकता है। इस बीमारी से आक्रान्त पशु के इंजेकशन लगाने पर बुख़ार हो आयेगा और वह स्थान छोटी छोटी फुन्सियों से उभर आयेगा, किन्तु स्वस्थ पशु में कोई विकृति न होगी।
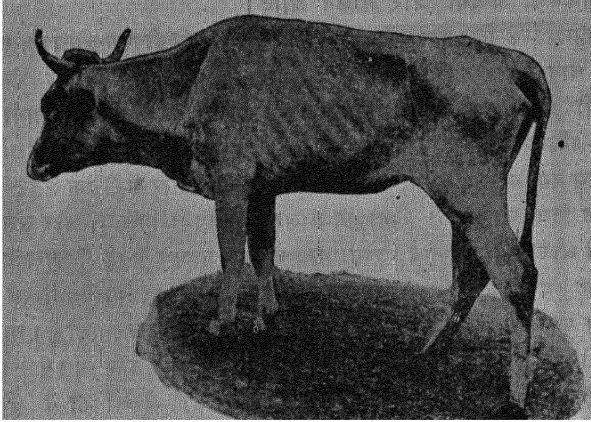
(१)
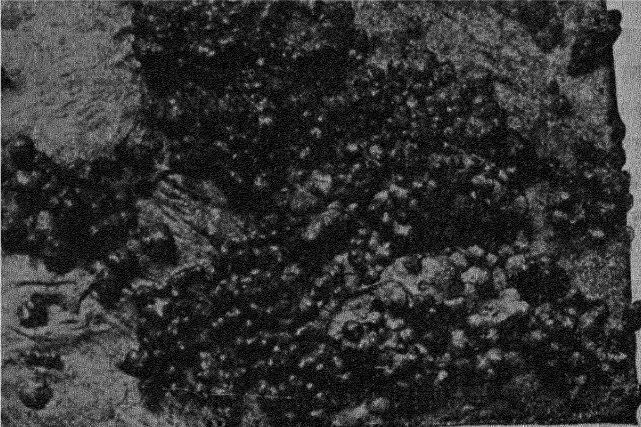
(२)

१. क्षय रोग से पीड़ित गाय ।
२. क्षयरोगी गाय के फेफड़ों पर के दाने ।

लापरवाही से पाले जानेवाले बहुत से पशुओं में इस बीमारी के कीटाणु पाये जाते हैं।

कारण—संक्रमण, संतुलित ख़ुराक का अभाव, साफ़ हवादार स्थान की कमी, सीलन भरे बन्द स्थान में रहना, कम उमर में बच्चे देना, दवाओं के सहारे बहुत अधिक दूध देना, सकुटुम्बी-सन्ततिवाली नस्ल होना, किसी बीमारी—ख़ासकर प्रसूति—के बाद कमज़ोर रह जाना, पूर्वजों से इसकी प्राप्ति आदि।

लक्षण—इस रोग के कीटाणु फेफड़े, आँतों और दुग्ध ग्रन्थियों पर शीघ्र असर डालते हैं। धीरे धीरे बढ़ने के कारण यह रोग महीनों बाद प्रगट होता है। पौष्टिक ख़ुराक मिलने पर भी पशु यदि कमज़ोर, थका हुआ और उदास दीखने लगे तो उसकी परीक्षा करा लेनी चाहिए।

आँतों में क्षय के कीटाणुओं का असर होने पर पशु की पाचनशक्ति कम हो जायगी और उसे पेचिश, अफरा आदि रोग शीघ्र ही हो जाया करेंगे। अच्छी ख़ुराक पाने पर भी पशु क्षीण होता जायगा।

दुग्धग्रन्थियों पर इन कीटाणुओं का असर पड़ने से थन के आसपास के ऐन में कुछ सूजन-सी हो जायगी, किन्तु दरद न होगा। धीरे धीरे दूध की नसों में गाँठें जकड़ जायँगी और थन छूने पर पत्थर की तरह कड़ा मालूम होगा। दूध पहले पतला और पनीला निकलेगा। बाद में कम हो जायगा और उसका रङ्ग पीला पड़ जायगा, ऐसी गाय ब्याने के बाद कम दिन दूध देगी।

फेफड़ों पर असर पड़ने से खाँसी, बुख़ार, भूख न लगना, आदि लक्षण होने लगेंगे।

उपचार—पशु को स्वच्छ जल व हरा चारा दे। रोगी पशु को काफी समय तक खुली हवा और धूप में टहलाये। अधिक परिश्रम और साँड़ के समागम से भी उसे बचाना चाहिए।

(क) बकरी की मेंगनी पानी में घोल कर पशु को दे।

(ख) बकरी का मूत्र रोगी को प्रतिदिन सुबह शाम पिलाये और उस को बकरियों के साथ चराये और बाँधे।

(ग) १ माशा स्वर्णभस्म ꠰ गुड़ के साथ दे।

(घ) पीपल के पेड़ और कबूतर के परों की हवा इस रोग में लाभदायक मानी जाती है।

नोट—पशु की देखभाल ठीक से करे। हलका और सुपाच्य चारा और गेहूँ का चोकर दे। उसे मटर, मोठ आदि का बादी करनेवाला और प्रोटीनदार भारी दाना व खली भी अधिक न दे। साधारणतया गुड़ और शीरा न दे, यह चीजें केवल दवा के साथ ही दी जा सकती हैं।

रोगी पशु का गोबर अधिक पतला न होने पाये, इसका ख्याल रखना चाहिए।

(ङ) ३ माशे हरा तूतिया, २ माशे कुचिला, ४ माशे गन्धक, ४ माशे सोंठ, ४ माशे अंडे का छिलका, २ तो० काला नमक, सब को पीस कर चोकर में मिला कर सुबह शाम खिलाया जाय। इससे ख़ून साफ़ होगा और जिस्म में ताक़त पैदा होगी।

(८) अतीसार (Dysentery)—

बड़ी आँतों में भीतरी खाल का सूजकर छिल जाना और उसका बाहर निकलना पेचिश

कहलाता है। पुराना होने पर यही अतीसार के रूप में आजाता है। यह प्रायः बछड़ों और बछियों को ही होता है, किन्तु बड़े जानवरों में भी पाया जाता है।

कारण—खराब घास व पौधों का खाना, दूषित जल का पीना, गीली जमीन में रहना, ठंड लगना, दिन में अत्यधिक गर्मी का लगना, खराब व दलदली भूमि में रहना और वहाँ की घास का खाना, अधिक परिश्रम, पौष्टिक चारे की कमी, पेट में कीड़े पड़ जाना।

लक्षण—गर्दन पर सूजन, पेट में ऐंठन, खून और चेंपदार गोबर का हो जाना, आंखों पर सूजन और मुँह पर सुस्ती का छाजाना।

उपचार—꠱।= अलसी के तेल में ꠱= तारपीन का तेल मिलाकर पिलाये। इसके बाद अण्डी का तेल दे। रोगी को कम्बल या टाट से ढक दे। एनीमा दे।

(क) १ बेल भून कर उसका गूदा ꠱॥ जौ के आटे या ꠱। आरारोट में मिला कर दे।

(ख) ꠱= ईसबगोल ꠱१ पानी में भिगोकर दे।

(ग) अलसी के माँड़ के साथ लवणभास्कर चूर्ण दे।

(घ) थोड़ा सा नमक मिलाकर ꠱॥ मट्ठा प्रतिदिन दे।

(ङ) पेंदार के तीन फलों को पीसकर पानी के साथ दे।

(६) पेट में कीड़े पड़ना—

यह कीड़े प्रायः ३ तरह के होते हैं।

१—सूत्रकृमि—यह सफ़ेद सूत की तरह ¼ इंच से १ इंच तक के लंबे होते हैं।

२—अंत्रादाकृमि—केंचुए (गेंहसा) की तरह होते हैं। ये ½ से २ फ़ीट तक लम्बे होते हैं।

३—स्फीतकृमि—फ़ीते की तरह ३ इंच से कई गज़ों तक लम्बे होते हैं।

कारण—ख़राब जल, व चारा-दाना, अजीर्ण आदि।

लक्षण—गोबर में कीड़ों और अंडों का आना, मिट्टी चाटना, भूख कम लगना, दस्त आना।

उपचार—(क) १ माशा तारपीन का तेल, ८० बूँद कर्पूरतेल और ꠱॥ अंडी का तेल दे।

(ख) ꠱।= गुड़ और ꠱– पलाश के बीज दे, इसके बाद ꠱॥ एरंडतेल पिलाये।

(ग) शरीफे या अनन्नास की पत्तियों का ꠱। काढ़ा दे।

(घ) ꠱॥ दही और ४ माशे कबीला मिलाकर दे।

पाचक चूर्ण

꠱१ काला नमक, ꠱॥ शुद्ध गन्धक, ꠱॥ सोंठ, ꠱॥ चिरायता, ꠱॥ अजवाइन, ꠱– कपूर, ꠱॥ राई, ꠱॥ मेथी, ꠱॥ हल्दी, इन सबको कूट पीस कर २ छटांक की मात्रा में सुबह-शाम १५ दिन तक दे।

(ङ) ꠱। ग्वारपाठे का रस २ तोले नमक मिलाकर दे।

शक्तिवर्धक और कृमिनाशक दवा दे, जैसे—१। तोला हीराकसीस, ꠱०॥ चिरायता, कुचले के १ माशा शुद्ध बीज, सबको माँड़ के साथ पिलाये।

(१०) लंगड़ी बुखार—

कारण—संक्रमण, दलदल के आसपास की घास का खाना, बस्ती की गन्दी नालियों का पानी पीना।

लक्षण—इन कीटाणुओं के प्रभाव से स्वस्थ पशु भी अचानक बीमार हो जाता है। वह अपने सिर को एक तरफ़ गिरा देता है और उसके कान एक तरफ़ लटक जाते हैं। कोई एक पैर शिथिल हो जाता है और वह लँगड़ाने लगता है। इस पैर के आसपास सूजन हो जाती है, जिसको दबाने से हवा भरी हुई कर्र-कर्र की सी आवाज़ मालूम देती है। तेज़ बुख़ार हो जाता है, पशु दाँत पीसता और साँस जल्दी लेता है। गर्दन में सूजन भी हो जाती है।

उपचार—यदि हो सके तो डाक्टर को बुलाकर इंजेकशन लगवा दे।

(क) सूजी हुई जगह पर टिंचर आयोडीन या नीम का तेल लगाये।

(ख) ४२ बूँद टिंचर आयोडीन थोड़े से पानी में डालकर पिलाये।

(ग) दाना-खली बन्द कर दे। ु। जौ की रोटी या चावल का माँड़ पिलाये। पशु के मुँह को ठंडे पानी से धोना चाहिए। यह भयंकर रोग है। इससे शीघ्र ही पशु की मृत्यु हो जाती है।

(११) खाँसी—

कारण—भीगना, ठण्ड लगना, या संक्रमण।

लक्षण—जुकाम और बुख़ार के साधारण लक्षण दिखायी पड़ेंगे। पहले सूखी खाँसी आती है, बाद में मुँह और नाक से कफ बहने लगता है और खाँसी बहुत तेज़ हो जाती है। साँस जल्दी जल्दी उथली व गरम चलने लगती है। पशु धीरे धीरे कमज़ोर हो जाता है और उसकी पसलियाँ दिखायी पड़ने लगती हैं। रोग बढ़कर क्षय या निमोनिया का रूप पकड़ लेता है।

उपचार—संक्रमण के बचाव के सभी उपाय करे।

(क) ु। मौरेठी, ु। लसोड़ा, ु।। गुड़ को ४ सेर पानी में पकाकर आधा पानी रहने पर छान-ले। फिर इसकी ३ ख़ुराक बना ले और ४ घंटे के अन्तर से पिलाये।

(ख) ु। गुड़, ु= काली मिर्च, ु= गुलबनफ़शा को कूटकर ५ ख़ुराक बना ले। कफ अधिक निकलने पर चावल के ु। माँड़ के साथ दे।

(ग) ु। सरसों का तेल, ु= तारपीन का तेल, २।। तोले कर्पूर, मिलाकर सीने पर मले।

(घ) तेज़ खाँसी और अधिक दर्द होने पर राई की खली नमक डाल कर पका ले। फिर इस पुलटिश को छाती पर बाँध दे।

(ङ) १ तो० नौसादर, १ तो० सोंठ, १ तो० अजवाइन इन सब को ु। गरम पानी के साथ पिलाये।

(च) एक छटाँक नोन की डली को आक के पत्तों में लपेट कर रात को भूभुल में दबा दे। सबेरे इस नोन को निकालकर पानी में घोटकर रोगी को चार दिन या उससे अधिक दिन तक आवश्यकता के अनुसार खिलाये।

(छ) अनार के ऽ= सूखे छिलकों को पीसकर ऽ= मक्खन के साथ खिलाना चाहिए।

(ज) केले के सूखे पत्तों की २ तोले राख, ४ तोले मक्खन, १० तोले कच्चा दूध, खाँसीवाले पशु को तीन दिन तक देने से खाँसी नहीं रहती।

(१२) कृमिज खाँसी—

यह अक्सर छोटे बच्चों को हो जाती है।

कारण—एक प्रकार के कीड़े पशु की श्वासप्रणाली व उसकी शाखाओं में पहुँचकर रोग को फैलाते हैं। ये गन्दा या कम जल पीने व सड़ा चारा-दाना खाने, गन्दी हवा और संकुचित स्थान में रहने से जानवर को घेर लेते हैं।

लक्षण—नाक से कफ और पानी कम बहता है, किन्तु सूखी खाँसी बड़ी देर तक आती रहती है। सीने में तकलीफ़ होने से जानवर कराहने लगता है। बीमारी के अन्य सभी साधारण लक्षण दिखायी पड़ते हैं।

उपचार—सबसे पहले कीड़ों को मारने की दवा देकर पेट साफ़ कर दे।

(क) २ छटाँक अलसी का तेल, १। तोला कर्पूरद्रव, २ माशे तारपीन का तेल, (Creosote) क्रियोसोट् १ माशा, इन सब को मिलाकर नाक में २-३ दिन के अन्तर से डाले।

(ख) चाय के चम्मच से १ चम्मच क्लोरोफ़ार्म नथनों को ऊँचा करके डाले। छोटे जानवरों में इस दवा को कम मात्रा में डाले।

(ग) ऽ= कटेरी के बीज, ऽ। अलसी का तेल, दोनों को मिलाकर आग में पकाये। जब बीज जल जायँ, तो छानकर रख ले। इसे दिन में ३ बार नाक के नथनों में डाले।

(घ) कटेरी के ६ फल, जिनमें बीज पुष्ट हो गये हों, कुचल और छानकर उनका रस नाक में डालने से कीड़े निकल आते हैं।

खुराक में दाना-खली बिलकुल बन्द कर दे। हरी घास ही खिलाये। २॥ तोले गन्धक और ऽ– नमक दोनों वक्त गेहूँ के ज़रा से चोकर में मिलाकर दे।

ग्यारहवाँ अध्याय

कुछ नुस्खे

६ऽ से अधिक वजनवाले पूरे जानवरों के लिए यह खुराकें हैं। पूर्वकथित आयु और वजन आदि के हिसाब से औषधि की इस मात्रा में कुछ कमी-वेशी कर ली जानी चाहिए।

रेचक—

१—ऽ॥ इपसम साल्ट या खारी नमक, ऽ– शुद्ध गन्धक पिसा हुआ, १¼ तोला सोंठ पिसी हुई, ऽ। गुड़, या शीरा या राब सबको ऽ१। गरम पानी में मिला और ठंडा कर के पिलाये।

२—ऽ।– अलसी या एरंडी का तेल, ऽ।– तिल का तेल, २० बूंद जमालगोटे का तेल, सबको मिला कर पिलाये।

हल्का रेचक—

३—¼ छटाँक सोंठ, ऽ–॥ शुद्ध गन्धक, ऽ= सेंधा नमक, ऽ–॥ गुड़ सबको ऽ॥ गरम पानी में मिलाकर पिलाये।

४—ऽ।– एरंडी का तेल और ऽ≡ अलसी का तेल मिलाकर पिलाये।

उत्तेजक—

१—ऽ= देशी शराब, ¾ तोला पिसी हुई काली मिर्च, १¼ तोला सोंठ सबको मिला कर चावल के माँड़ के साथ हर चौथे घंटे पिलाये।

२—१। तोला नौसादर, १। तोला सोंठ, ३ माशे कुचले के बीज सबको पीस और मिलाकर चावल के माँड़ के साथ पिलाये।

शक्तिवर्धक और कृमिनाशक—

१—१। तोला हीराकसीस, ऽ०॥ चिरायता, ३ माशे कुचले के बीज सबको पीस और मिलाकर चावल के माँड़ के साथ दे।

कृमिनाशक—

¼ तोला हींग, ऽ०॥ गन्धक, ऽ०॥ पलाश के बीज, इन सब को पीसकर माँड़के साथ पिलाये।

कृमिनाशक द्रव (शरीर के ऊपरी हिस्सों को धोने के लिये)—

१—नीम के पत्ते डाल कर उबाला हुआ पानी, भट्ट के पत्ते डाल कर उबाला हुआ पानी, फिनायल मिलाया हुआ पानी, या पोटेशियम परमैंगनेट डाला हुआ पानी शरीर धोने के काम में लाया जाय।

डी० डी० टी० या मिट्टी का तेल नाली में डालने से मच्छर मक्खी मर जाते हैं।

नीम के पत्ते, गूगुल, चन्दन का बुरादा इनका धुआं शाला में कर दे।

बन्धक (मल को बांधने या गाढ़ा करने वाला)—

१—ऽ०।। खड़िया मिट्टी, १¼ तोला कत्था, १¼ तोला अजवाइन, सबको मिला कर दो बार माँड़ के साथ दे।

२—केले की फली में १ माशा अफ़ीम रख कर खिलाये।

३—ऽ०।। खड़िया मिट्टी, ऽ०। कत्था, ऽ०। सोंठ, १½ माशे अफ़ीम, ऽ– शराब सबको मिलाकर चावल की काँजी के साथ दिन में २ बार पिलाये।

४—ऽ। सौंफ़, ऽ२ पानी में भिगोकर दो बार में दे।

५—ऽ०।। ईसबगोल की भूसी पानी में भिगोकर दे।

पाचक चूर्ण

ऽ= काला नमक, ऽ– जम्बीरी नीबू का रस, ऽ०।। अजवाइन, ऽ०। ज़ीरा सफ़ेद, ½ तोला हींग का कूटा पीसा हुआ चूर्ण मट्ठे में मिलाकर दे।

संकोचक (शरीर पर लगाने के लिए)—

३ माशे हीराकसीस, ३ माशे नीलाथोथा, १¼ तोला फिटकरी, ऽ।।= पानी में घोलकर ठंडा होने पर लगाने से बहता हुआ खून बन्द होगा।

परिशिष्ट

गो-उद्योग

(लेखक श्री डा० जौहरी)

हमारे देश में सभी समुदायों के लोग गौ के महत्त्व को मानते हैं। भोजन में गोदुग्ध और घृत की आवश्यकता तो शाकाहारी जनता के लिए बहुत बड़ी है। धरती में जब पौष्टिक पदार्थ होंगे, तभी उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ेगी, और इसके लिए सजीव खाद का प्रयोग करना होगा। कृत्रिम तथा वैज्ञानिक साधनों यथा ट्रेक्टर आदि मशीनों और रासायनिक खादों का भी उपयोग आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता है; परन्तु हमारे देश में जनसंख्या की कमी के न होने के कारण इन मशीनों का अधिक बढ़ाना निकट भविष्य में एक गम्भीर समस्या खड़ी कर देगा। भारतवर्ष की सम्पूर्ण परिस्थिति को देखते हुए बैल की जननी गौ ही किसान के लिए उपयुक्त दूध, खाद एवं वाहन की शक्ति दे सकती है।

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए दूध का सेवन करना बड़ा जरूरी है। देशवासियों का स्वास्थ्य ही देश की सबसे बड़ी निधि है। अतः गोपालन को पूरा महत्व देना चाहिए, जिससे देश में भरपूर दूध हो सके।

दूध का उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता—यद्यपि संसार के अन्य कई देशों से हमारे देश में दूध देने वाले पशुओं की संख्या और दूध का उत्पादन अधिक होता है, तथापि प्रतिव्यक्ति दूध की खपत सबसे कम पड़ती है। अतः दूध के उत्पादन को बढ़ानेकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

तालिका नं० १—विविध देशों में दुग्धोत्दपान और प्रतिव्यक्ति पर उसकी खपत—

नाम देश	दुग्धोत्पादन सन् १९३०-३४ (लाख गैलन)	जनसंख्या हज़ारों में	प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति दुग्धोत्पादन (औन्सों में)	प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति दूध की खपत (औन्सों में)
स्वीडन	९८०	६२३३	६९	६१
फ़िनलैण्ड	६२०	३६६६	७४	६३
न्यूज़ीलैण्ड	८७०	१५५९	२२४	५६
आस्ट्रेलिया	१०४९	६६३०	६९	४५
अमेरिका	१०३८०	१२२७७५	३७	३५
ग्रेटब्रिटेन	१४७५	४५२६६	१४	३९
भारत	६४००	३५२८३८	८	७

(श्री डाक्टर राईट महोदय के हिसाब से)

अनुसन्धानकर्त्ताओं का अनुमान है कि भारत में एक मनुष्य को औसतन ७ या ८ औंस अर्थात् पावभर दूध या दूध से बनी चीजें मिल पाती हैं। पोषणविज्ञानवेत्ताओं के मतानुसार हर एक भारतवासी को कम से कम १५ औंस

(आध सेर) दूध मिलना चाहिए, ताकि उसे काफ़ी सजीव प्रोटीन मिल सके। दूध की प्रोटीन बड़ी अच्छी एवं सुपाच्य-जाति की मानी गयी है। प्रोटीन की कमी होने से मनुष्य की मांसपेशियाँ कमज़ोर हो जाती हैं और कई प्रकार के रोग हो सकते हैं।

दूध और स्वास्थ्य--वैज्ञानिकों ने अनुसन्धान के लिए एक छात्रावास के कुछ छात्रों को दूध दिया और कुछ को नहीं। ठीक समय पर उनकी उँचाई और वज़न लेने से यह मालूम हुआ कि दूध पानेवाले छात्रों की बाढ़, स्वास्थ्य तथा कार्यक्षमता कहीं अधिक रही। अतः खासकर बच्चों को कम से कम आध सेर दूध रोज़ दिया जा सके, तो भारत की मृत्युसंख्या बहुत कम की जा सकती है। गर्भधारणकाल और प्रसव के बाद स्त्री को गाय के दूध से पोषण पहुँचाया जाय, तो क्षय और अनेक विकट रोगों से उसका बचाव सम्भव होगा। जिस देश की स्त्रियों तथा बच्चों को ही पर्याप्त पोषण न मिलता हो, वहाँ के प्रौढ़ मनुष्यों का स्वास्थ्य कब ठीक हो सकता है।

हीन और संतुलित गुणकारी भोजन
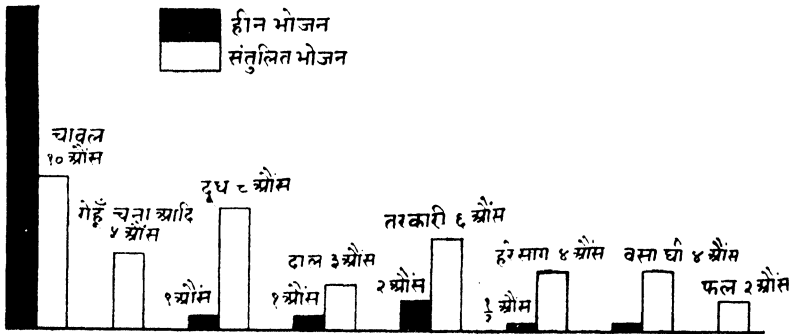
२७०० कैलारी एक प्रौढ़ व्यक्ति के लिए प्रतिदिन के हिसाब से
(पोषण अनुसंधान शाला कूनूर के आधार पर)

पोषण-अनुसन्धान-शाला कुनूर के आधार पर एक प्रौढ़ व्यक्ति को कम से कम २७०० कैलरी गर्मी देनेवाला भोजन प्रतिदिन मिलना चाहिए। साधारणतया भोजन में चावल की ही मात्रा अधिक, हरे साग तरकारी आदि की कम और दूध की तो बहुत ही कम होती है। इस कारण पोषणतत्व अर्थात् विटामिन की बड़ी कमी रहती है। प्रोटीन भी बहुत कम है, और जो कुछ है वह दालों से मिलती है और विशेष गुणकारी नहीं है। संतुलित एवं गुणकारी भोजन के हेतु चावल को कम करना होगा तथा हरी सब्ज़ी और दूध की मात्रा तो दुगुनी से तिगुनी तक भी बढ़ानी होगी।

गो-उद्योग धन्धे का मूल्य--विभाजन के पूर्व भारत के पशुसम्बन्धी उद्योग-धन्धों का मूल्य विशेषज्ञों द्वारा १,००० करोड़ रुपया आँका गया है। ८०० लाख मन दूध और उससे बनी चीज़ों का मूल्य ३०० करोड़ हो जाता है। जब कि प्रतिवर्ष के सारे चावल का मूल्य ३०० से ४०० करोड़ रुपये के लगभग है; और २७० करोड़ की क़ीमत की पशु के मलमूत्र की खाद मानी गयी है। यहाँ का शक्कर का व्यवसाय तो केवल ३० करोड़

रुपयों का ही माना गया है। फिर भी सरकार का ध्यान और खर्च गो-उद्योग की ओर अन्य सब उद्योगों की तुलना में बहुत ही कम रहा है।

मनुष्य, पशु और धरती—विभाजन के पूर्व भारत की जनसंख्या ३५ करोड़, पशुसंख्या ३० करोड़ और खेती की भूमि ३०० लाख एकड़ आँकी गयी है। खेती के काम में आनेवाले सभी क़िस्म के बैलों की संख्या केवल ६० लाख ही मानी गयी है। इस कारण १० एकड़ खेत पर केवल एक जोड़ी बैलों का औसत पड़ता है। भली भाँति खेतों पर काम करने के लिए इससे कहीं अधिक एवं स्वस्थ बैलों की आवश्यकता है। पहले यहाँ बलिष्ठ बैल थे।

देश में गो-पशु की वर्तमान दीन अवस्था के कई कारण हो सकते हैं। जैसे १—चरागाह की कमी—ज्यों ज्यों जनसंख्या बढ़ती गयी, चरागाह कम किये जाने लगे; क्योंकि उन्हें मनुष्यों ने अपने लिए बरता, अतः चारा कम हो गया।

२—"सूरज" साँड़ के द्वारा बेरोक-टोक और बिना समझे प्रजनन होता रहा, जिससे गो की नस्ल दिन पर दिन कमजोर होती गयी।

३—पशु निर्बल तथा रोगी होने के कारण अधिक मरते गये। इसलिए दुर्बल पशु भी अधिक संख्या में पाले जाने लगे; और इन्हें चारा तथा घास भी बहुत कम केवल मेड़ों पर की ही दी गयी।

४—साथ ही ज़मीन की उर्वरा-शक्ति को बढ़ाने के लिए इनके गोबर की खाद बनाने का प्रबन्ध भी नहीं किया गया; बल्कि कंडे थाप कर ईंधन की जगह बरत लिये गये। जनसंख्या और पशुसंख्या भी बढ़ी, परन्तु इनके साथ धरती का बढ़ना तो सीमित है। इसके उपरान्त भी खेत में खाद देकर उसकी उर्वरा-शक्ति को बढ़ाने की ओर आम तौर पर काश्तकारों ने बहुत कम ध्यान दिया। फल यह हुआ कि पशु मनुष्यों से पहले भूखे मरने लगे और क्षीण होते गये।

भैंस या गाय—जब देश मे दूध की कमी है, तब गाय या भैंस के पालने का प्रश्न उठाना उचित नहीं प्रतीत होता। अधिक पनीले स्थानों में भैंस उपयोगी रहेगी। इस समय दूध के उत्पादन में भैंस का काफ़ी बड़ा स्थान है। यद्यपि भैंस के दूध से घी भी ज्यादा बनता है, फिर भी भैंस गाय का स्थान नहीं ले सकती।

उत्पादन और पशु—अर्थशास्त्रियों के द्वारा ऐसा अनुमान किया जाता है कि आर्थिक दृष्टि से एक गाय को कम से कम ३ सेर, भैंस को ४ सेर दूध प्रतिदिन देना चाहिए, और बैलों को आठ घण्टे काम करके औसत दर्जे की एक एकड़ भूमि एक दिन में जोत देनी चाहिए। इतनी कार्यक्षमता पशुओं को हो, तभी वे अपने मालिक के लिए लाभदायी साबित हो सकते है। आमतौर पर बहुत से जानवर ऐसे भी पाये जाते हैं, जो न तो कृषि का काम ही करते हैं, और न दूध ही देते हैं। ऐसे पशुओं के गोबर, हड्डी और चमड़े आदि तक का भी ठीक उपयोग नहीं किया जाता। इन पशुओं से देश को लाभ नहीं मिलता।

हमें अच्छे पोषण तथा प्रजनन द्वारा अपने **पशुओं की कार्यक्षमता को बढ़ाना होगा, केवल पशुसंख्या को ही बढ़ाना लाभदायक नहीं हो सकता।**

गो-उन्नति के साधन—उन्नति करने के लिए अवनति के कारणों को खोजकर उन्हें दूर करना पड़ता है। साथ ही आधुनिक-विज्ञान-सम्बन्धी अनुसन्धानों का पूरा लाभ उठाने की कामना को देश भर में जागृत करना अच्छा होगा।

१—गाँव में इस समय औसतन एक गाय ब्याँत भर में लगभग ६०० पौंड दूध देती है। इन्हीं गायों को सरकारी फ़ारमों में वैज्ञानिक ढग पर रखने से इनका दूध २०० से ३०० पौंड तक होता हुआ पाया गया है। अच्छी गायों को चुना जाय, तो कम गायों से ही अधिक दूध का उत्पादन, इन्हीं गायों के खिलाने पिलाने और नीरोग रखने

का ठीक प्रबन्ध करने पर सम्भव होगा। इस प्रकार चारे का खर्च कम और दूध का उत्पादन अधिक होने लगे, तो गायों से आर्थिक लाभ अवश्य होगा।

२—कृषि का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाय, जिससे चारे-दाने की ठीक व्यवस्था हो सके। सम्मिलित-कृषि (Mixed farming) जिसमें पशु भी पाले जायँ और खेती भी की जाय, ऐसी प्रथा को अपनाया तथा बढ़ाया जाय और गोबर-कूड़े की मिश्रित खाद भली भाँति बनायी तथा दी जाय। इस प्रकार पारस्परिक सहयोग से खेती की उर्वराशक्ति भी क्षीण न हो पायेगी। अतः पशु किसान के लिए अधिक अन्न उपजानेवाले आशीर्वाद ही सिद्ध होंगे। मनुष्य के काम न आनेवाली घास और भूसा खली आदि चीजें ही खाकर गाय अपने पालक के लिए हितकर दूध और बैल दोनों का ही उत्पादन करेगी। धार्मिक भावना के कारण गाय का पालना मुश्किल नहीं पड़ेगा, अतः हमारे यहाँ गोपालन करना सरल है।

३—वर्षा के दिनों में अक्सर घास ज़्यादा होती है। पशु इतनी ज़्यादा हरी घास खा भी नहीं पाते और वह बेकार जाती है, किन्तु गर्मी के दिनों में तो पशुओं को सूखी घास भी नहीं मिल पाती। वे दिनभर घास टटोलते हुए भूखे रह जाते हैं, इसलिए दाब-घास (साइलेज) का प्रबन्ध होना चाहिए। सरकार की ओर से गोपालकों को साइलेज-कूप बनाने को बाध्य कर देना अच्छा होगा। नियम बनाकर एक बार इन कूपों का प्रचार कर देने पर इन कूपों की उपयोगिता का अनुभव होने के बाद गोपालकों का ध्यान इस ओर स्वयं ही होने लगेगा। इस प्रकार समय पर संचित किया हुआ चारा लाभकारी सिद्ध होगा।

४—चराई का प्रबन्ध—जंगलों में पशुओं को चरने के लिए स्वतन्त्रता दी जाय। खाद देकर बंजर भूमि को चराई के लिए तैयार कर लिया जाय। ग्राम-पंचायत की ओर से हिस्सेवार चराई (Rotational grazing) का बाढ़ लगाकर प्रबन्ध किया जाय। हिस्सेवार पद्धति से चराने पर घास को उग आने का समय मिल जायगा और उतनी ही ज़मीन पर जानवर अच्छी तरह चर पायेंगे। इस तरह ज़मीन का समुचित उपयोग हो सकेगा।

५—अधिक चारा पैदा करने के लिए अनुसन्धानशालाएँ सरकार की ओर से बनायी जायँ। ऐसी नयी नयी घासों का जो कम से कम पानी पाने पर अथवा कमज़ोर ज़मीन पर भी हो सकें, पैदावार अधिक दें व पौष्टिक हों, वैज्ञानिक ढंग पर पता लगाकर प्रचार किया जाय। उन घास के बीजों का भी किसानों के लिए कम क़ीमत पर दिये जाने का प्रबन्ध होना चाहिए। साथ ही, पेड़ पौधों का अनुसन्धान करके उन्हें चारे के लिए बरतने के लाभ बताये जायँ।

६—प्रजनन का नियन्त्रण—साँड़ पर ही गाय की नस्ल निर्भर है, इसलिए बेकार और हीन नस्ल का साँड़ न रहने दिया जाय। उसे बधिया बना दिया जाय। लोगों को अच्छे 'सूरज' साँड़ छोड़ने को बाध्य किया जाय। परीक्षित एवं श्रेष्ठ साँड़ों का पालना बढ़ाया जाय। कृत्रिम गर्भाधान-प्रणाली को बरतकर नस्ल की उन्नति कर ली जाय।

७—गोशालाओं तथा पिंजरापोलों का नियन्त्रण वैज्ञानिक-ढंग पर किया जाय।

८—पशु-चिकित्सालयों की व्यवस्था जगह-जगह पर की जाय, ताकि रोगी पशु उचित इलाज पाकर शीघ्र ही स्वस्थ हो सके। वह मरने से बच जाय, तो किसान की एक बड़ी निधि की रक्षा हो जाती है। विशेषज्ञों के द्वारा संक्रमणों के स्थानीय कारणों की खोज और उससे बचाव की योजना समझ लेने पर गोपालक अपने पशुओं को रोगों से बचा सकेंगे। इन कारणों से पशु-चिकित्सालयों द्वारा देश को आर्थिक लाभ होगा, इसलिए इनका होना परम-आवश्यक है। इससे किसानों की बड़ी मदद सम्भव होगी, क्योंकि उनके पशु रोग से बहुत कुछ त्राण पायेंगे।

९—शिक्षा और गो-उन्नति—स्कूलों से ही गोपालन की शिक्षा दी जाय, तो आगे चलकर बालक वैज्ञानिक-ढंग पर पशु पालकर उनसे लाभ उठायेंगे। प्रौढ़-शिक्षा के समय इस विषय पर व्याख्यान दिये जायँ। विशेष-अध्ययन

के लिए गो-शिक्षालय खोले जायँ। त्यौहार और मेलों के अवसर पर गो-विज्ञान का प्रचार—भाषण, प्रदर्शिनी, सिनेमा, रेडियो, या ग्रामाफ़ोन के द्वारा—किया जाय, तो गो-पालन का वास्तविक अर्थ में विकास होगा।

१०—क़ानून की आवश्यकता—गो-उन्नति के उपायों को बरतने तथा बाधक चीजों को मिटाने के लिए क़ानून की शरण लेने से मार्ग काफ़ी सीधा हो जायगा। वनस्पति-घी के कारण असली घी को बहुत धक्का पहुँचा है। अतः गाय-भैंस का पालन लाभदायी बनाने के लिए पशु-संरक्षण करने वाले क़ानून की जरूरत है। इस प्रकार क़ानून के द्वारा भी गो-पालन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

११—सहकारिता-पद्धति और गो-उद्योग—किसान लोग आपस में मिलकर काम करें, तो उन्हें बड़ा लाभ होगा। इस प्रकार वे अपने-अपने केन्द्र अथवा समाज बनाकर कम खर्च में ही एक गोविशेषज्ञ को रखने, चिकित्सालय को खोलने और प्रजनन के लिए अच्छे साँड़ों को पालने का प्रबन्ध कर सकेंगे। साथ ही उन्हें दूध को बेचने और शहर में पहुँचाने की सुविधा होगी। गाँव में दूध इकट्ठा करके मोटर, लारी व रेलों द्वारा शहर में भेज दिया जा सकेगा। गावों में दूध इकट्ठा करके सुरक्षित रूप से शहरों में पहुँचाने के लिए रेल में ठण्डे डिब्बों का प्रबन्ध सरकार को करना उचित होगा। घी व खोया बनाने से तो दूध बेचना ही ज़्यादा लाभदायी है, अतः सरपंच की देख-रेख में दूध को शुद्ध रखने, इकट्ठा करने तथा उसका मूल्य नियत करने का ठीक प्रबन्ध होता रहे, तो बेचने वालों तथा ग्राहकों—दोनों—को ही सन्तोष होगा। इन केन्द्रों में बाक़ी-बचे दूध से खोया, व क्रीम आदि चीज़ें बनाने की ठीक व्यवस्था भी हो सकेगी, इस कारण खर्च का औसत भी कम पड़ेगा।

मनुष्य, मोटर व मकान आदि के बीमों की भाँति ही इन केन्द्रों द्वारा गाय और बैलों के बीमों का प्रबन्ध किया जा सकेगा। एक बैल के मर जाने पर किसान को दूसरा बैल खरीदने में काफ़ी परेशानी उठानी पड़ती है। किन्तु यदि पशुओं का बीमा करा दिया जाय, तो केन्द्रों से किसान को बैल के दाम मिल जायँगे और पशु-सम्बन्धी कठिनाइयाँ बहुत कुछ कम हो जायँगी। पशुओं के बीमे की प्रथा इटली और डेनमार्क आदि देशों में पायी जाती है। यहाँ भी इसका प्रचार करना हितकर होगा।

१२—पशु से सम्बन्धित अन्य उद्योग—पशु के चर्म, मांस, हड्डी, सींग, खुर आदि वस्तुओं को ठीक से इस्तेमाल करने पर पशुपालन और भी लाभप्रद बनाया जा सकता है। अक्सर मरे-जानवर की खाल को चमार लोग निकाल कर उसमें नमक लगाकर सुखा लेते हैं, किन्तु बचे हुए हाड़-मांस को खुले स्थान में छोड़ देते हैं। इस प्रकार सड़ती हुई ये चीज़ें रोग और बदबू का कारण बन जाती हैं। मांस आदि पदार्थों को ज़मीन में गाड़ देना चाहिए। हड्डियों को विधिवत् जला और पीसकर पशुओं के लिए खनिज-तत्त्वों की कमी होने पर बरता जा सकता है। सींग से कंघे बटन और चाक़ू की बेंट आदि वस्तुएँ बनायी जाती हैं। हड्डी और सींगों का चूरा खाद के लिए भी बड़ा उपयोगी होता है। ये चीज़ें भारतवर्ष से विदेशों तक में भेजी जाती हैं।

गोबर और गोमूत्र खेत में नाइट्रोजनवाले पदार्थ पहुँचाकर उसकी हर एक फ़स्ल की उपज को बढ़ा देते हैं। ईंधन के लिए लकड़ी का प्रबन्ध हो जाय, तो बहुमूल्य गोबर के कंडे जलने से बच रहेंगे। "टाग्याखेती" या बनखेती की प्रथा की सिफ़ारिश जंगलात के मुहकमेवालों ने की है। इसके अनुसार बेकार ज़मीन पर हल्की फ़सलों के साथ ही ईंधन के लिए पेड़ भी खेत में लगा दिये जाते हैं। तीन चार साल तक पेड़ इतने छोटे रहते हैं कि वहाँ चारे के लिए खेती आसानी से की जा सकती है। बाद में उसी भूमि में और भी पेड़ लगा कर दूसरा चरागाह बनाया जा सकता है। इससे ईंधन की समस्या कुछ हद तक हल हो जायगी।

रासायनिक खादों से एक बार तो फ़स्ल अधिक होने लगेगी, परन्तु इन फ़स्लों में पौष्टिक पदार्थों की कमी रहेगी, ऐसा वैज्ञानिक लोगों का अनुभव है। कार्ल एलिक्स (Carl Alix) महोदय अपनी "Man the unknown"

नामक किताब में रासायनिक खादों के कुप्रभाव को बताते हैं। रासायनिक खाद हमें विदेशों से मँगानी पड़ेगी, क्योंकि अभी यहां बनती नहीं है, इस कारण देश के पैसे को हानिकर चीज़ खरीदने में नष्ट करना ठीक न होगा। साथ ही यह भी सिद्ध हो चुका है, कि दस साल के बाद रासायनिक-खाद दिये हुए खेत कमज़ोर हो जायेंगे।

सारांश यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को, जहाँ हो सके, धार्मिक ही नहीं आर्थिक दृष्टि से भी गोपालन करके उद्योग को बढ़ाना चाहिए। गो-उन्नति और गो-उद्योग-धंधों को वैज्ञानिक-रूप से चलाने में देश का कल्याण निश्चित है।

तारीख २५–७–४८

डा० महेन्द्रप्रताप जौहरी
वेटेरनरी सर्जन, आइज़टनगर
(आई० वी० आर० आई०)

संतुलित गो-पालन पर प्राप्त

कुछ

सम्मतियां

Sir Datar Singh, Vice-Chairman, Indian Council Of Agricultural Research, writes From New Delhi:

" 'Santulit Gopalan' by Rani Chandra Wati is a useful addition to the literature on Indian Cattle and their development. The literature on the subject in Hindi is very small and Rani Chandra Wati has made a valuable contribution by publishing her book in Hindi, thus placing before the vast majority of our Hindi knowing people the facts about our cattle wealth and the importance of its development.

I commend the book to the Student and the Worker interested in cattle development."

Syt. N.A. Sherwani, Minister, Agriculture, U.P., writes :

"It seems to me that Rani Saheba has taken very great pains in compiling the book. She has to be congratulated on the selfless task that she has taken upon herself. The book, I am sure, will be of an immense benefit to the country not only on account of the method and of the useful matter that it contains, but also for the reason that it shows what valuable contribution ladies can make in the building up of our beloved country anew."

Shrimati Mira Behn writes from Rishikesh:

"I think your book will be appreciated by all cow-lovers. It has put, in comparatively small space, much useful information, and the fact that it is in Hindi, makes it all the more serviceable to the masses, and will, therefore, come to the aid of our "cattle-masses" who are so sadly neglected today."

Syt. Sankar Ganesh Navathe writes from Poona:

"A manual containing in short, relevant and up-to-date information on cow-keeping in an urgent necessity. Santulit Gopalan, will, I am sure, serve this

purpose............it has obtained the privilege of being the first up-to-date national text book on the subject."

Sjt. Kshitish Chandra Sen, Indian Dairy Research Director, Institute of Banglore writes :

"The present compilation entitled 'Santulit Go-palan' is an important addition to our literature on cattle management. It is a surprising fact that there is no suitable book even in English language which deals so adequately with Indian cattle and a publication in Hindi of a book like this is an event of great interest to everyone connected with animal husbandry in India...... this volume will fill-up a long felt lacuna. As a worker in animal nutrition and dairy-science, I have gone through this publication with great pleasure."

गोसेवा संघ, वर्धा के मन्त्री श्रीयुत राधाकृष्ण जी बजाज लिखते हैं—

"आपकी भेजी संतुलित गो-पालन किताब देखी। हिन्दी में ऐसी परिपूर्ण किताब आज तक नहीं थी। गो-पालन के हर एक पहलू पर इसमें शास्त्रीय ढंग से विचार किया गया है। बहुत थोड़े में अच्छी जानकारी दी गई है। छपाई सुन्दर व काग़ज़ चिकना होने पर भी क़ीमत केवल ५) सस्ती है। आपका प्रयत्न सराहनीय है। गो-पालन की इच्छा रखने वाले आम सब के लिये यह संग्रहणीय है।"

पश्चिमी बंगाल के गवर्नर श्रीयुत् कैलासनाथ काटजू महोदय लिखते हैं :—

"हमारे देश में ऐसी पुस्तकों का लिखा जाना ज़रूरी है। मुझे आशा है कि इसको लोग आदर के साथ देखेंगे और इस से लाभ उठायेंगे। और भाषाओं में भी इसका अनुवाद होना चाहिये। मैंने भी इसको बहुत कुछ देखा है। सत्य यह है कि आपने जो मालूमात किये हैं वे बहुत ही अच्छे हैं।"

गो-सेवा-संघ वर्धा के शास्त्रीय सलाहकार श्रीयुत परमेश्वरी प्रसाद गुप्त लिखते हैं :—

"हिन्दी में गोपालन पर एक अच्छी पुस्तक की बड़ी ज़रूरत थी। मैं समझता हूँ कि 'संतुलित गोपालन' इस कमी को पूरा कर सकेगी। लेखिका ने इसकी सामग्री इकट्ठी करने में बड़ी मेहनत की है।"

ललितहरि आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल श्री विश्वनाथ द्विवेदी पीलीभीत से लिखते हैं :—

यह पुस्तक गो-सम्बन्धी हर प्रकार की आवश्यकताओं पर प्रकाश डालने वाली प्रथम श्रेणी की है। इस में कई औषधियाँ मेरी स्वयं की परीक्षित हैं जो तत्काल लाभप्रद हैं।